बापूकी कलमसे

[गांधीजीके मूल हिन्दी लेखोंका संग्रह]

सम्पादक
काकासाहब कालेलकर

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद
१९५७

गांधी-शैलीकी हिन्दी

(१)

अुत्तर भारतकी सर्व-सामान्य भाषा हिन्दीको राष्ट्रभाषाकी अुच्च पदवी दिलानेकी महात्मा गांधीकी अुत्कट कोशिश सब जानते ही हैं। आजकलके बुरे दिनोंमें गांधीजीकी अिस सेवाका स्मरण विशेष रूपसे हो रहा है, जब कि हिन्दी भाषाके चन्द अभिमानी लोग भारतीय परिवारकी सब भाषाओंको संतुष्ट करके अुनका सहयोग प्राप्त करनेकी आवश्यकताको भूलकर, हिन्दीको कमजोर कर रहे हैं, कहीं कहीं हिन्दीके प्रति अरुचि भी पैदा कर रहे हैं, और अिस गृह-कलहसे बल पाकर विदेशी भाषा स्वतंत्र भारतमें अपनी जड़ें मजबूत कर रही है।

गांधीजीके विचार गुजरातीमें और अंग्रेजीमें ही प्रकट होते देखकर स्वर्गस्थ श्री जमनालालजी बजाजने गुजराती 'नवजीवन' की हिन्दी आवृत्ति निकालनेकी सलाह गांधीजीको दी, और 'हिन्दी-नवजीवन' के द्वारा गांधीजीके गुजराती और अंग्रेजी लेखोंका अनुवाद प्रकट होने लगा।

श्री हरिभाअू अुपाध्याय, श्री काशीनाथ त्रिवेदी और श्री वैजनाथ महोदय आदि हिन्दीभक्तोंने अनुवादका यह काम बड़ी श्रद्धासे और लगनसे किया, और हिन्दी-जगतको गांधीजीके विचारोंका सीधा परिचय होने लगा।

जो काम 'हिन्दी-नवजीवन' ने किया, वही आगे जाकर 'हरिजन-सेवक' द्वारा आखिर तक होता रहा। गांधीजीके आग्रहके कारण अुनके अिन लेखोंका प्रकाशन अुर्दू लिपिमें भी होने लगा। अिस अुर्दू आवृत्तिका प्रचलन कम होते हुअे भी गांधीजीने अुसका प्रकाशन आखिर तक जारी रखा।

गांधी-साहित्यका आस्वाद पानेवाले लोगोंको स्वाभाविक अिच्छा हुअी कि गांधीजीकी कलमसे निकली हुअी, अुनकी निजी हिन्दीका भी आस्वाद लोगोंको मिले। अपने विचार देशवासियोंको समझानेकी

आतुरताके कारण गाधीजीने गुजराती और अग्रेजी भाषाओ पर अच्छा प्रभुत्व पाया था। हिन्दी भापाके बारेमे वैसा वे न कर सके। लेकिन देशप्रेम और हिन्दीके आग्रहके कारण अुन्होने, जहा तक हो सका, हिन्दीमे बोलनेका और खत-पत्र लिखनेका नियम चलाया।

शुरू शुरूमे, सत्याग्रह आश्रममे हम सब लोग आश्रमका व्यवहार गुजरातीमे ही चलाते थे। आश्रम गुजरातकी प्रजाधानी अहमदाबादके निकट होनेसे और अधिकाश आश्रमवासी भी गुजराती होनेसे, हम अन्यभापी सदस्योने आश्रमका कामकाज, प्रार्थना-प्रवचन तक, गुजरातीमें चलाना ही पसद किया। यही स्वाभाविक और योग्य था।

लेकिन जब सारा भारत सत्याग्रह आश्रमसे प्रेरणा पाने लगा और सब प्रान्तोके लोग आश्रममे आकर रहने लगे, तब जमनालालजीने फिरसे हिन्दीकी तार्अीद शुरू की। अुसका स्वीकार करके गाधीजी आश्रमके व्यवहारमे और प्रार्थनामे भी हिन्दीमे बोलने लगे। हिन्दीभापी लोगोसे बोलते, अुनके पत्र पढते और अुनके भाषण सुनते-सुनते गाधीजीका हिन्दीका मुहावरा बढा। हिन्दीका ज्ञान कच्चा होते हुअे भी, गाधीजीकी अपनी अेक मौलिक, सीधी और असरकारक शैली बन गअी। जब कोअी लेखक अेक भाषामे अपने विचार अच्छी तरह प्रकट करनेका सामर्थ्य प्राप्त करता है, तब दूसरी भापाका ज्ञान कच्चा होने पर भी नयी भाषाके भाषण-लेखनमे शैलीकी सस्कारिता, रचना-माधुर्य और विचार प्रकट करनेका ओजस् आ ही जाता है। यही कारण है कि गाधीजीकी हिन्दीकी मौलिक शैलीमे अुनके विचार पढनेके लिअे लोग लालायित रहते थे।

गाधीजी स्वय जानते थे कि अपने विचार हिन्दी-जगतके सामने किसीसे अनुवाद करवाकर प्रकट करना काफी नही है। अुन्हे स्वय कुछ न कुछ हिन्दीमे लिखना ही चाहिये। अिसलिअे पाठकोके और साथियोके आग्रहका अभिनदन करके वे समय-समय पर कुछ लिखने लगे।

अुनके अैसे मौलिक लेखोका सग्रह करके स्वतत्र रूपसे अुनको प्रकाशित करना बहुत ही जरूरी था। अैसे प्रकाशनकी कल्पना करके

अुसे कार्यान्वित करनेका मारा श्रेय अिन्दौरके श्री पन्नालाल जैनको ही है। सन् १९२९से अुन्होने गाधीजीके मौलिक हिन्दी लेखोका मग्रह करना शुरू किया, और अुन्हे प्रकाशित करनेकी कोशिश भी की। सन् १९३०में जब सरकारने गाधीजीको जेलमें भेजा तब अुनके लेखोका मिलसिला टूट गया। अिसी अवसरको स्वाभाविक समझकर श्री पन्नालालजीने सन् १९३० तकके सग्रहको प्रकाशित करनेके लिअे यरवडा जेलमें खत लिखकर गाधीजीकी अनुमति मागी।

गाधीजीकी ओरमे महादेवभाअीने अैसी अिजाजत भेजकर सूचना दी कि श्री हरिभाअू अुपाध्यायकी सलाहसे आप मग्रह प्रकाशित कर सकते है।

अैसा सग्रह प्रकाशित करनेके पहले यह ढूढना जरूरी था कि गाधीजीके कौनसे लेख मौलिक है और कौनसे अनूदित है। अिस बारेमें श्री पन्नालालजी काफी सतर्क थे ही। तो भी अुन्होने श्री काशीनाथ त्रिवेदीको सारा सग्रह दिखाकर अपने मग्रहके बारेमें प्रमाणपत्र हासिल किया।

अितनी मेहनत करने पर भी श्री पन्नालालजीका किया हुआ मग्रह, देशकी राजनीतिक अस्वस्थताके कारण, प्रकाशित न हो सका।

जब मै सन् १९४९मे राअूके सर्वोदय सम्मेलनमें गया, तब श्री पन्नालालजीने अपना सग्रह मुझे दिखाया और अुसके प्रकाशनके लिअे कोशिश करनेका भार मुझ पर डाला। मैने वह सारा सग्रह देखकर नवजीवनको सौप दिया। पन्नालालजी समय समय पर प्रकाशनका तकाजा करने लगे और मै अुसे नवजीवन तक पहुचाता रहा।

अिस तरह काफी समय व्यतीत होनेके बाद गाधीजीके मौलिक हिन्दी लेखोका यह सग्रह प्रकाशित हो रहा है। हिन्दी पाठक तो अिसे पाकर प्रसन्न होगे ही। लेकिन मबमे अधिक प्रमन्नता होगी श्री पन्नालालजी जैनको। अिसलिअे मै अुन्हीका यहा अभिनदन करता हू।

अेक बात यहा पर स्पष्ट करनी चाहिये। अपने अखबारके लिअे गाधीजी जो कुछ भी लिखते थे, अुसकी भाषा किमी न किसी

हिन्दीभाषी सज्जनसे दुरुस्त करवाते थे। असलिअे यहा पर जो कुछ भी सग्रह हिन्दी-जगतके सामने रखा जा रहा है अुसके बारेमे हम यह नही कह सकते कि "असमे हरअेक शब्द और वाक्य-रचना गाधीजीकी ही है। औरोका असमे कुछ भी नही ह।" तो भी गाधीजीके खास खास शब्द और अुनकी लाक्षणिक शब्दावली और वाक्य-रचना भी अस सग्रहमे पाअी जाती है। शुरू शुरूमे जो शैलीका कच्चापन दीख पडता है, वह आगे जाकर स्वाभाविक रूपमे कम हुआ है। असके दो कारण हो सकते है। या तो गाधीजीकी हिन्दी शैली सुधर गअी अथवा प्रकाशनके पहले अुनके लेखोमे सुधार करनेका काम हिन्दी साथियोने ज्यादा अुदारतासे किया। दोनो बाते सही है। और आज असकी पूरी जाच हो भी नही सकती। लेखोकी तारीख देखकर अुसी समयके गाधीजीके खत-पत्रोकी भाषाके साथ मुकाबला करके थोडी-बहुत जाच हो सकती है। लेकिन अुसकी अुतनी जरूरत नही है। गाधीजीके लेखोमे औरोके सुधार दाखिल होनेके बावजूद अुनकी शैली, और शब्दोकी पसन्दगी भी, अस सग्रहमे प्रकट होती ही है।

मुझे डर है कि जहा तक हो सका श्री पन्नालालजीकी ओरसे और नवजीवन प्रकाशन मदिरकी ओरसे पूरी पूरी कोशिश होने पर भी अिधर-अुधर अेकाध या अधिक अनूदित लेख अस सग्रहमे आ गये होगे। जिन लेखोके नीचे स्पष्ट लिखा नही है कि यह अनूदित है अथवा जिन हिन्दी लेखोके प्रकाशनके पहले वही चीज गुजरातीमे या अग्रेजीमे अुसी रूपमे नही आअी है, वे सब मौलिक माने जाये — यही दडक हम लोगोने मान्य किया है। असके सिवा और कोअी चारा नही था। मै मानता हू कि यह कसौटी काफी कडी होने पर भी पूर्ण रूपसे निर्दोष तो नही है। पाठकोको अितना सतोष जरूर रहेगा कि अनुवाद करनेवाले लोगोको गाधीजीकी गुजराती और अग्रेजी शैलीका अच्छा परिचय था, असलिअे अनुवादोमे भी गाधीजीकी शैलीका कुछ न कुछ असर होगा ही।

अूपर जो दडक हमने लगाया या कसौटी चलाअी, वह भी हमेशा अेकसी नही चल पायी। असका मुझे दु ख है। नही तो मै

अधिक विश्वाससे कह सकता कि यहा दिये हुअे गाधीजीके लेख करीब सबके सब अुन्हीकी कलमके है।

आज जब अिस सग्रहकी ओर हम देखते है तब आश्चर्य होता है कि अितने कार्यव्यस्त जीवनमे भी गाधीजी गुजराती और अग्रेजीके अलावा हिन्दीमे भी कितना कितना लिख सके।

(२)

गाधीजीकी शैलीके बारेमे अेक विचार यहा पेश करना जरूरी है, जो गाधीजीके जीवन-कालमे प्रकट करनेकी शायद हमें अुनसे अिजाजत नही मिलती।

दुनिया जानती है कि सस्कृत भाषा पाणिनिके व्याकरणसे बधी हुअी है। हमारे पुरखोका भाषाशुद्धिका आग्रह अितना अुग्र था कि तनिक भी व्याकरण-दोष वे बरदाश्त नही कर सकते थे। लेकिन पाणिनिके पूर्वकालीन सस्कृत-स्वामियोको भाषा पर पाणिनिका अधिकार कैसे चल सकता? वे तो स्वतत्र रूपसे लिख गये थे। पाणिनिके समकालीन और अुनके परवर्ती लेखकोमें भी अैसे समर्थ समाज-नायक, धर्मकार और साहित्यकार हो गये, जिनकी भाषा पर पाणिनिकी मात्रा नही चल सकी। अुन्होने जो लिखा वह पाणिनिके व्याकरणके अनुसार हो या न हो, अुसे अशुद्ध कहनेका किसीको भी अधिकार नही है। अैसे पाणिनि-बाह्य प्रयोगोको सस्कृतके अभिमानी और सस्कृतके सेवक आर्ष प्रयोग कह कर अुनके सामने सिर झुकाते आये है। महामुनि व्यासके महाभारतमे अैसे आर्ष प्रयोग भूरि भूरि पाये जाते है। अिसलिअे अेक व्यासभक्तने अेक श्लोक बनाकर अपना अभिप्राय और अपनी भक्ति विश्वासके साथ व्यक्त की है

यानि अुज्जहार माहेशात् व्यासो व्याकरणार्णवात्।
तानि किं पदरत्नानि भान्ति पाणिनि-गोष्पदे॥

भवभूतिने भी लिखा है

लौकिकाना हि साधूना अर्थं वाक् अनुवर्तते।
ऋषीणा पुनराद्याना वाच अर्थोऽनुधावति॥

वाचा-सयम और विचार-सयमके ब्रह्मचर्यका पालन जिन्होंने किया है और अुत्कट सेवाके द्वारा जिनकी वाणीमे तेज आया है और जिनकी वाणी आत्मशक्तिकी तेजस्वी वाहक वनी है, अुनकी लेखन-शैली, अुनके वनाये हुअे मुहावरे और कहावते समाजमे सर्व-सामान्य होते है और टकसाली वन जाते है।

गाधीजीने जो राष्ट्रसेवा की है, राष्ट्रभापाको जो प्रतिष्ठा प्रदान की हे और जो सत्य-अहिसा-मूलक मानव-हितका चितन किया है, अुसके कारण गाधीजीकी भापामे और शैलीमे आर्प तेज आ गया है। अुनकी शैलीका अनुकरण और अुनके मुहावरोका स्वीकार हिन्दी-जगत धीरे धीरे किन्तु अवश्य करेगा, खास करके अुनके लेखोमे सत्यका जो सीधापन है अुसका अनुकरण तो नया जमाना अवश्य ही करेगा। गाधीजीके वाक्य क्या है, वल्लमकी फेक ही है।

अिग्लैडके राजाने वाअिवलका अनुवाद मूल हिब्रू और ग्रीक भापासे कअी विद्वान धर्माचार्योके द्वारा अग्रेजीमे करवाया। अिग्लैडके चर्चने अुसे वाअिवलका केवल अनुवाद न मानकर अुस अनुवादको ही अपना प्रमाण-ग्रथ मान लिया। धर्मकी दृष्टिसे अतिम आधार हिब्र और ग्रीक वाअिवलको नही, किन्तु अग्रेजीमे लायी गअी सहिताको ही प्रमाण मान लिया और घोपित किया कि अनुवादक धर्माचार्य जव अनुवाद करते थे तव अीश्वरसे प्रेरित थे। अिसीलिअे अुनका अनुवाद स्वतत्र रूपसे प्रमाण-ग्रथ है।

अितना होने पर ब्रिटिश प्रजाने वाअिवलका अनुवाद श्रद्धाभक्तिसे पढना शुरू किया। अितना ही नही, अुस अग्रेजी मान्य अनुवादकी शब्दावली और शैली अग्रेजी भापाके लिअे सुन्दरतम और आदर्श मान ली गअी।

हमारे यहा अुत्तर भारतकी प्रजाने तुलसी रामायणको वाल्मीकि रामायणसे भी अधिक ग्राह्य और आदरणीय माना। और तुलसीदासकी भापाशैलीने हिन्दी भापा पर अपना प्रभुत्व जमाया।

अगर गांधीजीके विचारोंमे और विचार-शैलीमे सत्यकी सरलता है, युगदृष्टिको साफ करनेकी क्षमता है और मानव-कल्याणकी भावुकता है, तो अुनकी शब्दावली, अुनकी वाक्य-रचना और अुनके बनाये हुअे मुहावरे परिचित होने पर किसीको बेढंगे नही लगेंगे, बल्कि अनुकरणीय और आदरणीय लगेंगे। भाषा अैसे ही बनती है। समर्थ समाज-सेवक, तेजस्वी लोकनेता और जनता-प्रिय साहित्य-स्वामी जो भाषा लिखते हैं, वही प्रचलन पाती है और सर्वमान्य होती है।

गांधीजीके विचारोंने अुनके जीते-जी भारत पर प्रभाव डाला ही। अुनके बाद अुनके विचारोसे भिन्न विचारधारामे भी भारतने स्नान करके देखा। लेकिन अनुभव यह हो रहा है कि गांधीजीके विचार अल्पकालिक नही हैं। वे मानवी युग-संस्कृतिके लिअे पोषक हैं। अुनकी जीवन-दृष्टि धीरे धीरे बहुजन-ग्राह्य होगी और अुनके साहित्यका प्रत्यक्ष या परोक्ष अध्ययन अवश्य होगा।

तब लोग अुनकी विचार-पद्धति और लेखन-शैलीका अध्ययन करनेके लिअे जो लेख 'बापूकी कलमसे' अुतरे अुनका प्रेमसे आदर करेंगे और तब गांधी-शैलीका हिन्दी पर कुछ न कुछ असर अवश्य होगा।

क्या दक्षिण अफ्रीकामे, और क्या भारतमें, गांधीजी बडी ही सावधानतासे लिखते थे। बहुतसी बाते अुन्होंने गुजराती, अंग्रेजी, हिन्दी तीनों भाषाओंमे अेकसी लिखी हैं। लेकिन समाज-सुधारकी कअी बाते अुन्होंने अंग्रेजीमे न लिखकर गुजरातीमे या हिन्दीमे ही लिखी हैं। जिस समाजकी सेवा करनी है, अुसीकी भाषामे लिखनेसे प्रभाव तो अच्छा पडता ही है, और अगर आत्मीयतासे समाजको अुसीकी भाषामें नसीहत दी जाय तो औरोंके सामने दोष प्रकट करनेके दोषसे हम मुक्त रहते हैं।

यहां गांधीजीके दक्षिण अफ्रीकाके जीवनका अेक किस्सा याद आता है

गाधीजी और जनरल स्मट्सके बीच कुछ बाते किसी समय हुअी। अुनका साराश गाधीजीने अपने 'अिडियन ओपीनियन' मे प्रकाशित किया। अिस पर जनरल स्मट्स बिगडे। कहने लगे कि हमारे बीच जो खानगी बाते हुअी अुन्हे सारी दुनियाके सामने प्रकट करनेमे आपने औचित्यका भग किया। गाधीजीने कहा, "मुझसे औचित्य-भग होता तो मै जरूर आपसे माफी माग लेता। आप जानते है कि मेरे 'अिडियन ओपीनियन' के दो हिस्से है। चद लेख अग्रेजीमे प्रकट होते है और चद भारतीय भाषाओमे। अग्रेजी लेख दक्षिण अफ्रीकामे भारतीयोके अलावा अग्रेज और पढे-लिखे नीग्रो भी पढ सकते है, यह जानकर अति-प्रकाशन (Over-publication) को टालनेके हेतुसे मैने आपकी और मेरी जो गुफ्तगू हुअी अुसका सार तो दूर रहा, जिक्र तक अग्रेजी विभागमे नही आने दिया।

"मै आपसे मिला था सो भारतीयोका प्रतिनिधि बनकर मिला था। वकीलका और प्रतिनिधिका धर्म है कि वह सरकारके साथ किये हुअे मशविरेका सार अपने असीलोको दे। अिसीलिअे मैने अपना कर्तव्य और धर्म समझकर हमारे वार्तालापका सार सिर्फ भारतीय भाषामे दिया।"

गाधीजीका यह सूक्ष्म विवेक ध्यानमे आते ही जनरल स्मट्स शात हो गये और अुन्होने अपनी शिकायत वापस खीच ली।

भारतके जगह जगहके लोक-सेवक और समाज-सुधारक गाधीजीको खत लिखकर समाजकी कअी कुप्रथाओकी चर्चा करते थे और गाधीजीसे दिशा-दर्शनकी अपेक्षा रखते थे। अैसी बातोकी चर्चा गाधीजीने अग्रेजीमें कम की है, गुजरातीमे और हिदीमे अधिक की है। गाधीजीका यह सूक्ष्म विवेक समझने लायक है। गाधी-विचारको समझनेकी तीव्र अिच्छा रखनेवालोसे मै कहता आया हू कि गाधीजीके विचार और लेख केवल अग्रेजीमे पढनेसे आपको गाधीजीका सपूर्ण दर्शन नही हो सकेगा। अैसी कअी बाते है, जिन्हे अुन्होने गुजरातीमें और हिन्दीमे ही लिखना पसन्द किया था। भारतीय जीवन-दर्शनमे गाधीजीकी देनको पूर्णतया

समझना हो, तो अुनके हिन्दी और गुजराती लेख पढे विना चारा नहीं। कअी लोगोने मेरी अिस सूचनाका महत्त्व समझकर गुजराती और हिन्दी सीखना शुरू किया है।

अिस दृष्टिसे भी अिस पुस्तकका महत्त्व असाधारण है। मेरा तो विश्वास है कि गाधीजीके मौलिक हिन्दी लेखोका बहुविध महत्त्व पहचानकर भारतकी अन्यान्य सरकारे अिस ग्रथकी शिक्षानुकूल कअी आवृत्तिया तैयार करवायेगी और अुससे लाभ अुठाते समय मेरे साथ वे भी श्री पन्नालाल जैनको और नवजीवन प्रकाशन मदिरको धन्यवाद देगी।

काका कालेलकर

अनुक्रमणिका

बापूकी कलमसे

१

हिन्दी नवजीवन

यद्यपि मुझे मालूम है कि 'नवजीवन' को हिन्दीमें प्रकाशित करना कठिन काम है तथापि मित्रोके आग्रहवश होकर और साथियोंके अुत्साहसे 'नवजीवन' का हिन्दी अनुवाद निकालनेकी धृष्टता मैं करता हू। मेरे विचारो पर मेरा प्रेम है। मेरा विश्वास है कि अुनके अनुकरणसे जनताको लाभ है। अिसलिअे अुनको हिन्दीमे प्रकट करनेकी अिच्छा मुझे बहुत समयसे थी। परतु आज तक परमात्माने अुसे सफल नही किया था। हिन्दुस्तानीको भारतवर्षकी राष्ट्रीय भाषा बनानेका प्रयत्न मैं हमेशासे करता आया हू। हिन्दुस्तानीके सिवा दूसरी भाषा राष्ट्रभाषा नही हो सकती, अिसमे कुछ भी शक नही। जिस भाषाको करोडो हिन्दू-मुसलमान बोल सकते है, वही अखिल भारत-वर्षकी सामान्य भाषा हो सकती है, और अुसमे जब तक 'नवजीवन' न निकाला गया तब तक मुझे दु ख था।

हिन्दुस्तानी-भाषानुरागी 'हिन्दी-नवजीवन' मे अुत्तम प्रकारकी हिन्दीकी आशा न रखे। 'नवजीवन' और 'यग अिडिया' का अनुवाद ही अुसमे देना सभवनीय है। मुझे न तो अितना समय है कि हमेशा हिन्दुस्तानीमे लेख आदि लिख कर दे सकू और न बहुत हिन्दुस्तानी लिखनेकी शक्ति ही मुझमे है।

'हिन्दुस्तानी भाषाका प्रचार' अिस साहसका मुख्य हेतु नही है। 'शातिमय असहयोगका प्रचार' ही अिसका अुद्देश्य समझना चाहिये। हिन्दुस्तानी भाषा जाननेवाले जब तक असहयोग और शातिके सिद्धान्त भलीभाति न समझ लेगें, तब तक शातिमय असहयोगकी सफलता असभव-सी है। अिसलिअे 'हिन्दी-नवजीवन' की आवश्यकता थी। परमात्मासे प्रार्थना है कि जो लोग केवल हिन्दुस्तानी ही समझते है, अुन्हे 'हिन्दी-नवजीवन' मददगार हो।

हिन्दी-नवजीवन, १९-८-'२१

२

मारवाड़ी भाअियों और बहनोके प्रति

प्रिय भाअी-बहनो,

आपके प्रेमवश होकर मैंने 'हिन्दी-नवजीवन' निकालनेका साहस किया है। जबसे मैं भारतवर्षमे आया हू, तबसे मेरा सबध आपसे निकट होता जा रहा है। आपने मेरी प्रवृत्तिको प्रेमभावसे देखा है और मुझे सहायता दी है। आपने हिन्दी-प्रचारमे खूब मदद की है। आपकी ही सहायतासे आज द्राविड प्रातोमे हिन्दीका प्रचार अच्छी तरह हो रहा है। आप भाअी और बहने असहयोगी हैं। आप राष्ट्रीय जीवनमें रस लेते हैं। आपने देख लिया है कि धनी पुरुष और स्त्रिया राष्ट्रीय जीवनसे बहिर्मुख नही रह सकती।

आप धर्मप्रेमी हैं। धर्मके लिअे आप लाखो रुपये देते हैं। आपमे साहस भी है। द्रव्योपार्जनमे आपका प्रधान स्थान है। धनिक वर्गके अलग रहते हुअे अिस धर्म युद्धमे, जो आज भारतवर्षमे छिड रहा है, सफलता मिलना मुझे बहुत ही कठिन दिखाअी देता है।

अखिल भारतकी राष्ट्रीय समितिने स्वराज्य प्राप्तिके लिअे अब जो कदम अुठाया है, अुसमें आप लोगोकी ओरसे सहायता मिलने पर ही सपूर्ण सफलता मिल सकती है। अुक्त समितिने निश्चय कर लिया है कि आगामी ३० सितम्बर तक परदेशी कपडोका पूरा बहिष्कार कर दिया जाय। मैंने आप ही के विश्वास पर सितम्बर मासकी अवधि रखनेकी सलाह दी। अतअेव अिस स्वदेशी आन्दोलनको प्रबल बनानेके समयमे 'हिन्दी-नवजीवन' का प्रकाशित होना अुचित ही है।

राष्ट्रीय जीवनमे आजकल तो व्यापार-वृत्ति और दास-वृत्ति देखी जाती है। ज्ञान और शौर्यका अभाव मालूम होता है। अब हमारे व्यापारी-समाज तथा दासवर्गको ज्ञान और शौर्य्य प्राप्त करनेकी आवश्यकता है। हमे अिस बातका ज्ञान होना चाहिये कि विदेशी

कपडेके व्यापारसे हमारा देश मटियामेट हो गया है। और अुस व्यापारका त्याग करनेका शौर्य्य भी हमे होना चाहिये। यदि हममे अितना भी वलिदान करनेका शौर्य्य नही है जितना कि विदेशी कपडेके व्यापारके त्यागके लिअे आवश्यक है, तो हम अपने धर्मका पालन नही कर सकते, अपने ही भाअी-वहनोको नुकसान पहुचाकर हमने करोडो रुपये अिकट्ठा किये और अुसमे से लाखोका दान किया, तो यह पुण्य नही है। अिसलिअे आप भाअी और वहनोसे मेरी प्रार्थना है कि आप परदेशी कपडेका वहिष्कार करनेमे और खद्दर (गाढा) तैयार करनेमे पूरा साहस दिखाकर अपनी पिछली देश-सेवाकी वृद्धि करे।

हिन्दी-नवजीवन, १९-८-'२१ आपका,

मोहनदास करमचद गाधी

३

विहार-निवासियोके प्रति

विहारकी श्रद्धा और भक्ति अवर्णनीय है। गो-माताके प्रति आपके प्रेमको मै अच्छी तरह जानता हू। आप भक्तशिरोमणि तुलसीदासके पुजारी है। आप दयाधर्मके पालक है। गो-माताको वचानेका सुवर्ण-मार्ग अेक ही है। आप मुसलमान भाअियोकी खिलाफत-रूपी गायको वचानेमे सहायता करे। मुसलमान-भाअी प्रेमके वश होकर गायको वचा सकते है। हमारा धर्म नही सिखाता है कि हम अेक प्राणीको वचानेके लिअे मनुष्यका जी ले। जिसको हम वचाना चाहते है, अुसके लिअे हम अपना ही प्राण दे। अिसको हमारा धर्म तपश्चर्या कहता है। तपश्चर्यासे ही हम धर्मका पालन कर सकते है। तपश्चर्या दयामूलक है, और दयामे ही धर्म है।

जवतक हम पापरहित नही वने है, तवतक हम कैसे दूसरोको कुछ भी कह सकते है? हमारे ही हाथोसे क्या गो-हत्या नही होती है? हम गो-माताके वशके प्रति कैसा वरताव करते है? वैलो पर

हम कितना बोझ डालते है? वैलोको तो ठीक, पर गायको भी हम पूरा खाना देते है? गायके वछडेके लिअे कितना दूध रखते है? गायको कौन वेचते है? थोडे पैसेके लिअे जो हिन्दू गायको वेचते है, अुनको हम क्या कहते है? क्या करते है?

अग्रेज सिपाहियोके लिअे हमेशा गाये काटी जाती है। अिसके लिअे हमने क्या किया है? अिन सब बातोको समझते हुअे हम क्यो अपने मुसलमान भाअियो पर, जो अपना धर्म समझकर गो-कुशी करते है, क्रोध करे? कमसे कम हमारे हाथोका मैल तो हमे अवश्य निकालना ही चाहिये।

अीश्वरका वडा अनुग्रह है कि हमारे मुसलमान भाअियोने वकर-अीदके दिन वडी खामोशी रखी, हमारी मुरव्वत की और जहा तक हो सका अुन्होने गो-कुशी न की। अिसलिअे हम अुनके अेहसानमद हुअे है।

लेकिन भविष्यमे भी अैसा ही हो, अिसका खयाल रखना आवश्यक है। अिसलिअे हम वकरे अित्यादिके मासका त्याग करे। अैसा करनेसे अिन चीजोका दाम कम होगा और गायका दाम वढेगा। गायका सौदा ही हमें असभव कर देना चाहिये। यह सब कार्य हमसे तभी हो सकेगा, जब हम अपने प्रत्येक कार्यमे विवेक, दया, वुद्धि और त्यागका प्रयोग करेगे।

आपमें धर्म पर वडी श्रद्धा है। जिस देशमे जनक, वुद्ध और महावीरने जन्म लिया है अैसे पवित्र स्थानमे रहकर आप धीरज और धर्मको साथ रखते हुअे वडा कार्य कर सकते है, और गो-माताकी रक्षा करनेका धर्म-मार्ग सारे भारतवर्षको वता सकते है।

तेजपुर, आसाम, भाद्रपद कृष्ण ४
हिन्दी-नवजीवन, २–९–'२१

४

महात्मा गांधीका आखिरी संदेश

अदालतसे विदा होते समय महात्माजीने कहा

"मुझे अब सदेशा देनेकी आवश्यकता नही। मेरा सदेश तो लोग जानते ही है। लोगोमे कहिये कि हरअेक हिन्दुस्तानी शाति रखे। हर प्रयत्नसे शातिकी रक्षा करे। केवल खादी पहने और चरखा काते। लोग यदि मुझे छुडाना चाहते हो तो शातिके ही द्वारा छुडावें। यदि लोग शाति छोड देगे, तो याद रखिये मैं जेलमें ही रहना पसन्द करूगा।"

हिन्दी-नवजीवन, १९-३-'२२

५

'हिन्दी नवजीवन' के पाठकगण!

मुझे हमेशा अिस बातका दु ख रहा है कि मैं 'हिन्दी नवजीवन' का सपादक रहते हुअे भी अुसमे कुछ लिखता नही हू। अिसी कारण मै अपनेको अुसका सपादक होनेके लायक भी नही मानता हू।

मैने सपादकका पद केवल श्री जमनालालजी बजाजके प्रेमके वश होकर ही ग्रहण किया है। जबतक अुसमे केवल गुजराती और अग्रेजीका अनुवाद ही आता है, मुझे सतोष नही हो सकता। समय मिलने पर अब 'हिन्दी नवजीवन' मे भी कुछ न कुछ लिखनेकी कोशिश करूगा।

पर अिस लेखके लिखनेका कारण दूसरा है। मै देखता हू कि 'हिन्दी नवजीवन' मे नुकसान रहता है। अेक समय अुसके ग्राहक कोअी १२,००० थे, आज १,४०० है। 'हिन्दी नवजीवन' के स्वावलबी होनेके लिअे ४,००० ग्राहकोकी आवश्यकता है। यदि अितने

ग्राहक थोडे समयमे न होगे, तो मेरा अिरादा है कि ‘हिन्दी नवजीवन’ बद कर दिया जाय। मेरा हमेशा यह विचार रहा है, और जेलमे वह अधिक दृढ हो गया है, कि जो अखबार स्वावलबी नही है और जिसको अिश्तहारोका सहारा लेना पडता है अुसको बद कर देना चाहिये। अिसी नियमके मुताबिक यदि ‘हिन्दी नवजीवन’ स्वावलबी न हो सके, तो मै अुसे बद कर देना मुनासिब समझता हू। यदि आप अिसकी आवश्यकता समझते हो, तो ग्राहक-सख्या बढानेका अेक अच्छा अुपाय यह हे कि आप अपने मित्रोको अिसके ग्राहक बनानेकी कोशिश करे। आपको यह जानना अुचित है कि मैने ‘यग अिडिया’ के लिअे भी अैसा ही अिरादा जाहिर किया है। मेरे अिस निश्चयका सबब आप केवल नैतिक या आध्यात्मिक समझे।

गुजराती ‘नवजीवन’ मे ‘हिन्दी नवजीवन’ और ‘यग अिडिया’ के नुकसानका बोझ अुठाने पर भी फायदा रहा है। पाच सालकी अुम्रमे ५०,००० बचे है। वे सार्वजनिक कामोमे सूतचक्र —— चरखा और खादी-प्रचारमे खर्च किये जायगे। अिसका ब्यौरा आपको गुजरातीके अनुवादमे मिलेगा। यदि ‘हिन्दी नवजीवन’ मे लाभ होगा, तो वह दक्षिण प्रान्तोमे हिन्दी-भाषाका प्रचार करनेमे व्यय किया जायगा। मेरा विश्वास है कि अैसी सादी हिन्दीका प्रचार, जिसे हिन्दू व मुसलमान भाअी-बहन समझ सके, दक्षिणमे होनेकी बडी आवश्यकता है। आप यदि अिस खयालको पसद करे तो ‘हिन्दी नवजीवन’ का प्रचार करनेमे यथाशक्ति परिश्रम करे।

फाल्गुन कृष्ण १४, बृहस्पतिवार
हिन्दी-नवजीवन, ६–४–’२४

६

प्रिय पाठकगण !

आजकल अुत्तर-हिन्दुस्तानके कअी अखबारोमे हिन्दू-मुसलमानोके दिल बिगाडनेकी कोशिश हो रही है। अुन अखबारोमे द्वेष, अत्युक्ति अित्यादि झूठके लक्षण दिखाअी देते है। अिसलिअे अैसे मौके पर आपका और मेरा कर्तव्य है कि हम अिस बढती हुअी ज्वालाको बुझानेकी पूरी पूरी कोशिश करे। मेरा दृढ विश्वास है कि हमारे बीचमे अतराय — तफरका — पडनेका कोअी कारण नही है। हम सब अपने अपने धर्म-कर्म पर कायम रहते हुअे अेक-दूसरेके साथ भाअीके मुआफिक बरताव कर सकते है। अिसी तरह रहना हमारा धर्म है। अिसलिअे मै अुम्मीद रखता हू कि आप सब लोग दोनो कोमोमे भाअी-चारा बढानेकी निरतर कोशिश करेगे। हिन्दू या मुसलमानोके खिलाफ जो कुछ कहा या लिखा जाय, अुसे आप बगैर जाचे और छान-बीन किये हरगिज न माने।

जुहू, चैत्र शुक्ल ६
हिन्दी-नवजीवन, १३–४–'२४

७

झरियामे वचन-भंग

मौलाना महम्मदअलीके साथ जब मै झरिया गया था, तब वहाके लोगोने बहुतेरी रकम तिलक-स्वराज्य-कोषमे दी थी। यह देखकर कि बिहारमे रहनेवाले मारवाडी और गुजराती भाअियोने बिहारकी तरफसे अेक बडी रकम दी, हमे बडी खुशी हुअी थी। अुनका वादा यह था कि रकम तुरत अदा कर देगे। अिस वादेको आज तीन साल हो गये। अब झरियासे अैसा पत्र आया है कि कितने ही कच्छी भाअियोने जो रकम खुद लिखाअी थी, वह अदा नही की। अिसे सुनकर हर शख्सको दु:ख हुअे बिना न रहेगा। दिये हुअे

वचनका पालन करनेकी महिमा शास्त्र-प्रसिद्ध है। जहा लगातार वचन-भग होते रहते हो, वहा प्रगति कैसे हो सकती है ? वचन-भगसे कुटुबका और राष्ट्रका भी नाश हुआ है। नीतिशास्त्रके अनुसार अेकतरफा वचनकी कीमत दो-तरफा वचनसे अधिक है, और वचनकी कीमत लेखसे अधिक है। अिन भाअियोका वचन अेकतरफा था और अुनके पालनका आधार केवल अुनकी सत्यनिष्ठा है। मै अुनसे निवेदन करता हू कि वे अपने वचनका पालन करे। यदि वे वचनका महत्त्व समझते हो तो प्रायश्चित्तके तौर पर अुसका दुगुना व्याज भी दे।

हिन्दी-नवजीवन, २७–४–'२४

८
मिलकी पूनियां

कितनी ही जगह अभी मिलकी पूनिया काममें लाअी जाती है। चरखेकी शुरुआतके जमानेमे लोग यह नही जानते थे कि पूनिया किस तरह बनानी चाहिये। अुस समय मिलकी पूनियोका अिस्तेमाल मजबूरन करना पडता था। पर आज तो मिलकी पूनियोका अुपयोग असह्य समझना चाहिये। जो चरखेका रहस्य न समझता हो, वही मिलकी पूनी अिस्तेमाल करेगा। हम चाहते है कि हिन्दुस्तानके गाव गाव और घर घरमे चरखा पहुच जाय। हिन्दुस्तानमे सात लाख गाव है। कितने ही तो रेलसे बहुत ही दूर है। वहा मिलकी पूनिया पहुचाना असभव है। फिर जिस गावमे कपास पैदा होती है, वहासे वह दूसरी जगह जाकर लुढे, फिर मिलमे जाय, वहा धुनकी जाय और वहासे फिर पूनीके रूपमे अुसी गावको पहुचे और वहा सूत काता जाय — 'यह तो अैसा ही हुआ कि बबअीमे आटा साना जाय और किसी दूर देहातमें अुसकी रोटिया पकाअी जाय। रुअी वही धुनकी जाय जहा वह काती जाय और जहा अुगे वही लोढी जाय। वर्तमान अस्वाभाविक पद्धतिका समूल नाश होना ही चाहिये। चरखा-प्रचारके मूलमे ही अुसके पहलेकी तमाम क्रियाये समाअी हुअी है।

हिन्दी-नवजीवन, २७-४-'२४

९

चरखेके प्रति अुदासीनता

अेक सज्जन काशीजीसे लिखते है कि 'वोर्ड अित्यादिमें हमारे लोगोंके जानेसे कुछ लाभ नही हुआ, वल्कि रचनात्मक काम थम गया है।' वे यह भी लिखते हैं कि अिन लोगोकी चरखेके प्रति अुदामीनता है। वहुतेरे लोगोका विश्वास भी चरखेमें नही है। जव अिन सज्जनोसे कुछ कहा जाता है तो वे अुत्तर देते है — हम गाधीजीके कहने पर वोर्डमे गये है।

प्रथम वात तो यह है कि मै नही चाहता कि कोअी शख्स मेरे कहनेसे कुछ भी करे। जो कुछ करे अपनी ही रायके मुताविक करे। हम स्वतत्र वनना चाहते है। किसी व्यक्तिके — फिर वह कैसा ही प्रभावशाली हो — गुलाम वनना नही चाहते। मेरी राय तो अैसी हैं कि लोकल वोर्ड अित्यादिमें जानेकी खास आवश्यकता नही है। यदि हम जाय तो सिर्फ रचनात्मक काम करनेके अिरादेसे। अिसलिअे यदि यह काम भली-भाति न हो सके, तो हमें अैसी सस्थाका त्याग करना चाहिये।

मै जानता हू कि चरखेकी शक्तिमें वहुतसे असहयोगियोका अविश्वास है। अुनको विश्वास दिलानेका अेक ही अुपाय है कि जिनको विश्वास है वे अधिक अुत्साहसे खुद चरखा चलावें और दूसरोको प्रोत्साहित करे। मेरा तो दृढ विश्वास है कि चरखेके विना स्वराज्य मिलना और कायम रखना असभव है। हा, अेक वात है। सभव है कि स्वराज्यके मानी हम सवके दिलमें अेक न हो। मै अेक ही अर्थ करता हू — हिन्दुस्तानकी कगालीका मिटना और प्रत्येक स्त्री-पुरुषका आजाद होना। पूछो हिन्दुस्तानके भूखसे पीडित भाअी-वहनोसे। वे कहते है कि हमारा स्वराज्य हमारी रोटी है। सिर्फ काश्तकारीसे हिन्दुस्तानके करोडो किसान अपना पेट नही भर सकते। अुन्हें किसी

न किसी दूसरे अुद्यमकी सहायता आवश्यक है। अैसा सार्वजनिक अुद्यम चरखेके ही द्वारा मिल सकता है। "भूखे भगति न होअि गोपाला।"

दूसरे सज्जन लिखते हैं कि जिन्होंने असहयोग-आदोलनके कारण अपना धधा छोड दिया है, अुनके निर्वाहका कुछ न कुछ प्रवध होना चाहिये। अिस प्रश्नका जल्दीसे हल होना मुश्किल है और न भी है। यदि सब लोग रचनात्मक-कार्यका मर्म समझ ले, तो भूखका प्रश्न अुठ ही नही सकता। यदि रचनात्मक-कार्यमे श्रद्धा न हो, तो भूखका प्रश्न सदाके लिअे रह जायगा। मेरा दृढ मन्तव्य है कि जिसको चरखे और करघेमे विश्वास है, अुसे आजीविका मिल सकती है। देशमे मध्यम वर्गकी जो कठिनाअिया है, अुनका अिलाज अुद्यमसे ही हो सकता है। हमारे अदर कितने ही बुरे रिवाज हैं। अुन्हे हमको छोडना होगा। अेक आदमी यदि मजदूरी करे और दूसरे दस कुछ न करे तो बुनाअीके द्वारा हमे आजीविका नही मिल सकती। और अैसा भी न होना चाहिये कि सब लोग महासभाका ही मुह देखते रहे। स्वराज्यमे यह भी तो होना चाहिये कि हम सब स्वावलबी बने। अुसीका नाम आत्मविश्वास है। भक्तवत्सल गोपालने अपनी गीतामे प्रत्येक मनुष्यके लिअे आजीविकाकी अेक शर्त रखी है। जो भूख मिटाना चाहता है अुसे यही करना चाहिये। यज्ञके कअी अर्थ है। अेक आवश्यक अर्थ मजदूरी है। जो मनुष्य मजदूरी नही करता है और खाता है, अुसको भगवान्ने चोर कहा है।

हिन्दी-नवजीवन, ४–५–'२४

कांगड़ी गुरुकुलमें

अिस गुरुकुलके विद्यार्थियोको मैने अुनके अुत्सवके समय अेक खत भेजा था। अुसके अुत्तरमे अेक खत कअी दिन हुअे मिला है। गुरुकुलके वालकोका प्रेम चरखे पर कैसा है यह जाहिर करनेके लिअे मै खतका थोडा हिस्सा पाठकोके सामने पेश करता हू

"यद्यपि आपके सदेशके लिअे यह अुत्तर वहुत ही अपूर्ण है, यह हम अच्छी तरह समझते है, फिर भी हम अपने काते हुअे अिस थोटेसे मूतकी श्रद्धापूर्ण भेट आपके पूज्य चरणोमे रखना चाहते है। यह सूत अिसी राष्ट्रीय सप्ताहमे (७ अप्रैलसे १३ अप्रैल तक) सात दिन तक चौवीस घटे अखण्ड सूतचक्र चलाकर हमने अिसी प्रयोजनके लिअे कातकर तैयार किया है कि हमारी तुच्छ भेट स्वीकार हो। अिसमे (चतुर्थ श्रेणीके) हममे से छोटे वालकोका काता हुआ भी कुछ मूत अलग रखा है। यद्यपि यह अखड चरखा चलाकर नही काता गया है तथापि हम समझते हैं कि आपमे प्रेम रखनेवाले ये छोटे वालक अवश्य ही आपके प्रेमपात्र है। अत अिनका प्रेमपूर्वक काता हुआ यह राष्ट्रीय सप्ताहका मूत भी आपके चरणार्पित होनेके योग्य ही है।"

हिन्दी-नवजीवन, १–६–'२४

११

क्या सिक्ख हिन्दू है ?

पजावसे अेक मित्र लिखते है

"वायकोमवाली टिप्पणीमे आपने सिक्खोको भी मुसलमानो और अीसाअियोके साथ अहिन्दुओमे गिना है। अिस बात पर अकाली लोग थोडे बहुत बिगडे है। बहुतसे लोगोको मैंने यह शिकायत करते सुना है कि सिक्खोने बाजाब्ता अपनेको हिन्दू धर्मसे कभी अलहदा नही किया है। हा, कुछ अपनेको हिन्दू नही कहते है। सो अिस पर वे कहते है कि यो तो स्वामी श्रद्धानन्द भी कुछ समय पहले अपनेको हिन्दू कहलवाने पर बडी आपत्ति किया करते थे। शि० गु० प्र० कमेटीके कितने ही सदस्य हिन्दू-सभाके सदस्य है, और यद्यपि कुछ अकालियोके दिलमे यह भाव है कि हिन्दू-धर्मसे अपना ताल्लुक तोड देना बेहतर है, तो भी अेक बडी जमात अैसी भी है जो अैसा नही चाहती। हा, अपने मदिरोको वे आम हिन्दू मदिरोसे अलहदा और अपने कब्जेमे रखना जरूर चाहते है। पर हिन्दुओके प्रत्येक सम्प्रदायका यही हाल है। जहा तक मुझे पता है, जैन लोगोको अैसा हक हासिल है और मुझे बताया गया है कि आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी तथा दूसरे लोग, जो कट्टर या सनातनी हिन्दू नही है, जो दावा करते है अुससे अधिक दावा सिक्ख लोग नही कर रहे है। यहाके सिक्ख नेताओसे घनिष्ठ परिचय होने और सिक्ख-आन्दोलनके कुछ अध्ययन-मननके बाद मैं खुद भी यह महसूस करता हू कि अकालियोको अहिन्दू कहना अुनके साथ पूरा पूरा न्याय नही करना है।"

मुझे यह जानकर बहुत खुशी होती है कि सिक्ख मित्रोको अुन्हे अहिन्दू मानने पर बुरा मालूम हुआ है। मै अुन्हे यकीन दिलाता

हू कि मेरा अिरादा मुतलक अैसा नही है। जब मै पंजाब यात्रा कर रहा था, सिक्खोके बारेमे अेक जगह मैंने कहा था कि मैं सिक्खोको हिन्दू जातिका अेक अंग मानता हू। मेरे अैसा कहनेका कारण यह था कि लाखो हिन्दू गुरु नानकको मानते हैं, और ग्रंथ साहबमे हिन्दू भाव और हिन्दू कथायें भरी पडी हैं। लेकिन अुस सभामे अेक सिक्ख मित्र थे। मुझे अलहदा ले जाकर अुन्होने बडी संजीदगीके साथ कहा कि आपके सिक्खोको हिन्दू जातिमे शामिल करनेसे लोगोको बुरा मालूम हुआ है। और अुन्होने सलाह दी कि आगे हिन्दुओके साथ साथ सिक्खोका नाम हरगिज न लेना। पंजाबके दौरेमे मैंने देखा कि मेरे मित्रने जो चेतावनी दी थी वह ठीक थी। क्योकि मैंने देखा कि बहुतेरे सिक्ख अपने धर्मको हिन्दू धर्मसे पृथक् मानते थे। मैंने अुन मित्रसे कहा कि अब मै कभी सिक्खोको हिन्दू न कहूंगा। अैसी हालतमे मुझे अिस बातसे बढकर खुशी नही हो सकती कि सिक्ख आम तौर पर अपनेको हिन्दू मानते है और अलहदा माननेवाले लोग बहुत ही थोडे हैं। आर्यसमाजियोके यहा भी मुझे अैसा ही अनुभव हुआ। वे भी मेरे सहज भावसे हिन्दू कहने पर बिगड अुठे थे। अेक सज्जनको मैंने हिन्दू कहा। मेरा अिरादा अुनका दिल दुखानेका न था। पर अुन्होने अिस बातमे अपना अपमान समझा था। मैंने अुसी दम माफी मांग ली, तब अुन्हे तसल्ली हुअी। कुछ जैन लोगोका भी अनुभव मुझे अिससे अच्छा नही हुआ। मेरे महाराष्ट्रके दौरे मे कुछ जैनोने मुझसे कहा था कि हमारी जाति हिन्दुओसे जुदी है। जैनोका यह मत मेरी समझमें आज तक नही आया। क्योकि जैनधर्म, बौद्धधर्म और हिन्दू धर्ममे बहुतसी बाते सर्व-सामान्य है। हा, आर्यसमाजियोका अेतराज कुछ समझमे आ सकता है, क्योकि वे वेदो और अुपनिषदोको छोडकर किसीकी बातको नही मानते — वे मूर्ति-पूजा और पुराणोके बुरी तरह खिलाफ हैं। लेकिन जैनधर्म और बौद्ध धर्मका अैसा कोअी झगडा, जहा तक मै जानता हू, हिन्दू धर्मके साथ नही है। हा, जैनधर्म और बौद्धधर्मने हिन्दूधर्ममे जबरदस्त सुधार करना चाहा है। बौद्धधर्मने आभ्यंतर शुद्धता पर ज्यादा जोर दिया है, और वह अुचित भी है।

वह सीधे हृदयको जाग्रत करता है। अुसने अुच्चता और श्रेष्ठताकी अुद्धत भावनाको छिन्न भिन्न कर डाला। जैनधर्ममे तर्कशक्ति चरम सीमा तक पहुच गअी है। अुसने किसी बातको गृहीत करके विचार नही किया है। और बुद्धिबलके द्वारा आध्यात्मिक तथ्योका निर्णय किया है। मेरी रायमे अिन दो सुधारक धर्मोने जो साहित्य अुत्पन्न कर रखा है, अुसका बहुत थोडा ज्ञान हमे है।

मेरे विचार अिस किस्मके है। अिसलिअे मै आशा करता हू कि मेरे सिक्ख मित्र अिस बातको मानेगे कि मैने अुन्हे जो अहिन्दू लिखा है, वह केवल अुनके भावोका खयाल करके और अपनी अिच्छाके खिलाफ लिखा है।

हिन्दी-नवजीवन, ८–६–'२४

१२

परिषदोके नियोजकोंको अिशारा

लोग कहते है "बडी बडी सभाओ, जलसो और व्याख्यानोके दिन चले गये। अब मुह बद करके काम करनेके दिन आ गये है।" लेकिन परिषदो अथवा जलसोके सचालक हमेशा चाहते है कि खूब धूमधाम हो। अिस मोहमें वे कअी बार सत्यको भूल जाते है और भोली-भाली जनताको धोखा देकर परिषदकी तैयारी करते है। अेक परिषद्की विज्ञप्तिमे लिखा है

> "बहुत हर्षकी बात है कि अधिवेशन बहुत बडी धूमधामसे होना निश्चित हुआ है। महात्मा गाधी, अली-बधु, पडित जवाहर-लाल नेहरू, डॉक्टर किचलू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, देवदास गाधी, शकरलाल बैंकर, राजगोपालाचारी, सेठ जमनालाल बजाज, मौलाना अ० जबारखा, श्रीमती गाधी, बीअम्मा साहिबा, तपस्वी सुन्दरलाल, माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीमती सुभद्राकुमारी आदि आदि प्रमुख नेताओके पधारनेकी सभावना है।"

सभव है कि स्वागत-कारिणी सभाने अैसे नेताओंको निमत्रण पत्र भेजा हो, लेकिन जब तक कमसे कम अुनकी तरफसे अिस आशयका जवाब न मिले कि 'आनेकी कोशिश करूगा' तबतक अैसा लिखना कि अुनके पधारनेकी सभावना है, अयथार्थ है। लोगोके मनमे भ्रम पैदा करनेकी अिच्छा कितनी ही अच्छी हो तो भी यह कार्य अनुचित ही है। लोग अेक-दो दफे धोखेमे आ जा सकते है, लेकिन थोडे ही समयमें कार्यकर्तागण अपनी प्रतिष्ठा और लोगोका विश्वास खो बैठते है। अब्राहम लिंकनने ठीक ही कहा है "हम थोडे लोगोको हमेशा धोखा दे सकते है और सब लोगोको कुछ समय धोखा दे सकते है, लेकिन सब लोगोको हमेशा धोखा देना अशक्य है।"

हिन्दी-नवजीवन, १–६–'२४

१३

तीन प्रश्न

अेक सज्जन लिखते है

(१) क्या कताअी-बुनाअी करनेसे मनुष्य शूद्र नही बनता है?

(२) क्या जो मनुष्य अपनी बुद्धिके बलसे ज्यादा कमाअी करता है, अुसका भी कताअी-बुनाअी करके आजीविका पैदा करना अर्थशास्त्रके प्रतिकूल नही है?

(३) क्या सबका कताअी-बुनाअी करना श्रम-विभागके सिद्धातको नष्ट नही करना है?

मेरे खयालसे शूद्र वह है जो नौकरी या दूसरोकी मजदूरी करके आजीविका प्राप्त करता है। अिस हिसाबसे जितने आदमी नौकरी करते है, सब शूद्र होते है। जो मनुष्य स्वतत्र धधा करता है, अुसको शूद्र कैसे माना जाय? अिसमे मैं वर्णाश्रमकी कुछ भी हानि नही देखता हू।

अब दूसरा प्रश्न। मेरी मति मुझे यह बताती है कि अीश्वरने हमे बुद्धि आत्म-दर्शनके लिअे दी है। आजीविका तो कृषि अित्यादिसे प्राप्त

करनी चाहिये। जगतमे जो अनीति होती है, अुसका वडा सवव बुद्धिका दुरुपयोग है। वुद्धिके ही दुरुपयोगसे जगतमे वडी असमानता फैल गअी है। करोडो भीख मागते है और सौ दो सौ करोडपति वनते है। सच्चा अर्थशास्त्र वह है जिससे प्रत्येक स्त्री-पुरुषको शारीरिक अुद्यमसे आजीविका मिले। प्राचीन कालमे हमारे ऋषि लोग कृषि करते थे, गोशाला रखते थे, विद्यार्थी जगलोमे जाकर लकडिया लाते थे, अित्यादि।

अव रहा तीसरा प्रश्न। श्रम-विभागकी कुछ भी हानि नही होती है। क्योकि बढअी, सुनार अित्यादिको बुनाअी करनेकी सलाह नही दी जाती है। जो नौकरी करते है, वकालत करते है, जिनके कुछ भी धधा नही है, अुनको बुनाअीसे आजीविका पैदा करनेकी सलाह दी जाती है। कताअीको तो मै आधुनिक कालमे और अिस क्षेत्रमे यज्ञ समझता हू। बच्चे, बूढे, स्त्री, पुरुष, धनिक, गरीब सबके लिअे कताअी आवश्यक यज्ञ है। भले जो लोग भूखो मरते है वे कताअी करके पेट भरे। परतु दूसरे सब अुनके निमित्त प्रतिदिन अीश्वरके नामका स्मरण करते हुअे काते।

हिन्दी-नवजीवन, २२–६–'२४

१४

क्या तू भी?

अेक प्रतिष्ठित मित्र लिखते है

"यदि हम अवसर रहते कारगर प्रयत्न न करेगे, तो आज जो कुछ पजाव पर गुजर रही है कल वही सयुक्त प्रात पर भी गुजरेगी। अवधमे हिन्दू-मुसलमानोका तनाजा बढ रहा है। नमूनेके तौर पर मै बारहवकीके मवधमे नीचे कुछ सच्ची वाते लिखता हू। अुस शहरके म्युनिसिपल वोर्ड पर गहरे अिल्जाम लगाये गये है। अुसके मुस्लिम सदस्य, जो कि पहले पक्के असहयोगी थे और अव भी है, अिस्तीफा दे चुके है। अिसलिअे म्युनिसिपल वोर्डमे अव हिन्दू सदस्य ही रह गये है। अुन अिल-

जामोंके वारेमें विस्तारपूर्वक जाच करनेका समय मुझे नही मिला, किन्तु अेक वात वहुत कुछ सावित है और अुससे मुसलमानोके दिलमे कटुता पैदा हो रही है। अिन हिन्दू सज्जनोने कानून वना दिया है कि वोर्डको जितनी दरख्वास्ते दी जाय, वे सव हिन्दी लिपिमें होनी चाहिये। किसी अन्य लिपिमे लिखी दरख्वास्तें न ली जावेगी।"

यह समाचार पाकर मुझे आश्चर्य और दुख हुआ। क्योकि वारहवकी, यदि मुझे ठीक याद हे तो, मोलाना शौकतअलीके गर्वकी वस्तु थी। वे वारहवकीके हिन्दू और मुसलमान दोनोकी वडी तारीफ किया करते थे। मै अव भी अुम्मीद करता हू कि मेरे सवाददाताको गलत खवर लगी होगी। मै विश्वास नही करता कि जैसा अुनके वारेमें कहा जाता है, अुन्होने वैसी कोअी विचारहीन कार्रवाअी की होगी। हिन्दी-लिपिको मुसलमानोसे स्वीकार करानेके लिअे जवरदस्ती करके वे हिन्दीको हानि ही पहुचायेगे। हिन्दुस्तानमे जहा कही भी हिन्दुस्तानी प्रान्तीय भाषा है वहा लोगोको अिस वातकी स्वतत्रता होनी चाहिये कि वे अपनी दरख्वास्ते देवनागरीमे लिखे या अुर्दूमे। आखिरमे कौनसी लिपि मजूर होगी, यह तो दोनो लिपियोके आन्तरिक गुणो पर ही अवलवित हे।

यह जानना भी कठिन है कि मुसलमानोने अिस्तीफा क्यो दिया। मै आशा करता हू कि वारहवकीसे कोअी सज्जन पूरी वाते लिख भेजेगे।

हिन्दी-नवजीवन, २९–६–'२४

१५

पाठ्य-पुस्तकोंकी जब्ती

गत १५ जुलाअीको सयुक्त प्रान्तकी सरकारने नीचे लिखा सूचनापत्र जारी किया है

> "दफा ९९ अ (१८९८ के पाचवे)मे दिये अधिकारोके अनुसार, अपनी सभाके सहित लाटसाहब यह जाहिर करते है कि पडित रामदास गौड लिखित ओर बैजनाथ केडिया, हिन्दी पुस्तक अेजेसी, १२६ हरिसन रोड, कलकत्ताके द्वारा प्रकाशित और वणिक प्रेस कलकत्तामे मुद्रित हिदी रीडर न० ३, ४, ५, ६ की तमाम कापिया सरकारने जब्त कर ली है। अिसके सिवाय अिन रीडरोकी दूसरी तमाम प्रतिया या अुनके अश भी, फिर वे कही भी छपे हो, जब्त समझे जाये, क्योकि रीडरोमे स्थानिक सरकारकी रायमे राजद्रोहात्मक पाठ है, जिनका कि प्रकाशित करना दफा १२४ अ ताजीरात हिन्दके अनुसार दण्डनीय हे।"

कोअी तीन सालसे ये रीडरे हिन्दी ससारके सामने है। राष्ट्रीय पाठशालाओमे अिनका बहुत प्रचार है। म्युनिसिपल पाठशालाओमे भी वे चलती है। अिसलिअे सयुक्त प्रान्तकी महासभा समितिने ठीक किया जो अध्यापक रामदास गौडको अिस पर बधाअी दी है, अुन्हे निर्दोप बताया है और अिस सरकारी हुक्मके होते हुअे भी अुनको जारी रखनेकी सिफारिश की है। अिधर कुछ लोग शायद समझने लगे हो कि अब सरकारने असहयोगियोके खिलाफ मनमानी कार्रवाअिया करनेकी नीतिको छोड दिया हे। सरकारका कथन हे कि अिन पुस्तकोमे अैसे पाठ है जो ताजीरात हिन्दकी १२४ अ धाराके अनुसार काबिल सजा है। अैसी अवस्यामें वह लेखक पर मुकदमा चलाकर अुन्हे सजा दिला सकती थी। तभी अुसका यह पुस्तके जब्त करना न्यायोचित हो सकता

था। अिन रीडरोंकी तमाम जिल्दोंकी पाठ-सूची मैं पढ गया हूं, मुझे तो वे सरकारकी दृष्टिसे बिलकुल हानिकारक नहीं मालूम होतीं। लोगोंके प्रति सरकारका कमसे कम अितना कर्तव्य अवश्य था कि वह यह बताती कि अिन पुस्तकोंका कौन कौनसा अंश आपत्ति-योग्य है, जिससे कि लोग, यह मान लेने पर भी कि अैसे मौके पर सरकारको मनचाहा करनेका अख्तियार है, अिस बात पर विचार कर सकें कि सरकारका यह हुक्म जा है या बेजा। पर मौजूदा हालतमें तो अिस नतीजे पर पहुंचे बिना नहीं रहा जा सकता कि सरकार अिन रीडरोंकी बढती हुआी लोकप्रियताको पसंद नहीं करती और अपने अुन प्रतिपालित लोगोंको फायदा पहुंचाना चाहती है, सो भी अैसे बेजा तरीकेसे, जिनकी पाठ्य-पुस्तकोंका प्रचार अध्यापक गौडकी रीडरोंके बदौलत कम हो गया है। यदि पुस्तकें सचमुच राजद्रोही पाठोंसे युक्त होतीं, तो अुसके मेहनती खुफिया विभागकी ओरसे यह बात जरूर पेश की गअी होगी। और अितने दिनोंके बाद पुस्तकोंका जब्त होना मेरे अिस अनुमानको पुष्ट करता है। मैं संयुक्त प्रान्तकी सरकारको दावत देता हूं कि वह अपने अिस फैसलेके तमाम कारण सर्वसाधारणके सामने पेश करे। मुझे यह जानकर बडी खुशी होगी कि मेरा अनुमान ठीक नहीं है। मैं प्रान्तीय समितिके सभापतिको सलाह देता हूं कि वे सरकारसे अिसका कारण पूछें और यदि समितिको सरकारका फैसला ठीक दिखाअी दे तो वह अध्यापक रामदास गौडको सलाह दे कि वे अुन पुस्तकोंमें आवश्यक संशोधन कर दें या अुनका प्रचार रोक दें।

हिन्दी-नवजीवन, ३-८-'२४

१६

हिन्दू-मुस्लिम अेकता

देहलीके हालके फसादो पर प्रकाशित हकीम अजमलखा साहवका वक्तव्य जिस किसीने पढा होगा वह अुसमें छिपे गहरे सतापको महसूस किये विना न रहा होगा। कमसे कम अुसका अेक अश यहा दिये विना मै नही रह सकता

> "देहलीके फसादोंके वक्त जो कुछ वाकयात हुअे अुनमे सवसे ज्यादा शर्मनाक और दिल दहलानेवाले वाकयात है औरतो पर दुष्टतापूर्ण और नामर्दाना हमले होना। जहा तक मुझे मालूम हुआ है अेक ही मुसलमान महिलाके साथ हिन्दुओने दुर्व्यवहार किया, परन्तु अिससे ज्यादा वुरी वात तो यह है कि १५ तारीखके फसादके वक्त कुछ अैसे लोग, जो दीने-अिस्लामके पुजारी होनेका दावा रखते है, सिर्फ हिन्दू मदिर पर हमला करके और मूर्तियोको तोड-फोड कर ही सतुष्ट नही हुअे, वल्कि औरतो और वच्चो पर भी नामर्दाना हमले करनेमे न सकुचाये। स्त्री-जातिकी पवित्रता और अिज्जत तथा हुर्मतके प्रति अपने हम-दीन लोगोके अिस दुष्ट भावके खयाल-मात्रसे मुझे घोर मनस्ताप होता है और मेरी रूह काप अुठती है। अैसे गुनहगारोकी जितनी ही निन्दा की जाय, थोडी है और मै तमाम सच्चे मुसलमानोसे अपील करता हू कि वे मुक्तकण्ठसे विना आगा-पीछा सोचे अिस नीचताकी निदा करे। मै जमैयत-अुल्-अुलेमा और खिलाफत-कमेटियोको दावत देता हू कि वे अुठ खडी हो और अिस्लामकी सारी श्रेष्ठताको अैसी जगली निर-कुशताकी निन्दा करने और आयदा अैसा न होने देनेमें लगावें। सच्चे मुसलमानकी हैसियतसे अैसी करतूतोको विलकुल नामुमकिन कर देना हमारा नैतिक फर्ज है और अगर हम अिसमे कामयाव

न हो, तो हम अिस कौमी आजादी और स्वराज्यकी कोशिशोंमें हारे ही हुअे हैं।"

अेक सज्जन मुझे अुलहना देते हैं कि हकीमजीने जिन हमलोंका जिक्र किया है अुन पर आपने अपने वक्तव्यमें कुछ नही कहा। फसादकी बिलकुल पहली खबरोंके आधार पर मैंने अपनी टिप्पणी लिखी थी। अुनमें अिन हमलोंका कोअी जिक्र न था। अुसके बाद हालतने बुरा रंग पलटा। यह खबर अितनी गंभीर थी कि महज डरावने तारोंके आधार पर सर्व-साधारणके सामने टीका-टिप्पणी नही की जा सकती थी। अिसलिअे मैंने देहलीके मित्रोंसे चिट्ठी-पत्री शुरू की, पर अब तक मैं किसी काबिल टीका-टिप्पणी करनेकी हालतमें नही पहुंचा हूं। खुशकिस्मतीसे मौलाना महम्मदअली अब देहली पहुंच गये हैं। वे तहकीकात कर रहे हैं और अुन्हे मैंने सुझाया है कि यदि किसी तरह मुमकिन हो तो वे महासभाके सभापतिके नाते अपनी आरंभिक तहकीकातकी रिपोर्ट प्रकाशित करें। अिस मामलेमें मुझे अपने कर्तव्यका पूरा खयाल है। फिलहाल मेरा स्थान वही, मौलाना साहबके साथ है। लेकिन डाक्टरोंकी सलाहके कारण अभी रुक रहा हूं। अब तक जो कुछ पथ्य-परहेज करना पडता है, वह सब शायद जरूरी न हो, क्योंकि यद्यपि मैं बाहर आता-जाता नही हूं, तो भी काम बहुत कुछ कर सकता हूं। लेकिन जहां तक मुमकिन हो मैं खतरेको बचाना चाहता हूं। जो मित्र मुझे अिस अवसर पर मेरे कर्तव्यकी याद दिलाते हैं, अुन्हे मैं यकीन दिलाता हूं कि मैंने बिलाशर्त अपनेको मौलाना महम्मदअलीके विचार पर छोड दिया है और मैंने अुनसे यह कह दिया है कि मेरी जरूरत आपको देहलीमें तुरत मालूम हो, तो मेरी तन्दुरुस्तीका खयाल न करना। और यों भी हर हालतमें मैं देहली जल्दी ही जानेकी तैयारी कर रहा हूं। पर अगर मौलाना महम्मदअली मेरा वहां जल्द जाना जरूरी न समझते हों, तो मैं अगस्तके अंत-तक सफर करना नही चाहता। अहमदाबादमें मेरी तन्दुरुस्ती कुछ बिगड गअी है और अिसलिअे श्री विट्ठलभाअी पटेलसे अनुरोध किया गया है कि आप बम्बअी

कारपोरेशनकी ओरसे मुझे दिया जानेवाला अभिनदन-पत्र अगस्तके अतमे देनेकी तजवीज करे। परतु यदि देहली जानेकी जरूरत होगी, तो मै बम्बओी जानेके पहले वहा जानेमे आगा-पीछा न करूगा।

हिन्दी-नवजीवन, ३–८–'२४

१७

दानियोसे प्रार्थना

गुजराती 'नवजीवन' मे मैने मलाबारके प्रलयके विषयमे लिखा है। वह तो सब पाठक पढेगे ही। परन्तु मै जानता हू कि हिन्दी 'नवजीवन' के पढनेवालोमे कओी दानवीर भी है। अुनसे मेरी प्रार्थना है कि जितना धन वे दे सके अुतना भेज दे।

हिन्दी-नवजीवन, १०–८–'२४

१८

क्षमा-प्रार्थना

'हिन्दी-नवजीवन' का तीसरा वर्ष आज पूरा होता है। मुझे कहते हुअे रज होता है कि मै 'हिन्दी नवजीवन' के लिअे स्वतत्र लेख बहुत न लिख सका। पाठक अिस बातको माने कि अिसका कारण अनिच्छा नही, बल्कि समयका अभाव है। ओर अिसके लिअे मुझे क्षमा करे।

'हिन्दी-नवजीवन' अब तक स्वावलबी नही हुआ है। मैने अेक समय जाहिर किया है कि किसी अखबारको नुकसान अुठाकर चलाना प्रजाकी दृष्टिसे अच्छा नही है। 'हिन्दी-नवजीवन' केवल सेवा-भावसे ही निकलता हे। अिसीलिअे प्रत्येक पाठक अुस पर अपनी मालिकी समझे और अुमे स्वावलबी बनानेकी कोशिश करे। अब २,७०० प्रतिया बिकती हैं। स्वावलबी बननेके लिअे कमसे कम

३,००० प्रतियां बिकनी चाहिये। मैं आशा करता हूं कि पाठकगण कोशिश करके अिस घटीको दूर करेंगे।

हिन्दी-नवजीवन, १७–८–'२४

१९

गांधीजीके लिअे या देशके लिअे ?

अेक मित्र कहते हैं कि आजकल गांधीजीके नामसे विद्यार्थियोंको कातनेके लिअे जोर देकर कहनेका अेक रिवाज-सा पड़ गया है। वे पूछते हैं कि क्या यह ठीक है?

जबतक मैं देशके लिअे और देश ही के लिये कार्य करता रहूं, तब तक अिस प्रकारकी अपील खास परिस्थितिमें और कुछ हद तक अनुचित नहीं है। मेरे लिअे कातनेकी अपील देशके लिअे कातनेकी अपीलसे अधिक सीधी असर पहुंचा सकती है। फिर भी अिसमें कोअी शक नहीं कि सबको देशके लिअे कातना ही अुचित है। अपने लिअे अुसके आदर्श अर्थमें कातना और भी अच्छा है। क्योंकि हरअेक कार्यकर्ता जो देशके लिअे कार्य करता है, वह अपने लिअे भी कार्य करता है। जो सिर्फ अपने लिअे काम करता है, वह अपना ही नुकसान करता है। हमारा लाभ देशके लाभके अनुकूल होना चाहिये। वह अुससे जुदा न हो जाना चाहिये। वे लोग, जो केवल दिखानेके लिअे कभी कभी कातते हैं और फिर बन्द कर देते हैं, आंखोंमें धूल झोंकनेका ही प्रयत्न करते हैं।

हिन्दी-नवजीवन, १७–८–'२४

२०

पूर्णाहुतिका सन्देश

[सितम्बर १९२४ के अुपवासकी पूर्णाहुतिके अुपलक्ष्यमे देशके चारो कोनोसे सब धर्मों और सब वर्णोके लोगोने गाधीजीके अभिनदनमे जो तार और सदेश भेजे है, अुनके जवाबमे गाधीजीने नीचे लिखा सदेश अखबारोमे प्रकाशित कराया था।]

अीश्वरकी महिमा अगाध है। अुसकी महिमा और करुणाका अनुभव मै अिस समय कर रहा हू। अुसने मुझे अग्निपरीक्षासे अुत्तीर्ण किया है। डाक और तार द्वारा मेरे नाम आये अनेक सदेशोको पढने या सुननेकी अिजाजत अभी मुझे नही मिली है। फिर भी जो कुछ थोडे सदेश मुझे दिखाये गये है, अुनसे मेरा हृदय भर आता है। अिन सदेशोके द्वारा देशके असख्य भाअी-बहनोने मुझ पर जो प्रेम-वृष्टि की है वह अीश्वरकी दयाकी गवाही देती हे। अिन तमाम भाअी-बहनोके प्रेमके लिअे मै अुनका कृतज्ञ हू। पर साथ ही मै यह भी आशा रखता हू कि अिसके बादका जो काम अब मेरे सिर पर आ पडा है और जिसके लिअे मेरी अतरात्मा कहती है कि यह अीश्वरका काम है, अुसमे आप सच्चे दिलसे मेरी सहायता करे। अिस सबधमे तीन सप्ताहके पहले जो जिम्मेवारी मेरी थी अुससे आजकी जिम्मेवारी स्पष्टत अनेक गुना अधिक है। मेरे अुपवाससे मेरा कार्य पूरा नही होता है, बल्कि शुरु ही होता हे। मै अिस बातको जानता हू और अिसीलिअे अिसमे भारतवर्षके प्रत्येक भाअी-बहनके आशीर्वाद और प्रत्यक्ष सहयोगकी आशा रख रहा हू।

हिन्दी-नवजीवन, १२-१०-'२४

२१

असहयोगीका कर्तव्य

आगामी महासभामे शायद असहयोग मुल्तवी हो जाय। पर अिससे यह न समझना चाहिये कि असहयोगी मुल्तवी हो गया। सच पूछा जाय तो मुल्तवी हुआ है असहयोगका आभास-मात्र। जहा प्रेम है वहा सहयोग और असहयोग दोनो वस्तुत अेक है। वेटा वापके साथ अथवा वाप वेटेके साथ चाहे असहयोग करे चाहे सहयोग करे, दोनो प्रेमके फल होने चाहिये। स्वार्थके वशीभूत होकर किया सहयोग, सहयोग नही घूस है। द्वेष-भावसे किया असहयोग महापाप है। ये दोनो त्याज्य है।

जो असहयोग १९२० मे शुरु किया गया, अुसके मूलमे प्रेम-भाव था — भले ही लोग अुसे न जानते हो, भले ही लोग द्वेषसे प्रेरित होकर अुसमे शरीक हुअे हो। फिर भी तमाम नेता यदि अुसके मूल स्वरूपको समझे होते और अुसके अनुसार चले होते, तो जो कटु परिणाम निकले है वे न निकलते।

हम शात असहयोगका रहस्य समझे नही। अिमीसे वैर-भाव वढा और अव करनीका फल भोग रहे है। जिस वैर-भावसे हमने अग्रेजोके साथ असहयोग अगीकार किया, वही अव हमारे आपसमे फैल गया है।

यह वैर-भाव अकेले हिन्दू-मुसलमानोमे नही, वल्कि सहयोगियो और असहयोगियोमे भी व्याप्त हो गया है।

अिस कारण, असहयोगके अिस कुफलको रोकनेके लिअे, हमें असहयोग मुल्तवी रखना पडता है। असहयोग मुल्तवी रखनेका अर्थ यह नही है कि वकील यदि फिरसे वकालत करना चाहे और विद्यार्थी सरकारी मदरसोमे जाना चाहे, तो विला शर्मके वकील वकालत कर सकें और विद्यार्थी सरकारी मदरसोमे जा सके। सच पूछिये तो जो वकील और विद्यार्थी असहयोगके सिद्धान्तको समझ गये होगे, वे न तो फिरसे वकालत करना चाहेगे और न फिर सरकारी मदरसोमें भरती होगे। वल्कि असहयोगके मुल्तवी करनेका फल तो यह दिखाअी

देना चाहिये कि हमे पश्चात्ताप हो, असहयोगी सहयोगीके गले मिलें, अुन्हे प्रेमसे जीते, अुनका द्वेष न करे। वे खुशीसे सरकारकी सहायता लेते रहे, अदालतोमे वकालत करते रहे, सरकारी नौकर हो या धारासभामे जाते हो। अुन सवके साथ असहयोगी मिले-जुलें। अुन सवकी मदद हिन्दू-मुसलिम झगडे निपटानेमे, अस्पृश्यता दूर करनेमे, विदेशी कपडेका वहिष्कार करानेमे, शरावखोरी मिटानेमे, अफीमका दुर्व्यसन दूर करनेमे तथा अैसे अनेक कामोमे ले और दे।

अैसे कामोमे असहयोगीको पहले कदम वढाना होगा। अुसमें असहयोगीकी कला, विवेक, सौजन्य, शाति और नम्रताकी परीक्षा होनेवाली है। सहयोगीको प्रेमसे जीतनेमे असहयोगीकी योग्यताकी कसौटी है। अेक तरफसे झूठी खुशामदसे वचें और दूसरी तरफसे जहालतसे वचे। अिन दोनो वातोको साधनेके लिअे पहला पाठ है, हम सवका अेक होना। अीश्वर हमारी सहायता करे।

कार्तिक व० ३, वुधवार
हिन्दी-नवजीवन, १९-१०-'२४

२२

सरकारी अराजकताकी दवा

[निम्न लिखित सदेश गाधीजीने युक्तप्रान्तीय राजनैतिक परिषद्, गोरखपुरके लिअे भेजा था। —स०]

वगालमे सरकारने जो राजनीति अव ग्रहण की है, अुससे सवको दुःख हो रहा है। होना ही चाहिये। परन्तु वह दुःख राजनीतिकी अराजकताके कारण नही है, वल्कि अुसका अुत्तर शीघ्र देनेकी हमारी अशक्तिके लिअे है। मुझे आशा है और मै चाहता हू कि हम अिस सकटके समय धैर्यका त्याग न करे। क्रोध और अधैर्यके वश होकर हम सच्चे अुपायकी खोज न कर सकेंगे, अैसा मेरा दृढ मतव्य है। अमली कार्यका अुत्तर अमली कार्य ही हो सकता है। हम दावा करते

है कि सरकारकी अशात नीतिका अुत्तर हम शात नीतिसे ही दे सकते है। अशात कार्यका अुत्तर शात कार्यसे ही दे सकते है। यदि यह बात सत्य है, तो हमे सोचना चाहिये कि हम किस तरह शात कार्यको कर सकते है। थोडा ही खयाल करनेसे हम देख सकते है कि हमारे अमली कार्यमे बाधा डालनेवाली सबसे बडी वस्तु है, हिन्दू-मुसलमानके बीच अतर पड जाना। सर्वसाधारणको अेकत्र करनेमें बाधा डालनेवाली वस्तु चरखा और खद्दरके प्रति हमारी अुदासीनता है और हिन्दू जातिको नष्ट करनेवाली वस्तु अस्पृश्यता है। अिस त्रिदोषको जबतक हमने नही मिटाया है तब तक मेरी अल्पमति मुझको यह कहती है कि हमारे भाग्यमे सरकारी अराजकता, हमारी परतत्रता और हमारी कगाली बदी ही हुअी है। अिसलिअे मै दूसरी कोअी सलाह कौमको नही दे सकता। अगर हम अिन तीन कार्योमे सफलता प्राप्त करे, तो जो शक्ति हमने सन् १९२०-२१ मे बताअी थी, अुससे भी प्रचण्ड शक्ति आज बता सकते है। और बगाल ही की क्या, सारे भारतवर्षकी आपत्तिको हम दूर कर सकते है।

दिल्ली, ३०-१०-'२४

हिन्दी-नवजीवन, २-११-'२४

२३
२५,००० नहीं

मौलाना जफरअली खाने नीचे लिखा तार मुझे भेजा है

"मेरे लाहौर पहुचने पर मैंने यहाके अखबारोमें 'यग अिंडिया' के आधार पर यह खबर पढी कि मैंने आपसे अिस सालके भीतर २५,००० मुसलमान सूत कातनेवाले कार्यकर्ता देनेका वादा किया है। मो मुझे अदेशा है कि अिसमे कोअी गलतफहमी हुअी है। शायद मेरी बात ठीक-ठीक न समझी गअी हो। मैंने तो सिर्फ अितना ही वादा किया था कि मै १०,००० मुस्लिम स्वयसेवक आपकी खिदमतमें पेश करनेके लिअे हर तरहसे कोशिश करूगा, और मै अिस वादेपर कायम हू।"

अिस तारको मै बडी खुशीके साथ छापता हू। जहा तक मुझसे ताल्लुक है किसी किस्मकी गलतफहमी न हुअी थी। मौलाना साहबकी प्रतिज्ञा पर मुझे अितना ताज्जुब हुआ था कि मैंने मौलाना साहबको अति अुत्साहित न होनेके लिअे चेताया था। और यह अभिवचन था भी अैसा कि जो सर्वसाधारणसे छिपा न रखा जा सकता था। यह वादा तो अेक तोहफा था। और कोअी भी दूरन्देश आदमी धर्मकी गायके दात नही देखता। खैर। अब १०,००० स्वयसेवक भी अच्छी और अुत्साह दिलानेवाली तादाद है। पर मै मौलाना साहबको याद दिलाये देता हू कि स्वयसेवक वही हो सकता है जो सूत कातता हो। यह पुराना देहलीका प्रस्ताव है—जिसकी ताअीद १९२१ मे अहमदाबादमे हो चुकी है। अिसलिअे मै १०,००० मुसलमान स्वयसेवक पर ही सब्र कर लूगा, जो कि घडीके काटेकी तरह नियमके साथ हर मास दो हजार गज अच्छा सूत कातते हो। अगर मौलाना साहब १०,००० स्वयसेवक भी जमा कर पाये तो मुझे कोअी शक नही कि अुन्हे २५,००० मिलनेमे भी कोअी दिक्कत न होगी। क्योकि अेक बार जहा चरखेके आन्दोलनका रग जमा नही कि बर्फके ढेलोकी तरह अुसका फैलाव हुआ नही।

हिन्दी-नवजीवन, २२–१–'२५

२४

कोहाटकी जांच

कोहाटकी दुर्घटनाके सबधमे मै अपना और मौलाना शौकत-अलीका वक्तव्य अब प्रकाशित कर सका हू। अिससे पहले अुसे प्रकाशित करना सभव न था, क्योकि मै और मौलाना दोनो सफरमे रहते थे और हमेशा दोनो अेक जगह नही ठहरते थे। मै यह निश्चित रूपसे नही कह सकता कि अिस अवसर पर अिन वक्तव्योको प्रकाशित करनेसे कोअी बडा लाभ होगा, सिवा अिसके कि अिससे मेरा वादा पूरा होगा, जो मुझे किसी न किसी तरह पूरा करना चाहिये था। लेकिन अिनके प्रकाशित हो जानेसे प्रकारातरसे अेक फायदा जरूर होगा। हम लोगोने वही प्रमाणो परसे जो अनुमान निकाले है, अुनमें बडा वास्तविक भेद है। गवाहोकी गवाही पर विश्वास रखनेके हमारे परिमाणमे भी भेद है। जब हमने अिस मतभेदको महसूस किया तो हमे बडा दुःख हुआ, और अिस मतभेदको जितना भी हो सके दूर करनेकी कोशिश की। हमारे अिस मतभेदको हमने हकीम साहब और डॉ० असारीके सामने पेश किया और अुनसे मदद मागी। सद्भाग्यसे अुस समय जब हम अिस पर विचार करते थे, पडित मोतीलालजी भी वहा मौजूद थे। अिस वादविवादमे हमे कोअी बात अैसी न मिली जो हमारी दृष्टिमे वास्तविक परिवर्तन कर दे। यह बहस देहलीमें हुअी थी। हमने फिर यह निश्चय किया कि कुछ घटे हम दोनो साथ साथ सफर करे और अपने हृदयकी अिस दृष्टिसे परीक्षा करे कि हम अपने वक्तव्योको फिर बदल सकते हैं या नही। कुछ बातोको बदल देनेके सिवा हमारा मतभेद दूर नही हो सका है। हम लोगोने हकीम साहबकी अिस सूचना पर भी विचार किया कि हमारा वक्तव्य प्रकाशित ही न किया जाय। कुछ अंश तक पडित मोतीलालजीने भी अिसका समर्थन किया था। लेकिन हम, कमसे कम मै तो अिस नतीजे पर पहुचा हू कि जनता, जो मुझे और अली भाअियोको कुछ सार्वजनिक प्रश्नो पर हमेशा अेक मानती थी, अुसे

यह भी जान लेना चाहिये कि कुछ प्रश्नो पर हममे भी मतभेद हो सकता है। लेकिन हमे अेक-दूसरेके प्रति यह शका नही हो सकती कि हममे से कोअी जानकर पक्षपात करता है या सत्य प्रमाणोको तोड-मरोडकर अुससे अपना मतलब निकाल लेता है। और हमारे परस्परके प्रेममे भी कोअी बाधा नही आ सकती है। हम यदि खुले तौरसे अपने मतभेदोको स्वीकार कर लेगे, तो अुससे जनताको आपसमे सहनशील बननेका सबक भी मिलेगा। जन-समाजसे मै यह कह देना चाहता हू कि अिस मतभेदको दूर करनेके प्रयत्नमे मैने या मौलाना साहबने कोअी बात अुठा नही रखी है। लेकिन अपनी रायको छिपानेका भी कोअी प्रयत्न नही किया गया था। हमारे असल वक्तव्यमे हमने कुछ रद्दोबदल की है, लेकिन दोमे से अेकने भी किसी बातमे अपने निश्चित मतका त्याग नहीं किया है। हम दोनोने कुछ जगहोमे किसीको बुरा न मालूम हो अिसलिअे भाषाको कुछ मुलायम बनाया है। लेकिन अिसके सिवा असल वक्तव्योका कुछ भी वास्तविक रूपातर नही किया गया है।

हिन्दी-नवजीवन, २६-३-'२५

२५

शंका-निवारण

आजकल मुझे देशबन्धु-स्मारकके लिअे द्रव्य अिकट्ठा करने कअी सज्जनोके यहा जाना पडता है। अैसे धनिक महाशयोमे श्री साधुराम तुलारामजी है। अुनके यहासे चदा तो अच्छा मिला ही, परन्तु वहा कुछ धर्मकी चर्चा भी हुअी। चर्चामे अस्पृश्यताका विषय भी था। किसी महाशयने मुझसे कहा कि अखबारोमे अैसी खबर छपी है कि मै कहता हू कि जिनको हम अस्पृश्य मानते है, अुनमे रोटी-बेटी-व्यवहार भी होना चाहिये। अिस शकाका निवारण अुन भाअियोको, जिन्होने प्रश्न किया था, आश्चर्यजनक प्रतीत हुआ। और अुन्होने मुझसे कहा कि जो बात आपने यहा कही है, अुसका साराश आप

हिन्दी नवजीवनमें दे दीजिये। मैंने अुनकी सलाहको मान लिया। अुसका साराश मै यहा देता हू।

प्रथम तो जनताको मालूम होना चाहिये कि मै अखवार नही पढता हू, और यदि पढ भी लेता हू तो जितनी भी गलतिया मेरे नाम पर छपती है, सवको दुरुस्त करना मै असभव समझता हू। अिसलिअे प्रत्येक मनुष्य जिसको कुछ भी शका हो मुझे पूछ ले कि मैने क्या कहा था?

अिसी अस्पृश्यताके विषयमे यदि किसीने अैसा छाप दिया है कि मै अस्पृश्य भाअियोके साथ रोटी-वेटी-व्यवहार चाहता हू, या मै अुसको अुत्तेजना देता हू, तो वह भूल करता है। मैंने हजारो वार स्पष्टतया कह दिया है कि अस्पृश्यता-नाशका यह अर्थ कभी नही है कि रोटी-वेटी-व्यवहारकी मर्यादा तोड दी जाय। रोटी-वेटी-व्यवहार किसके साथ किया जाय और किसके साथ नही, यह अेक अलग वात है। अुसका निर्णय करनेकी कोअी आवश्यकता मुझे अिस समय प्रतीत नही होती।*

मेरा तो यह भी विश्वास है कि दोनो प्रश्नोको साथ मिलानेसे जिस सुधारको हम आवश्यक मानते है, वह भी रुक जायगा। अस्पृश्यताको दूर करना प्रत्येक हिन्दू-धर्मावलवीका कर्तव्य है। अिसके साथ किसी भी दूसरे विषयको मिलाकर हम अुसे हानि पहुचावेगे।

हा, जल-ग्रहण करनेके विषयमे मुझे कुछ कहना है। यदि हम शूद्रके हाथसे स्वच्छ जल ग्रहण करे और करते है और करना चाहिये, तो हम अस्पृश्यके हाथसे भी स्वीकार करे। मेरे नजदीक चार वर्ण हैं। अस्पृश्य जैसा कोअी पाचवा वर्ण नही। अिसलिअे हम अस्पृश्यताको मिटाकर अस्पृश्य माने जानेवाले हिन्दुओका दु ख दूर करे, हिन्दू-धर्मकी शुद्धि करे, और हम शुद्ध वने। दूसरे शब्दोमे अिसी वातको कहू तो किसी धर्ममे निन्दा और घृणाके लिअे स्थान नही है। अस्पृश्यताके अन्दर घृणा-भाव है। अिस घृणा-भावको हम मिटा दे। हिन्दू-धर्म सेवा-धर्म है। अस्पृश्य कहे जानेवाले लोगोको हम सेवासे क्यो वचित रखे?

हिन्दी-नवजीवन, १६-७-'२५

---

* रोटी-वेटी व्यवहारके वारेमे गाधीजीके विचार आगे जाकर धीरे धीरे कैसे स्पष्ट होते गये यह पाठक जानते ही है। —सपादक

२६

अखिल भारत देशबन्धु-स्मारक

अिस स्मारककी चदेकी अपील पर अभी दस्तखत आ ही रहे है। कविवर रवीन्द्रनाथके दस्तखत मिलनेसे मुझे स्वभावत आनन्द हुआ है। पाठकोको भी होगा। मैंने अुन्हे खास तौर पर कहलवाया था कि अपीलमे निर्दशित मर्यादित श्रद्धा यदि चरखे पर आपकी हो, तो ही दस्तखत कीजियेगा। जव मेरे मनमे यह वात स्पष्ट रूपसे जमी कि अखिल भारत स्मारक चरखा और खादी-सवधी ही होना चाहिये, तव यह विचार मैंने पहले-पहल कविवर पर ही प्रकट किया था। अिस अपीलमे अुन लोगोकी सही लेनेका अिरादा किया ही नही गया है, जिन्हे चरखा और खादी पर श्रद्धा न हो या जो स्मारकके सवधमे अुसकी योग्यताके कायल न हो। अपील पर केवल खादी और चरखे पर श्रद्धा रखनेवालोकी सही लेनेका निश्चय किया गया था — केवल यही नही, वल्कि यह भी निश्चय था कि यदि देशवन्धुके खास अनुयायी अिस तरहके स्मारकको नापसद करे, तो अिस स्मारकको चरखा-खादीका रूप न दिया जाय। जिन जिन लोगोके अिस अपील पर सही करनेकी सभावना थी, वे यदि विना सकोचके सही न करे, तो भी अिस प्रकारका स्मारक वनानेका आग्रह न रखा गया था। मै जानता हू कि चरखे और खादीकी अुपयोगिताके सवधमे मतभेद है। और वहुतेरे लोग अिस वातको भी अेकाअेक स्वीकार न करेगे कि देशवधु जैसे महान् नेताके स्मारकको अैकान्तिक स्थान दिया जाय। परन्तु मुझे तो देशवन्धुके प्रति अुनके मित्र और साथीकी हेसियतसे अपने धर्मका पालन करना था और यदि अखिल-वगाल-स्मारकके सवधमे मै स्वतत्र रूपमे विचार कर सकता होता, तो मै अवश्य अस्पतालको पसद न करता। मैंने कभी वहुतेरे अस्पतालोकी आवश्यकताको स्वीकार नही किया है। पर मैंने अिस वातका खयाल तक अपने दिमागमें न आने दिया कि मै स्वतत्र होअू तो क्या करू? देशवधुका वनाया ट्रस्ट मेरे सामने था। वह मेरे लिअे सव तरह मार्गदर्शक था और मुझे

यह अपना धर्म दिखाअी दिया कि यदि अुनके अनुयायी पसद करे, तो वही अुनके स्मारकका हेतु बनाया जाय, और अुसीके लिअे दस लाख रुपये अेकत्र करनेको अब मैं बगालमे ठहरा हुआ हू। ट्रस्ट तो अेक साल पहले हो गया था, हालाकि मैं यह जानता हू कि अुसमे प्रदर्शित विचार देशबन्धुके मरण तक कायम थे। क्योकि मकान पर जो कर्ज था अुसके लिअे रुपया अेकत्र करनेमें अुन्होने मेरी सहायता चाही थी। चरखे और खादी-सबधी अुनके अतकालके विचारोको जितना मैं जानता हू अुतना अुनकी धर्मपत्नीके सिवा शायद और कोअी न जानता होगा, यह कह सकते है। अपील प्रकाशित करनेसे पहले मैंने श्रीमती वासती देवीके विचारोको जान लिया था। अुसी प्रकार देशबन्धुके परम सखा और अुनके साथी पडित मोतीलालजीके भी विचार मैंने जान लिये थे। और फिर देशबन्धुके बगालके अनुयायियोंके विचार भी जान लिये थे। अितनोंके विचार जान लेनेके बाद ही अपील तैयार करनेका निश्चय किया। हा, मैं यह जरूर कबूल करता हू कि अिस स्मारकका कार्य मुझे खास तौर पर अनुकूल है। परन्तु पाठक कदाचित् मुश्किलसे मानेगे कि यद्यपि यह स्मारक-कार्य मुझे विशेषरूपसे अनुकूल है तथापि अिसकी सफलताके सबधमें मैं तटस्थ हो रहा हू। हा, अखिल-बगाल-स्मारकके विषयमे यह नही कह सकते। अुसे सफल बनानेके लिअे मैं अथाह परिश्रम कर रहा हू। यह भेदभाव सकारण है। चरखेकी शक्तिके सबधमे मतभेद है। पर अुसके प्रति मेरी श्रद्धा अनन्त है। अैसा स्मारक खीचातानीसे नही हो सकता। यदि चरखेमे शक्ति हो और सचमुच चरखे पर भारतवर्षकी श्रद्धा हो, तभी मैं देशबन्धुके नाम पर अक्षय्य द्रव्यकी अिच्छा करता हू। अिस कारण जितना सतोष मुझे कविवरकी सहीसे हुआ है, अुतना ही भारत-भूषण पडित मालवीयजीकी सहीसे हुआ है। मैंने श्री जवाहरलाल नेहरूको सूचित किया है कि वे और सहिया मगवाये।

आशा है कि 'हिन्दी-नवजीवन' के पाठक और खादी-प्रेमी किसीके वसूल करनेकी राह देखे बिना अपना हिस्सा भेज देगे।

हिन्दी-नवजीवन, ६-८-'२५

दो प्रश्न

'अेक रियासती' पूछते है.

"जिन राज्योमे सफेद किश्तीनुमा टोपी (गाधी कैप) लगाना मना है, और जहाके अधिकारीवर्ग सफेद टोपी लगानेवालोको कुछ-न-कुछ वात पर तग करना ही अपना धर्म समझते है, अुन राज्योमे अैसे लोगोको क्या रगी हुअी खद्दरकी टोपी पहनना अनुचित है?"

मै अुन राज्योका नाम जानना चाहता हू जहा सचमुच सफेद टोपी पहनना मना हो। मेरे नजदीक अब अैसा होना असभव-सा है। परन्तु यदि अैसे राज्य हो तो वहा वीर पुरुष तो अेकाकी होते हुअे भी सफेद टोपी विनयसे पहनकर जेल चला जायगा। प्रह्लादने अैसा ही किया था। परन्तु अितना साहस करनेकी शक्ति जिसमे न हो, वह रगीन टोपी पहनेगा। खादीका त्याग कभी न करेगा।

'अेक रियासती' का दूसरा प्रश्न यह है

"जिन लोगोने हाथके कते-वुने वस्त्रोको धारण करनेकी प्रतिज्ञा ले ली थी, अुन्हे अिस समय वैसे वस्त्र नही मिलते है। यदि मिलते है तो वेचनेवाले शुद्ध खद्दर वताकर मिलके सूतका कपडा दे देते है। साथ ही महगा भी अितना देते है कि गरीब मनुष्य अुसे खरीदनेमे घवरा जाता है। जिसने प्रतिज्ञा ली है, अुसे स्वय कातने-बुननेका अवकाश नही है। यदि हाथका कता सूत तैयार कर दिया जावे, तो चरखेके सूतका कपडा जुलाहे नही वनाते। अैसी आपत्तियोके पडने पर क्या करना चाहिये? क्या मिलके सूतका हाथसे वना कपडा पहननेकी आप आज्ञा देगे? खास करके धोतियोके लिअे वडी ही कठिनाअिया पडती है। क्या कही टिकाअू, वारीक, शुद्ध धोतिया प्राप्त हो सकती है? कृपा कर शीघ्र अुत्तर प्रदान करनेका कष्ट कीजिये।"

आरंभ-कालमें प्रत्येक सुधारकको आपत्तियां सहन करनी पड़ती हैं। अैसा ही खादी-प्रेमियोंके लिअे समझना चाहिये। खादी पहननेकी चेष्टामें साहस है, कष्ट है, व्यय है, संगठन है, विवेक है, प्रेमभाव है। अिसीलिअे तो मैंने कहा है कि चरखेमें स्वराज्य है, स्वधर्म है। थोड़े कष्टको सहन करने पर मनुष्य आज खादी पैदा कर सकता है। बम्बअी जैसे शहरमें तो जैसी चाहिये और जितनी चाहिये खादी मिल सकती है। महीन भी मिलती है। परन्तु अच्छा तो यही है कि खादी-प्रेमी अपने ही देहातमें पहुंच सकें, तो कमसे कम अपने ही प्रान्तमें नयी खादी पैदा करावें। स्वयं अच्छा और पक्का सूत कातें, दूसरोंसे कतवायें। जुलाहा लोगोंको अच्छा हाथका सूत मिले तो वे बुनते हैं। बाजारकी खादी आज अवश्य महंगी है। गरीबोंके लिअे दो अिलाज हैं — या तो स्वयं कातें या आवश्यक कपड़े पहनें और अनावश्यक कपड़ोंका त्याग करें। त्याग और बलिदानके सिवा आत्म-शुद्धि होना कठिन बात है, बल्कि असंभव है।

हिन्दी-नवजीवन, २७-८-'२५

२८

नकली खादी

अेक महाशय नागपुरसे किसी कपड़ेके ताके परसे अेक तस्वीर निकालकर भेजते हैं और लिखते हैं कि भोले लोगोंको वह कपड़ा शुद्ध खादीके नामसे दिया जाता है और लोग अुसे अच्छी खादी समझकर खरीद लेते हैं। और अुस पर मेरेसे मिलती-जुलती अेक भोंडी तस्वीर और चरखेको देखकर अुनका यह विश्वास और भी दृढ़ हो जाता है। अिस प्रकारके कामोंको न पवित्र कह सकते हैं और न स्वदेशाभिमान-युक्त। और अिससे मिलोंके खिलाफ बुरे भाव अुत्पन्न होते हैं। क्या मिल-मालिकोंका मंडल अैसे कार्योंके सम्बन्धमें, जिनका कि मुझे बार-बार जिक्र करना पड़ा है, कोअी अिन्तजाम न करेगा?

हिन्दी-नवजीवन, ३-१२-'२५

२९

केनियाके हिन्दुस्तानी

गुरुकुल कागडीके आचार्य श्री रामदेव पूर्वीय अफ्रीकामे कोअी छ महीने रहे। वे वहा रहनेवाले हिन्दुस्तानियोके जीवनका वडा दु खमय चित्र खीचते है। अुन्होने मुझसे कहा है कि वहुतसे हिन्दू-मुसलमानोने शराव पीना शुरू किया है और वे अुन वहुतेरी विदेशी चीजोका अिस्तेमाल करते है, जिनका कि अुपयोग करना अुनके लिअे आवश्यक नही है। स्थानिक काग्रेसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नही है। और यह कहनेसे अुनका मतलव यह है कि नेतागण अपना काम अच्छी तरहसे नही कर रहे है। वे और भी दूसरे आक्षेप करते है और अुन्हे प्रकाशित करनेके लिअे मुझे अधिकार भी देते है। लेकिन अभी मै अुन्हे प्रकाशित नही करता हू। मै चाहता हू कि मै अुनकी सूचनाके अनुसार किसीको पूर्वीय अफ्रीकामे भेजकर अुनके आक्षेपोके वारेमे जाच-पडताल कर सकू। लेकिन मुझे अफसोस है कि कमसे कम अभी यह करना मेरे लिअे सभव नही है। लेकिन मै केनियाके हिन्दुस्तानियोसे यह प्रार्थना अवश्य करूगा कि वे अपना आतरशोध करे। जो वाते अिस टिप्पणीमे नही लिखी गअी है, अुन्हे भी मालूम कर ले और अपनेको व्यवस्थित करे। जिन लोगोने शराव पीना आरभ किया है, अुन्हे अिस आदतको छोड देना चाहिये और जो अिस आदतमे वचे हुअे है अुन्हे अपने दूसरे वहा रहनेवाले भाअियोको अिस वुराअीको दूर करनेके लिअे मदद करनी चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन, १७-१२-'२५

वाचकवृंदको

मुझे हमेशा दु ख रहा है कि मैं 'हिन्दी नवजीवन' मे कुछ नही लिख सकता हू, न अुसे देख सकता हू। श्री हरिभाअू अुपाध्यायके खादी कार्यमे नियन्त्रित होनेके पश्चात् 'हिन्दी नवजीवन' की भाषाके बारेमें मेरे पास बहुत फरियादें आअी है। कोअी कहता है कि 'भाषा बिगड गअी है, व्याकरणदोष बहुतसे आते है और अुसमे परभाषाकी ध्वनि रहती है।' कोअी कहते है कि 'अर्थका अनर्थ भी होता है।' ये सब बाते सभवित है। अनुवादक अपना कार्य बडे प्रेमसे और अुद्यमसे करते है, तदपि गुजराती होनेके कारण अुनकी भाषामे त्रुटिया होनेका पूरा सभव है। मै कोअी हिन्दी-प्रेमी सज्जनकी खोजमे रहता हू। अैसा सज्जन मिलनेसे त्रुटिया दूर होनेकी आशा रखता हू। परन्तु साथ साथ यह भी कहना अनुचित नही होगा कि 'हिन्दी नवजीवन' आखिर अनुवादके रूपमे ही प्रगट होता है। अर्थ-हानि कही भी न होने पाये, अैसी कोशिश मै अवश्य करूगा। किन्तु सच तो यही है कि हिन्दीमें 'नवजीवन' प्रगट करनेकी योग्यता मै नही रखता हू, न मुझे निरीक्षण करनेका समय है, न मुझमें हिन्दीका आवश्यक ज्ञान है। केवल मित्रोंके प्रेमके वश होकर और मेरे विचारोसे हिन्दी भाषा जाननेवाले भी अनजान न रहे, अैसे मोहके कारण मैने 'हिन्दी नवजीवन' प्रगट करना स्वीकार किया है। वाचकवृदकी सहायतासे ही यह काम चल सकता है। दो प्रकारकी मदद वे दे सकते है। अेक तो त्रुटियोको बताकर और दूसरी जब त्रुटिया असह्य हो जाय तब 'नवजीवन' लेना बन्द करके। नवजीवन अर्थ-लाभकी दृष्टिसे नही निकलता है। प्रगट करनेमें केवल पारमार्थिक दृष्टि ही सामने रखी गअी है। यदि भाषाके या किसी दोषके कारण 'नवजीवन' से सेवा न हो सके, तब अुसको बन्द करना कर्तव्य हो जायगा।

अिस अकमे जो अनुवाद छापे गये है, सब अुन्ही अनुवादकोसे हुअे है, जिनकी हिन्दी मातृभाषा है।

नवजीवन प्रेमी अिस अकके दोषोको बताकर मुझे कृतार्थ करे।

हिन्दी-नवजीवन, २४-६-'२६

३१

प्रतिज्ञाका रहस्य

अेक विद्यार्थी लिखते है

> "हम किसी कामको कर सकते है और करनेकी अिच्छा भी रखते है, परतु फिर भी कर नही पाते और जब अुस कार्यके करनेका समय आता है तो मनकी कमजोरीसे या तो हमें अपनी प्रतिज्ञा स्मरण ही नही रहती या स्मरण रहने पर भी हम अुसकी अवहेलना कर देते है। अैसा अुपाय बताअिये कि हम अुस कार्यको करनेके लिअे बाधित हो जाय और अवश्य करे।"

अैसा प्रश्न किसके मनमे न अुत्पन्न होता होगा? परन्तु प्रश्नमें गलतफहमी भी है। प्रतिज्ञा मनुष्यकी अुन्नति करती है। अिसका केवल अेकमात्र कारण यह है कि प्रतिज्ञा करते हुअे भी अुसके भग होनेकी गुजाअिश होती है। प्रतिज्ञा कर चुकनेके बाद अगर अुसके भग होनेकी गुजाअिश न हो, तो पुरुषार्थके लिअे कोअी स्थान न रहे। सकल्प तो सकल्पकर्ता रूपी नाविकके लिअे दीपरूप है। दीपकी ओर लक्ष्य रखें तो अनेक तूफानोमे से गुजरते हुअे भी मनुष्य अुबर सकता है। परन्तु जिस प्रकार वह दीपक यद्यपि तूफानको शात नही कर सकता है — तो भी वह अुस तूफानके बीचसे अुसके सुरक्षित रूपसे निकल जानेकी शक्ति प्रदान करता है, अुसी प्रकार मनुष्यका सकल्प हृदयरूपी समुद्रमें अुछाल मारती हुअी तरगोसे बचानेवाली प्रचड शक्ति है। अैसी हालतमे सकल्पकर्ताका पतन कभी न हो — अिसका अुपाय न आज तक ढूढे मिला है और न वह मिलनेवाला ही है। यही बात

अुचित भी है। यदि अैसा न हो तो सत्य और यमनियमादिकी जो महत्ता है वह जाती रहेगी। सामान्य ज्ञान प्राप्त करनेमे अथवा लाख दस लाख रुपया अेकत्रित करनेमे मनुष्य भारी प्रयत्न करता है, अुत्तर-ध्रुव जैसी साधारण वस्तुका दर्शन करनेके लिअे अनेक मनुष्य अपनी जानमालको जोखममे डालनेमे भय नही खाते है, तो राग-द्वेष अित्यादि रूपी महाशत्रुअोंको जीतनेके लिअे अुपर्युक्त प्रयत्नोकी अपेक्षा सहस्र-गुना प्रयत्न करना पडे, तो अुसमे आश्चर्य और क्षोभ क्यो हो? अिस प्रकारकी अमर विजय प्राप्त करनेके प्रयत्नमे ही सफलता है। प्रयत्न ही विजय है। यदि अुत्तर ध्रुवका दर्शन न हुआ, तो सब प्रयत्न व्यर्थ ही माना जाता है। किन्तु जब तक शरीरमे प्राण रहे तब तक राग, द्वेष अित्यादिको जीतनेमे जितना प्रयत्न किया जाय, अुतना हमारी प्रगतिका ही सूचक है। अैसी वस्तुके लिअे स्वल्प प्रयत्न भी निष्फल नही होता है — अैसा भगवानका वचन है।

अिसलिअे मै अिस विद्यार्थीको तो अितना ही आश्वासन दे सकता हू कि अुनको प्रयत्न करते हुअे हरगिज निराश न होना चाहिये। और न सकल्पको छोडना चाहिये — बल्कि 'अशक्य' शब्दको अपने शब्द-कोशसे पृथक् कर देना चाहिये। सकल्पका स्मरण यदि भूल जाय तो प्रायश्चित्त करना चाहिये, अिसका पूरा खयाल रखना चाहिये कि जहा भूले वहीसे फिर चले या मनमे दृढ विश्वास रखे कि अतमे जीत तो अुसीकी होगी। आज तक किसी भी ज्ञानीने अिस प्रकारका अनुभव नही बतलाया है कि असत्यकी कभी विजय हुअी है! बरन् सबने अेकमत होकर अपना यह अनुभव पुकार पुकारकर बतलाया है कि अतमें सत्यकी ही विजय होती है। अुस अनुभवका स्मरण करते हुअे तथा शुभ काम करते हुअे जरा भी सकोच न करना चाहिये। और शुभ सकल्प करते हुअे किसीको डरना भी न चाहिये। पडित रामभजदत्त चौधरी अेक कविता लिखकर छोड गये है। अुसका अेक पद यह है

"कदि नही हारना, भावे साडी जान जावे।"

हिन्दी-नवजीवन, ५-८-'२६

३२

नवजीवन-प्रेमियोंको

'हिन्दी-नवजीवन' आज छठे वर्षमे प्रवेश करता है। मित्रोके प्रेमके वश होकर यह पत्र नुकसान होते हुअे भी निकल रहा है। जमनालालजीने जो कुछ लिखा है मैंने पढ लिया है। यदि 'हिन्दी-नवजीवन' मे किसीको सहायता मिलती है, तो अुसका प्रकट होना आवश्यक हे, परन्तु वैसे ही अुसका स्वाश्रयी होना भी आवश्यक है। 'नवजीवन' प्रेमी मित्रोसे मेरी प्रार्थना है कि वे अैसी चेष्टा करे जिससे 'नवजीवन' को मित्रोकी सहायता पर निर्भर न रहना पडे।

'हिन्दी-नवजीवन' मे भाषाकी त्रुटिया थी। वह अव दूर हुअी समझता हू। अुत्तर हिन्दके दो हिन्दी-प्रेमी 'नवजीवन' के लिअे अनुवाद करते है। अिसलिअे अव भापा-दोपका भय कम हुआ है। वाकी रहा है, 'नवजीवन' प्रेमी मित्रोका कर्तव्य। क्या अिस वर्षमे वे अुसका पालन करेगे?

हिन्दी-नवजीवन, १९-८-'२६

३३

अन्त्यजोंका पूजाधिकार

नीमच छावनीसे अेक भाअी प्रश्न करते है :

"(१) अछूत जिनको अुच्च वर्ण के हिन्दू अतिशूद्र भी कहते है, विष्णु भगवानका मदिर वनाने, विष्णुकी मूर्तिकी पूजा करने और मूर्तिको विमानमे विठाकर सरे वाजार निकालनेके अधिकारी है या नही?

"(२) क्या अतिशूद्र-पूजित विष्णुकी मूर्तिके दर्शन करनेसे वैष्णव नरकगामी होते है?"

अैसे प्रश्न अव तक पूछने पडते है, यही दुःखकी वात है। मेरा दृढ विश्वास है कि अन्त्यज भाअियोको विष्णु भगवानकी मूर्ति

बाजारमें निकालनेका और विमानमें बिठानेका पूरा अधिकार है, जितना अन्य जातियोंको है। अिसी तरह जो वैष्णव अतिशूद्र-पूजित मूर्तिकी पूजा करता है या दर्शन करता है, वह पाप नहीं परन्तु पुण्य करता है। जो वैष्णव जानबूझकर असी मूर्तिकी पूजासे डरेगा, वह वैष्णव धर्मकी निंदा करता है।

हिन्दी-नवजीवन, ४-११-'२६

३४

लगन क्या न करेगी?

पश्चिमी देशोंमें कअी बार 'क्लब स्विंगिंग' अर्थात् मुद्गर चलानेका काम चौबीस चौबीस घंटे अेक ही आदमी करता है। ये तमाशे यह देखनेके लिअे होते हैं कि मनुष्यकी सहन-शक्ति किस हद तक जा सकती है? अिसे देखनेके लिअे हजारों प्रेक्षक जाते हैं, और रंगभूमियां भर जाती हैं। मुझे संदेह है कि अैसे खेलोंसे कहां तक लाभ होता है।

परन्तु पाठकोंको याद होगा कि कुछ कुछ अिसी ढंगका प्रयोग किन्तु भिन्न हेतुसे, अर्थात् धार्मिक हेतुसे, सत्याग्रहाश्रममें राष्ट्रीय सप्ताहके समारोहके समय किया गया था। कअी युवकोंने अकेले ही चौबीस घंटे तक जागरण करके आग्रहपूर्वक चरखा चलाया था। अुनमें से सबसे अधिक तार कातनेवाले युवकका पत्र पढ़ने योग्य है, अिसलिअे नीचे देता हूं:

> "अिस बार चौबीस घंटे चरखा चलानेके विचारको तो मैंने मुलतवी ही कर दिया था। परन्तु आखिरी दिन मैंने और कृष्णदासने सोचा कि चौबीसों घंटे चरखा चलाना ही चाहिये। चरखा शुरू करनेका समय आया अुस समय तक तो अिस विचारके याद आते ही हाथ ढीले पड़ जाते थे कि आज चौबीस

घटे चरखा चलाना है। शामकी प्रार्थनाका घटा वजते ही हमारे चरखे गूजने लग गये। पाच मिनट तक तो अुसी विचारका असर रहा। परन्तु अुसके वाद २४ घटेकी वात खयालसे अुतर गअी, और यह धुन सवार हुअी कि अिस घटेमे पूरे ५०० तार कर देना चाहिये। मुझे याद है कि अिस निश्चयके अनुसार पहले घटेमे पूरे पाचसौ तार हो भी गये थे। दूसरे घटेमे ५१६ हुअे। यह क्रम ३,००० तार तक कायम रहा। फिर माल पुरानी होनेके कारण टूट गअी, और अधिक 'कते हुअे तार भी वरावर हो गये। नीद भी अपनी शक्तिभर कोशिश करती जा रही थी। सुवह ७ वजे अेक घटेके लिअे अुठे, तव ६,४४५ तार हुअे थे। आठ वजे फिर वैठा। आरामके वाद थकावटका पूरा-पूरा असर मालूम हो रहा था। ९ वजे तक ४६० तार हुअे। ४० तार पूरे करने रहे। दूसरे घटेमे दस तार पूरे किये। तीसरे घटेमे भी अितने ही। चौथे घटेमें अिन्जिन खूव तेज कर दिया और अुन वीसो तारोको पूरा करके ५० तार अूपर वढा दिये। अर्थात् फी घटे ५७० तार हुअे। मैने सोचा, अव अिसी वेगको कायम रखना चाहिये, और २३ घटेमे ११,५०० के वदले पूरे १२,००० कर देना चाहिये। पर ठीक अिसी समय अच्छी पूनिया खतम हो गअी। ८,००० तक तो पहलेके ज्यादा तारोको मिलाकर काम चलाया, पर अिसके वाद और भी खराव पूनिया आने लगी। वेग ४८० से भी कम हो गया। मुझे तो यही चिन्ता होने लग गअी कि ११,००० भी पूरे होगे कि नही? २ वजे ७,८८० तार हुअे थे। चार वजे तक तो १०,००० हो जाना चाहिये थे, परन्तु वे ४-४५ को हुअे थे। अितनेमें काति अच्छी पूनिया वनाकर ले आया। फिर वेग ५०० से अूपर वढ गया। आखिरी तीन घटेमें तो तार पूरे होगे कि नही, अिस चिंता और थकावटके कारण मानो मैं स्वप्नमें ही चरखा चला रहा था। मालूम होता था कि मैं कभीसे चरखा छोड करके अुठ गया था, और

अभी फिर कातनेके लिअे आकर बैठ गया हू अिमीलिअे अितने कम तार हुअे है। २४ घटे कैसे बीत गये खबर भी नही पडी। हा, अुठते समय वह मत्र मालूम हो गया। बदन अिस तरह जकड गया था कि दो तीन बार अुठनेका प्रयत्न करने पर भी लाचार हो फिर बैठ जाना पडा।"

विद्यार्थियोकी पवित्र लगन सराहनेवालो तथा चरखा-यज्ञमे श्रद्धा रखनेवाले पुरुपोको यह पत्र पढकर जरूर हर्प होगा। जो विद्यार्थी अिस पत्रको पढे, वे अिससे बोध ले। खेलमे प्रेम होना अच्छी बात है। किन्तु वही प्रेम और लगन परोपकारी कार्यमे होना और भी अच्छा है। वे यह भी देखें कि जो अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करते है, और ब्रह्मचर्यका पालन करते है, अुनके लिअे अूपर लिखे अनुसार चौवीस चौवीम घटे अविश्रान्त परिश्रम भी साध्य है। धन कमानेके लिअे विद्याका अुपयोग करना अुसके दुरुपयोगके समान है। विद्या तो तभी सार्थक होती है, जब अुसका अुपयोग सेवाके लिअे होता है। फिर विद्यार्थीके लिअे श्रद्धाकी भी भारी जरूरत है। यह समझ लेनेके लिअे तो जरूर कुछ बुद्धिकी आवश्यकता है कि भारतका दारिद्रय चरखे जैमी चीजसे ही नष्ट हो सकता है। परन्तु अुस प्रेमको टिकाये रखना आखिर श्रद्धाका ही काम है। मै तो विद्यार्थियोके विपयमें अिस बातको प्रत्यक्ष देख रहा हू कि श्रद्धाके अभावमे अुनकी विद्या निरर्थक हो रही है।

हिन्दी-नवजीवन, १२-५-'२७

३५

नागपुरका सत्याग्रह

अखबारोमे मै असोशियेटेड प्रेसके अेक तारको देख रहा हू। वह खवर करता है कि श्री मचरशा अवारीका कहना है कि बगालके कैदियोके छुटकारेके लिअे शस्त्र-कानून और स्फोटक द्रव्योके कानूनका सविनय-भग करनेकी अुनकी हलचलमे अुनके साथ मेरी पूर्ण सहानुभूति और आज्ञा है। यदि मुझे ठीक स्मरण है तो या तो असोशियेटेड प्रेसके प्रतिनिधिने श्री अवारीका मतलव समझनेमे गलती की है, या स्वय श्री अवारीने ही मुझे समझनेमे भूल की है। मुझे तो याद नही होता कि मैने श्री अवारीको किसी भी वातको लेकर सविनय-भग छेडनेके पक्षमे पहले ही से अपनी समति दे दी हो। सचमुच, अिस तरह पहलेसे समति दे देना मेरे स्वभावके विपरीत है। श्री अवारीकी देशभक्ति और स्वार्थत्यागके लिअे मेरे दिलमे बडा अूचा स्थान है। और मैने अुनके साथ सविनय-भगके सिद्धात पर चर्चा भी की थी। मैने सविनय-भगकी गभीर मर्यादाओकी ओर अुनका ध्यान आकर्षित किया। अुन्होने भी वगालके कैदियोके विषयमे वडा प्रेम और चिंताशीलता जाहिर की। और वह ठीक भी था। मुझे याद है कि मैने अुन्हे यह कहा था कि सविनय-भग जैसे किसी आन्दोलन पर विचार करके अुसे छेडा जाय, तो वह अेक भारी वात होगी। अव भी मेरा यही मत है। क्योकि मै मानता हू कि वगालके देशभक्तोको विना किसी प्रकारकी भी जाच वगैरह के अनिश्चित समय तक जेलोमे डाल रखना अेक गहरा अन्याय तो जरूर है। और यदि अभी तक मै चुप रहा हू तो अुसका कारण यह नही है कि मेरे दिलमे अुन देशभक्तोंके प्रति अुनके घनिष्ठ मित्रोका-सा प्रेम नही है, वल्कि अिसीलिअे कि मै अपनी लाचारीका निष्फल प्रदर्शन करना नही चाहता। अेक सार्वजनिक कार्यकर्ताको धीरजपूर्वक यह भी सीखना पडता है कि वह क्या क्या नही कर सकता। और आज विस्तर पर कैद होते हुअे भी, यदि मै अुन वगाली देशभक्तोको अुस कैदमे छुडानेके किसी व्यवहार्य और

शातियुक्त विचारको खोज सकता, तो मै विना किसी हिचकिचाहटके जरूर अुस पर अेकदम अमल करने लग जाता। पर मै कबूल करता हू कि मेरे सामने अभी अैसी कोअी योजना नही है। मेरा व्यक्तिगत मत तो यही है कि अभी देशमे सविनय-भगके अनुकूल वायुमडल ही नही है। आजकल तो वडे वुरे दिन है। आज तो अहिंसात्मक सविनय-भगके योग्य नही, बल्कि वहुत भारी हिंसात्मक और आत्मघातक कानूनभगके अनुकूल वायुमडल देशमे फैला हुआ है।

मुझे विलकुल पता नही कि नागपुरमे क्या क्या हो रहा है। मै श्री अवारीके आन्दोलन पर कोअी मत नही दे सकता और मैने अुनके अिस आन्दोलनको अपनी समति नही दी है। मै तो अुसके विषयमे अेक भी शब्द कहना नही चाहता था। अच्छा होता यदि श्री अवारी मेरे नामको व्यर्थ ही वीचमे न घसीटते। यदि वे सोचते थे कि अुनके आन्दोलनके लिअे मेरी समति आवश्यक थी, तो अुन्हे चाहिये था कि वे अपनी हलचलकी सारी योजना स्पष्ट रूपसे मेरे सामने रख देते, और मेरी लेखी समति प्राप्त कर लेते। यदि मै अुसे पसद करता किन्तु स्वय भाग न ले सकता, तो कमसे कम अिन स्तभोमे मै अपनी पूरी शक्तिके साथ अुसका समर्थन तो जरूर करता। खैर, अव यदि मेरी अिस अस्वीकृतिके प्रकाशनसे अुनकी हलचलको कोअी हानि पहुचे, तो अिसके लिअे वे अपने आप ही को धन्यवाद दे। अवसे मेरे नामका अुपयोग करनेकी अिच्छा रखनेवाले सभी कार्यकर्ताओको अिससे नसीहत अुठानी चाहिये। विना मेरी लिखित समति लिये वे किसी आन्दोलनके साथ मेरा नाम न खीचे। नि सदेह अव तो कार्यकर्ताओको स्वावलवी और साहसी हो जाना चाहिये। अुन्हे अव वडे और प्रभावशाली समझे जानेवाले लोगोके मुहकी ओर अिस आशासे देखनेकी कोअी जरूरत नही कि वे अुन्हे अपने नामोका अुपयोग करनेकी अिजाजत दे। वल्कि यदि वे किसी वातको ठीक समझे, तो अुन्हे स्वय ही निर्भयतापूर्वक अपनी योजनाओ पर अमल करना शुरू कर देना चाहिये। अुन्हे अपने विश्वासके वल और कार्य पर ही निर्भर रहना चाहिये। गलतिया तो होगी। कष्ट भी होगा, अैसा कष्ट जो टाला जा सकता है।

पर राष्ट्र यो आसानीसे नही वन जाते। किसी वडी वातको हासिल करनेके पहले कठोर और कडे अनुशासनकी जरूरत होती है। और यह अनुशासन निरे तर्क, दलीलो और वादविवादसे प्राप्त नही होता। अनुशासनका पाठ तो विपत्तिकी पाठशालामे सीखा जाता है। और जव युवक विना किसी ढालके काम करना सीखेंगे, तो वे जिम्मेदारी और अनुशासनको भी अच्छी तरह जानने लग जावेंगे। और अिस अुम्मीदवार नेताओकी फौजमे से अेक अैसा सच्चा नेता पैदा होगा, जिसे अनुशासन और आज्ञाधारिताके लिअे पुकार नही मचानी होगी, वल्कि अुसे वे अपने-आप स्वभावत प्राप्त होंगे। क्योकि वह कअी जगह रगडे खाकर, कअी परीक्षाओमे अुतीर्ण होकर, निश्चित नेतृत्वके लिअे अपना अधिकार सिद्ध कर देगा।

हिन्दी-नवजीवन, १९–५–'२७

३६

अत्यंत असंतोषजनक

मैं चाहता हू कि मैं श्रीयुत सुभाषचद्र वोसकी रिहाअी पर वगालकी सरकारको धन्यवाद दे सकता। पर रिहाअीकी मजूरी अिसलिअे नही दी गअी कि लोकमतने अुसकी माग की थी, अिसलिअे भी नही कि कलकत्ता कारपोरेशनके चीफ ऑफीसरको सरकारने निर्दोष समझ लिया, और न अिसलिअे भी कि सुभाप वावू अुस जुर्मके लिअे सरकारकी अिच्छानुसार काफी सजा भुगत चुके हैं जिसका न तो स्वय सुभापवावूको और न जनताको ज्ञान है। वल्कि रिहाअीकी मजूरी तो अिसलिअे दी गअी कि स्वय सरकारके मेडिकल ऑफीसरकी रायमे वह महान कैदी वहुत वीमार समझा गया — अितना वीमार कि अुसके जीनेके विपयमे अुसे भय होने लग गया। अगर सुभापचद्र वोस समाज अथवा किसी खास शख्सकी जानके लिअे अेक खतरनाक आदमी हैं, और वे अगर निश्चयके दृढ भी हैं, जैसा कि लोगोका खयाल है और स्वय सरकारका भी विश्वास है, तो वे अितने अधिक

बीमार होने पर आज भी किसी प्रकार कम खतरनाक नही हो गये है। फिर सरकार अुनको जेलमें मरने देनेसे क्यो डर गअी? सचमुच अुसकी यह कोअी आदत तो है नही जो वह हरअेक ज्यादा बीमार हो जानेवाले कैदीको छोड देती हो। और अगर अुन्हे अुनकी बीमारीके कारण ही छोडना ठीक समझा गया है, तो अुन्हे अुसी समय क्यो नही छोड दिया गया, जब अुनके शरीरमे पहले-पहल ही क्षयरोगके चिह्न दिखाअी दिये थे? अखबारोमे अुनकी चिंताजनक बीमारीकी खबरे तो कअी दिनसे छपती आ रही है। स्वय कैदीके भाअीने भी सरकारको बार बार सुभाष बाबूकी बीमारीके विषयमे चेतावनी दी है।

मै तो यह कहनेका साहस करता हू कि अिस तरह अेक मरणोन्मुख आदमीको अुसके रिश्तेदारोको किसी तरह लौटा देना और अुसकी मृत्युके अपराधसे हाथ धो लेना कायरता है। यह रिहाअी हमे बगालके अुन कैदियोके प्रश्नको हल करनेमे जरा भी सहायता नही करती, जो बिना जाचके कैद कर लिये गये थे और जिन्हे सरकारने ख्वाहमख्वाह अिसलिअे अनियमित समयके लिअे जेलमे पटक रखा है कि वह अुन पर सदेह करना चाहती है। बगाल रेग्यूलेशन भी अभी ज्योका त्यो सुरक्षित है। अब अुन कैदियोको भी जेलमे सडते रहना पडेगा, जिनकी तबियतें भी कम-ज्यादा बिगडी हुअी है। बल्कि अब तो वे अुनकी रिहाअीके आन्दोलनकी शक्तिसे भी वचित हो गये जो काफी जोरदार था। क्योकि अब तक अुनके साथ अेक शक्तिशाली पुरुष था। यो तो निस्सदेह किसी न किसी प्रकारका आन्दोलन अुनकी रिहाअीके लिअे अब भी होता ही रहेगा। परतु मुझे डर हे कि वह काफी शक्तिशाली न होगा। बात यह है कि भारतीय स्वभाव छोटीसे छोटी दयासे भी कृतज्ञ हो जाता हे। वह झटसे सतुष्ट हो जाता हे। सुभाष बाबूकी रिहाअीमे प्रकृतिका हाथ था। पर लोग सभवत अिसके मानी यह समझ लेगे कि सरकार झुक गअी, और सुभाष बाबूकी रिहाअीका स्वागत करते हुअे वे सरकारको दूसरे कैदियोको कैद रखनेके अपराधके लिअे क्षमा कर देगे।

सभव है, लोग अिसे निर्दयता कहे, परतु मैं तो अैसी रिहाअीके बनिस्वत यही ज्यादा पसद करूगा कि रिहाअी न होना ही अच्छा है। अिससे तो समस्या और भी ज्यादा अुलझ जाती है और तब अुसे सुलझाना बडा मुश्किल हो जाता है। क्योकि अिन कैदियोकी रिहाअीके प्रश्नकी जडमे नागरिकोकी स्वाधीनताके साथ साथ महज गैरजिम्मेदार सरकारो द्वारा जनताके जीवन पर असाधारण अधिकार धारण कर लेनेका जटिल सवाल भी तो मिला हुआ है। अिस दुखद बुराअीमें भी अगर जनता कोअी भलाअी ढूढना चाहे, तो अुसे अेक अच्छी बात जरूर मिल जायगी। और वह यही कि अुनकी रिहाअीके लिअे सरकार द्वारा बार बार जो अपमानभरी शर्ते रखी गअी, सुभाष बाबू आखिर तक अुन सबको माननेमे बराबर अिनकार करते रहे। अब हमे आशा और प्रार्थना करनी चाहिये कि परमात्मा अुन्हे शीघ्र ही नीरोग करके चिर काल तक अपने देशकी सेवा करनेका मौका दे।

हिन्दी-नवजीवन, २६–५–'२७

३७

अनुकरणीय

जावरा राज्य रगाअी और छपाअीके लिअे मशहूर है। मुझे मालूम हुआ है कि जावराके नवाब साहब खादीके आन्दोलनमे दिलचस्पी रखते है। और अब तो छपाअी-रगाअी द्वारा खादीको अधिक आकर्षक बनाकर खादी हलचलको अुत्साहित करनेकी गरजसे अुन्होने खादीको सब प्रकारके करोसे मुक्त कर दिया है। अिस प्रशसनीय कार्यके लिअे मैं जावरा राज्यको धन्यवाद देता हू, और आशा करता हू कि अन्य राज्य भी अिस महान और दिन-ब-दिन बढनेवाले राष्ट्रीय अुद्यमके साथ प्रेमभरा व्यवहार करेंगे, जो भारतके करोडो भूखो मरनेवाले गरीबोके लिअे असीम फायदेमद हो सकता है।

हिन्दी-नवजीवन, २६–५–'२७

३८

गाय और भैंस

अेक अहिंसाके अुपासक लिखते हैं

"'गाय बनाम भैंस' वाले लेखमें आपने यह लिखा है— 'मेरे लिखनेका अुद्देश्य भैंसको छोड देनेमें नहीं है। परन्तु यदि हम भैंसका बचाव करना चाहें, तो अुसकी संख्याको नहीं बढाने बल्कि अुसे स्वराज्य दे देनेसे है। गायको हमने अपने अुपयोगके लिअे घरवासिनी बनाया है। और अिसीलिअे अुसका रक्षण करना हमारा धर्म हो जाता है।'

"अिसमें 'छोड देना' और 'स्वराज्य देना' अिन दो बातोंका अर्थ स्पष्ट रूपसे समझमें नहीं आया। स्वराज्य देनेके मानी क्या हैं? क्या अुसे जंगलमें छोड देनेमें है? अथवा अुसके पालनकी आज तक हमने जो जिम्मेदारी धारण की है अुसका अिनकार करनेमें है?

"यह सवाल बिलकुल जुदा है कि गायका दूध भैंसके दूधकी अपेक्षा अधिक सात्त्विक है या नहीं? जब तक हम भैंसके पाडेका अुपयोग करनेकी कोअी युक्ति नहीं खोज लेते, तब तक अुसे बचाकर भैंसके दूधका अुपयोग करना सस्ता नहीं होता। पाडेको मारकर अथवा अुसे मरने देकर भैंसके दूधका अुपयोग करना घातकता है। अिसलिअे यह तो साफ है कि हमें भैंससे कोअी सेवा नहीं लेनी चाहिये। और अिसीलिअे यह भी समझमें आ सकता है कि अुसकी संख्याको हमें नहीं बढाना चाहिये।

"परन्तु जहां पर गाय और बैल दोनोंका निर्वाह और अुपयोग करना कठिन है, और साथ ही जहां पर भैंस और पाडे दोनों काम दे सकते हों, वहां गायके पालनका आग्रह

नही होना चाहिये और भैंस-पाडेके पालनमे आपत्ति भी नही की जानी चाहिये। आज जहा तहासे भैंसको निकाल दे यह नही हो सकता। गोपालनमे बैलोका अुपयोग होनेके कारण गाय अहिंसाकी पोषक है। और भैंसके पालनेसे पाडेकी हत्या होती है। अिसलिअे वह अहिंसा धर्मको हानि पहुचाती है। भारतवर्षमे अैसे स्थान बहुतसे नही है, जहा गोपालन तो कठिन हो और भैंसका पालन शक्य और आसान हो। अिसलिअे भैंसको पालनेका सवाल राष्ट्रीय नही हो सकता, यह भी स्पष्ट है। परतु जहा भैंस-पाडे ही काम दे सकते है, वहा यदि सारे देशके भैंस-पाडे अेकत्र कर दिये जाय तो वह अिष्ट ही होगा। अैसे स्थानोको निश्चित करके यदि वहा पर भैंस और पाडोको भेजनेकी सुविधा कर दी जाय तथा अैसा नियम कर दिया जाय कि अुस टापूमे से भैंस बाहर नही भेजी जा सके, तो भैंस और पाडेको अपना स्वाभाविक स्थान मिल जाय। फिर, वहा पर जितने जानवरोकी जरूरत हो, अुतना ही वहा अिनका विस्तार बढने दिया जाय अिससे अधिक नही।

"यह सत्य है कि जब तक भारतकी जनता यह नही समझ लेती कि पशुओके प्रति हमारा क्या धर्म है, तब तक यह होना मुश्किल है। परतु यह तो स्पष्ट हो जाना जरूरी है कि गाय और भैंसकी समस्या किस तरह हल हो सकती है।

"अिसके साथ ही अेक और सवाल भी पूछ लू? आप वर्तमान पश्चिमी सभ्यताको आसुरी मानते है। आप भारतके ग्रामीण जीवनको भी पसद करते है। परतु आज तो अिस ग्रामीण जीवनमे भी अनेको फेरफार करने होगे, जो सामान्य जन-समाजको पश्चिमी सभ्यताके समान ही मालूम होगे। जब आप आदर्श दुग्धालय और चर्मालयकी बात करते है, तब ये बाते लोगोकी समझमे जल्दी नही आती। अिसका कारण यह है कि अभी लोग आपके आदर्शकी कल्पनाको जानने नही लगे है। क्या आप अिसका चित्र अकित करेंगे? खेत कमसे

कम कितने बडे होने चाहिये? नये ढगके औजारोका अुपयोग करना चाहिये या नही? दुग्धालय और चर्मालयमे यत्रोके लिअे कोअी स्थान है या नही? अिस तरहके अनेक प्रश्न है। अिनका खुलासा यदि आप कर देगे, तो देहातमें कार्य करनेवाले सेवकोको अुमसे वडा लाभ होगा।"

'गाय-भैंस' का लेख लिखते समय मैंने यह खयाल कर लिया था कि भैंसके स्वराज्यकी वातमे विशेष स्पष्टीकरणकी कोअी आवश्यकता नही है। जिम जानवरको हम पालते है, अुमकी स्वाधीनताको छीन लेते हैं, फिर हम अुसका पालन चाहे कितने ही शुभ हेतुपूर्वक करे। सैकडो अग्रेज यह मानते है कि वे भारतका पालन शुभ हेतुपूर्वक कर रहे है। हम अुनके अिम दावेको अस्वीकार करते हैं तो भी वे हमे वेवकूफ समझकर अपने काल्पनिक धर्मको नही छोडते। परतु यदि हम दोनोके बीच कोअी न्याय करने वैठे, तो हमारी तरफसे केवल अितने शब्द काफी होगे —"हमारे दु खोकी वात वे शख्स क्या जाने जिन्होने अपने-आपको जवरदस्ती हमारा पालन-कर्ता वना लिया है? यह तो अेक त्रिकालदर्शी परमात्मा ही जान सकता है या खुद हम। और हम तो साफ साफ कह रहे है कि हमारा हित तो स्वाधीनतासे होगा।" अिसी प्रकार यदि भैंसको वाणी हो, और अुमके तथा हमारे बीच कोअी न्यायाधीश नियुक्त किया जाय, और भैंस हमारे ही समान दलील करके अपना पक्ष अुसके सामने रखे — और मैं मानता हू कि वह जरूर रखेगी — तो न्याय अुसीके पक्षमें जायगा। अिसीलिअे मैंने कहा है कि भैंसका पालन करनेके मोहको त्याग कर हम यदि अुसे छोड दे तो अुससे अुसका अहित नही होगा, वल्कि वह स्वाधीन हो जायगी। अिसमें अपने सिर परकी जिम्मेदारीको टालनेकी वात नही है। जिस भैंसको हमने रखा हे, अुसके पालनकी जिम्मेदारी तो हमे अपने सिर पर धारण करनी ही होगी। परतु जिस प्रकार गायके वशको वढाने तथा अुसे सुधारनेके लिअे अुचित अुपायोका अवलवन करना हम अपना धर्म समझते है, वैसा धर्म — यदि मेरा खयाल ठीक हो तो — भैंसके विषयमे हमारे लिअे अुत्पन्न नही होता।

अर्थात् गोरक्षाके विशेष धर्ममे भैंसको भी स्थान देनेकी आवश्यकता नही है। मैंने जो योजना सूचित की है, अुसको यदि सब स्वीकार करे तो अुससे यह मतलब भी निकाला जा सकता है कि जहा गाय-बैलका निर्वाह नही हो सकता, तथा जहा केवल भैंस ही रह सकती है, वहा सभी भैंसोको अेकत्र कर दिया जाय और अुनके पाडे आदिकी सपूर्ण रक्षा की जाय।

मेरे कहनेका आशय यह तो नही था कि प्रत्येक गावमे पृथक् पृथक् दुग्धालय और चर्मालय भी हो। परतु आजकी तो हमारी स्थिति अितनी दयनीय हो गअी है कि पहले शहरोमे अिन बातोके प्रयोग सफल करनेके बाद ही अुन्हे देहातमे ले जाना होगा। जानवरोका पालन ठीक ठीक तरह कैसे हो, गायको बिना तकलीफ दिये अुससे हम अधिकसे अधिक दूध किस तरह लें, तथा अुनके चमडोको कैसे कमाया जाय अित्यादि समस्याये है, जिनका प्रयोग हमे पहले करना होगा। आज-कल तो गोचरोका पता नही। खली और घास महगे है। परतु फिर भी देहातके लोग किसी तरह अपने जानवरोकी रक्षा कर ही रहे है। चमडेकी तो यह दशा है कि अेक अपढ मोची हमे जितना अुपयोग दे सके अुसीको लेकर हम सतुष्ट हो जाते है। हड्डिया वृथा जाती है। मतलब यह कि अिस जीवित धनका नाश हो रहा है। अगर जानवर मरते नही है, तो मृतप्राय तो जरूर हो जाते है। और अपने मालिकके लिअे अेक तरहसे भाररूप हो जाते है, और अतमे बबअी आदि शहरोके बूचडखानोकी राह लेते है। मै जानता हू कि अिस विषयमे महत्त्वपूर्ण फेरफार करनेकी जरूरत है। परन्तु अिन फेरफारोको हमे किस तरह करना चाहिये यही प्रश्न है। अिस समय तो मै यह कहनेमे असमर्थ हू कि पश्चिमसे हमे क्या लेना चाहिये और क्या नही। यह सब अभी प्रयोगावस्थामे है। और अगर मै यह समझा चुका हू कि किस बातको कहा तक ग्रहण करना चाहिये, तो अब प्रत्येक सेवक अपनी ही जिम्मेदारी पर अिस बातको ढूढ ले कि अुसे किस तरह कार्यमें परिणत करना चाहिये। अेक समय अैसा था जब हमारी सभ्यतामे अुचित फेरफार हो सकते थे, और अिन

फेरफारोंकी आवश्यकताको लोग महसूस भी करते थे। और हम कह सकते हैं कि हमारी सभ्यता तभी तक जिन्दा भी थी, जब तक कि वह अपनी अुन्नतिकी अिन शर्तोको स्वीकार करती थी। आज तो हमारी यह दशा हो गअी है कि शास्त्रके नाम पर जो कोअी भी किताब छापकर हमारे हाथोंमें दे दी जाती है, अुसीको हम अंतिम शब्द समझ लेते हैं, और हमें यह निश्चय होता है कि अिसमें घटती-बढती कुछ हो ही नहीं सकती। हमें अिस भयानक मानसिक मृत्युसे बाहर निकलना चाहिये। यह तो हम आज भी अपनी नंगी आंखोंसे देख सकते हैं कि हर युगमें हमारे रहन-सहनमें फेरफार होते रहे हैं। अिस नियमको स्वीकार कर निःस्वार्थी तथा संस्कारवान सेवकोंको आत्मश्रद्धापूर्वक देहातमें चले जाना चाहिये। सबको कुछ खास सिद्धान्तोंको तो जरूर ही स्वीकार करना होगा। हां, अिन सिद्धांतोंके पालनमें अवश्य विविधता होगी। पर यह अनिवार्य और स्वागत करने योग्य भी है। अिस पद्धति द्वारा सिद्धांतों पर अमल करनेमें बढियासे बढिया रास्ते हमें मिल जावेंगे। अिस विचारसरणीमें यह बात गौण रूप धारण कर लेती है कि हमें पश्चिमके यंत्रोंका अुपयोग करना चाहिये या नहीं। और यदि किया जाय तो कहां तक? तथापि सामान्य नियम तो यही होना चाहिये कि देहातमें हम जो कुछ बना सकें और पैदा कर सकें, अुसे वही बनाना और पैदा करना चाहिये। यदि हमारा काम अपने गांवमें बने छुरेसे चल सकता है तो हमें जर्मनीके अच्छे समझे जानेवाले 'क्रॉप' नामक छुरेको खरीदनेके मोहमें नहीं पडना चाहिये। पर यदि हम सीने-पिरोनेके लिअे अपने गांवमें सस्ती सुअी नहीं बना सकते, तो हमें ऑस्ट्रियाकी बनी सस्ती सुअीसे द्वेष भी नहीं करना चाहिये। मतलब यह कि मैं अैसी किसी वस्तुके ग्रहण करनेको दोषास्पद नहीं कहूंगा, जो अच्छी और ग्रहणीय हो तथा जिसे हम हजम कर सकें, फिर वह कहीं भी बनी हो।

हिन्दी-नवजीवन, २६-५-'२७

३९

हमारी सभ्यता

किसानकी बख्शिश

सयुक्त प्रान्तके अेक गरीब किमानने मुझे मेरे प्रवासमे नीचेका लिखकर दिया था। अुसकी तारीख है ४-११-'२४। तवसे मैंने अुसे अपने काजगपत्रोमे सग्रह कर रखा था। मुझे यह जैसा मिला है वैसा ही यहा दे रहा हू। नाम भी नही छिपार्ता, क्योकि अिसमे यह भय नही कि यह रामचद्र फूला न समायगा। यही अधिक सभव है कि वह कभी 'नवजीवन' पढता ही न हो। और यदि पढता भी होगा, तो जिसने तुलसीदासकी ये सुन्दर चौपाअिया लिख भेजी है, वह मै आशा करता हू कि अभिमानसे न फूलेगा।

(ससारके जीवोको सुख पहुचानेवालोकी)

(नीति)

जननी, जनक, वधु, सुत, दारा। तन, मन, भवन सुहृद परिवारा।।
सवकै ममता तागवटोरी। मम पद मनहि वाधि वरडोरी।।
समदर्शी अिच्छा कछु नाही। हर्ष, शोक, भय नहि मन माही।।
अस सज्जन मम अुर वस कैमे। लोभी हृदय वसत धन जैसे।।
तुम मरीखे सत प्रिय मोरे। धरहु देह नहि आन निहोरे।।

दोहा

सगुण अुपासक परहित, निरत नीति दृढनेम।
ते सज्जन मोहि प्राणप्रिय, जिनके द्विज पद-प्रेम।

जव तक सव नेता अैसा न समझ ले, तव तक यह ससारके पापी जीव तर नही सकेगे। क्या करू अिस समय (ममत्व) के अहने मवकी मतियो पर अपना दवाव डाल कर अधा कर दिया है।

जीव मायाके जालमे पड बौराय रहे है। अिससे हे महात्मन्, अीश्वर आपको दीर्घायु प्रदान करे, जिससे कलियुगके पाप दूर हो।

(प्रार्थि-नम्र-चिता-जनक)

(रामचद्र)

—किसान अवध ४-११-२४

बडो दादाको बख्शिश

अिसी प्रकार बडोदादामे प्राप्त अेक अमूल्य वस्तु मेरे पास हमेशा रहती है। अुनके जीवनकालमे जब मै शातिनिकेतनमे आखिरी दफा गया था, अुस समय नीचे दिया हुआ श्लोक अुन्होने मुझे अपने हाथसे लिखकर दिया था —

विपत् सपदिवाभाति मृत्युश्चाप्यमृतायते।
शून्यमापूर्णतामेति भगवज्जनसगमात्॥

अिसका अर्थ दू

भगवद्भक्तके सत्सगसे दु ख सुखरूप होता है, मृत्यु भी अमृत-रूप बन जाता है और जड मनुष्य सपूर्ण ज्ञानी बन जाते है।

अेक जगली गिना जानेवाला किसान भी समय आने पर तुलसीदासकी ज्ञान और भक्तिरस-पूर्ण चोपाअिया लिख सकता हे ओर दूसरा महाकवि अपनेको गूढ ज्ञान होने पर भी अहभावको छोडकर सत्सगकी खोजमे रहता हे। अुपरोक्त दोनो अवतरणो पर अुसके साथ मेरा जो सबध है, अुसे त्याग कर पाठक यदि तटस्थ दृष्टिसे विचार करेगे, तो अुन्हे मालूम होगा कि हमारी सभ्यता क्या है और अुसके लायक हम कैसे बन सकते है।

हिन्दी-नवजीवन, ८-९-'२७

कौंसिल-प्रवेश

कौंसिल-प्रवेशके बारेमे अेक सज्जन लिखते है

"अिस समय चारो तरफ आगामी कौसिलके लिअे कार्य शुरू हुआ देखकर आपकी अनुमति जाननेकी यह अिच्छा प्रबल हो रही है कि अिस सबधमे आपकी क्या राय रहेगी। यद्यपि कौसिलो पर आपका विश्वास नही था, किन्तु कलकत्ता काग्रेसके समय खादी-प्रचार पर आपका जो अुपदेश हुआ था, शायद अुसमे आपने कहा था कि खादी-प्रचारके लिअे कौसिलोमें भी प्रस्ताव पास करना चाहिये। अिसका खुलासा अर्थ आपको कर देना चाहिये, नही तो लोग अिससे कौसिलो पर विश्वासका अर्थ लगायेंगे। बहुतसे लोग कह भी रहे है कि अबकी बार महात्माजी भी कौसिल-प्रवेशमे सहमत है, और अिसकी नीति पर अुनका विश्वास भी है। अिस सबधमे लोग यह दलील पेश करते है कि कौसिलके गत अधिवेशनमे हमारे लोग कम सख्यामे गये थे, अत जैसी आशा की जाती थी वैसी कामयाबी हासिल न हो सकी। अबकी बार पूरी ताकत लगाकर हम अपना बहुमत करेंगे, जिससे आगे चलकर कानून-भगमे अधिक लाभ होगा।

"अिस पर वादविवाद न कर आपसे सादर यही अनुरोध है कि आप अपनी अनुमति अिस पत्रके समाधानके साथ 'नवजीवन' मे प्रकाशित कर प्रस्तुत भ्रमको दूर करनेकी कृपा करे।"

जो अभिप्राय मेरा सन् १९२०-२१ मे अिस विषयमे था वही आज भी मौजूद है। मै नही मानता कि कौसिलोमे जानेसे देशको लाभ हुआ है। परन्तु यदि कौसिलमे जाना ही है, तो वहा जाकर भी लोग खद्दर अित्यादिका रचनात्मक कार्य करनेकी चेष्टा करे तो अवश्य अच्छा है। कौसिलमे न जाना बुद्धिमानीका प्रथम लक्षण है,

जानेके बाद वही कार्य करना, जो हम बाहर भी करना चाहते हैं, दूसरी श्रेणीकी बुद्धिमानी है।

पाठकोको मेरी सलाह यह है कि जिन्हे कौंसिलोमे जानेका या किसीको भेजनेका मोह नही है, वे अुनका नाम तक भूल जाय।

हिन्दी-नवजीवन, ६–६–'२९

४१

क्षमा-प्रार्थना

मुझे हमेशा दुःख रहा है कि 'हिन्दी नवजीवन' का सम्पादक होते हुअे भी मैंने अिसके लिअे कुछ लिखा ही नही है। लिखनेकी अिच्छा तो प्रबल रही है, परन्तु अिससे पहले अुसे सफल न कर सका। अबसे अिरादा है कि हर सप्ताह कुछ न कुछ लिखता रहूगा।

हिन्दी-नवजीवन, ६–६–'२९

४२

बुनाअी बनाम कताअी

खादी-आश्रम रींगससे मूलचदजी लिखते हैं

"अिस केन्द्र द्वारा छ माससे कृपकोमे पीजना सिखानेका काम हो रहा है। अब तक करीब ९०० लोग पीजना सीख चुके हैं। ये वे लोग हैं, जिनको हमने पीजना सिखाया है, और जिनके नाम हमारे पास लिखे हुअे हैं। अिनके सिवा भी बहुतसे लोग आपसमे अेक-दूसरेकी सहायतामे पीजना सीख गये हैं। अिनमे से अब शायद ही कोअी पिजारेके पास पीजनेको रुअी ले जाते होंगे।

"चरखा तो अिनके यहा पहलेसे मौजूद है, और स्त्रिया कातती भी हैं।

"आजकल जब कि हम अिनको पीजना सिखा रहे हैं, अिनमें से कुछ लोग यह भी कह रहे है कि आप हमको बुनना भी क्यो नही सिखा देते ?

"जब हम कृषकोको बुनना सिखानेकी समस्या पर विचार करते है, तो हमारे खयालमे कुछ बाते तो अिसके विपक्षमे और कुछ पक्षमे आती है। विपक्षकी बाते अिस प्रकार है

१ बुनाअी सहायक धधा नही है।

२ राजपूतानेमे बुनाअीका पेशा करनेवाले लोग गावोमे सब जगह हैं।

३ यह जरा टेढा काम है।

बुनाअीके पक्षमे निम्नलिखित बातें है

१ कोअी-कोअी कृपक बुनना सिखानेके लिअे कह रहे हैं।

२ पेशेवाले जुलाहे बुनाअी ज्यादा मागते है, बहुधा हात-कते सूतमे मिलका सूत मिला देते है और कृषक जो सूत अुनको बुननेके लिअे देते हैं अुसे बदल भी लेते है।

३ कृपकोंके पास फुरसतका समय काफी रहता है।

४ बिजोलियामे सैकडो कृपकोने बुनना सीख लिया है।",

मेरा अभिप्राय है कि जो कृपक बुनना सीखना चाहते हैं, अुनको बुनना सिखाना खादी-सेवकका धर्म है। परन्तु जैसे धुनाअीका प्रचार सफलतापूर्वक किया जाता है, और आवश्यक है, वैसे बुनाअीके बारेमें नही कहा जा सकता। धुनाअी कताअीका अविभाज्य अग है, जैसे, रोटी पकानेमे आटेका गूधना। जो आटेको गूध नही सकता, परन्तु चूल्हेके पास बैठकर रोटी पका सकता है, यह नही कहा जाता कि वह रोटी पकाना जानता है। अिसलिअे धुनाअीका प्रचार अुतना ही आवश्यक है जितना कताअीका।

बुनाअी अलग क्रिया है, अलग पेशा है। अिसका नाश नही हुआ है। हिन्दुस्तानके दारिद्र्यके साथ बुनाअीका सबध नही है,

कताओीके नाशसे कृषकोंकी हालत चिंताजनक और कंगाल हो गओी है। स्वावलंबन पद्धतिके प्रचारार्थ भी बुनाओीके प्रचारकी आवश्यकता नही है। स्वावलंबन पद्धतिका यह अर्थ हरगिज नही है कि प्रत्येक मनुष्य अपना सब काम खुद कर ले। अैसा प्रयत्न करना भी व्यर्थ और हानिकर है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, समाज पर अवलंबित है। स्वावलंबन पद्धतिका यह अर्थ है कि प्रत्येक देहातमे देहाती लोग अपना अनाज आप पैदा करे, अपने कपडे आप बना लें। देहातमे श्रम-विभाग अवश्य होगा। केवल सूत कातना सबके लिअे कर्तव्य होगा। भूतकालमे अैसा था, आज अैसा होना चाहिये, भविष्यमे अैसा रहना चाहिये। थोडे ही विचारसे मनुष्य देख सकेगा कि यदि कताओीकी क्रिया हाथोंसे की जाय—और करनी चाहिये—तो वह अिसी तरह की जा सकती है।

हमारे दिलमें यह खयाल भी नही आना चाहिये कि चूंकि जुलाहे सचाओीसे काम नही करते हैं, अिसलिअे कृषकोंको बुनाओीका काम सीख लेना चाहिये। हमारा काम जुलाहोंको अच्छे बनानेका है। वे भी प्रजाके अेक अंग हैं। हां, अेक काम हमें अवश्य करना चाहिये। कओी खादी-सेवकोंको बुनाओीका काम अच्छी तरह सीख लेना चाहिये, ताकि अुन भाअियों पर हम असर डाल सकें और अुन लोगोंको हमारे अज्ञानसे होनेवाले अन्यायसे भी बचा लें।

हिन्दी-नवजीवन, ६–६–’२९

४३

धुनाअीकी लगन

श्री महावीरप्रसाद पोद्दार धुनकी (पीजन) की तारीफ नीचे लिखे शब्दोमे करते है

"आपको यह जानकर खुशी होगी कि मैने यहा धुनाअीका हुनर सीख लिया है। 'हिन्दी-नवजीवन'मे धुनाअीके सबधमे अक्सर चर्चा हुअी है, पर तब अुसमे मुझे वैसा रस नही आता था। अब तो अुन लेखोको फिरसे पढनेकी अिच्छा हो रही है। मुझे तो अिस समय यह जान पड रहा है कि खादी महगी और काफी मजबूत न होनेकी सबसे बडी वजह है कातनेवालेका धुनाअीकी कला न जानना। जब तक धीरजसे, अच्छी तरह पहले रुअी साफ न कर ली जाय और बादको अुचित रूपमे धुन न ली जाय, तब तक कताअीका काम अच्छा होना सभव नही है। मेरी समझमे धुनिया मेरी रुचिके अनुकूल रुअी धुन कर दे ही नही सकता। बाजारके गदे दूध और घरकी गायके दूधमे जो अतर है, वही अतर अिसमे भी है। जिन्हे कताअीका कुछ भी शौक है, अुन्हे धुनना तुरन्त सीख लेना चाहिये। जो लोग गावोमे चरखेका प्रचार कर रहे है या करना चाहते है, अुन्हे पहले कत्तिनको हाथसे धुनना सिखलाना चाहिये। साफ की हुअी रुअीके अच्छी तरह धुन जाने पर कताअी शीघ्र होती है, सूतमे फुटकी नही पडती, सूत मजबूत होता है, तार कम टूटता है और कातनेमे मौज आती है। अैसे सूतकी बुनाअी वर्तमानमे आधी तक हो सकती है और अुसकी खादी आजसे ड्योढी मजबूत हो सकती है।

"अगर प्रात-प्रातमे कुछ अैसे स्कूल हो, जहा यह हुनर दो-तीन महीनोमें सिखा कर लोगोको गावोमे सिखाने भेज

दिया जाय तो कितना अच्छा हो! यहा खादी प्रतिष्ठानवाले तो कुछ अिसी तरहका काम कर रहे है। देहाती किसानोके कुछ लडके आकर यह काम सीख गये है और अब अपने गावोमे जाकर प्रचार करेगे। प्रतिष्ठानवाले तो १५–२० दिनमे ही साधारण रूपसे बुनना सिखा देते है। बिहार विद्यापीठ, काशी-विद्यापीठ आर प्रेम-महाविद्यालय सरीखी सस्थाये अेक-अेक योग्य अध्यापक रखकर अपने प्रान्तमे यह काम कर सकती है। बापूजी, मेरा तो धुनाअी सिखानेमे और धुननेमे बडा मन लगता है। जैसे अमीर लोग अपने कमरोमे बाघकी छाल और हरिनके सीग तथा कुछ 'अल्लम-गल्लम' सामान टागे रहते है, वैसे ही अगर हम अपने कमरेमे प्रात प्रातके धुनने और कातनेके औजार सुदरतासे सजाये तो क्या कमरेकी शोभा नही बढेगी? मुझे बासकी मध्यम पीजन अुतनी ही प्यारी लगने लगी है, जितनी किसी शिकारीको अुसकी बदूक लगती होगी। क्यो नहीं आप यहा किसी दूसरे आदमीको दे देते और मुझे गावोमे धुनना सिखानेको भेज देते? आज नही तो भडारके माल भरके बादेके बाद तो मुझे आपको यही काम देना चाहिये।"

जैसा भाअी महावीरप्रसाद लिखते है, धुनकी अुनी प्रशसाके योग्य है। जो कातनेकी कलाका पूरा दर्शन करना चाहे अुनके लिअे धुनकी अत्यावश्यक है। वह सीखनेमे आसान है, चलाते समय अुससे जो सगीत निकलता है, वह बहुत श्रुतिमधुर होता है। बर्फके समान सफेद-साफ रुअीकी पोल (अुम्दा धुनी हुअी रुअी) बनाकर कातने-वाले सब याज्ञिकोको मेरी सलाह है कि वे महावीरप्रसादजीका अनुकरण करे।

हिन्दी-नवजीवन, १३–६–'२९

४४

यज्ञार्थ सिलाओी

श्री महावीरप्रसाद पोद्दार और लिखते हैं

"कुछ दिन हुअे 'हिन्दी-नवजीवन' मे किसी भाओीने सुझाया था कि सिलाओी जाननेवाली बहने या भाओी फुरसतके समय मुफ्तमे खादीके कपडे सीकर खादी-सेवा यज्ञमे भाग ले सकते हैं। अुस समय अेक-दो मित्रोमें अिसकी चर्चा हुओी, पर काम कुछ नही हुआ। अुस दिन भाओी श्री घनश्यामदासजी बिडलाने अुक्त स्कीमकी बात छेडी। तो तय हुआ कि अुन्हीके घरसे श्रीगणेश हो। अुनके घरकी कओी स्त्रियोने यज्ञार्थ सीना स्वीकार किया है। कुछ काम शुरू हो गया हे। अुदाहरण देखकर और बहने भी भाग ले सकती हैं। आशा है, 'हिन्दी-नवजीवन' मे आप फिर अेक बार अिसकी चर्चा करनेकी कृपा करेंगे।"

हम परोपकारार्थ जो भी कार्य करते है, सब यज्ञ है। खादीकी सफलताके लिअे बहुतसे छोटे-मोटे यज्ञोकी आवश्यकता है। चरखा-यज्ञ सबसे बडा, सर्वव्यापक यज्ञ हे। जिनके पास समय हे, वे सब थोडा समय खादी सीनेमे दे सके तो खादी बहुत सस्ती हो सकती है। यह कार्य वही सगठित हो सकता है, जहा खादी-भडार है और खादी-भडारवाले ही अिस पर नियत्रण रख सकते है। अिसलिअे मै भाओी महावीरप्रसादको अिस आरभके लिअे धन्यवाद देता हू, घनश्याम-दासजीको भी। मुझे अुम्मीद है कि अुन्होने जिस पवित्र कार्यका आरभ किया है, अुसे वे कभी न छोडेंगे। कलकत्तेमें अैसी सीनेवाली स्वयसेविकाओका मिलना कोओी मुश्किल बात न होनी चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन, १३-६-'२९

विवाह और वेद

आजकल हिन्दू-समाजमें विवाह-विधि जिस तरह होती है, अुसमें धर्म कम है और विलास ज्यादा है। जिनके विवाह होते हैं, अुनको पता भी नहीं चलता कि अिस विधिमें क्या होता है, अुसके मानी क्या हैं, और विवाहितका क्या धर्म है? यह शोचनीय बात है। वेदोंमें विवाहको धार्मिक कार्य माना गया है और अुसकी विधि भी बतलाअी गअी है। अुसीके अनुकूल (आज भी) विवाह-कार्य होना चाहिये। माता-पिता और गुरुजनोंका यह धर्म है कि वे वर-वधूको विवाह-धर्म समझावें और विवाह-विधिका अर्थ स्पष्ट करके बतलावें। यह विधि क्या है और वर-कन्याकी प्रतिज्ञाअें क्या हैं, सो सब 'नवजीवन' में बताया गया था, पाठक अुसे देख लें।*

हिन्दी-नवजीवन, १३-६-'२९

* [ता० ४-३-'२६ के 'हिन्दी-नवजीवन' में 'अेक स्मरणीय विवाह' नामक लेख छपा है। अुसमें विवाह-विधिका तो जिक्र है, लेकिन वर-कन्याकी प्रतिज्ञायें नहीं दी गअी हैं। वे ता० ७-३-'२६ के 'नवजीवन' से यहां दी जाती हैं —सपा०]

सप्तपदी

"वर कन्यासे कहता है

१ अिष अेकपदी भव। सा मां अनुव्रता भव।

अिच्छाशक्ति पानेके लिअे अेक कदम बढा। मेरे व्रतकी पूर्तिमें मेरी सहायता कर।

कन्या — मैं आपके प्रत्येक सत्य संकल्पमें आपकी मदद करूंगी।

२ अूर्जे द्विपदी भव। सा मां अनुव्रता भव।

तेज पानेके लिअे दूसरा कदम बढा। मेरे व्रतकी पूर्तिमें मेरी सहायता कर।

कन्या — मैं आपके प्रत्येक सत्य संकल्पमें आपकी मदद करूंगी।

४६

कुछ प्रश्न

अेक सज्जनने कुछ प्रश्न पूछे है। अुसमे आरभ मेरी स्तुतिसे किया है। मुझे पूर्ण निर्भय, पूर्ण त्यागी, पूर्ण निर्वैर और पूर्ण सत्याग्रही माना है। अैसे विशेषणोका प्रयोग मानपत्रोमे तो होता ही है, परन्तु (चूकि) मानपत्रोमे अतिशयोक्ति हमेशा होती है, यह भले ही क्षन्तव्य माना जाय। (मगर) खतोमे अैसे विशेषणोका अुपयोग अक्षन्तव्य है, अविनय है। किसी मनुष्यकी स्तुति अुसके सामने करना असभ्यता है। हिन्दीके पत्रोमे अैसी स्तुति विशेषतया देखता हू, अिसीलिअे

---

३ रायस्पोपाय त्रिपदी भव। सा मा अनुव्रता भव।

कल्याणकी वृद्धिके लिअे तीसरा कदम बढा। मेरे व्रतकी पूर्तिमे मेरी सहायता कर।

कन्या — मै आपके सुखमे सुखी और आपके दु खमे दु खी रहूगी।

४ मायोभव्याय चतुष्पदी भव। सा मा अनुव्रता भव।

आनदमय बननेके लिअे चौथा कदम बढा।

कन्या — मै सदा आपकी भक्तिमे तत्पर रहूगी, सदा प्रिय बोलूगी, सदा आपके आनन्दकी कामना करूगी।

५ प्रजाभ्य पचपदी भव। सा मा अनुव्रता भव।

प्रजाकी सेवाके लिअे पाचवा कदम बढा।

कन्या — आपके प्रजा-सेवा व्रतमे मै पगपग पर आपके साथ रहूगी।

६ ऋतुभ्य षट्पदी भव। सा मा अनुव्रता भव।

नियम-पालनके लिअे छठा कदम बढा।

कन्या — यम-नियमके पालनमे मै आपके पीछे-पीछे चलूगी।

७ सखा सप्तपदी भव। सा मा अनुव्रता भव।

हम दोनोमे आपसमे मित्रता बनी रहे, तदर्थ सातवा कदम बढा। मेरे व्रतकी पूर्तिमे मेरी सहायता कर।

कन्या — आज मेरे पुण्योदयका दिन है, जो आप मेरे पति हुअे है। आप मेरे परम मित्र है, परम गुरु है, परम देवता है।

मैंने यह अुल्लेख यहा किया है। वस्तुत मै पूर्ण निर्भय, पूर्ण निर्वैर, पूर्ण त्यागी नही हू। सत्याग्रही शब्दका धात्वर्थ लेनेसे पूर्ण सत्याग्रहीपनका आरोपण (मुझ पर) हो सकता है। क्योकि सत्यकी कीमत समझ लेनेके बाद सत्यका आग्रह रखना आसान है। (यह) याद रखा जाय कि सत्यका आग्रह अेक वस्तु है, सत्यका आचार दूसरी। मुझे यह प्रत्यक्ष अनुभव है कि मै पूर्णतया निर्वैर, निर्भय और त्यागी नही हू। केवल स्थूल यानी बाह्य त्यागसे अिन गुणोमे पूर्णता नही आ सकती। मानसिक त्याग बहुत कठिन है और मै यह प्रतिज्ञा (दावा) हरगिज नही कर सकता कि मै मनसे भी वैर, भय अित्यादिसे मुक्त हू। हा, मन पर भी काबू पानेका मेरा सतत प्रयत्न है, परन्तु प्रयत्न और सिद्धिमे अुतना ही अतर है, जितना पृथ्वी और सूर्यके

कन्याका पिता कहता है

यस्त्वया धर्मश्चरितव्य सोऽनया सह।
धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरितव्या ।।

आपको जो धर्माचरण करना पडे सो सब अिस कन्याके साथ करना। धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्तिमे अिस कन्याके प्रति अेकनिष्ठ रहना, व्यभिचार न करना।

वर — नातिचरामि, नातिचरामि, नातिचरामि।

धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्तिमे व्यभिचार न करूगा, न करूगा, न करूगा।

यह हमारी प्राचीन विवाह-विधिका प्राण है। अिसके सिवा आजकलके विवाह आदि सस्कारोमे जो कुछ किया जाता है, सो सब आडम्बर है। न हमे लम्बी-चौडी निमत्रण पत्रिकाअे भेजनेकी जरूरत है, न जाति-भोजोकी आवश्यकता है, न बैण्ड बाजोकी। वर-कन्या दोनो शुद्ध खादी पहने, शुद्ध चित्तसे प्रतिज्ञाये करे, सादगीमे प्रामाणिक जीवन बिताये, यही हमारे सस्कारोका आदर्श होना चाहिये। अगर हिन्दू-ससार यह सब करने लगे तो कितना धन बचे, कितना आडम्बर कम हो, माता-पिता और वर-वधू कितनी झझटोमे मुक्त हो और कितनी अधिक धर्म-वृद्धि हो ?"

वीच। अिसलिअे कोअी यह न मान ले कि मैं जो कुछ भी कहता हू, अुसमे कभी भूल हो ही नही सकती। निर्मल वुद्धिसे मैं जितना देख सकता हू, अुतना ही कहता हू। अगर सज्जन अपनी वुद्धि द्वारा अिसकी प्रतीति न कर सके तो छोड दे। अधश्रद्धासे हमे वहुत हानि हुअी है। मैं अपने पर (किसीकी) अधश्रद्धा नही चाहता हू, अुससे वचना पसद करता हू। लोगोकी अवश्रद्धा मेरे मार्गमे रुकावट डालती है। अव मैं अुक्त सज्जनके प्रश्नो पर आता हू, अुन पर वे और अन्य पाठकगण वुद्धिपूर्वक सोचे।

पहला प्रश्न यह है

"केवल श्रवण तथा कथन-मात्रकी अपेक्षा न रखनेवाला आत्मवल कौन कौनसे साधनोकी अपेक्षा रखता है?—वह आत्मवल जिसका अुपयोग प्रह्लाद आदिने किया था।"

श्रवण ओर कथन-मात्रकी सर्वथा अुपेक्षा करनेसे आत्मवलकी प्राप्ति (यदि) असभव नही तो कठिन (अवश्य) हे। आत्माकी मूर्छित स्थितिमे पवित्र श्रवणादि चिनगारीका काम देते है। जव अतर्ज्ञान प्रकट होता है तव श्रवणादिकी आवश्यकता मिटती हे। प्रह्लादके तो अन्तर्नाद वहुत था। मनुष्यके लिअे श्रवणादि पहला पाठ है।

दूसरा प्रश्न यह है

"क्या विधवाओकी आधुनिक विपत्तिको दूर करनेके लिअे भारतके सतीत्व धर्मकी ध्वजाको अवनत करनेवाले पुनर्विवाहके सिवा और कोअी अैसा अुपाय नही है कि जिससे अुनके ब्रह्मचर्यकी रक्षा होकर वे कर्मक्षेत्रमे भाग ले सके? भारतमे लडको तया रडुओकी अपेक्षा लडकियो तथा विधवाओकी सख्या अधिक है। यह कमी पुनर्विवाहसे क्योकर पूरी हो सकती है?"

यह कहना कि विधवा-विवाहसे सतीत्वका नाश होता हे, भ्रममूलक है और भ्रमजन्य है। जो विधवा पुनर्लग्न करना चाहती है, अुसको वलात् अविवाहित रखनेसे धर्मका और सतीत्वका लोप होता जाता हे। वाल-विधवाका विवाह ही धर्मकी और सतीत्वकी

रक्षा कर सकता है। विधवाओंका आदर करनेसे, अुनके लिअे ज्ञान-प्राप्तिके साधन पैदा कर देनेसे और पुनर्विवाहकी सपूर्ण स्वतत्रता देनेसे ही ब्रह्मचर्यकी रक्षा हो सकती है। आज तो मानसिक और शारीरिक व्यभिचार व्यापक बन गया है और अुसका कारण है विधवा पर होनेवाला बलात्कार। यह सिद्ध नही हो सकता कि लडकियो और विधवाओंकी सख्या लडको और विधुरोंकी अपेक्षा ज्यादा है। कअी जातियोमे यह है सही। किन्तु असख्य जातियोंका तो नाश (होना) ही अिष्ट है। चार वर्णोंमे अधिक (अलग) कोअी जाति हो नही सकती। असख्य जातियोकी हस्तीके लिअे हिन्दू-धर्म-शास्त्रमें कोअी मान्य प्रमाण नही है। सभव है कि जब जाति-विभाग पडे, तब अुनकी कुछ अुपयोगिता रही हो, आज तो न अुनकी कोअी अुपयोगिता है, न आवश्यकता ही।

हिन्दी-नवजीवन, २०–६–'२९

४७

गुप्त दान

'कुदरती वस्ल' अुपनामसे अेक दानीने गुमनाम खतके साथ १०० रु० भेजे है। अिनमे से ५० लालाजी स्मारकके लिअे है, १० रुपये मगनलाल-स्मारकके लिअे, २५ रुपये दक्षिण-सकट-निवारणके लिअे और १५ रुपये गोरक्षाके लिअे है।

'कुदरती वस्ल' को मैं अिस गुप्तदानके लिअे धन्यवाद देता हू। गुमनाम खत लिखनेकी आदत बहुत बुरी है। मैं बहुत बार यह लिख चुका हू कि यह भीरुताकी निशानी है, और अिसे कभी भी अुत्ते-जन न दिया जाना चाहिये। मगर 'कुदरती वस्ल' वालेका गुमनाम खत अिनमे से किसी अेक भी दोषका पात्र नही है। ससारमें अैसी बहुत थोडी वस्तुअें है, जो सब जगह और सब समय अच्छी या खराब ही होती हो, 'कुदरती वस्ल' का खत अिसका अेक नमूना

है। यह वाछनीय है कि कओी लोग 'कुदरती वस्ल' का अनुकरण करे। दाताको अखवारमे अपना नाम छपा देखनेकी वडी हवस होती है। और कमसे कम अितना तो लोभ हरअेकमे होता ही है कि जिसे दान दिया जाता है, वह दाताका नाम जान ले। अिनमे अगर कोअी अैसा निकल आये जो दान लेनेवालेको अपना नाम बताना न चाहे, तो अुसका हौसला वढाना मुनासिब है। अिससे दान लेनेवालेकी भी अच्छी परीक्षा हो जाती है। क्योकि दानी छिपे तौर पर यह भली-भाति देख सकता हे कि अुसके दिये हुअे दानका कैसा अुपयोग किया जाता है।

हिन्दी-नवजीवन, २०–६–'२९

४८

अप्राकृतिक व्यभिचार

कुछ साल पहले विहार सरकारने अपने शिक्षा-विभागमे पाठ-शालाओंमे होनेवाले अप्राकृतिक व्यभिचारके सम्बन्धमे जाच करवाअी थी। जाच-समितिने अिस वुराअीको शिक्षको तकमे पाया था, जो अपनी अस्वाभाविक वासनाकी तृप्तिके कारण विद्यार्थियोके प्रति अपने पदका दुरुपयोग करते है। शिक्षा-विभागके डायरेक्टरने अेक सरक्यूलर द्वारा शिक्षकोमे पाअी जानेवाली अैसी वुराअीका प्रतिकार करनेका हुक्म निकाला था। सरक्यूलरका जो परिणाम हुआ होगा — अगर कोअी हुआ हो — वह अवश्य ही जानने लायक होगा।

मेरे पास अिस सम्वन्धमे भिन्न-भिन्न प्रातोमे साहित्य भी आया है, जिसमे अिस और अैसी वुराअियोकी तरफ मेरा ध्यान खीचा गया हे और कहा गया है कि यह वुराअी प्राय भारत भरके तमाम सार्वजनिक और प्रायवेट मदरसोमे फैल गअी है और वरावर वढ रही है।

यह वुराअी यद्यपि अस्वाभाविक हे तथापि अिसकी विरासत हम अनन्त कालसे भोगते आ रहे है। तमाम छुपी वुराअियोका

अिलाज ढूढ निकालना अेक कठिनतम काम है। यह और भी कठिन वन जाता है, जव अिसका असर वालकोके सरक्षको पर भी पडता है — और शिक्षक वालकोके सरक्षक हैं ही। प्रश्न होता हे कि अगर प्राणदाता ही प्राणहारक हो जाय तो फिर प्राण कैसे वचे? मेरी रायमे जो वुराअिया प्रकट हो चुकती हैं, अुनके सम्वन्धमे विभागकी ओरसे वाजाब्ता कार्रवाअी करना ही अिस वुराअीके प्रतिकारके लिअे काफी न होगा। सर्व साधारणके मतको अिस सम्वन्धमे सुगठित और सस्कृत वनाना अिसका अेकमात्र अुपाय है। लेकिन अिस देशके कअी मामलोमे प्रभावशाली लोकमत जैसी कोअी वात हे ही नही। राजनैतिक जीवनमे असहायता या वेवसीकी जिस भावनाका अेकछत्र राज्य है, अुसने देशके जीवनके सव क्षेत्रो पर अपना असर डाल रखा है। अतअेव जो वुराअिया हमारी आखोके सामने होती रहती है, अुन्हे भी हम टाल जाते हैं।

जो शिक्षा-प्रणाली साहित्यिक योग्यता पर ही अेकान्त जोर देती है, वह अिस वुराअीको रोकनेके लिअे अनुपयोगी ही नही है, वल्कि अुससे अुलटे वुराअीको अुत्तेजना ही मिलती है। जो वालक सार्वजनिक शालाओमे दाखिल होनेसे पहले निर्दोष थे, शालाके पाठ्य-क्रमके समाप्त होते होते वे ही दूषित, स्त्रैण और नामर्द वनते देखे गये हैं। विहार-समितिने 'वालकोके मन पर धार्मिक प्रतिष्ठाके सस्कार जमाने' की सिफारिश की है। लेकिन विल्लीके गलेमे घटी कौन वाधे? अकेले शिक्षक ही धर्मके प्रति आदर भावना पैदा कर सकते हैं। लेकिन वे स्वय अिससे शून्य है। अतअेव प्रश्न शिक्षकोके योग्य चुनावका प्रतीत होता है। मगर शिक्षकोके योग्य चुनावका अर्थ होता है, या तो अवसे कही अधिक वेतन या फिर शिक्षणके ध्येयका कायापलट — याने शिक्षाको पवित्र कर्तव्य मानकर शिक्षकोका अुसके प्रति जीवन अर्पण कर देना। रोमन कैथोलिकोमे यह प्रथा आज भी विद्यमान है। पहला अुपाय तो हमारे जैसे गरीव देशके लिअे स्पष्ट ही असभव है। मेरे विचारमे हमारे लिअे दूसरा मार्ग ही सुलभ है। लेकिन वह भी अुस शासन-प्रणालीके अधीन रह कर सभव नही जिसमें

हरअेक चीजकी कीमत आकी जाती हे, और जो दुनिया भरमे ज्यादा से ज्यादा होती है।

अपने बालकोकी नैतिक सुधारणाके प्रति माता-पिताओकी लापरवाहीके कारण अिस बुराअीको रोकना और भी कठिन हो जाता है। वे तो बच्चोको स्कूल भेजकर अपने कर्तव्यकी अितिश्री मान लेते हैं। अिस तरह हमारे सामनेका काम बहुत ही विषादपूर्ण हे। लेकिन यह सोचकर आशा भी होती है कि तमाम बुराअियोका अेक रामबाण अुपाय है, और वह है——आत्मशुद्धि। बुराअीकी प्रचण्डतासे घबरा जानेके बदले हममे से हरअेकको पूरे पूरे प्रयत्नपूर्वक अपने आसपासके वातावरणका सूक्ष्म निरीक्षण करते रहना चाहिये और अपने-आपको अैसे निरीक्षणका प्रथम और मुख्य केन्द्र बनाना चाहिये। हमे यह कहकर सतोष नही कर लेना चाहिये कि हममे दूसरोकी-सी बुराअी नही है। अस्वाभाविक दुराचार कोअी स्वतत्र अस्तित्वकी चीज नही है। वह तो अेक ही रोगका भयकर लक्षण है। अगर हममें-अपवित्रता भरी है, अगर हम विषयकी दृष्टिसे पतित हे, तो पहले हमे आत्म-सुधार करना चाहिये ओर फिर पडोसियोके सुधारकी आशा रखनी चाहिये। आजकल तो हम दूसरोके दोषोके निरीक्षणमे बहुत पटु हो गये हैं और अपने-आपको अत्यत निर्दोष समझते हैं। परिणाम दुराचारका प्रसार होता है। जो अिस बातके सत्यको महसूस करते हैं, वे अिससे छूटे तो अुन्हे पता चलेगा कि यद्यपि सुधार और अुन्नति कभी आसान नही होते, तथापि वे बहुत कुछ सभववीय है।

हिन्दी-नवजीवन, २७–६–'२९

४९

आत्मशुद्धिकी आवश्यकता

आन्ध्र-यात्राके दिनोमे कर्नूलमे मुझे अेक गुमनाम खत मिला था। पत्रमे यह शिकायत की गअी थी कि स्थानीय स्वागत-समितिके सदस्य मेरे स्वागत मात्रके लिअे ही खादीधारी बने थे, वैसे तो वे आम तोर पर विदेशी कपडे और विदेशी ढगकी पोशाक पहननेवाले थे। सभाओमे भी विदेशी वस्त्रका ही अच्छा-सा प्रदर्शन होता था। अतअेव मैने अिस पत्रकी बात सभामे कही और साथ ही गुमनाम पत्र लिखनेवालेको भी नाम छुपानेके कारण खरी-खोटी सुनाअी। पत्र-लेखकने मेरा भाषण सुनकर तुरन्त ही मुझे अपना नाम लिख भेजा। अुनका पत्र अुनके गौरवको बढानेवाला और दूसरी दृष्टिसे बोधप्रद भी है, अतअेव अुसे नीचे देता हू

> "गुप्त व्यवहार-मात्र पाप है। परन्तु नीचे लिखे कारणोसे मैने कल अपना नाम नही दिया था। मै सरकारी नौकर हू। आप भलीभाति जानते है कि अेक सरकारी नौकरकी हैसियतसे मै अपने देशकी स्थिति और आवश्यकताके बारेमे अपनी सच्ची राय प्रकट नही कर सकता। क्योकि यह बडेसे बडा राजद्रोह माना जाता है। फिर भी कल जो लोग आपकी सेवामे हाजिर हुअे थे, अुनमे से कअियोका बनावटीपन मै सह न सका। मुझे अुससे आघात पहुचा। शिक्षित वर्गका कर्तव्य है कि वह अशिक्षितोको समझाकर सन्मार्ग पर लावे। लेकिन अगर शिक्षित लोग यह मानते हो कि साधारण अशिक्षित जनताको ढोग और पाखड द्वारा समझाया जा सकता है, तो वे बडी भूल करते है। अगर हरअेक आदमी निश्चय कर ले कि ओर कही नही तो कमसे कम अपने-अपने घरमे तो आपकी सलाहके मुताबिक वह चलेगा, तो मुझे विश्वास है

कि थोडे ही समयमे देश स्वतत्रताके नाते अपना सिर अूचा अुठा सकनेमे समर्थ हो सकेगा। मिथ्याचारके द्वारा लोगोकी वुद्धिमे परिवर्तन नही किया जा सकता। अुलटे अपने खोखलेपनके कारण हम झूठी मिसाल पेश करते है और दुनियाकी नजरमे हसीके पात्र वनते है। अिन विचारोसे मै बेचैन था, अिसीसे आपको पत्र लिखा था। मै बहुत ही गरीब हू, फिर भी जब तक मुझे विश्वास न हो जाय कि मैने जो कुछ किया है, बुरा किया है, तब तक नाम देने या न देनेके बारेमे मै लापरवाह हू। आपको नाम बतानेसे मेरे निर्वाहका अेकमात्र आधार -- मेरी सरकारी नौकरी -- भी अगर जोखिममे पडे तो मै अुसकी परवाह न करूगा।"

अिन लेखकको और दूसरोको, जो प्रतिष्ठित समाचारपत्रोके नाम पत्र भेजते है, जानना चाहिये कि जो लेखक अपना नाम सिर्फ सपादककी जानकारीके लिअे ही लिख भेजते है, अुनके नाम प्रकट न करनेके लिअे सपादक बधा रहता है। अतअेव प्रस्तुत पत्र-लेखकको विश्वास रखना चाहिये कि अुनका नाम कभी भी प्रकट न होगा। अगर अिन पत्रलेखकको यह जानकर आश्वासन मिलता हो, तो मै कहूगा कि अुनका पत्र पढकर मैने अुनके पत्रमे से नामवाला भाग अुसी दम फाड डाला था, और अब तो अुसे याद करने पर भी याद नही आता है।

मेरे विचारमे अगर अिन सज्जनने अपना पहला पत्र भी नामसहित छपनेके लिअे भेजा होता तो अुनकी कोअी हानि न होती। पत्र अेकदम निर्दोष था और कोअी भी सरकारी नौकर विना किसी खतरे या भयकी आशकाके लिख सकता था। हम अक्सर बिला वजह डर कर सच्चा काम करनेमे भय खाते है। सच्चाअीको अमलमे लानेकी हिम्मत हममे होनी चाहिये।

मुझे पता नही, कर्नूलके नेताओके खिलाफ की गअी अिन लेखककी शिकायत सच है या नही। फिर भी यह तो मै भी जानता हू कि सार्वजनिक जीवनकी दाम्भिकताके बारेमे अिन्होने जो कुछ लिखा है,

वह बिलकुल सच है। अगर नेता लोग जैसा बोलते हैं वैसा करने भी लगे, तो सर्व-साधारणके साथ साफ साफ बात करनेमे हमे कठिनाअी न हो। अतअेव आज जरूरत तो नेता लोगोकी आत्मशुद्धिकी है। अिस आत्मशुद्धिके होने ही और बाते अपने-आप हो जायगी।

हिन्दी-नवजीवन, २७–६–'२९

५०

परदेकी कुप्रथा

कोअी बात प्राचीन है अिसलिअे वह अच्छी है, अैसा माननेमे बहुत गलतिया होती है। यदि प्राचीन सब अच्छा ही होता, तो पाप थोडा प्राचीन नही है। परन्तु कितना भी प्राचीन होते हुअे भी पाप त्याज्य ही रहेगा। अस्पृश्यता प्राचीन है परन्तु पाप है, अिसलिअे वह सर्वथा त्याज्य है। शराबखोरी, जुआ अित्यादि प्राचीन है परन्तु पाप है, अिसलिअे वे त्याज्य है। जिसकी योग्यता आज हम बुद्धिसे सिद्ध कर सकते है और जो बुद्धि ग्राह्य है, अुसे यदि बुद्धि कबूल न करे तो वह शीघ्र छोडने योग्य है। पर्दा कितना ही प्राचीन हो, आज बुद्धि अुसको कबूल नही कर सकती है। परदेसे होनेवाली हानि स्वयसिद्ध है। जैसा कि बहुतसी बातोका किया जाता है, परदेका कोअी आदर्श अर्थ करके अुसका समर्थन नही करना चाहिये। जिस हालतमे आज हम परदेको पाते है, अुसका समर्थन करना असभव है।

(सच्ची बात तो यह है कि परदा बाह्य वस्तु नही है, आतरिक है। बाह्य परदा करनेवाली कितनी ही स्त्रिया निर्लज्ज पाअी जाती है। जो बाह्य परदा नही करती, परन्तु आतरिक लज्जा जिसने कभी नही छोडी है, वह स्त्री पूजनीया है। और अैसी स्त्रिया आज जगत्में मौजूद है।)

प्राचीन ग्रथोमे अैसी भी बाते हम पाते है, जिनका पहले बाह्य अर्थ किया जाता था और अब आतरिक अर्थ किया जाता है।

असा अेक शब्द यज्ञ है। पशुहिंसा सच्चा यज्ञ नही। परन्तु पाशवी वृत्तियोको जलाना सच्चा यज्ञ है। अैसे सैकडो अुदाहरण मिल सकते है। अिसलिअे जो लोग हिन्दू जातिका सुधार और रक्षा करना चाहते है, अुनको प्राचीन दृष्टान्तोसे डरनेकी आवश्यकता नही है। प्राचीन सिद्धान्तोसे बढकर नये सिद्धान्त हमे मिलनेवाले नही है। परन्तु अुन सिद्धान्तो पर अमल करनेमे नित्य परिवर्तन होगा। परिवर्तन अुन्नतिका अेक लक्षण है। स्थिरता अवनतिका आरभकाल है। जगत् नित्य गतिमान है, स्थिरता शवमे है, वह मृत्युका लक्षण है। यहा योगीकी स्थिरताकी बात नही। योगीकी स्थिरतामे तीव्रतम गति है। अुस स्थिरतामे आत्माकी तीव्रतम जागृति है। यहा जड स्थिरताकी बात है। अुसका दूसरा नाम जडता कहा जा सकता है। जडताके वश होकर हम सब प्राचीन कुप्रथाओका समर्थन करनेको अुत्सुक हो जाते है। यह हमारी जडता हमारी अुन्नतिको रोकती है। यही जडता हमारे स्वराज्यके प्रति गमनमे रुकावट डालती है।

अब परदेसे होनेवाली हानियोको देखे

१ स्त्रियोकी शिक्षामे परदा बाधा डालता है।

२ स्त्रियोकी भीरुताको बढाता है।

३ स्त्रियोके स्वास्थ्यको बिगाडता है।

४ स्त्रियो और पुरुषोके बीचमे स्वच्छ (शुद्ध) सबधको रोकता है।

५ स्त्रियोकी नीच वृत्तिका पोषक बनता है।

६ परदा स्त्रियोको बाह्य जगत्से दूर रखता है, अिसलिअे वे अुसके योग्य अनुभवसे वचित रहती है।

७ अर्धांगना-धर्म-सहचारी धर्ममे परदा बाधा डालता है।

८ परदानशीन स्त्रिया स्वराज्यमे अपना पूरा हिस्सा हरगिज नही दे सकती है।

९ परदेसे बाल-शिक्षामे रुकावट होती है।

अिन सब हानियोको देखते हुअे विचारशील सब हिन्दुओका यह धर्म है कि वे परदेको तोड दे।

परदा तोडनेका क्या और दूसरे सुधारोका क्या, सबसे सरल अिलाज अिसका अपनेसे आरभ करना है। हमारे कार्यका अच्छा परिणाम देखकर दूसरे अपने-आप अुसका अनुकरण करेगे। अेक बातका खयाल अत्यावश्यक है। सुधारक कभी विनयका और मर्यादाका त्याग नही करेगा। परदा तोडनेमे सयम हेतु है, तो अुसका तोडना कर्तव्य है और वह टूट सकता है। परदा तोडनेमे स्वच्छद भी हेतु हो सकता है। अैसी अवस्थामें परदा टूट नही सकता है, क्योकि तब जनतामे क्रोध पैदा होगा और क्रोधके वश होकर जनता बुद्धिका त्याग करके कुप्रथाका भी समर्थन करने लगेगी। जनताका हृदय पवित्र है। अिस कारण अपवित्र हेतुका जनता कभी आदर नही करेगी।

हिन्दी-नवजीवन, २७–६–'२९

५१

अेक अभागिनी पुत्री

भारतवर्षमे जिन्हे मै जानता हू और जिन्हे नही भी जानता, अैसी बहुतसी पुत्रिया है। अुनमे से अेकने 'अभागिनी पुत्री' के अुप-नामसे पुष्करसे मुझे अेक पत्र लिखा है। अुसे मै अक्षरश नीचे देता हू

"श्रीमान् पूज्यवर धर्मपिता महात्माजी, सादर वदे।

"मै अजमेर निवासी अेक सारस्वत ब्राह्मणकी कन्या हू। मेरी आयु १८ सालकी है। पूर्ण दु खी हू। आशा है, आप मेरी करुण कथा पर ध्यान देकर मुझे अुचित सलाह देगे, ताकि मै अपना जीवन देशभक्ति, समाजसेवा और स्त्री-जातिके अुद्धारमे लगा सकू।

"मैने हिन्दीकी मिडिल पास की है। १३ सालकी आयुमे मेरे माता-पिताने बगैर मुझे पूछे मथुरा ले जाकर अेक युवकसे, जिसे मैने न देखा था, न बातचीत की थी, न कुछ हाल ही

समझ सकी थी, परदेकी ओटमे बैठाकर शादी कर दी और कुछ ही मिनटमे कह दिया कि तेरी शादी हो गअी! मै आश्चर्य-चकित रह गअी। सैंकडो दफा माता-पितासे अिसका विरोध किया कि आपने बगैर मुझे पूछे मेरी शादी क्यो की? और अुलटे दो हजार रुपये दहेजमे देकर आपने यह काम चुपकेसे क्यो किया? वह जयपुरके रहनेवाले है, अुन्हे अजमेर बारातके साथ बुलाना था, मेरे तेल चढाना वगैरा रस्मे करनी थी।

"शादीके बाद मुझे मालूम हुआ कि अुनके आगेसे अेक पत्नी और बैठी हुअी है, जो अपने पिताके घर है। अिसका कारण है सास, ससुर, पति आदिके अत्याचार, अुनके घरकी यह रीति कि पहली शादीकी पत्नी किसी रअीसके घर पहुचाअी जाय।

"तीन सालके बाद मुझे ससुरालसे लेने आये, तब मैंने जानेसे अिनकार किया। पर मेरे पिताजीको पूरा भरोसा दिया गया कि अिसके साथ कुछ भी नही होगा। बडोकी आज्ञा मान मै चली गअी। पर महात्माजी मै क्या लिखू? मुझे जयपुर ले जानेके बाद अेक बद रथमे, जिसमे हवा तक न आती थी, बैठाकर किसी रअीसके घर ले जाया गया। वहाका रगढग देख-कर मै घबडा गअी। मुझे कुछ पूछा गया। मैंने अपने कुटुम्बी भाअीका, जो वहा डॉक्टर रह चूके है, नाम लिया। अीश्वरने मुझे बचाया। बुद्धि दे दी, ताकि वे लोग घबरा गये और कहा कि अिस बाअीको यहा क्यो लाये? अिस तरह मेरी अिज्जत बची, नही, न जाने क्या क्या बीतती!

"कुछ दिन बादका वादा था कि मै पिताके घर वापिस जाअूगी। मेरे पिताजी लेने आये। मैंने अुन्हे सब हाल कहा। तबसे मै ससुराल नही गअी हू। तभीसे मै दुखी हू। मेरी माताजीको अेक अैसी बीमारी, तीन साल हुअे, हो गअी है कि बहुत अिलाज कराया पर ठीक नही होती। अब दो महीनेसे पुष्कर-तीर्थमे यही सोचकर रहते है कि अच्छी हो जाय तो ठीक

है, वर्ना तीर्थमे शरीर तो छूट जायगा। पर रगढगसे पता चलता है कि माताजी १५ या २० दिनमे ही स्वर्गवासिनी हो जायगी। डॉक्टर, वैद्य सबका यही मत है।

"मेरी समझसे मेरी शादी हुअी ही नही है। अब मैं खुद बालिग हू। जो जबरदस्ती मेरा पति बनता है, अुससे मेरी अेक मिनट नही पट सकती। माताजी और मैं चाहती हू कि दूसरी शादी हो, पर मेरे पिताजी पुरानी चालके है। यदि मेरी दूसरी शादी न की ओर जयपुर ही भेजी गअी तो मैं आत्म-हत्या जरूर करुगी। अीश्वर साक्षी है, किसी तरह बच नही सकती।

"मेरा विचार देशसेवा करनेका है। मैंने खादी पहनना शुरू कर दिया है और अब चरखा भी चलाअूगी। अभी यह विचार नही कर पाअी हू कि जीवनभर ब्रह्मचर्यमे रह सकूगी। अतअेव अेक साथी, जो देशभक्त है, अब तक ब्रह्मचारी रहे है और अिस प्रान्तमे अच्छा काम करते है, मेरी रक्षाका भार अपने अूपर लेनेको तैयार है, बशर्ते कि आप आज्ञा दे दे। पूज्य महात्माजी, मैं अनाथ हू। पूरी तरह दुःखी हू। केवल माताकी सेवाके लिअे ही जीवित रह सकी हू। अन्यथा अिस हिन्दू धर्मके अत्याचारसे आत्महत्या कर लेती। और यदि माताजीके शरीर छोडने तक कोअी रक्षक न मिला, तो मैं आत्महत्या कर लूगी।

"अब आपसे प्रार्थना है कि मुझ अभागिनी अबलाकी पुकार सुन सलाह दे, ताकि मैं दूसरी शादी अुस देशभक्त युवकके साथ कर लू, जिससे मेरा जीवन सुधरेगा। मैं जयपुर हरगिज न जाअूगी। अिस शरीरका बलिदान करुगी हिन्दू धर्मके नाम पर।

"आशा है, आप 'नवजीवन' द्वारा जवाब देगे और देश, समाज अेव मातृजातिकी अिस सेविकाकी पुकार सुन अिसे अुबार लेगे। सिवा आपके मेरा कोअी नही है। मैं सीना, कसीदा

निकालना, चित्र बनाना सब जानती हू। अभी यहा अेक अवैतनिक कन्यापाठशाला खोल रखी है, जिससे मेरा समय कट जाता है।

आपकी अभागिनी पुत्री
लक्ष्मीदेवी"

जो हाल लक्ष्मीदेवीका है, वही भारतवर्षमे बहुतसी हिन्दू कन्याओका होता है। बेचारी कन्या कुछ कुछ जानने लगती हे और खेलने या पठन-पाठनके योग्य होती ही है कि अितनेमे स्वार्थी और धर्माध माता-पिता अुसे ससार-सागरमे ढकेल देते है। जैसा विवाह लक्ष्मीदेवीका किया गया है, वह धर्म-विवाह कभी नही माना जा सकता। धर्म-विवाहमे कन्याको यह ज्ञान होना चाहिये कि विवाह कहा किया जाता है, विवाहके लिअे अुसकी समति लेनी चाहिये, विवाहसे पहले यथासभव कन्याको जिस नवयुवकके साथ अुसका अचल सबध होनेवाला है, अुसे देखनेका मौका मिलना चाहिये। लक्ष्मीदेवीके साथ अैसा कोअी भी व्यवहार नही हुआ है। दूसरे, अुसकी अुम्र अितनी छोटी थी कि वह विवाहके योग्य ही न थी। अिसलिअे अुसे अिस सबधसे अिनकार करनेका, प्रस्तुत विवाहको विवाह न समझनेका, सपूर्ण अधिकार है। अिस दु खद किस्सेमें अितना अच्छा है कि लक्ष्मी-देवीकी माता अुसका साथ दे रही है। अुन्हे मेरी ओरसे धन्यवाद। लक्ष्मीदेवीके पितासे मेरी प्रार्थना है कि वह अधर्मको धर्म मानकर अपनी पुत्रीके मार्गमे कोअी रुकावट न डाले। मुझे अुम्मीद है कि लक्ष्मीदेवीने जिस वीरता और विनयके साथ प्रकाशित करनेके अिरादेसे यह पत्र लिखा है, अुसी वीरताके साथ और दृढतापूर्वक वह अपने निश्चय पर कायम रहेगी। और जो नवयुवक अुसका पाणिग्रहण करना चाहता है, अुसके साथ पवित्र सबधमे बधेगी। मै यह भी आशा करता हू कि वह सेवाकी अपनी प्रतिज्ञा पर कायम रहेगी। जे कन्याअें, जो बुरी रुढियोको ठुकराकर नया मार्ग ग्रहण करती है और मेरी धर्म-पुत्री बनना चाहती है, अुन्हे चाहिये कि वे कभी विनय, विवेक, सत्य और सयमको न छोडे। क्योकि स्वेच्छाचारसे और विनयादिकी

मर्यादाका भग करनेसे वे दु खी होगी, मै लज्जित होअूगा और वे दूसरोके लिअे कभी मार्गदर्शक नही वन सकेगी। अैसी कन्याओमे सीताके समान मर्यादा, नम्रता, पवित्रता और द्रौपदीके समान वीरता और तेजस्विता अत्यावश्यक है। सुकन्याओको याद रखना चाहिये कि अुन्हे भारतवर्षमे स्वराज्य--रामराज्य--स्थापित करनेमे पुरुषोंके साथ साथ काम करना है और स्त्रियोकी दु खद स्थितिको सुधारना तो अुन्हीका विशेष धर्म है।

हिन्दी-नवजीवन, ४-७-'२९

५२

विदेशी खांड़ और खादी

मेरठसे अेक सज्जन लिखते है

"सेवामे निवेदन है कि मै पिछले करीव दो सालसे 'हिन्दी-नवजीवन' पढता हू और खूब विचार करता हू। यह वात वहुत अच्छी तरहसे दिलमे जगह कर चुकी है कि हमको खादी ही पहननी चाहिये। मै ३०-३२ आदमियोके कुटुम्वमें से अेक हू। यह कुटुम्व वापदादोके जमानेसे खडसालका काम करता आया है। मुझे आशा है, खडसालसे आप मेरा मतलव समझ गये होगे, काश्तकारोसे कच्ची राव खरीदकर अुसकी खाड वनाना खड-साली कहलाता है। अिसमे कोअी मशीन वगैराकी मदद नही ली जाती। लेकिन अव पिछले कअी सालोमें विदेशी खाड आ जानेसे और मशीनकी वनी खाडकी वजहसे हम लोगोको वहुत नुकसान हो रहा है। यानी अितना भी हम नही मिला पाते कि मजदूरी ही ठीक ठीक पड जाय। जव कि कपडेके वाद खाडमे देशका वहुतसा रुपया विदेशोमे चला जाता है, आप खाडके वारेमे विलकुल ही खामोश क्यो रहते है? हम लोगोकी

समझमें नही आता कि क्या करे। घरमें हम सवकी औरतें, जैसा पहलेसे रिवाज है, सूत कातती है और वह सूत मजदूरी देकर वुनवा लिया जाता है, मगर वह वहुत थोडा होता है और ज्यादातर सूत मोटा होनेकी वजहसे दरी, दोतहे लिहाफ, विछौने या ज्यादासे ज्यादा कुरते तक वनवा लेते है। फिर भी धोती व औरतोकी साडी तो मिलकी वनी हुअी ही पहनी जाती है और कुटुम्वमे जहा अेक दो आदमी विलकुल खद्दर-धारी है वहा अेक-दो शायद विलायती कपडा भी खरीद लेते होगे, हालाकि सव मिलकर अुनको वहुत मना करते है। आजकल कुटुम्वमे ताअू-चचाके काम करनेवाले आठ भाअी है, और चार-पाच जवान भतीजे भी है, जो काम करते है। अिन आठ भाअियोमे से चार अग्रेजी पढ गये थे, सो सरकारी नौकरी करते है, और करीव करीव हरअेक १५० रुपया माहवारके पाता है। अव हाल यह है कि जो खडसालका काम करते है वे काफी नुकसानमे रहते है। रातदिन मेहनत करते है, चोटीका पसीना अेडी तक वहा देते है, लेकिन साल आखिरमें मजदूरी तक भी नही निकलती, यानी पेट भर खाने व कपडेके लिअे काफी रुपया तक नही मिलता। जो भाअी नौकरी पर है वे मदद करते है, तभी कही काम चलता है। अव और कुछ नही सूझता कि क्या करे। आपसे हाथ जोडकर निवेदन करता हू कि क्या वापदादोंके रोजगार यानी खडसालको विलकुल छोड दे और सूत कातने लगें? यह हाल हमारे गावमें करीव करीव दस या वारह घरानोका है। अेक वक्त था जव कि हमारे पुरखे कहा करते थे कि खाड मेरठसे भरकर वैलगाडियोमें आगरे ले गये। दस मुकाममें वहा पहुचे और आठ मुकाममें वापस आये। अच्छा मुनाफा रहा, लेकिन अव तो सारे हिन्दुस्तानमें अेक ही भाव है और विदेशके मारे अुलटी परेशानी है। अतअेव आप हमें 'हिन्दी-नवजीवन' द्वारा सलाह दीजिये कि हम क्या करे?

“जो अंग्रेजी पढे-लिखे भाअी है, वे हम लोगोको काफी बुरी निगाहसे देखते है और कभी तो कहते है कि यह काम बिलकुल छोड दो और कुछ और करो, मगर ठीक टीक यह कोअी नही बताता कि क्या करे। जिसे अंग्रेजीकी छाप मिलती जाती है, वह नौकरी करता है। हमारे नौकर भाअियोमें कुछ अैसे भी है जो हमारी बेबसीको जानते है और मदद करते है। अिसी वजहसे कुटुम्ब अभी अेक जगह ही है। अफसोस तो यह है कि दिखावटमें कुटुम्बकी धाक लखपति जैसी है, मगर भीतर बिलकुल पोल है। औरते सब करीब करीब बिना पढी-लिखी है और खादीकी साडी अभी बहुत भारी मालूम होती है।”

मुझे दुःखपूर्वक कहना पडता है कि यदि खडसालका धधा नुकसानीमें है तो अुसे छोडना चाहिये। खाडको रोकनेका कोअी तरीका आज मेरी नजरमे नही आता है। खाड अनावश्यक वस्तु है। अुससे बहुतसी व्याधिया पैदा होती है। परन्तु अुसका मोह कैसे छूटे? आज भारतवर्ष जितनी खाड खाता है, अुतनी तैयार करनेकी शक्ति अुसमें नही है। फिर भी अेक तो घरमे बनी हुअी खाड बहुत महगी पडती है, दूसरे वह सफेद भी नही होती, अिसलिअे लोग अुसे खरीदते नही। यह अुद्योग अैसा नही है, जिसके लिअे लोगोमें सफल आन्दोलन हो सके, जैसा खादी आन्दोलन है। स्वदेशी खाडके प्रचारसे भी खटसालोको लाभ नही पहुच सकता। अिसलिअे अिस धधेमे जिसे फायदा न पहुचे वह अिसे छोड दे।

तो फिर क्या किया जाय? मेरी दृष्टिसे तो खडसालीकी जगह बुननेका काम करना अच्छा होगा। कातनेसे आजीविका पैदा नही हो सकती। बुननेसे आजीविका अवश्य मिल सकती है। और खद्दर-प्रचारके कारण बुननेका काम बढता ही रहेगा।

अब रहा प्रश्न लेखकके कुटुम्बमें खद्दर-प्रचारका। थोडे ही प्रयत्नसे कुटुम्बीजन महीन सूत कात सकते है। महीन सूत कात कर जैसे महीन कपडे पहनने हो पहने जा सकते हैं। यदि कुटुम्बका

प्रत्येक मनुष्य अेक घंटा कताअीके लिअे निकाल ले, तो साडी, धोती अित्यादि सब कपडे केवल बुनाअीके दाम देने पर बन जायगे। यदि बुनाअीका 'काम कुटुम्बमे ही प्रवेश पा जाय, तो और अधिक लाभ होगा।

हिन्दी-नवजीवन, ४–७–'२९

५३
काशीकी पंडित-सभा

जब मैं काशीजीमे था, मेरे पास काशी-पण्डित-सभाकी तरफसे तीन प्रश्न भेजे गये थे। अुन प्रश्नोंके अुत्तर देना मैंने अपना धर्म समझा था। परतु अुस समय मुझे अवकाश नही था। बादमें वे प्रश्न मेरे दफ्तरमे पडे रहे। भ्रमणमे मैं अुन्हे हाथमें न ले सका। अब जब कि दफ्तर साफ कर रहा हू, अुक्त प्रश्न मेरे सामने हैं। वे ये है

"१ श्रुतियो तथा श्रुति-समत स्मृतियोको अभ्रात प्रमाण माननेवाला अेक सनातनधर्मी धर्मशास्त्रज्ञ 'देवयात्राविवाहेषु सकटे राजविप्लवे, अुत्सवेषु च सर्वेषु स्पर्शास्पर्शौ न दुष्यत' अित्यादि अपवादोके सिवाय अछूतो (चाडालादि) के स्पर्शका सर्वदा व सर्वथा किस तरह समर्थन कर सकता है और कह सकता है कि हिन्दू धर्ममें अछूत नही है?

"२ 'तस्माच्छास्त्र प्रमाण ते कार्य्याकार्यव्यवस्थितौ' अिस गीतावाक्यको अविचल श्रद्धा-भक्तिके साथ माननेवाली सनातनधर्मी जनता ही भारतवर्षमे अधिक है, और अुसीमे आपको काम करना है, अतअेव जब तक आप अपने अछूतोद्धारवाले कार्यक्रमको शास्त्र-समत न सिद्ध कर लें, तब तक अुसका प्रचार कैसे हो सकता है?

"३ मुसलमान अुलेमाओंके हृदयमें यह भाव कूट कूटकर भरा है कि अिस्लाम धर्मके सिवा दूसरे धर्मको माननेवालोंकी हत्या करना सवाब है, वे काफिर हैं, अुनके साथ मेल तभी हो सकता है, जब वे अिस्लाम धर्म कबूल कर लें। जब तक छोटे-बड़े सभी मुसलमान अिन्हीं अुलेमाओंके अधीन हैं, तब तक हिन्दू धर्मकी रक्षा करते हुअे हिन्दू लोग मुसलमानोंसे किस प्रकार मेल कर सकते हैं?"

मेरे अुत्तरमें पण्डित महाशय पाण्डित्यकी आशा न करें। मैंने धर्मको अनुभव द्वारा जिस रूपमें जाना है, शास्त्रको अनुभवसे मैं जिस तरह समझा हू, अुन्हींके आधार पर अुत्तर देनेका मैं नम्र प्रयत्न करता हू।

केवल नाम देनेसे श्रुति-स्मृतिया धर्मवाक्य नहीं बन सकती हैं। जो कोअी भी बात सत्यादि अटल सिद्धातोंके विरुद्ध है, वह धर्म-प्रमाण नहीं हो सकती। मनुस्मृति आदि जो ग्रथ आज हमारे सामने रखे जाते हैं, वे मूलत जैसे थे वैसे आज प्रतीत नहीं होते, क्योंकि अुनमें विरोधी वचन आते हैं। अुनमें अैसे भी वचन पाये जाते हैं, जो सनातन नीति, सिद्धात और बुद्धिके विरोधी हैं। श्रुतिग्रथोंके रहस्यको देखते हुअे 'अस्पृश्यता' पाप ही प्रतीत होती है। मैंने अस्पृश्यताके विषयमें जो वाक्य कहा है, वह तो यों है 'आज हम जिसे अस्पृश्यता मानते हैं, अुसके लिअे शास्त्रमें कोअी प्रमाण नहीं है।' अिस कथनमें और पडितोंने जिस वचनका मुझमें आरोपण किया है, अुसमें बहुत अतर है।

आजके अछूतकी व्याख्याके लिअे प्रचलित स्मृति-ग्रथोंको प्रमाण माननेसे भी कोअी आधार नहीं मिलेगा। पण्डितोंने जो स्मृति-वचन अुद्धृत किया है, अुसे प्रमाण माननेसे भी हमारा तीन-चौथाअी कार्य सधेगा।' 'देवयात्रा, विवाह, सकट, राजविप्लव और अुत्सव' हमारे सामने आज भी मौजूद हैं। अिनमें किसीको अछूत न माननेकी स्मृतिकी समति होते हुअे भी पडित लोग क्यों जनताके सामने अस्पृश्यताका समर्थन करते हैं

अब दूसरे प्रश्नका अधिक अुत्तर देनेकी आवश्यकता नही है। मैंने स्पष्टतया बताया है कि मेरे कार्यक्रमके लिअे पडितोके ही वचन काफी है। परतु यहा अिस बात पर थोडा विचार करे कि शास्त्र किसे कहा जाय। मैं अूपर बता चूका हू कि सस्कृत भाषामें छपे हुअे हरअेक सस्कृत ग्रथको शास्त्र माननेसे पुण्य पाप सिद्ध हो सकेगा और पाप पुण्य बन जायगा। अिसलिअे गीताकी भाषाके अनुसार तो 'गीताके स्थितप्रज्ञ' का वचन ही शास्त्रका बुद्धिग्राह्य अर्थ हो सकता है। अिस-लिअे यदि पडित लोग जनताको सीधे रास्ते पर ले जाना चाहें, तो पाण्डित्यके साथ प्रज्ञाको भी स्थिर करे, और रागद्वेष आदिका त्याग करें। जब तक पडित लोग तपश्चर्या करके गीताके 'ब्रह्मभूत' न बनेंगे, तब तक मेरे-जैसे प्राकृत मनुष्यके पास अनुभवके सहारे सेवा करनेके सिवा और कोअी चारा नही है।

अब रहा तीसरा प्रश्न। मेरा नम्र अभिप्राय है कि तीसरा प्रश्न करके पडित महाशयोने अपना अज्ञान प्रकट किया है। न तो अिस्लामकी ही यह शिक्षा है कि अन्य धर्मवालोकी हत्या कर्तव्य है, न भारतवर्षीय अुलेमाओके हृदयोमे ही यह बात है। और न सब मुसलमान ही अैसे अुलेमाओके अधीन है। हिन्दू धर्मकी रक्षा तो हिन्दुओकी पवित्रतासे ही हो सकती है, किसी औरसे नही। आत्मा ही आत्माकी रक्षा कर सकती है। 'आप भला तो जग भला' अिस लौकिक कथनके न्यायसे सबके साथ मिलकर रहना ही हमारा कर्तव्य है। मेरा अनुभव भी मुझे यही सिखाता है।

हिन्दी-नवजीवन, ११–७–'२९

५४
विधवा और विधुर

जबसे विधवा-विवाहके बारेमे मैंने अपना अभिप्राय प्रकट किया है, तबसे कअी प्रकारके प्रश्न आते है। बहुतेरोके अुत्तर देनेकी आवश्यकता न प्रतीत होनेसे मै अुन्हे भूल जाता हू। मगर निम्न-लिखित प्रश्नावली विचारणीय है

"(१) किस अुम्र तककी विधवाओको शादी करनेकी अनुमति दी जाय?

(२) निश्चित अुम्रसे अधिक आयुकी विधवा 'विधवा-विवाह' के पास हो जाने पर अपना विवाह कर देनेको कहे और अुसके लिअे अुद्यत हो जाय तो अुसे किस प्रकार रोका जाय?

(३) 'विधवा-विवाह' के पास हो जाने पर यदि सतानवती और गतयौवना विधवाये विवाह करना चाहें, तो क्या अुन्हे अैसा करनेकी अनमति दी जाय?

(४) श्रीयुत रामानद चटर्जी, सपादक 'मॉडर्न रिव्यू' द्वारा लिखित अेक लेख लाहौरसे प्रकाशित होनेवाले अग्रेजी पत्र 'विडोज़ कॉज' मे प्रकाशित हुआ है। अुससे प्रकट होता कि ३५ वर्ष तककी अुम्रवाली विधवाये पुनर्विवाह कर सकती है। क्या यह अुचित है?

(५) पुनर्विवाहकी प्रथा प्रचलित हो जाने पर विधवाओमे फिरसे शादी कर लेनेकी अिच्छा जागृत हो जायगी और वे विधवाये भी, जो अब तक लोकप्रथाके कारण विवाहका ध्यान तक नही धरती थी, विवाह करने लगेगी।"

अिन प्रश्नोके पृथक्-पृथक् अुत्तर देनेकी आवश्यकता नही है, क्योकि अिन प्रश्नोके पीछे मेरे अभिप्रायके अर्थके बारेमें गलतफहमी

है। जो अधिकार यानी रिआयत विधुरको है, वही विधवाको होनी चाहिये। अन्यथा विधवा पर बलात्कार होता है और बलात्कार हिंसा है, जिसका परिणाम बुरा ही होता है। जो प्रश्न विधवाके लिअे किये जाते है, विधुरके लिअे अुठते ही नही है। अिसका कारण तो यही हो सकता है कि स्त्रियोके लिअे पुरुषने कानून बनाये है। यदि कानून बनानेका कार्य स्त्रियोके जिम्मे होता, तो स्त्री कभी अपने अधिकार पुरुषसे कम न रखती। जिन मुल्कोमे स्त्रियोको कानून बनानेका अधिकार है, वहा स्त्रियोने भी अपने लिअे आवश्यक कानून बना लिये है।

अतअेव अुक्त प्रश्नोका अुत्तर यह हुआ कि पिताका धर्म है कि वह निर्दोष जवान विधवाका पुनर्लग्न करे और जो विधवा पुनर्लग्न करनेकी अिच्छा करे, अुसके रास्तेमे कोअी रुकावट न डाली जाय।

यह माननेके लिअे कोअी प्रमाण नही है कि अिस प्रकारकी व्यवस्थासे सब विधवाये पुनर्लग्न कर लेगी, जिन मुल्कोमे विधवाको पुनर्लग्न करनेकी रिआयत है, वहा भी सब विधवाये शादी नही करती, न सब विधुर ही शादी करते है। जिस वैधव्यका पालन स्वेच्छासे होता है, वह हमेशा सराहनीय है। बलात् पलाया जानेवाला वैधव्य निंद्य है और वर्णसंकरता वर्धक है। मै अैसी अनेक विधवाओको जानता हू, जिनके मार्गमे कोअी रुकावट न होते हुअे भी जो पुर्न-लग्न करना नही चाहती।

हिन्दी-नवजीवन, ११–७–'२९

५५

वृद्ध-बाल-विवाह

वृद्ध-बाल-विवाहके सबधमे शोलापुरसे अेक माहेश्वरी नवयुवक लिखते है

"हमारे माहेश्वरी समाजमे विवाह-पद्धति करीब करीब नष्ट हो चुकी है। प्रतिवर्ष सैकडो कामी बूढे धनके बल पर बारह-चौदह वर्षकी अबोध कन्याओसे विवाह करके अपनी काम-तृप्ति किया करते है। अिन कामी जनोकी काम-लालसा सारे समाजको रसातलकी ओर ले जा रही हे। बाल-विवाह और बेजोड-विवाह प्रतिवर्ष अुतनी ही सख्यामे होते है, जितने कि वृद्ध-विवाह। जिस समाजकी विवाह-पद्धतिकी यह करुणाजनक दशा हो अुस समाजमे भविष्यमे नामी वीरोकी आशा करना व्यर्थ है, और यह स्पष्ट है कि अुस समाजका अस्तित्व भी खतरेमें हे। अैसे समाजको सुधारनेकी अत्यत आवश्यकता है।

"अैसे अनुचित विवाहोके अवसर पर सत्याग्रह करके अुन्हें रोकनेके लिअे हम ८–१० युवकोने 'बाल-वृद्ध-बेजोड विवाह प्रतिबधक दल' नामक सस्थाकी स्थापना करके अुसके द्वारा सगठित प्रयत्न शुरू किये है। विवाहकी हरअेक रस्म पर परिणामकारक सत्याग्रह करनेसे फलप्राप्ति होगी ही। अिस पत्रके साथ छपी हुअी पत्रिका है, जिसमे आपको पता चलेगा कि किस तरहसे हमने सत्याग्रह करना ठहराया है। माहेश्वरी समाजकी विवाह-पद्धतिसे आप परिचित होगे ही। अुसकी हरअेक रस्म पर शातिसे किस तरह सत्याग्रह किया जाना चाहिये, अिस पर और अिसीके पुष्ट्यर्थ अन्य बातो पर 'हिन्दी-नवजीवन'मे लिखनेकी कृपा करे। हमे आशा है, हमारी प्रार्थना स्वीकृत की जायगी।

"आप पुरुष और स्त्रीके किस आयुसे किस आयु तकके विवाहको सुयोग्य विवाह समझते हैं? योग्य अुम्रके विवाहोके खिलाफ होनेवाले किन विवाहोको सत्याग्रह द्वारा रोकना चाहिये, अिस बातका भी स्पष्ट खुलासा करेंगे।

"हाल ही में दो बूढे महाशयोने अपनी क्रमश ५५ और ६० वर्षकी अवस्थामे तेरह हजार और बाओीस हजार देकर १२-१२ वर्षकी कन्याओसे विवाह किया है। अिसी तरहके और भी दो विवाह अेक ही गावमें होनेवाले हैं। अिनके विरोधमे हमने पत्रिकाओ द्वारा आदोलन शुरू किया है। किंतु अब पत्रिकाओके आन्दोलनकी अपेक्षा प्रत्यक्ष कृतिके आदोलनकी विशेष आवश्यकता है। कृपया आप अिस सारे पत्रके अुत्तरमे 'हिन्दी-नवजीवन' मे अवश्य लिखे।"

अिसमे सदेह नही कि अैसे विवाहोके विरोधमे सत्याग्रह आवश्यक है। परतु सत्याग्रह कैसे हो सकता है? सत्याग्रहकी मर्यादाके बारेमे मैंने बहुत दफा लिखा हे। तथापि अिस समय कुछ लिखना आवश्यक है। सत्याग्रही सयमी होने चाहिये। समाजमे अुनकी कुछ न कुछ प्रतिष्ठा होनी चाहिये। सत्याग्रही दुराचारी पर न कभी क्रोध करे, न अुससे वैरभाव रखे। दुराचारीका कार्य चाहे जितना दुष्टतापूर्ण हो, दुराचारी व्यक्तिके प्रति सत्याग्रही कठोर शब्दका प्रयोग न करे। वह कर्म और कर्मीका भेद कभी न भूले। कर्म दुष्ट (बुरे) और अच्छे होते हैं, अुनके कारण कर्मी दुष्ट न माना जाय। सत्याग्रहीका अेक आवश्यक मन्तव्य यह है कि अिस ससारमे अैसा कोअी पतित नही है, प्रेम द्वारा जिसका सुधार न हो सकता हो। सत्याग्रही दुराचारको सदाचारसे, दुष्टताको प्रेमसे, क्रोधको अक्रोधसे, असत्यको सत्यसे, हिसाको अहिसासे दूर करना चाहता है। और कोअी तरीका अिस दुनियामें पापोको दूर करनेका नही है। अिसलिअे जो मनुष्य सत्याग्रही होनेका दावा करता है, अुसे आत्मनिरीक्षण करके देख लेना चाहिये कि क्या वह क्रोध, द्वेष आदिसे मुक्त है? जिन विकारोका वह विरोध करता है, स्वय अुन विकारोसे मुक्त तो है? आत्मशुद्धि और तपश्चर्यामें

सत्याग्रहीकी आधी विजय है। सत्याग्रहीको विश्वास रखना चाहिये कि बगैर व्याख्यानादिके ही सत्य और प्रेमका अदृष्ट और अदृश्य परिणाम दृष्ट और दृश्यसे कही ज्यादा होता है।

परतु सत्याग्रहीको कुछ बाह्य कार्य भी करने हैं। अुसका सबसे पहला काम तो यह है कि सुधारके लिअे सार्वजनिक आदोलन करके कुप्रथाके प्रति विरोधी लोकमत तैयार करे। जब किसी बुराअीका विरोधी लोकमत तैयार हो जाता है, तब धनिक भी अुसका विरोध नही कर सकते हैं। लोकमत सत्याग्रहका बलवान शस्त्र है। लोकमतके रहते हुअे भी जब कोअी मनुष्य अुसका आदर नही करता है, तब समझा जाय कि अुसके बहिष्कारका समय आ पहुचा है। बहिष्कार करनेकी दशामे भी अैसे मनुष्यका कोअी अनिष्ट तो कभी न किया जाय। बहिष्कारका दूसरा अर्थ यहा असहयोग है। जो मनुष्य समाजका विरोध करता है, अुसको समाजकी सेवाका अधिकार नही है। अिससे आगे बढनेकी मुझे आवश्यकता प्रतीत नही होती। प्रत्येक वस्तुके लिअे हमेशा कुछ न कुछ विशेष कार्य हो सकता है। विवेकशील और बुद्धिशाली सत्याग्रही अैसे कार्यका पता पा ही लेता है।

कामी पुरुषोंके कामकी तृप्तिका प्रश्न विकट है। कामको न ज्ञान होता है, न विवेक। कामी पुरुष अपने कामकी तृप्ति किसी न किसी तरह कर लेता है। अिसका अुपाय यह है कि २० वर्षके पहले और अुसकी सपूर्ण समतिके अभावमे कन्याका विवाह कभी न किया जाय। कोअी कन्या वृद्धके साथ विवाह न करेगी। अैसी हालतमें वृद्ध कामी क्या करें? समाजके पास अिसका कोअी अुत्तर नही रहता है। समाजका कर्तव्य निर्दोष बालाको बचानेका है, कामीके कामकी तृप्ति करनेका कदापि नही। वस्तुत जब समाजमे शुद्धि--पवित्रताकी मात्रा बढ जाती है, तब कामीका काम भी शात हो जाता है।

हिन्दी-नवजीवन, १८-७-'२९

५६

मेरी अपूर्णता

अेक पाठक लिखते हैं

"शहदकी गणना विकृति-जनक पदार्थों, घृत, दुग्ध, दधि, मधु, मद्य, मास आदिमे की गअी है। मधुकी अुत्पत्तिमें महती हिंसा होती है। अुसकी प्राप्तिके लिअे मधुमक्खियोके घर अुजाडने पडते हैं। अुनकी स्वाभाविक और परिश्रमसे पैदा की हुअी खुराकको छीननेका हमे कोअी हक नही। जहा तक मैं जान पाया हू, अहिंसाके खयालसे आपने गाय और बकरी तकका दूध छोड रखा है। फिर आप शहद क्योकर ग्रहण कर सकते हैं? जिस प्रकार अहिंसाकी दृष्टिसे रेशमी वस्त्र त्याज्य हैं, अुसी प्रकार मधु भी त्याज्य होना चाहिये। आशा है, आप अिन शकाओंका निवारण अवश्य करेंगे।"

अिन पाठकने जो कुछ लिखा है, अुचित ही है। मैं शहद लेता हू, क्योकि मैंने अुसका सर्वथा त्याग अब तक नही किया है। मेरी अपूर्णताको जितना मैं जानता हू, दूसरे शायद ही जान सकते है। बात यह है कि अैसी कअी वस्तुअें है, जिनका त्याग मुझे अिष्ट लगता है परतु मैं अुनका त्याग नही कर सका हू। मेरे स्वास्थ्यके लिअे शहद अच्छा माना गया है। मैं कअी खाद्य पदार्थोका त्याग कर चुका हू। अिसलिअे यह जानते हुअे भी कि शहदमें हिंसा है, मैं अुसका त्याग करनेका साहस नही कर सका हू। बुद्धिसे किसी वस्तुको त्याज्य समझना अेक बात है, हृदयसे अुसे छोडना दूसरी। अितना लिख चुकने पर मैं कह सकता हू कि शहद छोडनेका मेरा प्रयत्न चालू है। परतु शहद छोडने पर चीनी, गुड अित्यादिका छोडना भी आवश्यक हो जाता है। विकृतिकी दृष्टिसे चीनी सबसे बुरी चीज है। चीनी बनानेमें हिंसा भी काफी होती है। शहदसे मुझको

कोअी हानि नही हुअी है। डॉक्टरोका अभिप्राय है कि आरोग्यके लिअे मधु अच्छी वस्तु है। अेक वात और। मधु चुआनेकी आधुनिक पद्धतिमे मक्खीका नाश तो किया ही नही जाता है। परन्तु अिससे शहद खानेका समर्थन नही हो सकता। व्यवसाय-मात्र सदोप है, वह जितना कम किया जाय अच्छा ही है।

अव थोडा विषयातर करता हू। पाठक समझ लें कि खाद्या-खाद्यमें ही हिंसाकी परिसमाप्ति नही होती। सूक्ष्म दृष्टिमे अिन वस्तुओका खयाल रखना स्तुत्य है। परतु जो अहिंसा परम धर्म है, वह अिस अहिंसासे कही वढकर है। अहिंसा हृदयकी अुच्चतम भावना है। जव तक हमारा आपसका व्यवहार शुद्ध नही है, जव तक हम किसीको अपना दुश्मन समझते है, तव तक यह कहना चाहिये कि हमने अहिंसा-भावका स्पर्श तक नही किया है।

अेक मनुष्य खाने-पीनेमे अहिंसाका सूक्ष्म पालन करता है, परतु यदि व्यापारमे अनीतिसे काम लेता है, दगा देनेसे नही हिचकिचाता, अपने स्वार्थके लिअे दूसरोको दु ख देता है, तो निस्सदेह वह अहिंसा-धर्मका पालन नही कर रहा है। अेक दूसरा मनुष्य मासाहारी है या आहारके नियमोका सूक्ष्मतासे पालन नही करता है, परतु अुसका हृदय दूसरोको दु खी देख पिघल जाता है और अुनकी मदद करनेकी चेष्टामे वह अपने-आपको खपा देता है। कहना पडेगा कि यह परोपकार-रत साधु अहिंसा-धर्मको जानता है और अुसका भलीभाति पालन करता है।

अिस मध्यविदुको छोडकर आजकल हम धर्मको भुला रहे है। अिसलिअे मै तो यह चाहता हू कि आपसी वैरके वढनेमे जो घोर हिंसा हो रही है, हम अुसे देखे और अुसे मिटानेमें ही पुरुषार्थ समझें। अग्रेजो, मुसलमानो और विजातियोके साथ हमारा व्यवहार कैसा हो? अिस धर्मका परिशोधन अहिंसाका सच्चा क्षेत्र है।

शुद्ध आहारकी शोध-खोजका काम दैवीसपद्वाले वैद्योका है। साधारण जनता अिस चीजको समझ भी नही सकती। अिसके लिअे विज्ञानकी जानकारी आवश्यक है। शहदको मैं निर्दोप कह दू तो

क्या, और सदोष कहू तो क्या? जो मधुकी अुत्पत्तिके शास्त्रको जानता है, जिसने अुसके असरका अनुभव किया है, वह अुस सबधमे जो कहे अुसे ही हम सहज भावसे करते रहे। आरभ-मात्रमें दोष है। खाद्य पदार्थमात्र लेनेमें कुछ न कुछ हिंसा तो है ही। यह सब जान लेने पर हमारे सामने अेक ही धर्म रहता है जिसका त्याग कर सकते है अुसका त्याग करे। अकेले स्वादके लिअे कभी कुछ न खायें। अिस शरीरको ओीश्वरके रहनेका अेक मदिर मानकर हम अपनेको अिसका रक्षक समझे और अिसे यथासभव और यथाशक्ति शुद्ध रखनेकी कोशिश करें। अिसे हरगिज भोगका भाजन न समझे, हा, नित्य सयमका क्षेत्र मानकर सयम बढाते रहे। बस, अितना निश्चय करके हम खाद्याखाद्यके झगडेसे बच जाय।

हिन्दी-नवजीवन, २५–७–'२९

५७

स्वागतम्

भारत-कोकिला पश्चिममें कअी जय-विजय मिलाकर स्वदेश लौट आअी है। समय ही बतावेगा कि अुनके द्वारा अुत्पन्न प्रभाव कितना स्थायी हुआ है। खानगी जरियोंसे जो सवाद मिलते रहे है, अुन्हें कसौटी माना जाय तो कहना चाहिये कि सरोजिनी देवीने अमेरिकन प्रजाके मन पर अपने कामकी गहरी छाप डाली है। अिस विजय-यात्राको समाप्त कर अब वह अैसे समय स्वदेश वापिस आअी है जब कि देशके सामने अनेक और अुलझनभरी समस्यायें दरपेश है। अिन समस्याओंको हल करनेमें वह हाथ तो बटावेगी ही। जिस मोहिनी मत्रकी छाप वह अितनी सफलतापूर्वक अमेरिकावालो पर डाल सकी है, ओीश्वर करे अुनका वह जादू हम पर भी असर कर जाय।

हिन्दी-नवजीवन, २५–७–'२९

५८
लक्ष्मीदेवीकी कथा

लक्ष्मीदेवीका जो पत्र मैंने प्रकट किया था, अुसके सिलसिलेमें मेरे पास वहुतसे खत आये है। अुनमें अेक तो लक्ष्मीदेवीके साथ जिनका विवाह किया गया था अुन्हीका है। अुन नवयुवकका नाम श्री मदन-मोहन शर्मा है। वह कॉलेजमें पढते हैं। श्री मदनमोहन शर्मा लिखते है

"अेक 'अभागिनी पुत्री' का पत्र ४ जुलाअीके 'हिन्दी-नवजीवन' मे पढा। हाल जाना। आशा है कि आप दूसरे पक्षकी वातें भी प्रकाशित करनेकी कृपा करेंगे। अिससे मालूम होगा कि वह पत्र कितना सच्चा है।

"विदित हो कि वह लडकी सारस्वत ब्राह्मणकी कन्या नही है। अुस लडकीके पिता तथा माता गौड ब्राह्मण थे। अुसकी माता लगभग पद्रह वर्पसे, वतौर स्त्रीके, अुन सारस्वत ब्राह्मणके घरमे रह रही थी, जिनकी वह पुत्री वनती है। अुसके खास पिता अभी तक जीवित हैं, मरे नही। विवाह हुअे पूरे तीन वर्ष व्यतीत हुअे है। यदि वह लडकी अिस समय १८ वर्षकी है तो यह सभव नही हो सकता कि अुस समय वह १३ वर्षकी रही होगी। अुसका जन्म आश्विन सवत् १९६८ का है। अुसके धर्म पिता हमारे यहा कमसे कम वीस वार आये थे, और हमारे विपयमे पूरी जाच-पडताल कर ली थी। अुस समय मैं वी० अे० की पहली कक्षामें प्रविष्ट हुआ था। तव मुझसे मिलने पर अुन महाशयने मेरे विचारोकी परख की थी। मुझे लडकीका चित्र दिया गया था, लेकिन मैंने कहा था कि लडकीको विना देखे मै विवाह नही करूगा। वादमें मैं विवाहके लिअे सहमत हो गया। विवाह होना ठहर गया। ये लोग पद्रह दिन पहले मथुरा पहुचे। मैं तथा मेरे माता-पिता अिनका

तार आने पर मथुरा गये। सामाजिक सुधारके विचारसे ही अपने माता-पिताकी आज्ञाका अुल्लघन करके भी यह विवाह करनेका विचार मैंने किया था। अुसका यह प्रायश्चित्त मुझे भोगना पड रहा है। अिसका प्रमाण मेरे पास है कि विवाह धर्मशास्त्रानुसार और भलीभाति हुआ था। दो हजार रुपयेके दहेजकी बात भी बिलकुल असत्य है, अुलटे हमारे १,५०० रुपयेके गहने अुसके पास है। सास-ससुर, पति आदिके अत्याचारका जो अुल्लेख किया है, वह अक्षर अक्षर असत्य है। कोअी देश-हितैषी या शिक्षित पुरुष मेरे घरकी दशा देखकर अैसे विचार कदापि नही बना सकता। मेरे हृदयमे स्त्री-जातिके लिअे अुच्च विचार है और मै अुन्हे सदैव आदर-भावसे देखता हू। मेरे माता-पिता सदैव शाति-सेवक रहे है, और यह बात मेरे मित्रोंसे बिलकुल छिपी हुअी नही है।

"साथ ही साथ यह भी जानना आवश्यक है कि हमारा किसी रअीससे किसी प्रकारका कोअी सम्बन्ध नही है। यदि वह साहस रखती है तो प्रमाण दे। अिस तरह किसीको कलकित करना नीतिकी हत्या करना है। अुस देवीको जानना चाहिये कि कोअी झूठी बात कहना और अुसे साबित करना कितना कठिन है।

"हमारे घरसे सब लोग भलीभाति परिचित है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपने अुसे जो राय दी है, दूसरे पक्षकी कुछ बात न जानकर ही दी है। अत प्रार्थना है कि वे शब्द आप वापस लेगे। यदि वह अब भी देशसेवामे लगकर ब्रह्मचर्यसे रहे, तो मै अुसे सहर्ष आज्ञा देनेको तैयार हू। अजमेरके शिक्षित समाजसे ही पूछा जा सकता है कि अुस लडकीके विषयमे अुसकी क्या समति है।

"वह महाशय जो अपने-आपको देशभक्त बतलाते है और जिनके साथ वह लडकी विवाह करना चाहती है, बडे धोखेबाज अेव धूर्त है, अिस बातका पूरा प्रमाण मेरे पास है। मैने देशभक्तके

नाते अुन्हें कुछ गुप्त पत्र लिखे थे, परन्तु दुःख है कि अुन्होंने वे प्रकट कर दिये और जहां तक पता चला है, आपको पत्र भिजवाने अित्यादिका कार्य भी अुन्हींने करवाया है।

"शोकके साथ लिखना पडता है कि कअी लोग, जो अपने-आपको समाज-सुधारक समझते हैं और बतलाते हैं, हृदयसे वैसे नहीं होते। कोअी विरले ही होते हैं, जो अपना हृदय शुद्ध रखकर समाज-सेवा करते हैं। वे लोग, जो खुद हृदय शुद्ध नहीं रखते, दूसरे समाज-सेवको तथा देशभक्तोंको भी कलुषित करते हैं।"

जो दूसरे पत्र आये हैं, वे सब करीब करीब श्री मदनमोहन शर्माके बयानका समर्थन करनेवाले हैं। भाअी हरिभाअू अुपाध्यायने अिस बातकी जांच भी की है। अुनका भी पत्र आया है। अुन्होंने अिस विषयमें 'त्यागभूमि' में जो लेख लिखा है, अुसे भी मैं पढ चुका हूं। भाअी हरिभाअूका पत्र भी मेरे सामने पडा है। दोनोंको जो सलाह हरिभाअूजीने दी है, वह मुझे अुचित जान पडती है।

मैं नहीं जानता कि दोनों बयानोंमें किसका मानने योग्य है। यदि श्री मदनमोहनका बयान सच्चा है तो लक्ष्मीदेवीने बडी गलती की है। यदि लक्ष्मीदेवीका सच्चा है, तो मैंने जो अभिप्राय दिया है, अुस पर मैं कायम हूं। श्री मदनमोहनके दूसरे पत्र भी आये हैं। अुनमें वह प्रतिज्ञा करते हैं कि अुन्होंने जो कुछ भी लिखा है, अुसमें न तो कोअी बात छिपाअी है, न कुछ असत्य ही लिखा है। अुन्होंने मुझे अिस बातकी जांच करनेके लिअे भी लिखा है। भाअी हरिभाअू अुपाध्याय मेरे साथी हैं। अुन पर मुझे विश्वास है। अुन्होंने तो साफ लिखा है कि दोनों पक्षोंने सच्ची बात पर कुछ न कुछ परदा तो डाला ही है। अैसी हालतमें शुद्ध सत्यका पता लगना मुश्किल है। श्री मदनमोहनको मेरी सलाह है कि वह और जो कुछ कहना चाहते हों, हरिभाअूजीसे कहें और अुनके मनमें जो शंका है अुसे दूर करें।

मुझे यह भी लिखा गया है कि मैंने लक्ष्मीदेवीका खत छापकर श्री मदनमोहनके साथ अन्याय किया है और असत्यको अुत्तेजन दिया

है। मै तो समझता हू कि लक्ष्मीदेवीका खत प्रकट करके मैने सत्यकी और दोनो पक्षोकी सेवा की है। पुरुषवर्ग बहुत दफा स्त्रियोके साथ घोर अन्याय करता है। बहुतसी स्त्रियोका दु ख अुनकी जिन्दगीके साथ ही मिटता है। यदि लक्ष्मीदेवीने असत्य लिखा है तो अपनी जातिको हानि पहुचाअी है, अिसमे तनिक भी सदेह नही। परन्तु यदि अुनका खत प्रकट न करता, तो अब असत्यके प्रकट होनेका जो अवसर आया है, वह नही आ सकता था। मेरे लेखका सहारा सत्यवती लक्ष्मी-देवीको ही मिल सकता है, असत्यवतीको कभी नही। अुनके खतकी सत्यता पर ही मेरी सलाह अवलबित थी। लक्ष्मीदेवीको चाहिये कि यदि वह सत्यके रास्ते पर है, तो निर्भय होकर अपनी निर्दोषता सिद्ध करे। यदि अुन्होने असत्य लिखा है, तो अुसे स्वीकार करे और पश्चात्ताप करे। मेरे पास जो खत आये है, अुनमे तो लक्ष्मीदेवी पर बहुतसे आक्षेप किये गये है। लक्ष्मीदेवीकी रक्षा केवल अुनके सत्य, सतीत्व और दृढतामे ही हो सकती है।

हिन्दी-नवजीवन, १–८–'२९

५९

पतिधर्म

अेक मित्र लिखते है

"मेरे अेक मित्र है। वह अपनी स्त्री पर बहुधा अिसलिअे नाराज रहा करते है कि वह अच्छा और यथेच्छ भोजन बनाकर नही देती और घरमे ठीक ठीक सफाअी भी नही रख सकती। अुनका कहना है कि यदि बार-बार कहने पर भी स्त्री ये काम ठीक ठीक नही करती, तो अुसे अुनके कमाये हुअे पैसेका अुपयोग करनेका कोअी हक नही है। अुसे चाहिये कि वह खुद मेहनत करके कमाअी करे और अपना निर्वाह करे। अुनका यह भी

कहना है कि यदि वह अुनसे सबंध-विच्छेद करके दूसरा पति करना चाहे तो कर सकती है। अिस परसे दो प्रश्न अुठते हैं :

१ पतिके कमाये हुअे धन पर स्त्रीका कितना अधिकार है?

२ साधारण-सी असुविधाओंके कारण, खर्चेके भारसे मुक्त होनेके लिअे पत्नीको बिलकुल छोड देनेकी अिच्छा करना कहा तक अुचित है?

"आशा है, आप अिनका अुत्तर 'हिन्दी-नवजीवन' द्वारा देनेकी कृपा करेंगे।"

पतिवर्ग पत्नी-धर्मका अुपदेश देनेके लिअे सदा अुत्सुक रहता है, और पत्नियोंसे यहा तक कहा जाता है कि वे अपनेको पतिकी मिल्कियत समझें। पति तो मानता ही है कि अुसे पुरुषके नाते जो अधिकार अपने घरबार, जमीन-जायदाद और पशु अित्यादि पर प्राप्त हैं, ठीक वही अधिकार अुसे पत्नी पर भी प्राप्त है। अिस बातके समर्थनमें रामायण-जैसे ग्रथका भी अवलबन लिया जाता है

'ढोल, गवार, शूद्र, पशु, नारी। ये सब ताडनके अधिकारी॥'

रामायणकी अिस पक्तिका आधार लेकर समाजमें पत्नी दडनीय ठहराअी जाती है, अुसे दड दिया जाता है। मुझे विश्वास है कि यह दोहा गो॰ तुलसीदासका नही है। यदि है भी, तो कह सकते हैं कि अिन शब्दोमें तुलसीदासजीने अपना अभिप्राय नही प्रकट किया है, बल्कि अपने समयमें प्रचलित रूढिका निरूपण किया है। यह भी असभव नही कि अिस बारेमें सहज स्वभाव-वश अुन्होंने अुस समयकी प्रथाका विचार किये बिना ही अपनी समति दे दी हो। रामायण भक्ति-निरूपणका ग्रथ है। गो॰ तुलसीदासने सुधारककी दृष्टिसे रामायण नही लिखी है। यही कारण है कि अुन्होंने रामायणमें अपने जमानेकी बातोंका प्रकृत चित्र खीचा है, सहज भावसे अुनका वर्णन किया है। अिस वर्णनके सदोष होने पर भी रामायण-जैसे अद्वितीय ग्रथका महत्त्व कम नही होता। जैसे रामचरितमानसमें भूगोलकी शुद्धताकी आशा नही की जा सकती, ठीक अुसी तरह हम अपनी वर्तमान नअी

दृष्टिके प्रतिपादनकी आशा भी अुस ग्रथसे न करे। परतु यह तो विषयातर हुआ। गोस्वामी महाराजने स्त्रीके बारेमे कुछ ही क्यो न माना हो, अिसमे सदेह नही कि जो मनुष्य स्त्रीको पशुतुल्य समझता है, अुसे अपनी मिल्कियत मानता है, वह अपने अर्द्धागका विच्छेद करता है।

पतिका धर्म है कि पत्नीको अपनी सच्ची सहधर्मिणी, सहचारिणी और अर्द्धांगिनी माने, अुसके दु खसे दु खी हो और अुसके सुखसे सुखी। पत्नी पतिकी दासी कदापि नही है, न वह कभी पतिके भोगकी भाजन ही है। जो स्वतत्रता पति अपने लिअे चाहता है, ठीक वही स्वतंत्रता पत्नीको भी होनी चाहिये।

जिस सभ्यतामे स्त्री-जातिका सम्मान नही किया जाता, अुस सभ्यताका नाश निश्चित ही है। ससार न अकेले पुरुषसे चल सकता है, न अकेली स्त्रीसे, अिसके लिअे तो अेक दूसरेका सहयोग ही अुपाय है। स्त्री अगर कोप करे तो आज पुरुषवर्गका नाश कर सकती है। यही कारण है कि वह महाशक्ति मानी गअी हे।

हिन्दू सभ्यतामें तो स्त्रीका अितना सम्मान किया गया है कि प्राचीन कालमे स्त्रीका नाम प्रथम पद रखता था। अुदाहरणार्थ, हम 'सीताराम' कहते है, 'रामसीता' कदापि नही। विष्णुका 'लक्ष्मीपति' नाम प्रसिद्ध हे ही। महादेवको हम पार्वती-पतिके नामसे भी पूजते है। महाभारतकारने द्रौपदीको और आदिकवि वाल्मीकिने सीताजीको गौरवका स्थान दिया ही है। हम प्रात काल सतियोका नाम लेकर पवित्र होते है। जो सभ्यता अितनी अुच्च हे, अुसमे स्त्रियोका दर्जा पशु या मिल्कियतके समान कदापि हो नही सकता।

अब जो प्रश्न पूछे गये है अुनका अुत्तर देना महज है। मेरा दृढ विश्वास है कि पतिके कमाये हुअे धन पर स्त्रीका पूरा अधिकार है और पत्नी पतिकी मिल्कियतकी अविभाज्य भागीदार हे।

पत्नीकी रक्षा करना और अपनी हैसियतके मुताबिक अुसके भरण-पोषण और वस्त्रादिका प्रबध करना पतिका आवश्यक धर्म है।

हिन्दी-नवजीवन, ८-८-'२९

सनातन धर्मके नाम पर अधर्म

चूकि आजकल मैं 'हिन्दी-नवजीवन' में भी कुछ न कुछ लिखता हू, हिन्दी-समाचारपत्रोकी जो बाते मेरे देखने योग्य मानी जाती है, मेरे सामने रखी जाती हैं। आज मेरे सामने अेक अखबार आर्य-समाजका और दूसरा सनातनधर्मियोका रखा गया है। सनातनधर्मके अखबारमे महर्षि दयानद स्वामीकी घोर, असभ्य और अश्लील निन्दा की गअी हे। पत्रमे जिस भाषाका प्रयोग किया गया हे और जैसे आक्षेप स्वामीजी पर किये गये हैं, वे अेक धार्मिक आर अपने अुत्तर-दायित्वको समझनेवाले पत्रमे शोभा नही देते। सनातनधर्मकी रक्षा करनेवाले अिस पत्रकी कुछ प्रतिष्ठा हे या नही, मुझे पता नही। मुझे आशा है, अैसे पत्रकी कोअी प्रतिष्ठा न करता होगा।

मुझे डर है कि स्वामीजी पर किया गया हमला किसी नीच स्वार्थसे प्रेरित होकर किया गया है, ओर अिसी कारण वह अितना असभ्यतापूर्ण और असत्यमय हे। मुझे यह जानकर आश्चर्य न होगा कि ये लेख खुफिया पुलिसके किसी प्रतिनिधि द्वारा लिखे गये हैं। अितने जहरीले लेख लिखनेका और कोअी कारण दीख नही पडता।

हिन्दू महासभाको चाहिये कि वह गदे सनातनी अखबारोको रोके। आर्यसमाजियोंसे मैं प्रार्थना करता हू कि वे अैसे लेखोको पढे ही नही, और अगर पढे भी तो गुस्सा न करे। साथ ही अपने अखबारोमे अुनका जिक्र तक न करे। गदे लेखक विरोधके भूखे हैं, क्योंकि विरोध ही अुनकी खुराक है। स्वामी दयानदका चरित्र अितना बलवान था, अुनकी जनसेवा अितनी महान थी कि स्वार्थी अथवा ज्ञानहीन लेखकवर्ग अुसे तनिक भी हानि नही पहुचा सकता। यदि वे मन रखेगे तो अैसे गदे लेख अपने-आप बद हो जायगे। यदि कोअी अैसे लेखोकी टीका ही न करे, अिनका खयाल तक छोड दे, तो अिस धधेका स्वयमेव लोप हो जाय।

हिन्दी-नवजीवन, ८-८-'२९

६१

कुछ धार्मिक प्रश्न

अेक भाअी नीचे लिखे प्रश्न पूछते है

१. "धर्मका वास्तविक रूप तथा अुद्देश्य —आज धर्मके नाम पर कैसे-कैसे अनर्थ होते हैं? जरा जरासी वातोमें धर्मकी दुहाअी दी जाती है, किन्तु अैसे कितने मनुष्य हैं जो धर्मके अुद्देश्य तथा रहस्यको जानते हो? अिसका अेकमात्र कारण धार्मिक शिक्षाका अभाव है। मुझे आशा है आप अिस पर और नीचे लिखे दूसरे प्रश्नो पर 'हिन्दी-नवजीवन' द्वारा अपने विचार प्रकट करनेका कष्ट स्वीकार करेगे।

२ "मनुष्यकी आत्माको किन सावनो द्वारा शाति मिल सकती है और अुसका अिहलोक व परलोक वन सकता है?

३ "क्या आपके विचारसे अगर मनुष्य अपने पिछले दुष्कृत्योका प्रायश्चित्त कर ले, तो अुनका फल नष्ट हो सकता है?

४ "मनुष्यके जीवनका अुद्देश्य और अुसके प्रमुख कर्तव्य क्या होने चाहिये?"

यह आश्चर्य और आनदकी बात है कि 'यग अिडिया', 'गुजराती नवजीवन' और 'हिंदी-नवजीवन' के पाठकोमे से हिन्दी पाठक ही धर्मके वारेमे ज्यादातर प्रश्न पूछते हैं। अिसका यह अर्थ तो हरगिज नही होता कि दूसरे प्रातके लोगोमे धर्म-जिज्ञासाका अभाव है। परतु यह ठीक है कि 'हिन्दी-नवजीवन' के पाठकोमे ही अधिकतर अैसे हैं, जिन्हे धार्मिक प्रश्नोकी चर्चासे प्रेम है, और जिसके समाधानके लिअे वे मेरी सहायताकी अपेक्षा रखते हैं। मै अपने लिअे धर्मशास्त्रके गभीर अनुभवका दावा नही कर सकता, हा, धर्म-पालनके प्रयत्नका दावा मैं अवश्य करता हू। अपने अिस प्रयत्नमे मुझे जो

अनुभव होते है, अुनसे अगर पाठकोका कुछ लाभ हो सकता है, तो अवश्य ही वे अुनका लाभ अुठा सकते हैं। अपनी अिस मर्यादाका अुल्लेख कर अब मैं अुक्त प्रश्नोके अुत्तर देनेकी चेष्टा करूगा।

१ निस्सदेह यह सच है कि आजकल देशमे धार्मिक शिक्षाका अभाव है। धर्मकी शिक्षा धर्मपालन द्वारा ही दी जा सकती है, कोरे पाडित्य द्वारा कदापि नही। अिसी कारण किसीने कहा है

'सत्सगति कथय कि न करोति पुसाम्?'

अर्थात् — सत्सग मनुष्यके लिअे क्या नही कर सकता? तुलसीदासने सत्सगकी महिमाका जो वर्णन किया है, अुसे कौन नही जानता होगा? अिसका यह अर्थ नही है कि धार्मिक पुस्तकोका पठन-पाठन अनावश्यक है। अिसकी आवश्यकता तभी होती है, जब मनुष्य सत्सग प्राप्त कर चुकता है और कुछ हद तक शुद्ध भी बन चुकता है। यदि अिससे पहले धर्म-पुस्तकोका पठन-पाठन शुरू किया जाता है, तो शातिप्रद होनेके बदले अुसका बधक बन जाना अधिक सभव है। तात्पर्य, समझदार मनुष्य दुनियाभरकी फिक्र करनेके बदले पहले स्वय धर्मपालन करना शुरू कर दे। फिर तो 'यथापिडे तथा ब्रह्माण्डे' के न्यायानुसार अेकके आरभका असर दूसरे पर अवश्य ही पडेगा। अगर सब अपनी अपनी चिता करने लगे, तो किसीको किसीकी चिता करनेकी जरूरत ही न रह जाय।

२ साधु-जीवनसे ही आत्मशातिकी प्राप्ति सभव है। यही अिह-लोक और परलोक, दोनोका साधन है। साधु-जीवनका अर्थ है सत्य और अहिंसामय जीवन, सयमपूर्ण जीवन। भोग कभी धर्म नही बन सकता। धर्मकी जड तो त्याग ही मे है।

३ पिछले दुष्कृत्योका प्रायश्चित्त शक्य है और कर्तव्य भी है। प्रायश्चित्तका अर्थ न मिन्नते है, न रोना-पीटना ही है, हा, अुसमें अुपवासादिकी गुजाअिश अवश्य है। पश्चात्ताप ही सच्चा प्रायश्चित्त है। दूसरे शब्दोमें, दुबारा दुष्कर्म न करनेका निश्चय ही शुद्ध प्रायश्चित्त है। दुष्कर्मोके फलोका कुछ न कुछ नाश तो अवश्य होता है। जब तक प्रायश्चित्त नही किया जाता, तब तक फल चक्रवृद्धि व्याजकी

भाति वढता ही रहता है। प्रायश्चित्त कर लेनेसे सूदकी वृद्धि वद हो जाती है।

४ मनुष्य-जीवनका अुद्देश्य आत्मदर्शन है। और अुसकी सिद्धिका मुख्य अेव अेकमात्र अुपाय पारमार्थिक भावसे जीवमात्रकी सेवा करना है, अुनमे तन्मयता तथा अद्वैतके दर्शन करना है।

हिन्दी-नवजीवन, १५-८-'२९

६२

वृक्ष-पूजा

अेक भाअी लिखते है

"यहाके स्त्री-पुरुष और और पूजाओके साथ साथ वृक्ष-पूजा भी किया करते हैं। मगर जव मैंने समाज-सेवकोकी शिक्षित स्त्रियोको भी वृक्ष-पूजा करते देखा, तो हैरान हो गया। परतु अुन वहनो और कुछ मित्रोका कहना है कि यदि यह पूजा किसी प्रकारकी मान्यताके विना की जाय, तो अिसे अधविश्वास नही कह सकते। हम तो पवित्र भावसे पूजा करते हैं। अुन्होने सावित्री और सत्यवानका अुदाहरण दिया और कहा कि आज अुनकी यादगारका दिन है, अिसीलिअे हम यह पूजा करते हैं। किन्तु अुनकी यह दलील मेरे गले नही अुतरी। अत आपसे अिस विषय पर प्रकाश डालनेकी प्रार्थना करता हू।"

यह प्रश्न अच्छा है। अिसके गर्भमे मूर्ति-पूजाका प्रश्न छिपा है। मैं मूर्ति-पूजाका हामी भी हू और विरोधी भी। मूर्ति-पूजाके कारण जो वहम पैदा हो जाते हैं, अुनका खडन या विरोध करना आवश्यक है। शेष मूर्ति-पूजा तो मनुष्यमात्र किसी न किसी रूपमे करता ही है। पुस्तक-पूजा भी मूर्ति-पूजा है। मदिरो और मस्जिदोकी पूजाका भी यही अर्थ है। मगर अिनमें कोअी बुराअी नही। शरीरधारी अिसके

सिवा और कुछ कर ही नही सकता। अिसीलिअे मेरे अपने खयालसे तो वृक्ष-पूजामे कुछ भी दोष नही है। अुलटे वह बडी अर्थपूर्ण और महाकाव्यका-सा महत्त्व रखनेवाली है। वृक्ष-पूजाका अर्थ वनस्पतिमात्रकी पूजा है। वनस्पतिमे जो अद्भुत सौंदर्य भरा पडा है, अुसमे हमें औश्वरकी महिमाका कुछ कुछ ज्ञान होता है। बगैर वनस्पतिके हम अेक क्षण भी जी नही सकते। जिस मुल्कमे वृक्षादिकी कमी होती है, वहाकी वृक्ष-पूजामें तो गभीर अर्थशास्त्र निहित है।

अत मेरे विचारमें वृक्ष-पूजाका विरोध करनेकी कोअी आवश्यकता नहीं है। वृक्ष-पूजा करनेवाली स्त्री पूजा करते समय किसी तत्त्वज्ञानका अुपयोग नहीं करती। अगर अुसे पूछा जाय कि वह पूजा क्यो करती है, तो कोअी कारण न बता सकेगी। अेकमात्र श्रद्धा ही अुसकी पूजाका कारण है। अुसकी वह श्रद्धा अेक बडी और पवित्र शक्ति है। अिस शक्तिका नाश किसी हालतमे भी अिष्ट नही।

हा, निजी स्वार्थके कारण जो मन्नतें ली जाती हैं, वे अवश्य ही दोषमय हैं। मन्नत-मात्र सदोष है। वृक्षोकी मन्नत मनाना जितना सदोष है, गिर्जों और मस्जिदोकी मन्नतें भी अुतनी ही दोषपूर्ण हैं। मन्नतके साथ मूर्ति-पूजाका या वृक्ष-पूजाका कोअी भी अनिवार्य संबंध नही। जनताको मन्नतोकी जालमे से छुडाना बहुत ही जरूरी है। परन्तु यह तो विषयातर हुआ। हम लोगोमे वहम अितने जड पकड गये है कि सब कोअी अुनकी जालमे फस जाते है।

अिसका कोअी यह अर्थ न कर बैठे कि वृक्षादिकी पूजा सबके लिअे आवश्यक है। पूजा करनेके लिअे मैं वृक्षादिकी पूजाका समर्थन नही करता, बल्कि अिसलिअे कि औश्वरकी प्रत्येक कृतिके प्रति मेरे हृदयमे सहज ही आदर है।

हिन्दी-नवजीवन, १५-८-'२९

दुःखप्रद कहानी

रामगढ (जयपुर) से अेक सज्जन लिखते है

"यहाके अग्रवाल समाजमे अेक अैसी मृत्यु हो गअी है, जिससे सारे शहरमे सनसनी फैली हुअी है, यानी अेक अैसे युवकका देहात हो गया, जिसका विवाह हुअे अभी केवल दो महीने हुअे थे। बालिका न अभी अपने सुसराल गअी थी और न अभी अुसे अितना ज्ञान ही है कि वह कुछ समझ सके। वह बिलकुल निर्बोध है और केवल १२ वर्पकी है। वह यह जानती ही नही कि विवाह क्या है। अिस तरहकी बालिकाको समाजने विधवा करके बैठा दिया है। लोग कहते है अुसके भाग्यमे यही लिखा था। यह अुसके पूर्वजन्मके पापोका फल है, अुसे कौन रोके? न लडकीका पिता जीवित है, न लडकेका ही, अिस तरह लडकी अेक दृष्टिसे अनाथ है। लडकीकी बूढी माता और दादी जीवित है। समाजके भयसे भला अुसकी माता विवाहका तो विचार ही कैसे कर सकती है? अिस तरह दोनो ओर भीषण शोक छाया हुआ है, मगर अुन्हें धैर्य दिलानेका कोअी मार्ग नही सूझता।

"मारवाडी समाजमे अिस तरहकी और भी कअी बालिकाअें मिलेंगी। वे भी अिसीकी तरह समाजको श्राप दे रही है, और यदि निकट भविष्यमें समाज न चेता तो अुमका सर्वनाश अवश्य होगा। आप मारवाडी समाजको अिसके लिअे चेतावनी दें तो बहुत-कुछ असर हो सकता है। अवश्य ही बहुतसे नवयुवकोमें आपके वाक्य नवजीवनका सचार करते है। अत आप अिसके लिअे 'हिन्दी-नवजीवन' में कुछ अवश्य ही लिखें।"

अैसी दारुण कथाअे भारतवर्षमें वहुत सुन पडती हैं। और विशेपता यह हे कि अैसी घटनाअें धनिक जातियोमें ही अधिक होती हैं। क्योकि धनिकोमे वृद्ध लोगोको भी शादी करनेकी अिच्छा होती है और जो लडकी विधवा हो जाती है अुसे विधवा वनाये रखनेमें ही वे लोग वडप्पन मानते है। धर्मकी तो यहा वात ही नही है। अिसी कारण अैसी घटनाअे मारवाडी, भाटिया अित्यादि वर्गोमे अधिक होती रहती हैं। अिस व्याधिकी अेक ही औपधि है प्रत्येक जातिमे अिन वुराअियोंके खिलाफ विनयपूर्ण आदोलन शुरू किये जाय और अुनके द्वारा सारी जातिमे जागृति फैलाअी जाय। जव समाज जागृत हो जायगा, तव न कोअी वृद्ध पुरुष विवाह करनेकी धृष्टता करेगा और न कोअी वालिका विधवा मानी जायगी। साथ ही जव अेक वार लोकमत तैयार हो जायगा, तव दैवको अथवा पूर्वजन्मके पापोके फलको दोष देकर अथवा अुन्हे निमित्त वनाकर कोअी वाल-वैधव्यका समर्थन नही करेगा। जव अेक नवयुवक विधुर हो जाता है, तव अुसे पूर्वजन्मके दोपके वहाने विवाह करनेमे कोअी नही रोकता। अिसलिअे सुधारकोको मेरी सलाह हे कि वे निराश न होवें, वल्कि अपने कर्तव्य पर दृढ रहे और आत्मविश्वास रखकर आगे वढते चले जाय। हा, यह वात अवश्य ही याद रखनी चाहिये कि अकेले व्याख्यानो द्वारा यह काम नही हो सकता। सत्याग्रह तक पहुचनेकी आवश्यकता होगी। सत्याग्रहकी मर्यादा पिछले अकोमें वताअी गअी है। सत्याग्रह-रूपी सूर्यके सामने वाल-वैधव्यरूपी यह अवेरा कभी ठहर नही सकेगा। क्योकि सत्याग्रहीके शव्दकोपमे निष्फलता शव्द ही नही है।

हिन्दी-नवजीवन, २२–८–'२९

६४

मूर्ति-पूजा

अेक जिज्ञासु लिखते हैं

> १ "जिस मूर्ति-पूजाका आप समर्थन करते हैं, अुसकी विधि क्या है? क्या किसी महापुरुषकी मूर्तिका दर्शनमात्र पर्याप्त है अथवा अुसे भोग (नैवेद्य) लगाना आदि भी? जब मूर्ति भोजन नहीं कर सकती है, तो अुसके सामने भोजनादि रखना कहां तक सार्थक है?"

मेरे पास मूर्ति-पूजाकी कोअी विधि नहीं। प्रत्येक मनुष्य या समाज अपनी-अपनी विधि निश्चित कर सकता है। यही होता भी है। विधिके द्वारा हम अुस व्यक्ति या समाजकी सभ्यताका दिग्दर्शन करवाते हैं। विधिमें धर्म कम और रिवाजका प्राबल्य ज्यादा है। जैसे भक्त, वैसे भगवान है। क्योंकि यह सब कल्पना ही है। लेकिन जब तक कल्पना काम करती है, तब तक यही सच्ची-सी वस्तु प्रतीत होती है।

दूसरा प्रश्न यों है :

> २ "शरीरधारी मनुष्यमें, फिर चाहे वह महापुरुष ही क्यों न हो, कुछ न कुछ दोष तथा त्रुटियां तो रहती ही हैं। अब यदि कोअी मनुष्य अैसे पुरुषकी मूर्तिकी अुपासना करता है तो मेरे खयालमें अुसके दोष भी अुसमें आने लगेंगे, क्योंकि अुपास्यके गुण-दोष दोनों ही अुपासकमें आ जाते हैं। क्या अिस प्रकारकी अुपासना आपको अिष्ट है?"

हमारे दो अुपास्य हो सकते हैं। अेक आदर्श व्यक्ति यानी काल्पनिक और दूसरा अैतिहासिक। मुझे काल्पनिक अुपास्य ही अभीष्ट है। संपूर्णावतार श्री कृष्णचंद्र अेक काल्पनिक आदर्श अवतार हैं। अैतिहासिक श्रीकृष्ण सदोष हैं। यदि अुपास्य गुणदोषमय है तो अुपासकमें भी अुसके गुणदोष अवश्य आवेंगे।

वही फिर पूछते है

> ३ "जीवात्मा-सहित शरीरको चेतन और जीवात्मा-रहित शरीरको जड कहा जाता है। यदि यह कहे कि जड मूर्तिमे भी सर्वव्यापक चेतन तत्त्व मौजूद है तो यह समझनेवाला कि अीश्वर सर्वव्यापक है, अुसे मूर्तिमे ही महदूद क्यो समझे? चक्रवर्ती राजाको कोअी अेक छोटेसे गावका ही राजा कहे तो क्या अुसका अपमान नही होगा?"

चक्रवर्तीके शासनको हम किसी अेक गाव तक ही महदूद नही रखते। परतु जैसे वह लाखो देहातका शासक है वैसे ही अेक गावका भी सपूर्ण शासक हे। और यह बिलकुल सभव है कि अेक देहातीको किसी दूसरे देहातका खयाल तक न हो। भक्तशिरोमणि तुलसीदासके भगवान सुदर्शनचक्रधारी कृष्णचद्र नही, बल्कि धनुर्धारी सीतारमण रामचद्र थे। यही वजह हे कि वह कृष्णकी मूर्तिमे भी रामचन्द्रका ही दर्शन करते थे।

अुनका चौथा प्रश्न यो है

> ४ "आपने कअी बार लिखा हे कि अमुक कार्यकी सिद्धिके लिअे लोगोको अीश्वरकी प्रार्थना करनी चाहिये, जैसे कि हिन्दू-मुस्लिम अेकता। तो फिर जो लोग वृक्षको अीश्वरवत् समझकर पूजते है वे अपने या दूसरेके लिअे अुसकी मन्नत क्यो न माने?"

मन्नत माननेमे तटस्थता नही होती, अुसमे राग होता है, अत द्वेष भी हो सकता हे। मेरी आदर्श प्रार्थना रागरहित है, अिसलिअे वह सर्वव्यापक और अचिंत्य अीश्वर तत्त्वके प्रति की जाती है। परतु जो वृक्षमे भी भगवानकी कल्पना करते है, वे किसी स्वार्थपूर्ण प्रार्थनाके बदले हिन्दू-मुस्लिम अैक्य जैसी पारमार्थिक प्रार्थना भले ही कर सकते है।

अपने पाचवे प्रश्नमे वह पूछते है

> ५ "श्रद्धाके साथ विवेककी आवश्यकता है या नही? विवेकरहित श्रद्धाको क्या आप अधश्रद्धा, अधविश्वास नही

कहेंगे? अवश्रद्धासे ही तो ससारमे वहुतसे अनर्थ हुआ करते हैं।"

मेरी श्रद्धा तो ज्ञानमयी और विवेकपूर्ण है। जो वुद्धिका विषय है, वह श्रद्धाका विपय कदापि नही हो सकता। अिसलिअे अधश्रद्धा श्रद्धा ही नही।

अुनका छठा और अतिम प्रश्न यो है

> ६ "जिस प्रकार आप मनुष्यमात्रके लिअे सत्य और अहिंसाका अेक ही मार्ग वतलाते है, अुसी प्रकार क्या आप अुपासनाका कोअी अेक मार्ग सवके लिअे अुचित नही समझते? फिर वह अुपासना तथा प्रार्थना चाहे किसी भी भापामे क्यो न की जाय।"

सत्य और अहिंसा सर्वव्यापक सिद्धात या तत्त्व हैं। अुपासना मनुष्यकृत अेक आवश्यक प्रचण्ड साधन है। अिसलिअे वह देशकालसे परिमित है और अुसमे विविधता रहती है, रहना आवश्यक भी है। अुसका अतिम निचोड तो अेक ही है। जैसे, कहा भी है कि सव नदियोका पानी जिस तरह समुद्रमे गिरता है, अुसी तरह सव देवोको की गअी वदना — नमस्कारमात्र केशवको पहुचती है।

हिन्दी-नवजीवन, २९–८–'२९

६५

भारतकी सभ्यता

सन् १९२४ में जब मै सयुक्त प्रान्तमें भ्रमण कर रहा था, अयोध्याजीके नजदीक अेक किसानने पुकार कर मेरी गाडीमें अेक पर्चा फेका था। मैंने अुस पर्चेको अुठाया और देखा कि अुसमें अुसने तुलसीदासजीके रामचरितमानसमे से कअी अुपयोगी चौपाअियां और दोहे अुद्धृत किये है। यह देखकर मुझे हर्ष हुआ और भारतवर्षकी सभ्यताके प्रति मेरे मनमे आदर बढा। अुस पर्चेको मैंने अपने दफ्तरमें अिस अिच्छासे रख छोडा था कि किसी न किसी रोज अुसे 'नवजीवन' मे दे दूगा।

वैसे, प्रति सप्ताह मैं अुसे देखकर छोड देता था। क्योकि जब वह पर्चा मुझे मिला था, मै 'हिन्दी-नवजीवन' के लिअे कुछ नही लिखता था। गुजराती 'नवजीवन' के लिअे मैंने अुसे अुतना अुपयोगी नही समझा था, जितना 'हिन्दी-नवजीवन' के लिअे। पर्चेका अेक हिस्सा गुजराती और हिन्दीमे सन् १९२७ मे दिया गया था।

अब चूकि मैं प्रति सप्ताह कुछ न कुछ 'हिन्दी-नवजीवन' के लिअे खसूसन लिखता हू, और चूकि अनकरीब ही फिरसे मेरा यू० पी० का दौरा आरभ होता है, अुस पर्चेका दूसरा हिस्सा यहा देता हू

(वर्तमान स्थितिके सुधारोमे बाधा डालनेवालोंके लक्षण)

काहु हि सुमति कि खल सग जामी, शुभ गति पाव कि परतिय गामी।
राज कि रहे नीति बिनु जाने, अघ कि रहे हरि-चरित बखाने॥
अघ कि बिना तामस कछु आना, धर्म कि दया सरिस हरियाना।
यहा न पक्षपात कछु राखौं, वेद पुराण सत मत भाखौं॥
अरि बश दैव जियावैं जाही, मरण नीक तेहि जियब न चाही
सत्य वचन विश्वास न करही, वायस अिव सबही मन डरही।
जारत का न करै कुकर्मू।

क्रोध कि द्वैत बुद्धि विनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान।
मायावश परछन्न जड, जीव कि ओीश समान।।
ओर करे अपराध कोओी, और पावे फल भोग।
अति विचित्र भगवत गति, को जग जानै योग।।
सचिव, वैद्य, गुरु, स्वामी जो, प्रिय बोलहिं भय आश।
राज, तन, धन तीन कर, वेगहिं होओी विनाश ।।*
परद्रोही परदार रत, परधन पर अपवाद।
ते नर पामर पापमय, देह धरे मनुजाद।।
भाग छोट अभिलाख वड, करअू अेक विश्वास।
अुदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहि खल रीति।
भले भलाओी पै लहहिं, लहहि निचाओी नीच।
सत सरल चित जगत हित, जानि सुभाव सनेह।

मैंने अिसमें से स्तुतिके वचन निकाल डाले है। अिस किसान भाओीके अक्षर स्पष्ट है और जो लिखा है, सजाकर लिखा है।

सब अितिहासकारोने गवाही दी है कि जो सभ्यता भारतके किसानोमे पाओी जाती है, दुनियाके और किन्ही किसानोमें नही पाओी जाती। यह पर्चा अिस बातका अेक अुदाहरण है। भारतकी सभ्यताकी रक्षा करनेमे तुलसीदासने बहुत अधिक भाग लिया है। तुलसीदासके चेतनमय रामचरितमानसके अभावमे किसानोका जीवन जडवत् और शुष्क बन जाता। पता नही कैसा क्या हुआ, परतु यह तो निर्विवाद हे कि तुलसीदासजीकी भाषामे जो प्राणप्रद शक्ति हे वह दूसरोकी भाषामे नही पाओी जाती। रामचरितमानस विचार-रत्नोका भण्डार है। अुनकी कीमतका कुछ अन्दाजा हम अुपर्युक्त दोहे और चौपाअियोंसे लगा सकते है। मुझे दृढ विश्वास है कि किसान लेखकने अिन चौपाअियो और दोहोको ढूढनेमे कोओी खास परिश्रम नही किया है, हा, अपने कण्ठस्थ भण्डारमे से जो याद हो आये वही दे दिये है।

---

* अिसका शुद्ध पाठ यह हे
मन्त्री, गुरु अरु वैद्य जो, प्रिय बोलहिं भय आश।
राज, धर्म, तन तीन कर, वेगहिं होई विनाश।।

जब हम अेक किसानके मुखसे —

> शुभ गति पाव कि परतिय गामी ?
> राज कि रहे नीति बिनु जाने ?
> अघ कि रहे हरिचरित बखाने ?
> अघ कि बिना तामस कछु आना ?
> धर्म कि दया सरिस हरि याना ?

आदि वचनोंको सुनते हैं, तब भारतवर्षकी नीतिके संबंधमें हमें कभी निराशा हो नहीं सकती।

आजकल यह कहा जाता है कि हमारे किसान अंधकारमें पड़े हैं, हमारा देश तमस्-प्रधान है, अिसलिअे अुसे रजस्‌में प्रवेश करना होगा। पहिली बात तो यह है कि मैं अिस कथनमें विश्वास ही नहीं रखता कि तमस्, रजस् और सत्त्वके बीच अैसा कोअी यान्त्रिक भेद है, जिसके कारण हमें अेक कमरेमें से दूसरेमें क्रमशः जाना ही पड़े। मेरे विचारमें, प्रायः हरअेक मनुष्यमें तीनों गुण कुछ न कुछ अंशमें होते हैं। भेद केवल मात्राका है। मेरा अपना दृढ़ विश्वास है कि हमारा मुल्क तमस्-प्रधान नहीं, बल्कि सत्त्व-प्रधान है। और अुक्त पर्चा अिस बातका अेक यत्किंचित् प्रमाण है। अगर यह पर्चा असाधारण बात होती तो यह सत्त्व-प्रधानताका थोड़ा भी प्रमाण न हो सकता। परंतु जब हम जानते हैं कि लाखों किसानोंको तुलसीदासजीके दोहे-चौपाअी कण्ठस्थ हैं और वे अुनके अर्थको भी समझते हैं, तब हम अवश्य कह सकते हैं कि जिन लोगोंमें अैसे विचार प्रचलित हैं अुनकी सभ्यताके सत्त्व-प्रधान होनेका यह कुछ नहीं तो अेक प्राथमिक प्रमाण तो है ही।

हिन्दी-नवजीवन, ५–९–'२९

६६

परमार्थ बनाम स्वार्थ

भाओी महावीरप्रसाद पोद्दार लिखते है

"यहा अिस समय करौली (जयपुरके पास) की खादी ज्यादा आ रही है। तीन-चार मासके अदर ही वहाकी अुत्पत्ति १,५०० से ४,००० रुपये मासिककी हो गअी है। गुजाअिश ८,००० तककी बतलाअी जा रही है। पहले तीन आना या चार आना प्रति रुपया नफा लगाते थे, फिर दो आना लगाने लगे, अब अेक आना रुपया लगाते है। खादीके दामोके सबधमे आपसे कुछ निवेदन है। चरखा-सघकी कअी शाखाअे सवाया नफा तक लगाती है। पहले जब थोडा माल बनता था, तब तक तो खर्च ज्यादा लगता था, लेकिन अब जब माल अधिक बनने लगा है तब नफा घटाना चाहिये। चरखा-सघकी ओरसे शाखाओ पर जोर डालना चाहिये कि वे दाम कम रखे। कअी जगह खादीके नफेसे कअी सस्थाअे और प्रवृत्तिया चलानेकी चिता की जाती है, यह अुचित नही है। अिधर कअी माससे देखा जा रहा है कि यू० पी० की ओर कअी व्यापारियोकी खादीकी बिक्रीकी ओर रुचि हो रही है। अिसका कारण नफेकी गुजाअिश ही है। अगर अच्छी तरह जाच करते हुअे व्यापारियोको अुदारतापूर्वक प्रमाणपत्र दिये जाय तो व्यापारी कम खर्चेमे काम चला सकेगे।"

मुझे अिसमे तनिक भी सन्देह नही कि अगर खादीमे से नफा खडा करनेकी भावना रखी जाय तो खादी कभी चल ही नही सकती। चरखा-सघकी यह नीति रही है कि खादीकी अुत्पत्ति और बिक्री पर खर्चकी लागत फी सदी सवा छह रुपयेसे ज्यादा न लगाअी जाय। अगर खर्च अिससे अधिक हो तो भी खादीके खरीददारोसे वसूल न करके

अुसके लिअे अलग भिक्षा मागी जाय। तजवीज तो यह है कि अगर हो सके तो सवा छह फी सदीसे भी कम लागत लगाअी जाय। और आदर्शकी बात तो यह है कि बुनाअी तककी क्रियाओमे जो खर्च हो अुससे अधिक कुछ लेनेकी आवश्यकता ही न रहे। यदि आवश्यकता हो भी तो बिक्री पर कुछ अधिक व्यापारिक मुनाफा ले लिया जाय। जब खादी घीके समान प्रचलित हो जायगी और करोडोमे बिकने लगेगी, तब मुनाफा फी सदी तीनसे अधिक न रहेगा — न रहना चाहिये। दूसरे, यह भी तो आशा की जाती है कि करोटो किसान स्वावलवन-पद्धतिसे अपने लिअे आवश्यक खादीका सूत आप ही कातकर बुनवा लेगे और वही पहनेगे। यदि वे अधिक खादी पैदा कर सके तो खुद ही बेचेगे। भले ही, यह आदर्श-युग कभी आवे या न आवे, खादी द्वारा धन कमानेका लोभ तो त्याज्य ही है। खादी आजीविका पानेका अेक प्रचण्ड साधन अवश्य है, धनोपार्जनका कदापि नही। प्रत्येक अुद्यमी मनुष्यको आजीविका पानेका अधिकार है, मगर धनोपार्जनका अधिकार किसीको नही। सच कहे तो धनोपार्जन स्तेय है, चोरी है। जो आजीविकासे अधिक धन लेता है वह, जानमें हो या अनजानमे, दूसरोकी आजीविका छीनता है। अर्थ दो प्रकारके है परम और स्व। परम अर्थ ग्राह्य है, धर्मका अविरोधी है, स्व अर्थ त्याज्य है, धर्मका विरोधी है। खादी-शास्त्र परमार्थका शास्त्र है और अिसी कारण सच्चा अर्थशास्त्र भी है। अिसलिअे किसीको खादी पर अनावश्यक या अतिशय दाम लगाना ही नही चाहिये।

जो खादी पर दूसरी प्रवृत्तियोका बोझ डालते है, वे खादीके साथ अत्याचार करते है। आज खादी दूसरी प्रवृत्तियोसे मदद की आशा रखती है। अैसी हालतमे खादी पर दूसरी प्रवृत्तियोका बोझ डालना जूतोके लिअे भैसकी हत्या करनेके समान है।

हिन्दी-नवजीवन, १२–९–'२९

युक्तप्रान्तकी कुप्रथाअें

युक्तप्रान्तमे मेरा भ्रमण शुरू होता देख य्० पी० के अेक अनुभवी और सुशिक्षित मित्र मुझे लिखते है

"ओर और प्रातोमे, खास कर शिक्षित समाजमे, लोग तव तक व्याह नही करते, जव तक अुनको आमदनीका कोअी जरिया न मिल जाय। स्कूलमे जानेवाले विद्यार्थियोमे थोडे ही अैसे होते है, जिनका व्याह हो चुका होता है, पर यू० पी० मे प्रथा अिसके विपरीत हे। यहा शायद ही अैसा कोअी लडका मिलेगा जिसका व्याह नही हुआ हो। यही नही कि माता-पिता अज्ञानवश जल्दीमे व्याह कर देते हो, लडकोमे भी यह भाव नही हे कि जव तक वे स्वय धनोपार्जन न करने लगे तव तक अुनका व्याह नही होना चाहिये। कितने ही लडके तो यह अिच्छा प्रकट करते है कि अुनका व्याह कर दिया जाय। व्याहकी जिम्मेदारीका भान वहुत ही कम लडकोमे हे।

"विवाह आदिके सवधमे लोग प्राय अपनी शक्तिसे कही ज्यादा खर्च कर डालते है, जिसका परिणाम यह होता है कि कअी कुटुम्ब यावज्जीवन ऋणी रहते है। अिस मामलेमे शिक्षित समाजवाले खासकर दोषी है। जिनके पास पैसा हे वे अिस वातकी परवाह ही नही करते कि अुनके निर्धन भाअी किस तरह अुनकी-सी शानसे व्याह कर सकेंगे। पर देखादेखी वे भी वैसा ही करते है, और परिणाम भयकर होता है।

"यू० पी० में पर्देकी प्रथा कैसी हे, सो तो आप जानते है। जहा अकेले हिन्दुओकी वस्ती है, वहा अितना पर्दा नही किया जाता, जितना मुसलमानोकी वस्तीमें। यू० पी० में आकर वसे हुअे गुजराती नागर भी पर्दा करने लगे है।

"यू० पी० मे राज्य जमीदारोका है, खासकर अवधमे।"

अगर मौका मिला तो मैं अवश्य ही अिन प्रश्नोका अभ्यास करूँगा और अिनके बारेमे कुछ कहूँगा। जैसा कि यह सज्जन लिखते है, यदि सचमुच यू० पी० में अन्य प्रान्तोंके मुकाबले विद्यार्थी-वर्ग विवाहके मामलोमे ज्यादा विषयासक्त है, और ब्याहके अवसर पर खर्च भी ज्यादा होता है तो अवश्य ही खेदकी बात है।

परतु अिन मामलोमें किसी प्रातके साथ तुलना करनेकी आवश्यकता है ही नही। यदि कुप्रथाअे दूसरे प्रान्तोंके बराबर या अुनसे कम भी हुअी तो क्या हुआ? कुप्रथा-मात्रका नाश करना प्रत्येक विवेकशील मनुष्यका कर्तव्य है। विद्यार्थी-अवस्थामे विद्यार्थियोका विवाह-जालमें फसना सर्वथा अनुचित है, धर्मविरुद्ध है। धर्म हमें सिखाता है कि विद्यार्थी-अस्वस्थामें जो युवक ब्रह्मचर्यादिका भलीभाति पालन नही करता है, अुसे गृहस्थाश्रममे प्रवेश करनेका अधिकार ही नही रहता। अिसी तरह जो मनुष्य घर-गृहस्थी चलानेमें असमर्थ है, अुसे चाहिये कि वह गृहस्थाश्रममे प्रवेश ही न करे। गृहस्थाश्रम विषय-सेवन या भोग-विलासके ही लिअे नही है—गृहस्थ, यदि चाहे तो, मर्यादित मात्रामे, पुत्रोत्पत्तिकी अिच्छासे, स्वपत्नीके साथ विषय-सेवन कर सकता है। विषय-भोगके लिअे ही विषय-भोग करना, क्या हिन्दू धर्ममे और क्या अन्य धर्मोमें, सर्वथा त्याज्य कहा गया है।

यदि यह सच है कि यू० पी० के विद्यार्थियोमे से बहुत ज्यादा विद्यार्थी विवाहित होते हैं, तो मुझे अेक दुखद अनुभवका कारण ज्ञात हो जाता है। हिन्दी-प्रचार यू० पी० का अेक खास कर्तव्य है। जब अिन्दौरमे मैने दक्षिण-भारतमें हिन्दी-प्रचारकी बात की थी, तब मुझे आशा थी कि अिस कामके लिअे चारित्र्यवान, त्यागी, शिक्षित, राष्ट्र-भाषा विशारद और ब्रह्मचारी युवक काफी सख्यामें मिल सकेंगे। मगर पाठकोको यह जानकर दुख होगा कि यू० पी० से अिस काममें बहुत कम सहायता मिली। आज भी अैसे स्वयसेवकोंके अभावके कारण ही बगाल, सिंध, अुत्कल अित्यादि प्रातोमें राष्ट्रभाषाका प्रचार

बहुत कम हो रहा है। अिसका कारण धनका अभाव नही, बल्कि सच्चे स्वयसेवकोका अभाव ही है।

विवाहमे किये जानेवाले खर्चकी बात भी दु खप्रद है। धनिक लोग हर जगह अपनी धनराशिके अभिमानमे आकर अमर्यादित खर्च करते और गरीबोमे बुद्धिभेद अुपजाते हैं। अिस सबधमे भी विद्यार्थियोको चाहिये कि वे प्रतिज्ञाबद्ध होकर माता-पिताको ब्याहके अवसर पर अधिक खर्च हरगिज न करने दे। जिन मित्रने मुझे यह पत्र लिखा है, वह मुझसे मिल चुके हैं। अुन्होने श्री जमनालालजीके अुदाहरणकी याद दिलाते हुअे मुझे कहा है कि मैं अुस अुदाहरणको विद्यार्थियो और अुनके माता-पिताके सामने रखू। जब जमनालालजीकी पुत्री कमलाका ब्याह हुआ, तब शायद ही अुन्होने ५०० का खर्च किया हो। अुन्होने जातिभोज तो दिया ही नही। वर-वधूको आशीष देनेके लिअे कुछ मित्रोको बुला लिया था। विवाह-विधि केवल धार्मिक क्रिया तक ही परिमित रही थी। आडबरमात्रका त्याग किया गया था। वर-वधू, दोनो, सादी खादीके कपडे पहने हुअे थे। ठीक अिसी तरह हरअेक धनाढ्यका धर्म है कि वह विवाह अित्यादि अवसरो पर अपने अभिमानको रोके और समाजको हानि पहुचानेसे बाज आये।

तीसरा प्रश्न पर्देका है। पर्देकी बुराअीके बारेमें मै काफी लिख चुका हू। यह प्रथा हर तरहसे अकल्याणकारिणी है। अनुभवसे यह सिद्ध हो चुका है कि स्त्रीकी रक्षा करनेके बदले यह स्त्रीके शरीर और मनको हानि पहुचाती है।

जमीदारोके बारेमे मै क्या लिखू? जमीदार-वर्गमे से शायद ही कोअी 'हिंदी-नवजीवन' पढता हो। लेकिन चूकि मै मनुष्य-स्वभावके अुच्चगामित्वको मानता हू, मेरा विश्वास है कि जमीदार लोग जापानके समुराअी अमीरोकी तरह लोकसेवाका मत्र सीखेगे और यथासभव त्यागमय जीवन बिताकर अपना अेव भारतवर्षका कल्याण करनेमे पूरा-पूरा योग देंगे। यह तो मेरी अपनी आशा है, 'हिन्दी-नवजीवन' मे अिसका अुल्लेखमात्र करनेसे यह सफल नही हो सकती।

हिन्दी-नवजीवन, १२-९-'२९

६८

बुद्धि बनाम श्रद्धा

'मूर्ति-पूजा' शीर्षक लेखमें मैंने लिखा था कि जहा बुद्धि निरुपाय हो जाती है, वहा श्रद्धाका आरभ होता है। अर्थात् श्रद्धा बुद्धिसे परे है। अिस परसे कअी पाठकोको यह शक हुआ है कि यदि श्रद्धा बुद्धिसे परे है तो वह अधी ही होनी चाहिये। मेरा मत अिससे अुलटा है। जो श्रद्धा अधी है, वह श्रद्धा ही नही है। अगर कोअी मनुष्य श्रद्धापूर्वक यह कहे कि आकाशमे पुष्प होते है, तो अुसकी बात अुचित नही मानी जा सकती। करोडो मनुष्योका प्रत्यक्ष अनुभव अिससे अुलटा है। आकाश-कुसुमको मानना श्रद्धा नही, बल्कि घोर अज्ञान है। क्योकि आकाशमे पुष्प है या नही, यह बात बुद्धिगम्य है और बुद्धि द्वारा अिसका 'नास्तित्व' सिद्ध हो सकता है। अिसके विपरीत जब हम यो कहते है कि अीश्वर है, तब हमारे कथनके 'नास्तित्व' को कोअी सिद्ध नही कर सकता। बुद्धिवादसे अीश्वरके अस्तित्वको असिद्ध करनेका कोअी भले कितना ही प्रयत्न क्यो न करे, हरअेक मनुष्यके दिलमे अिस विषयकी शका तो फिर भी बनी ही रहेगी। अुधर, करोडोका अनुभव अीश्वरका अस्तित्व सिद्ध करता है। किसी भी मामलेमें श्रद्धाकी पुष्टिमे अनुभूत ज्ञानका होना आवश्यक है। क्योकि आखिर तो श्रद्धा अनुभव पर अवलबित है, और जिसे श्रद्धा है अुसे कभी न कभी अनुभव होगा ही। परतु श्रद्धावान कभी अनुभवकी आकाक्षा नही करता, क्योकि श्रद्धामे शकाका स्थान ही नही है। अिसका यह अर्थ नही कि श्रद्धामय मनुष्य जड-रूप है या जड बन जाता है। जिसमे शुद्ध श्रद्धा है, अुसकी बुद्धि तेजस्वी रहती है। वह स्वय अपनी बुद्धिसे जान लेता है कि जो वस्तु बुद्धिसे भी अधिक है—परे है—वह श्रद्धा है। जहा बुद्धि नही पहुचती वहा श्रद्धा पहुच जाती है। बुद्धिकी अुत्पत्तिका स्थान मस्तिष्क है, श्रद्धाका हृदय।

और यह तो जगत्का अविच्छिन्न अनुभव है कि वुद्धिवलसे हृदयवल सहस्रश अधिक है। श्रद्धासे जहाज चलते है, श्रद्धासे मनुष्य पुरुषार्थ करता है, श्रद्धासे वह पहाडो—अचलो—को चला सकता है। श्रद्धावानको कोअी परास्त नही कर सकता। वुद्धिमानको हमेशा पराजयका डर रहता है। वालक प्रह्लादमे वुद्धिकी न्यूनता हो सकती थी, मगर अुसकी श्रद्धा मेरुके समान अचल थी। श्रद्धामे विवादको स्थान ही नही। अिसलिअे अेककी श्रद्धा दूसरेके काम नही आ सकती। अेक मनुष्य श्रद्धासे दरिया पार हो जायगा, मगर दूसरा, जो अधानुकरण करेगा, अवश्य डूवेगा। अिसी कारण भगवान कृष्णने गीताके १७ वे अध्यायमे कहा हे—यो यच्छ्रद्ध स अेव स —जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही वह वनता है।

तुलसीदासजीकी श्रद्धा अलौकिक थी। अुनकी श्रद्धाने हिन्दू ससारको रामायणके समान ग्रथरत्न भेट किया है। रामायण विद्वत्तासे पूर्ण ग्रथ है, किन्तु अुसकी भक्तिके प्रभावके मुकावले अुसकी विद्वत्ताका कोअी महत्त्व नही रहता। श्रद्धा और वुद्धिके क्षेत्र भिन्न भिन्न है। श्रद्धासे अन्तर्ज्ञान, आत्मज्ञानकी वृद्धि होती हे, अिसलिअे अत शुद्धि तो होती ही हे। वुद्धिसे वाह्यज्ञानकी, सृष्टिके ज्ञानकी वृद्धि होती है, परन्तु अुसका अत शुद्धिके साथ कार्यकारण जैसा कोअी सवध नही रहता। अत्यत वुद्धिशाली लोग अत्यत चारित्र्यभ्रष्ट भी पाये जाते है। मगर श्रद्धाके साथ चारित्र्यशून्यताका होना असभव है। अिस परसे पाठक समझ सकते है कि अेक वालक श्रद्धाकी पराकाष्ठा तक पहुच सकता है और फिर भी अुसकी वुद्धि मर्यादित रह सकती है। मनुष्य यह श्रद्धा कैसे प्राप्त करे? अिसका अुत्तर गीतामें है, रामचरितमानसमें है। भक्तिसे, मत्सगसे श्रद्धा प्राप्त होती है। जिन्हे जिन्हे सत्सगका प्रसाद प्राप्त हुआ है, अुन्होने—

'सत्सगति कथय किं न करोति पुसाम्?'

वचनामृतका अनुभव अवश्य किया होगा।

हिन्दी-नवजीवन, १९-३-'२९

६९

दो प्रश्न

मै जब आगरेमे था, अेक सज्जनने यह पत्र लिखा था

"मेरे चित्तमे बार बार यह विचार अुठता है कि मै आपमे मिलू और कुछ शकाये दूर करू। परन्तु मिलना कठिन है, क्योकि लोग मिलने नही देते। अिसलिअे पत्र द्वारा नीचे लिखे प्रश्न भेजता हू। आशा है, अुत्तर पाकर शाति अथवा अशाति कुछ न कुछ तो अवश्य होगी।

१ आप अिस पृथ्वीभरकी जनताके प्रति कितना प्रेम रखते है? (क) सारे भारतवर्ष पर कितना प्रेम रखते है? और (ख) गुजरात देशके प्रति कितना प्रेम रखते है?

२ क्या आपको भारतभरमे भ्रमण करने पर भी भारतकी दशाका ज्ञान है? यदि हा तो भारतकी कैसी दशा है? (क) प्रान्त-प्रान्तकी दशाका भी बोध हो तो लिखें, किस किस प्रान्तकी कैसी क्या दशा है?"

यदि अिन महाशयको मेरे पास आनेसे किसीने रोका है तो दु ख और शर्मकी बात है। हा, यह होता था सही कि बेचारे स्वयसेवक मेरे स्वास्थ्यकी रक्षाकी फिक्रमे रहते हुअे समयका खयाल अवश्य रखते थे। अुनका प्रेम मुझे अुनसे — मिलनेवालोसे बचानेमे खर्च होता था, प्रश्नकारोका, दर्शनाभिलाषियोका प्रेम अुनसे समयकी मर्यादाका अुल्लघन करवाता था। प्रेमकी दो विरुद्ध दिशा होनेके कारण कुछ खीचतान जरूर होती थी। मिलनेवालोको कुछ कष्ट भी होता था, परन्तु शामकी प्रार्थनाके समय सब आ सकते थे। किसीको रोक-टोक न थी। और प्रार्थना खुले मैदानमे होनेके कारण सब कोअी आ जाते थे। हरअेकको अितना तो समझ लेना चाहिये कि जब अेकको अनेक मिलनेवाले रहते है तब कुछ न कुछ मर्यादा आवश्यक हो जाती है।

अब पहले प्रश्न पर आअू।

अिस पृथ्वीभरकी जनताके प्रति अेक अल्प प्राणी जितना समभावी हो सकता है, अुतना होनेकी मै कोशिश करता हू। अिसलिअे भारत-वर्ष पर और गुजरात पर अुतना ही प्रेम करनेकी चेष्टा करता हू, जितना पृथ्वीके अन्य प्रदेशो पर। लेकिन अिस समभावका अर्थ यह नही है कि मेरी सेवा सबको अेकसी मिलती है या मिल सकती है। मेरी आत्मा काल, स्थल और प्रसगके बन्धनसे मुक्त होनेके कारण अुसका प्रेम तो सबके प्रति समान मात्रामे बट जाता है। परन्तु चूकि शरीर बहुत ही मर्यादित है, शरीर और शरीरस्थ अिन्द्रियोसे जो सेवा होती है वह भी मर्यादित है। अिसमे मेरी भावनाका कोअी दोष नही है। यह दोष विधिका है। शायद, अिस दोषके कारण भारतवर्षको अैसा अनुभव होता होगा कि मै विशेषतया अुसीका हू और गुजरातको अिससे भी अधिक। गुजरातमे, अुद्योग-मदिरवासियोको और भी अधिक। वस्तुत अुद्योग-मदिरके मार्फत मेरी सेवा सारे जगत्को मिलती है। क्योकि अुद्योग-मदिरकी मेरी सेवा न गुजरातकी, न भारतवर्षकी और न जगत्की सेवाकी ही विरोधिनी है। और अिसीको मै स्वच्छ स्वदेशाभिमान मानता हू, तथा अिसीमे मेरी कर्तव्यपरायणता रही है। अैसे ही अनुभव परसे 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' महावाक्यकी घोषणा हुअी है।

अब दूसरा प्रश्न।

मेरी नम्र सम्मतिमे भारतवर्षकी दशाका मुझे ठीक ज्ञान हुआ है। अिसका कारण मेरा भ्रमण नही, परन्तु सच्ची दशा जाननेकी मेरी तीव्र अिच्छा है। पश्चिमसे बहुतेरे मुसाफिर कुतूहलवश यहा चले आते है। वे मुझसे भी ज्यादा भ्रमण करे तो भी भारतकी दशा नही जान सकते, क्योकि अुनमे वह जिज्ञासा नही होती। मेरा भ्रमण देशकी दशा जाननेमे कारणभूत तो था, परन्तु अुसकी जड अिच्छामें छिपी हुअी थी। प्रान्त प्रान्तकी दशामे कोअी भारी भेद नही है, न हो सकता है। मात्रामें कुछ न्यूनाधिकता रहनेका सभव है। भारत-वर्ष पराधीन है और कगाल है। यह अुसका महारोग है। अिसका

अुपचार हुआ तो सबका हुआ। यदि अिसका न हुआ तो और किसी चीजका नहीं हो सकता। अितनी सीधी-सादी, सरल बात जो समझेगा अुसे भारतवर्षके दुःखोंके निवारणके लिअे जो अिलाज मैंने बताये हैं अुन्हें समझनेमें कोअी कष्ट नहीं हो सकता।

हिन्दी-नवजीवन, २६-९-'२१

७०

संयुक्तप्रान्तका धर्म

महासभाकी बागडोर अिस वर्ष संयुक्तप्रान्तके अेक महान पुरुषके हाथोंमें है। आगामी वर्षके लिअे भी अुन्हींके नवयुवक सुपुत्रके हाथोंमें रहेगी। अिसलिअे भारतवर्षके प्रति संयुक्तप्रान्तका कर्तव्य बहुत ज्यादा बढ गया है। मुझे याद नहीं पडता कि कभी किसी प्रान्तके दो नेता अुत्तरोत्तर अेकके बाद अेक सभापति हुअे हों। पिताके बाद पुत्रके गद्दीनशीन होनेका तो यह पहला ही दृष्टान्त है। जिस प्रान्तमें पिताके रहते हुअे पुत्र अितना योग्य माना जाता हो कि पिताके बाद दूसरे ही वर्षमें वह अेक महान राष्ट्रका नेता बने, अुस प्रान्तके लिअे अवश्य ही यह गौरवकी बात है।

दूसरे, संयुक्तप्रान्त हिन्दुस्तानके मध्यभागमें बसा हुआ है। संयुक्त-प्रान्तमें भारतकी स्वतंत्रताका अेक युद्ध हो चुका है। युक्तप्रान्त ही पूज्य मालवीयजीका सेवा-क्षेत्र है। युक्तप्रान्त ही में हिन्दुओंके सर्वोत्तम तीर्थस्थान हैं। और संयुक्तप्रान्तमें मुसलमानी बादशाहतके स्मारकरूप अनेक स्तम्भ-स्मृतिचिह्न भी हैं। अिस या अैसे संयुक्तप्रान्तके लोग अगर जीतोड मेहनत करें, पूरा-पूरा प्रयत्न करें, तो अगले साल भारतवर्षकी अभिलाषाके परिपूर्ण होनेमें कुछ भी कष्ट न हो।

संयुक्तप्रान्त बडे-बडे जमींदारों और तालुकेदारोंका केन्द्र है। साथ ही वहां निर्धनता भी है। संभव है, संयुक्तप्रान्तकी गरीबी अुत्कलकी गरीबीसे बहुत कम न हो। कअी स्थानोंमें तीन-तीन साल हुअे बराबर

दुर्भिक्ष चला आ रहा है। लोगोंके पास न काम है, न धन है। भूखो मरते है। अुनके लिअे तो वही स्वराज्य हो सकता है, जिसमे अुन्हे स्थाअी काम मिले और वे भूखो मरनेमे बचे। अगर सयुक्तप्रान्तके नौजवान चाहे तो वे गावोमे प्रवेश करके चरखा-प्रचार द्वारा जनताको काम और दाम, दोनो दे सकते हैं। साथ ही विदेशी वस्त्र-बहिष्कारका काम भी कर सकते हैं। चरखेका जिक्र मैंने अेक मिसालके तौर पर किया हे। मैं तो यही चाहता हू कि किसी न किसी तरह हम अपने अिन करोडो भाअी-बहनोकी बेकारी और अुनके भुक्खडपनका नाश करे और अुनकी सेवामे परायण हो जाय। जब तक हम दूरसे ही अुनका खयाल रखेंगे, परन्तु अुनके पास जाकर अुनके कष्टोको जानने और अुन्हे मिटानेकी कोशिश नही करेगे, तब तक हमे समझ रखना चाहिये कि हमने कुछ नही किया है। और अुस दशामे स्वराज्य हमारे लिअे आकाश-पुष्पवत् अेक काल्पनिक वस्तुमात्र बना रहेगा।

हिन्दी-नवजीवन, ३-१०-'२९

७१

तुलसीदासजी

भिन्न-भिन्न मित्र पूछते हे .

"रामायणको आप सर्वोत्तम ग्रथ मानते है, परन्तु समझमें नही आता क्यो? देखिये, तुलसीदासजीने स्त्री-जातिकी कितनी निन्दा की है। बालि-वधका कैसा समर्थन किया है। विभीषणके देशद्रोहकी किस कदर प्रशसा की है। सीताजी पर घोर अन्याय करनेवाले रामको अवतार बताया है। अैसे ग्रन्थमे आप कौनसा सौन्दर्य देख पाते हैं? तुलसीदासजीके काव्य-चातुर्यके लिअे तो शायद आप रामायणको सर्वोत्तम ग्रथ नही समझते होंगे? यदि अैसा ही है तो कहना पडेगा कि आपको काव्य-परीक्षाका कोअी अधिकार ही नही।"

अपरोक्त सब सवाल अेक ही मित्रके नही है, परन्तु भिन्न भिन्न मित्रोने भिन्न भिन्न समय पर जो कुछ कहा है और लिखा है, अुसका यह सार है। यदि अैसी अेक अेक टीकाको लेकर देखे तो सारीकी सारी रामायण दोषमय सिद्ध की जा सकती है। सतोष यही है कि अिस तरह प्रत्येक ग्रथ और प्रत्येक मनुष्य दोषमय सिद्ध किया जा सकता है। अेक चित्रकारने अपने टीकाकारोको अुत्तर देनेके लिअे अपने चित्रको प्रदर्शनीमे रखा और नीचे अिस तरह लिखा — 'अिस चित्रमे जिसको जिस जगह दोष प्रतीत हो, वह अुस जगह अपनी कलमसे चिह्न कर दे।' परिणाम यह हुआ कि चित्रके अग-प्रत्यग दोषपूर्ण बताये गये। मगर वस्तुस्थिति यह थी कि वह चित्र अत्यत कलायुक्त था। टीका-कारोने तो वेद, बाअिबल और कुरानमे भी बहुतेरे दोष बताये है, परन्तु अुन ग्रथोके भक्त अुनमे दोषोका अनुभव नही करते। प्रत्येक ग्रथकी परीक्षा पूरे ग्रथके रहस्यको देखकर ही की जानी चाहिये। यह बाह्य परीक्षा है। अधिकाश पाठको पर ग्रथ-विशेषका क्या असर हुआ है, यह देखकर ही ग्रथकी आन्तरिक परीक्षा की जाती है। किसी भी साधनसे क्यो न देखा जाय रामायणकी श्रेष्ठता ही सिद्ध होती है। ग्रथको सर्वोत्तम कहनेका यह अर्थ कदापि नही कि अुसमें अेक भी दोष नही है। परन्तु रामचरितमानसके लिअे यह दावा अवश्य है कि अुससे लाखो मनुष्योको शाति मिली है। जो लोग अीश्वर-विमुख थे वे अीश्वरके सम्मुख गये है और आज भी जा रहे है। मानसका प्रत्येक पृष्ठ भक्तिसे भरपूर है। मानस अनुभव-जन्य ज्ञानका भण्डार है।

यह बात ठीक है कि पापी अपने पापका समर्थन करनेके लिअे रामचरितमानसका सहारा लेते है। अिससे यह सिद्ध नही हो सकता कि वे लोग रामचरितमानसमें से अकेले पापका ही पाठ सीखते है। मैं स्वीकार करता हू कि तुलसीदासजीने स्त्रियो पर अनिच्छासे अन्याय किया है। अिसमें और अैसी ही अन्य बातोमें तुलसीदासजी अपने युगकी प्रचलित मान्यताओसे परे नही जा सके थे। अर्थात् तुलसीदासजी सुधारक नही, बल्कि भक्त-शिरोमणि थे। अिसमे हम तुलसीदासजीके दोषोका नही परन्तु अुनके युगके दोषोका दर्शन अवश्य करते है।

अैसी दशामे सुधारक क्या करे? क्या अुनको तुलसीदासजीसे कोअी सहायता नही मिल सकती? अवश्य मिल सकती है। रामचरित-मानसमे स्त्री-जातिकी काफी निन्दा मिलती है, परन्तु अुसी ग्रथ द्वारा सीताजीके पुनीत चरित्रका भी हमे परिचय मिलता है। विना सीताके राम कैसे? रामका यश सीताजी पर निर्भर है। सीताजीका रामजी पर नही। कौशल्या, सुमित्रा आदि भी मानसके पूजनीय पात्र है। शवरी और अहल्याकी भक्ति आज भी सराहनीय है। रावण राक्षस था, मगर मदोदरी सती थी। अैसे अनेक दृष्टान्त अिस पवित्र भडारमे से मिल सकते है। मेरे विचारमे अिन सव दृष्टान्तोमे यही सिद्ध होता है कि तुलसीदासजी ज्ञानपूर्वक स्त्री-जातिके निन्दक नही थे। ज्ञानपूर्वक तो वह स्त्री-जातिके पुजारी ही थे। यह तो स्त्रियोकी वात हुअी। परन्तु वालि-वधादिके वारेमे भी दो मतोकी गुजाअिश है। विभीषणमे तो मै कोअी दोष नही पाता हू। विभीषणने अपने भाअीके साथ सत्याग्रह किया था। विभीषणका दृष्टान्त हमे यह सिखाता है कि अपने देश या अपने शासकके दोषोके प्रति सहानुभूति रखना या अुन्हे छिपाना देशभक्तिके नामको लजाना है, अिसके विपरीत देशके दोषोका विरोध करना सच्ची देशभक्ति है। विभीषणने रामजीकी सहायता करके देशका भला ही किया था। सीताजीके प्रति रामचद्रके वर्तावमे निर्दयता नही थी, अुसमे राजधर्म और पति-प्रेमका द्वद्व युद्ध था।

जिसके दिलमे अिस सम्बन्धकी शकाअे शुद्ध भावसे अुठे, अुन्हे मेरी सलाह है कि वे मेरे या किसी औरके अर्थको यत्रवत् स्वीकार न करे। जिस विषयमें हृदय शकित है, अुसे छोड दे। सत्य, अहिंसादिकी विरोधिनी किसी वस्तुको स्वीकार न करे। रामचद्रने छल किया था, अिसलिअे हम भी छल करे, यह सोचना औंधा पाठ पढना है। यह विश्वास रखकर कि रामादि कभी छल नही कर सकते, हम पूर्ण पुरुषका ही ध्यान करे और पूर्ण ग्रन्थका ही पठन-पाठन करे। परन्तु 'सर्वारभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता' न्यायानुसार सव ग्रथ दोषपूर्ण है, यह समझकर हसवत् दोषरूपी नीरको निकाल फेंके और गुणरूपी क्षीर ही ग्रहण करे। अिस तरह अपूर्णमे सपूर्णकी

प्रतिष्ठा करना, गुणदोपका पृथक्करण करना, हमेशा व्यक्तियो और युगोकी परिस्थिति पर निर्भर रहेगा। स्वतत्र सपूर्णता केवल अीश्वरमें ही है और वह अकथनीय है।

हिन्दी-नवजीवन, १०–१०–'२९

७२

स्वयंसेवकका कर्तव्य

सयुक्तप्रान्तके दौरेमें स्वयसेवकोसे परिचय हो रहा है, जिससे मै देखता हू कि अुनको तालीमकी वडी आवश्यकता है। स्वयसेवकोकी भावना शुद्ध है, अुनके प्रेममे कोअी न्यूनता नही, परन्तु भावना और प्रेममे से जो शक्ति पैदा होनी चाहिये वह शिक्षाके अभावसे हो नही रही। स्वयसेवकोमें प्रवन्ध-शक्ति वहुत कम है। अिस कारण अक्सर अुनसे सहायता मिलनेके वदले नअी मुसीवते खडी हो जाती है। अतअेव अुनके लिअे तालीमकी वडी आवश्यकता है। दिलसे भले वे स्वयसेवक वन जाते हो, मगर अिस तरह कोअी काम पूरा नही होता। जो आसानसे आसान काम माने जाते है अुनके लिअे भी कुछ न कुछ तालीमकी तो आवश्यकता मानी ही गअी है। भगीका काम भी वगैर तालीमके नही हो सकता। फिर भला स्वयसेवकका काम वगैर तालीमके कैसे सफल हो सकता है?

स्वयसेवक राष्ट्रका सिपाही है। अुसके द्वारा हम अतमे स्वराज्य पानेकी आशा रखते है। राष्ट्रीय दलके अैसे लोगोमें वडी योग्यता होनी चाहिये। स्वयसेवकमे

१ वडी-वडी सभाओमे शाति रखनेकी शक्ति होनी चाहिये।

२ राष्ट्रभाषाका ज्ञान होना चाहिये।

३ अिशारेसे अपने विचार दूसरे स्वयसेवकको समझानेकी शक्ति होनी चाहिये।

४ कोलाहलको बन्द करनेकी शक्ति होनी चाहिये।

५ लोगोंके समुदायमें रास्ता बनानेकी शक्ति होनी चाहिये।

६ अेक साथ तालबद्ध कूच करनेकी शक्ति होनी चाहिये।

७ किसीको चोट लगने पर अुसके तात्कालिक अुपचारका ज्ञान होना चाहिये।

८ लोगोंकी गालिया, अुनके कटुवचन, प्रहार, ताने-तिशने वगैरा सहनेकी शक्ति होनी चाहिये।

९ सरकारी दंड, जैसे कि जेल अित्यादिको सह लेनेकी शक्ति होनी चाहिये।

१० धीरज, सत्य, दृढता, वीरता, अहिंसादि गुण होने चाहिये।

अिनके अलावा मेरी दृष्टिमें स्वयंसेवक निरन्तर खद्दरपोश होने चाहिये, अुन्हे नियमपूर्वक यज्ञार्थ सूत भी कातना चाहिये।

अिस तरह तालीमके लिअे प्रत्येक प्रान्तमें स्वयंसेवक शिक्षागृह होने चाहिये और अिसके लिअे हमारे देशके अनुकूल पाठ्य-पुस्तकें भी होनी चाहिये।

हिंसक सिपाहीमें जिस शक्तिकी आवश्यकता है, अुसमें से हिंसाके भागको छोडकर शेष सब शक्ति अेक अहिंसक सिपाहीके लिअे भी आवश्यक है। परन्तु अहिंसक सिपाहीमें हिंसक सिपाहीकी अपेक्षा दूसरे बहुतेरे गुणोंकी भी आवश्यकता रहती है। पाठक अुन्हें जानते होंगे।

हिन्दी-नवजीवन, १०–१०–'२९

७३

स्वयसेवक या सरदार?

स्वयसेवकके वारेमें गताकमे जो कुछ लिखा है, अुमे थोडा और दोहरानेकी आवश्यकता है। अपने हर जगहके भ्रमणमे मैंने देखा है कि वहुतेरे स्वयसेवकोको अिस वातका खयाल नही रहता कि आया वे स्वयसेवक है या सरदार। अुदाहरणार्थ, अगर जलसोमे किसीसे कुछ कहना है, तो वे हुक्मके तौर पर कहते है, प्रार्थना नही करते। जव मुझे मच तक ले जाते है, तो रास्तेमे खडे हुअे देहातियोसे विनयपूर्वक और धीरेसे अलग हटनेको न कहकर अुलटे अुन्हे धकेलते या कठोर भाषा अथवा स्वरमे अुन्हे हट जानेका हुक्म छोडते है। स्टेशन पर जहा-जहा मै अुतरता हू, भीड तो होती ही है। स्वयसेवक विनयपूर्वक मार्ग करवानेके वदले जोरोंसे चीखते है, अिससे लोग न तो समझते है, न सुनते है, अुलटे कोलाहलमे वृद्धि होनेसे कुप्रवधकी मात्रा वढती है। मेरे कष्टका तो कहना ही क्या है? यद्यपि अिन तमाम हुक्मोंकी मशा तो मुझे कष्टमे वचाना ही है। जव सारा जुलूस प्लेटफार्मसे वाहर निकलता है, तव मुसाफिरोका खयाल तक नही रखा जाता, लोग अुनके असवावको कुचलते हुअे चलते है, अुसे पैरोसे ठेलते जाते है। अगर कोअी मुसाफिर रास्तेमे वैठा हो तो अुसका भी विचार नही करते। मान लीजिये कि हम आम सडकसे होकर कही जा रहे है, और कोअी देहाती वीचमे चल रहा है। स्वयसेवक अुसे दुतकार कर हटा देना ही अपना कर्तव्य समझते है। अैसे और भी अनेक दृष्टात मै दे सकता हू। मुझे विश्वास है कि यह सव अविनय जानवूझ कर नही किया जाता होगा, वल्कि विवेक और तालीमके अभावके कारण ही यह सव होता होगा। हमारे वायुमण्डलमे अूच-नीचके भाव भरे पडे है। शहराती लोग देहातियोको हलका मानते है। जव राजाओंकी सवारी

निकलती है, तब अुनके नौकर-चाकर वगैरा शान-ओ-शौकतसे चलते है, लोगोको मनमानी गालिया तक दे देते है। गोरे साहबोने अिसीका अनुकरण किया है। अैसी नकलबाजीके फनमे साहब बहादुर बडे होशियार रहते है। अिस वायुमण्डलका प्रभाव हम पर अिच्छा न रहते हुअे भी पडा है। लेकिन अिस लोक-जागृतिके कालमे स्वयसेवकोको सच्चे सेवक बनना होगा। अुनकी सच्ची सेवा मूक सेवा होनी चाहिये, गरीबोकी और असहायोकी सेवा होनी चाहिये। प्रतिष्ठित नेताओकी सेवाके लिअे तो सैकडो तैयार हो जाते है और अुन्हे अधिक तथा अनावश्यक सेवा द्वारा नाहक परेशान करते है, लेकिन गरीबोकी सेवाके लिअे बहुत थोडे निकलते है, और जो मिलते है अुनमे भी बहुतेरे तो यह मानते है कि गरीबोकी सेवा करके वे अुन पर बडा अुपकार कर रहे है। सच तो यह है कि जो गरीबोकी सेवा करता है, वह अपने ऋणका कुछ हिस्सा अदा करता है। भारतवर्षके गरीब भूखो मरते है, लाचार बन गये है, अिस सबका कारण हम मध्यम वर्गके लोग है। स्वयसेवक भी अिसी वर्गके होते है। हमीने अुन गरीबोके कधो पर बैठकर अपना निर्वाह किया है और आज भी कर रहे है। जब गरीब वर्गको अपने अधिकारका और अपने बलका ज्ञान होगा, तब वे हमारे सरदार बन जायेगे और हम लाचारीसे, मजबूरन, अुनके सेवक बनेगे। अुस हालतमे हमे कोअी स्वयसेवक नही कहेगा। अवश्य ही हम अुनके गुलाम या नौकर कहलायेगे।

अिसलिअे किसी भी स्वयसेवकको ख्वाब तकमे यह खयाल नही आना चाहिये कि अगर वह नम्रतासे, आदरपूर्वक या जीजानसे देहातियोकी सेवा करता है, तो किसी पर कोअी अुपकार करता है। अैसी ही सेवामे अुसका और सारे भारतवर्षका भला है।

हिन्दी-नवजीवन, २४–१०–'२९

७४

अूंच-नीच

हम कहते हैं कि यह अूच है, वह नीच। शास्त्र — वैज्ञानिक और आध्यात्मिक शास्त्र कहते हैं कि जैसे शारीरिक दृष्टिसे वैसे ही आत्मिक दृष्टिसे भी हम सब अेक ही हैं। शरीरका पृथक्करण करके वैज्ञानिक कहते हैं, हम सब पच महाभूतके पुतले हैं, न योनिका भेद है, न जातिका, न लिगका। चीटी-हाथी, ब्राह्मण-भगी, स्त्री-पुरुष सबके शरीर मिट्टी वगैरा वस्तुओके बने हैं। अुपनिषदादि हमे सिखाते हैं कि आत्मदृष्टिसे देखा जाय तो पता चलेगा कि सबमे अेक ही आत्मा व्याप्त है। अिसलिअे सूक्ष्मदर्शी आचार्य शकर हमे बता गये हैं कि नामरूपादिका जो भेद हमे दिखाअी पडता है वह सब माया ही माया है। दूसरे अुसे अुपाधि कहते हैं और कोअी अुसे मोह भी कहते है। सब कोअी कबूल करते है कि नामरूपादिका यह समुदाय क्षणस्थायी है।

ये सब बाते जानते हुअे भी अूच-नीचका जितना झगडा हिन्दू समाजमे है, अुतना किसी और समाजमे शायद ही देख पडे। अिसका अनुभव करते हुअे अेक सज्जन लिखते हैं

> "थोडा-बहुत पजाबको छोडकर भारतवर्षके सभी प्रान्तोमें कच्चे-पक्के (सखरे-निखरे) भोजनका भेदभाव माना जाता है। लोगोका अैसा खयाल है कि अपनेसे हलके वर्गके हाथका बना कच्चा (सखरा) भोजन नही करना चाहिये।
>
> "हम लोगोके साथ, जो कि कच्चे-पक्केका भेदभाव नही रखते, जनसाधारण पूरा-पूरा सहयोग नही करते, हमको भ्रष्ट समझते हैं। अैसी स्थितिमे हम जितने लोगोको खादीकी तरफ आकर्षित करना चाहते हैं, अुतने नही होते। यदि कोअी साबरमतीके अुद्योग-मन्दिरमे रहकर खादीका कार्य सीखना अथवा देखना चाहे, तो वह अिसलिअे सकोच करता है कि

वहा भोजनमे कच्चे-पक्केका और जाति-पातिका कोओ भेदभाव नही रखा जाता।

"खादी-प्रचार और अुसके द्वारा राष्ट्रनिर्माणके लिओ क्या आप यह अुचित नही समझते है कि अिस कच्चे-पक्केके झगडेके विरुद्ध आन्दोलन किया जाय?

"कुछ सुधारक लोगोका अैसा भी मत है कि खान-पानके विषयमे किसी भी प्रकारका आन्दोलन करनेकी आवश्यकता नही है। परन्तु अिस प्रकारका भेदभाव सेवाके मार्गमे बाधा डालता हो तो अुसके विरुद्ध आन्दोलन क्यो न किया जाय?"

अिस पत्रमें दो प्रश्न अुपस्थित किये गये हैं। क्या खादीका प्रचारक लोकमतके वश होकर कच्चे-पक्केका भेद रखे? अूच-नीचको माने? मेरा अपना यह निश्चित मत है कि खादीके कारण ही क्यो न हो, मगर कोओ खादी-प्रेमी अपने धर्मको न छोडे, अयोग्य आचरण न करे, अच्छे हेतुसे भी बुराओका आश्रय कभी न ले। मलिन साधनसे शुद्ध साध्यकी साधना कभी नही हो सकती। खादीमे जिन शक्तियोकी कल्पना हम करते हैं, अुन सबका सर्वथा नाश हो जाय यदि हम खादी-प्रचारके लिओ अशुद्ध साधनका आश्रय लेकर काम करे। अूच-नीचके भेदका नाश होना तो खादीका अेक महान फल है।

अब दूसरा प्रश्न यह है कि कच्चे-पक्केके अभेदका आन्दोलन क्यो न किया जाय? खादी-प्रचारकके आन्दोलनका विषय खादी ही हो सकती है। अपने जीवनमें से कच्चे-पक्केके भेदको हटा देने पर अुसका अिस बारेमे और कोओ कर्तव्य नही रह जाता है। यह भी समझना चाहिये कि आचारसे बढकर और कोओ प्रचार हो ही नही सकता। जो काम मनुष्य दूसरोसे कराना चाहता है, अुसे वह स्वय करे। अुसका यह सबसे बढकर असरकारक प्रचार होगा।

हिन्दी-नवजीवन, ३१-१०-'२९

७५

राष्ट्रभाषा

जो मानपत्र मुझे सयुक्तप्रान्तमे मिल रहे है, अुनसे मुझे वहुत कुछ जाननेको मिलता है। अिस लेखमे मैं अुन पर भाषाकी दृष्टिसे ही विचार करना चाहता हू। मेरे पास तीन नमूने हैं। अुनमे से मैं नीचे लिखे फिकरे चुनता हू

१ "हमारे मदारिसमे कोअी अिम्तयाज छूत-अछूतका नही हे। और हर कौमके लडके विला तफरीक तालीम पाते हैं। अिस वोर्डका हमेशा यह तर्जेअमल रहा है कि अगर अछूतोके दाखलेके मुताल्लिक कोअी मदा अुठती है तो अुसका मजवूतीसे मुकाविला किया जाता हे।

"जिलेके वाशिदगान देहात आम तौर पर घर रूअी कतवाकर लोकल जुलाहो और कोलियोसे खद्दर वुनवाकर अिस्तेमाल करते है, लेकिन यह मानना होगा कि तालीमकी कमीके वाअिस वह अिसकी पोलिटिकल अहमियतको महसूस नही करते और हममे भी अैसे लोग मौजूद हैं, जो अिमके सियासी पहलूको नजरअन्दाज करते है। अलावा अुन खद्दरके जो लोग अपने सूतसे तैयार कराते है, विलअमूम जिलेके कोली और जुलाहे जो फरोख्तके लिअे कपडा तैयार करते है अुसमे या तो दोनो सूत देशी मिलोके अिस्तेमाल करते है या तानेमे मिलका और वानेमे चरखेका सूत लगाते हैं, कही-कही ख्याल वख्याल निफासत विलायती सूत भी अिस्तेमाल होता हे। लेकिन अिसका निजाम कायम किये जाने पर अुन्हे शुद्ध खद्दर तैयार करनेकी तरगीव कामियावीके साथ दी जा सकती है और वलिहाज पैदावार खद्दर यह जिला यू० पी० के मर्कजी मुकामातमे से हो सकता है।"

२ "हिन्दू-मुस्लिम अेकताको जो श्रीमानने स्वराज्य-सिद्धिका मुख्य अुपाय निर्धारित किया है, अुसमे कौन सदेह कर सकता है! यह कहना अनुचित न होगा कि खादी-परिधान और हिन्दू-मुस्लिम अेकता, बस, अिन दो आज्ञाओको ही यदि हम भले प्रकार स्वीकार कर ले तो स्वशासन प्राप्त करनेमे और किसी तीसरे साधनकी आवश्यकता ही न रह जाय। अततोगत्वा आज न सही तो कल विवश होकर हमको अैक्य करना ही होगा। क्या ही अच्छा हो, अगर जिस प्रकार हम जय-जयके नारे लगानेमे जोश दिखलाते है अुसका शताश भी कार्य करनेमे तत्परता धारण करे।"

३ "अेक दूसरा महान् कर्तव्य आपने हमारे आगे खादीके विषयमे रखा है। हम आपको विश्वास दिलाना चाहते है कि खादीके सामाजिक, राष्ट्रीय और आध्यात्मिक पहलूने हमारे हृदयो पर गहरी अपील की है और हम अपने गरीब भाअी-बहनोके भूखसे तडपते हुअे पेटोमे रोटी पहुचानेके लिअे खादीके विषयमे कुछ न कुछ यत्न कर रहे है। अभी तक लगभग २० फी सदी अध्यापक और १० फी सदी विद्यार्थी कॉलेजमे खादी पहनकर आते है। यह सतोषजनक तो किसी प्रकार नही कहा जा सकता, पर आशा है कि आपके आशीर्वादसे खादीके विषयमें अधिक और अधिक अुन्नति होगी।"

ये तीनो नमूने हिन्दी, हिन्दुस्तानी यानी राष्ट्रभाषाके है। अेक केवल फारसी-अरबी शब्दोसे भरा पडा है, जिसे सामान्य हिन्दू नही समझ सकेगा। दूसरा केवल सस्कृत शब्दोसे भरा हुआ है, जिसे सामान्य मुसलमान कभी नही समझ सकता। तीसरा अैसा है, जिसे सामान्य हिन्दू या मुसलमान, दोनो समझ सकते है। अिसमे जान-बूझकर सस्कृत या अरबी-फारसी शब्दोका त्याग या चुनाव नही पाया जाता। यदि हम हिन्दीको राष्ट्रभाषा मनवाना चाहते है, यदि हिन्दू-मुसलमान, दोनो अैक्य सिद्ध करना चाहते है, तो हम सस्कृत या अरबी-फारसी शब्दोका अिरादतन बहिष्कार नही कर सकते। अर्थात्

भाषा लिखते या बोलते समय हमारे मनमें अेक-दूसरेका या अेक-दूसरेकी बोलीका द्वेष नही होना चाहिये, बल्कि अेक-दूसरेके लिअे प्रेम अथवा मुहब्बत होनी चाहिये। मुसलमान जब किसी हिन्दूको फारसी-अरबी शब्दोका अिस्तेमाल करते देखता है तो अुसे खुशी हासिल होती है। अिसी तरह अुस मुसलमानके प्रति हिन्दूका आदर बढता है, जो मौकेसे सस्कृत शब्दोका भी अुचित अुपयोग कर लेता है।

तीनो भाषाओके अुचित शब्दोको अपना लेनेसे हिन्दीका गौरव और विस्तार बढता है, भाषाकी मिठासमे वृद्धि होती है। बात यह है कि जब हममे भाषा-विशेषके प्रति द्वेषभाव नहीं रहता, तब हम अुस भाषाकी मददसे अपनी भाषाको सवारनेमे, अुसे बढानेमें सकोच नही करते।

श्री रामनरेशजी त्रिपाठीने अपनी 'ग्राम्यगीत' नामक पुस्तककी भूमिकामे लिखा है

> "आजकल हिन्दीमे जो ग्रथ या लेख निकल रहे है, अुनमे जितने शब्द प्रयुक्त होते है, मेरी गिनतीमे वे तीन सौसे अधिक नही आये। अितने थोडे शब्दोके अन्दर हिन्दीकी विद्वत्ता घेर कर रखी गअी है। हम अितने ही शब्दोमे सोचते है, लेख या पुस्तक लिखते है और व्याख्यान देते है। हमारे घरोमे, खेतोमे, कारखानोमे प्रतिदिन काममें आनेवाले कितने ही पदार्थोके नाम हिन्दीमे नही है, कितने ही भावोके लिअे अुपयुक्त शब्द नही है।"

यदि यह बात सही है, तो शोचनीय और लज्जास्पद है, विचारकी मुफलिसीका चिह्न है। कहा जाता है कि शेक्सपियरने अपनी पुस्तकोमे २०,००० शब्दोका प्रयोग किया है, और मिल्टनने १०,००० का। कहा अिन लोगोका भाषा-भण्डार और कहा हमारी निर्धनता! अिस दशाके रहते हुअे भी यदि हम राष्ट्रभाषाका मुख अुज्ज्वल करना चाहते है, तो और नही तो भाषाके खातिर ही हमे अपना ज्ञान बढाना होगा। किसी भाषाके शब्दोको अपना लेनेमे शर्मकी कोअी बात नहीं है। शर्म तो तब है, जब हम अपनी भाषाके प्रचलित शब्दोको न जाननेके

कारण दूसरी भापाके शब्दोका प्रयोग करे। जैसे, घर शब्दको भुलाकर 'हाअुस' कहे, माताको 'मदर' कहे, पिताको 'फादर' कहे, पतिको 'हसबण्ड' और पत्नीको 'वाअिफ' कहे।

हिन्दी-नवजीवन, ७-११-'२९

७६

आदर्श मानपत्र

पिछले अकमे मैने मानपत्रोकी भाषाके कुछ नमूने दिये थे। हरअेक सभामे मुझे तीन-चार या अिससे भी अधिक मानपत्र मिलते है। अुनमे से बहुतेरोमे मुझे कोअी कला नही दीख पडती। अधिकतर मानपत्र तो केवल मेरी स्तुतिके विशेपणोसे ही भरे रहते है। अिसमे, मेरी दृष्टिसे तो, विवेक और विचार दोनोका अभाव है। अेक मनुष्यके सामने अुसके गुणोका कथन करके हम न तो अुसका सम्मान करते है और न अुसे खुश ही रख सकते है। जिन विशेपणोका प्रयोग मेरे लिअे किया जाता है, अुन सबको अगर मै स्वीकार कर लू, तो मेरा बहुतेरा काम रुक जाय। अीश्वरने मुझे विनोदशक्ति दी है, अुसके सहारे मै अैसे सब विशेपणोको विनोदमे टाल देता हू, और चूकि मै गीताजीकी शिक्षा पर अमल करनेका प्रयत्न करता हू, स्तुति और निन्दाका मेरी जानमे मुझ पर कोअी असर नही पड सकता। परन्तु अिस लेखमे मै यह विचार करने नही बैठा हू कि मानपत्रका मुझ पर क्या असर हो सकता है। यहा तो मै पाठकोको यही बताना चाहता हू कि आदर्श मानपत्र कैसा होना चाहिये, जिससे भविष्यमे मानपत्र देनेवालोको भी मानपत्र बनानेमे थोडी सहायता मिल सके। निम्नलिखित नियमोका पालन करनेसे आदर्श मानपत्र बन सकता है

१ मानपत्रकी भापा अैसी होनी चाहिये कि अुसे हिन्दू-मुसलमान सब कोअी समझ सके।

२ मानपत्रके लिअे चौखटकी कोअी आवश्यकता न समझी जाय।

३ जहा तक हो सके मानपत्र हाथके बने कागज पर लिखा जाना चाहिये। प्रयत्न करनेसे अैसे कागज मिल सकते हैं। भले ही हाथका बना हुआ कागज यत्रके बने कागजका मुकाबिला न कर सके, फिर भी हमे अिस हाथके हुनरको मिटाना नही चाहिये। अैसे हुनरकी हस्ती धनिको और विचारशील लोगोके देशप्रेम पर निर्भर है।

४ मानपत्र हस्तलिखित ही होना चाहिये। अगर यह रिवाज चल जाय तो लेखन-कलाकी खूब अुन्नति हो सकती है। अैसा मानपत्र हर किसीके हाथसे न लिखा जाना चाहिये। सुदर अक्षर लिखनेकी कलामे निष्णात किसी कातिबके हाथो ही लिखाया जाना चाहिये। जनतामे प्रचारके लिअे मानपत्र छपवानेकी आवश्यकता मानी जाय, यह दूसरी बात है। मेरे विचारमे तो अिस तरह मानपत्र बाटनेकी कोअी आवश्यकता नही है। मानपत्र अतिथिके आनेसे पहले ही सभाके समक्ष पढ दिया जाना चाहिये।

५ आजकल यह रिवाज-सा हो गया है कि सस्था या समाजके नामसे जो मानपत्र दिया जाता है, वह किसी अेक ही आदमीका लिखा रहता है, अुसके बारेमे समाज या सस्था किसीकी भी समति नही ली जाती। हमारे लोग अैसी बातोमे अुदासीन रहते हैं, अिसलिअे जो कुछ कहना या करना होता है, अेक आदमी ही सबके लिअे कह या कर लेता है। लेकिन सभ्य तरीका तो यह है कि जिनके नामसे मानपत्र दिया जाय, अुन सब लोगोको वह पहिले बता दिया जाय। तभी अुस मानपत्रका कुछ मूल्य हो सकता है। मसलन्, जब विद्यार्थियोंके नामसे कोअी मानपत्र दिया जाय तो विद्यार्थियोकी अेक समिति बननी चाहिये और फिर तैयार मानपत्र सब विद्यार्थियोकी आम सभामे पेश किया जाना चाहिये।

६ मानपत्रमे स्तुत्यात्मक शब्द कमसे कम रहे। हा, जिसको हम मानपत्र देना चाहते है, अुसके विचारोके अनुरूप क्या हुआ है और क्या करनेका निश्चय किया गया है, अिसका मानपत्रमे अुल्लेख होना चाहिये। साथ ही मानपत्र देनेवाली सस्था और समाजका अुसमे परिचय भी दिया जाना चाहिये।

यदि अुपरोक्त शर्तोका पालन किया जायगा तो जो मानपत्र आज नीरस और निरर्थक-से पाये जाते है, वे सब सरस और सार्थक बन जायगे।

हिन्दी-नवजीवन, १४–११–'२९

७७

कुछ प्रश्न

अेक पाठक लिखते है

"सेवामे सविनय निवेदन है कि मै काग्रेसका तुच्छ सेवक तथा भक्त हू। आपके असहयोग आन्दोलनके सम्बन्धमे ९ मासका कठिन कारावासका दण्ड भी भुगत चुका हू। आशा है, कृपया निम्नलिखित प्रश्नोका अुत्तर देकर आप मेरा समाधान कर देगे।"

अुनका पहला प्रश्न यह है

१ "क्या आपको मालूम है कि काग्रेसमे प्रधान होते हुअे और खद्दर पहनते हुअे भी साअिमन कमीशनसे सहयोग कर चुके है, और मेमोरेंडम भी भेज चुके है? क्या अैसे सज्जनोके काग्रेसमे रहते हुअे आपको अब भी आशा है कि काग्रेस द्वारा देशका अुद्धार हो सकेगा?"

देशका अुद्धार किसी अेक मनुष्य पर निर्भर नही है। काग्रेसमें भले-बुरे सबको आनेका अधिकार है। काग्रेसके सब आदेशोका पालन

करनेवालोंकी सख्या अधिक रहेगी तो अवश्य देशका अुद्धार होगा। अिसलिअे दूसरे क्या करते है, अिस बातका हम खयाल न करे, मै क्या करता हू, यही प्रश्न सब कोअी अपने सामने रखे।

दूसरा प्रश्न यो है

> २ "क्या विद्यार्थियोसे पाठशालाओ तथा कॉलेजोका वहिष्कार करवाकर आपने देशको लाभ पहुचाया है?"

मेरा दृढ निश्चय है कि पाठशाला और कॉलेजका त्याग करनेवालोने अपना और अपने देशका भला ही किया है। अिसके कारण कॉलेज अित्यादिकी प्रतिष्ठा कम हुअी है। और जिन थोडे लडकोने वहिष्कार किया था अुनमे से भी मुल्कको अच्छे स्वयमेवक मिले है। यह वहिष्कारका ही प्रताप है कि आज, थोटी ही क्यो न हो, मगर कुछ राष्ट्रीय शालाअे देशमे मौजूद है, जो स्वराज्य-यज्ञमे काफी हाथ वटा रही है। अकेले गुजरात विद्यापीठने अिस यज्ञमे कितना हाथ वटाया है, सो तो मै 'हिन्दी-नवजीवन' मे पहले वता चुका हू। यदि हम दूसरे राष्ट्रीय विद्यापीठोके कार्यकी भी अिसी तरह गणना करे, तो सरकारी कॉलेज आदिके वहिष्कारका महत्त्व हम कुछ हद तक समझ सकेगे। मुझे आज तक अैसे बहुत थोडे लोग मिले है, जो अिस वहिष्कारके मूलको ही दूषित बताते हो। अधिकाश लोगोकी यह धारणा है कि देश न तो सन् १९२०-२१ मे अिस तरहके त्यागके लिअे तैयार था, न आज ही है। अिसका मतलब तो यह होता है कि देश न तो अुन दिनो स्वराज्यके लिअे तैयार था, न आज तैयार है। यदि यह बात सही है तो हम वहिष्कारकी निन्दा छोडकर अुसकी तैयारीमे लग जाय।

अपने तीसरे प्रश्नमे वह पूछते है

> ३ "प्रत्येक आदमीके लिअे चरखा कातना कहा तक लाभदायक हो सकता है और अिससे अपना जीवन बितानेके लिअे कितनी आय हो सकती है? जो समय अिसमे लगाया जाता है, क्या अुतने समयमें अिससे अच्छा काम करके आदमी अपनी आर्थिक दशा सुधार नही सकता?"

यह प्रश्न कओी बार पूछा गया है और पुन पुन अिसका अुत्तर दिया गया है। और वह यह है कि जो लोग आर्थिक लाभके लिअे चरखा चलाते है, अुन्हे यदि कोओी अधिक लाभदायी धधा मिले तो बिलाशक वे अुसे कर सकते है। चरखा-प्रचारके प्रचारकोका मूल आशय तो यह रहा है कि करोडोके लिअे चरखेको छोडकर और कोओी धधा नही है। जो लोग यज्ञ समझकर चरखा चलाते है, अुनके लिअे हानि-लाभका कोओी प्रश्न ही नही अुठता। याज्ञिक अपने लाभका कभी खयाल नही करता। वह तो लोकहितमे ही अपना हित समझता है।

चौथा प्रश्न यह हे

४ "राजनैतिक दृष्टिसे चरखा कहा तक सहायता दे सकता है? प्राचीन कालमे विधवाये ओर मामूली घरानेकी औरते चरखा काता करती थी। आज आप आदमियोको चरखा कातनेके लिअे क्यो वाध्य करते है?"

मेरे मतमे राजनैतिक दृष्टिसे चरखेकी सहायता महत्त्वपूर्ण हे, क्योकि अिस दृष्टिसे विदेशी वस्त्रका वहिष्कार अत्यत आवश्यक है और विदेशी वस्त्रका वहिष्कार खादीसे ही सफल हो सकता हे। स्त्री और पुरुप, विधवा और सधवाके वीच अैसे कामोमे कोओी भेद नही हो सकता। चरखा-यज्ञ मार्वजनिक हे।

पाचवा प्रश्न अिस प्रकार है

५ "क्या आपने तथा अन्य नेताओने जेलसे वाहर आये हुअे कार्यकर्ताओंकी भी कभी कोओी सहायता की हे? और अगर नही तो अुन्हे अपना जीवन व्यतीत करनेकी क्या सलाह दी है? अुनको अव क्या करना चाहिये? क्या अेक सेनापतिके लिअे यही अुचित हे कि वह अपने जेल जाते हुअे सिपाहीसे कहे कि जेल जानेवालोको काग्रेसके नेताओसे कोओी भी आशा न करनी चाहिये और अुनको तवाही और वेवसीकी दशामें छोड देना चाहिये? जैसे कि आजकलके छूटकर आये हुअे काग्रेसके स्वयसेवक देखे जाते है?"

जेलसे छूटकर आये हुअे अैसे अेक भी कार्यकर्ताको मै नही जानता जिसे सहायता पानेके योग्य होते हुअे भी सहायता न मिली हो। अैसे कार्यकर्ताओको मै जानता हू, जिन्हे वहुत मदद मिली है। कुछ अैसे भी कार्यकर्ता मेरी नजरमे है, जो मनचाही मदद मागते है और न मिलने पर रूठते है।

छठा प्रश्न यो है

> ६ "काग्रेसके नेता लोग जेलमे खास रिआयतके मुस्तहिक होते है, जव कि वालेटियर लोग मामूली कैदियोकी तरह रखे जाते है। अिसका अुन्हे — नेताओको — कोअी अधिकार है? और अगर वे लोग अैसा करते हो तो क्या रिआयाको अुन पर श्रद्धा रखनी चाहिये?"

मेरे मन तो सत्याग्रही कैदीको अपने लिअे किसी भी तरहकी विशेष रिआयत नही मागनी चाहिये — वैसी रिआयतकी आशा तक न रखनी चाहिये।

सातवा प्रश्न निम्नलिखित है

> ७ "तिलक-स्वराज्य फडके लिअे अेक करोड रुपया आपने जमा किया। क्या आप कृपया वतला सकते है कि देश और जातिकी दरिद्रताके नाम पर अेकत्रित किया हुआ वह रुपया किस काममें आ रहा है, और सर्वसाधारण जनताको अुससे क्या लाभ है?"

अिन पैसोका हिसाव छप चुका है। काग्रेसके कार्यालयसे आज भी अुसकी प्रतिया मिल सकती है। अिस द्रव्यसे नौ वर्षो तक काग्रेस अपना काम जोरोसे चला सकी है।

आठवा प्रश्न यो है

> ८ "क्या सन् १९२१ अीस्वीके वाद वािअसरॉय साहव वहादुरकी गोलमेज कान्फरेन्समें वैठना पाप था? अगर हा, तो क्या आप वता सकते है कि अुसी गोलमेज कान्फरेन्समें अव सम्मिलित होना पुण्य कैसे है? क्या आपका स्वराज्य भारतवर्षमें

अिसी गोलमेज कान्फरेन्स द्वारा अुतरेगा? क्या स्वराज्यसे आपका मतलव अिसीसे था? अगर हा, तो आपने अिस वातकी घोषणा १९२१ मे ही क्यो नही कर दी? और अगर नही तो सरकार वहादुरके साथ असहयोग करके, अेक प्रकारसे राजा और प्रजामे घोर युद्ध कराके, सैकडो घर तवाह करनेका क्या अभिप्राय था और अिस प्रकारसे डोमीनियन स्टेटस मिलनेमे काग्रेसके नेताओका क्या अेहसान है?"

यदि वाअिसरॉय साहव वहादुर काग्रेसकी ओरसे दुवारा पेश की गअी शर्ते कवूल कर लेते, तो अुसमे (गोलमेज परिषद्मे) शामिल होनेमे कोअी दोप न था। परन्तु काग्रेसकी शर्ते स्वीकार नही की गअी। आज भी शर्तोकी स्वीकृतिके अभावमे मै गोलमेज परिषद्मे सम्मिलित होना दूपित समझता हू।

कान्फरेन्ससे या किसी वाहरी सावनसे स्वराज्य नही मिल सकता, हा, अुचित शर्तो पर वुलाअी गअी कान्फरेन्स लोकशक्तिका अेक नाप जरूर वन सकती है। अिसी कारण मै कह चुका हू कि जनता कान्फरेन्सका विचार तक न करे। हमारा काम तो वस लोकशक्तिको सगठित करना है, दूसरे शव्दोमे, अिसी कारण हमे विदेशी वस्त्र-वहिष्कार वगैरा रचनात्मक कामोमे सफलता पाना है।

अुनका अन्तिम प्रश्न है

९ "आपका यह भी दावा है कि काग्रेस ही अेक अैसी सस्था है, जो देशके दु खोको सत्य रूपसे प्रकट कर सकती है और अुनकी रोकथाम भी कर सकती है। क्या आपको अपने काग्रेसके नेताओ पर—अुनके सव काम देखकर और सुनकर—अव भी विश्वास है? अगर हा, तो क्या आप कह सकते है कि सर्वसाधारणको भी अुन पर विश्वास है? अगर नही, तो क्या आप वतला सकते है कि अिस सस्थाके सुधारके लिअे आपने कौनसा मार्ग सोचा है?"

काग्रेसमे वहुतेरे दोप है। आजकल काग्रेसमे कअी स्वार्थी लोग घुस गये है, तथापि और और सस्थाओकी अपेक्षा काग्रेसमे ज्यादा

गुण है। अुसमे सुधारकी काफी गुंजाअिश अवश्य है। अगर सुधार न होगा तो कांग्रेस भी नाशसे नही बच सकेगी।

हिन्दी-नवजीवन, २१–११–'२९

७८

देशी राज्य

अेक सज्जनने मध्यभारतके कअी व्यभिचारी राजाओंका अुल्लेख करके पूछा है कि मैं अिन बातोंको जानते हुअे भी चुप क्यों हूं? कअी राजा बूढे है। कअियोंके अनेक रानियां हैं, लेकिन अुनसे संतुष्ट न होकर वे कअी औरतोंको अुपरानियां (पासवान या रखैल) बनाये रहते हैं। क्या मैं अैसे राजाओंसे भी कुछ आशा रखता हूं?

मैं तो मनुष्यमात्रसे पवित्र बननेकी आशा रखता हूं, क्योंकि अपनेमें भी मैं यही आशा करता हूं। अिस जगत्में कोअी पूर्णतया शुद्ध नहीं है। प्रयत्नसे सब शुद्ध बन सकते हैं। कोअी कोअी राजा व्यभिचारी हैं, क्योंकि प्रजाजन भी व्यभिचारसे मुक्त नहीं हैं। अिस-लिअे हम राजाओं पर क्रोध न करें। अथवा राज्य-संस्थाओंका विचार करते समय, व्यक्तिगत राजाओंके दोषोंको अुसके साथ मिला न दें। यह तो अिस बातका तात्त्विक निर्णय हुआ। परन्तु अिससे कोअी यह न समझ बैठे कि मेरे मतानुसार हमारी राज्य-संस्थाओंके लिअे या राजाओंके व्यभिचार आदिके लिअे किसी भी तरहका कोअी प्रयत्न ही न किया जाय। सामाजिक दोषोंको मिटानेका जो भी प्रयत्न भारतवर्षमें होता है, अुसका प्रभाव राजा लोगों पर भी कुछ न कुछ तो अवश्य ही पड़ता है। अिस प्रभावका परिमाण निकालनेका हमारे पास कोअी यंत्र नहीं है। सच बात तो यह है कि सामाजिक शुद्धिके हमारे प्रयत्न बहुत शिथिल हैं। अिसलिअे सामाजिक शुद्धिकी गति भी यत्किंचित् है। व्यभिचारी राजाके लिअे विशेष प्रयत्न हो सकता है, और वह है अैसे राज्यमें अुस राज्यकी प्रजाका असहयोग। दुःख

है कि रिआयामे अिस प्रकारकी जागृति और शक्तिका प्राय अभाव है। यही नही बल्कि राजाओके अधिकारीगण — अमले — स्वार्थके वश होकर राजाओकी अुनके कुकर्मोमे पूरी पूरी सहायता करते है।

अब रही देशी राज्य-सस्थाओकी बात। सो जैसे चक्रवर्ती, वैसे अुनके माण्डलिक। हमारे देशकी चक्रवर्ती सस्था आसुरी है, अिसीलिअे सन् १९२० से असहयोगके प्रचण्ड शस्त्रका अुपयोग किया जा रहा है। चक्रवर्ती सस्था जब दैवी बनेगी, तब राजा भी अपने-आप शुद्ध हो जायेगे। यह सनातन नियम है — पुरातन रूढि है। आज देशी राज्योके विरोधमे जितना आन्दोलन हो रहा है, अुसमे चक्रवर्ती शासन दृढ बनता जाता है। क्योकि आन्दोलनका अेक अर्थ यह भी है कि देशी राज्योको दबानेमे चक्रवर्ती सस्थाकी सहायता मिले।

आशा है, अिस खुलासेको पढकर देशी राज्योके बारेमे मेरी चुप्पीको समझना मुश्किल नही रह जायगा। मेरा यह मौन असहयोगका अुपाग है।

हिन्दी-नवजीवन, २८–११–'२९

७९

हमारा भ्रम

तुलसीदासजीने कहा है

रजत सीप महु भास जिमि, यथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहु काल सोअी, भ्रम न सकै कोअू टारि।।

अिसमे जो गूढ सत्य भरा है, अुसका अनुभव मुझे तो नित्य-प्रति होता रहता है। अच्छी या बुरी, जो बात हमारे खयालमे या हृदयमें ठस गअी है, वह तब तक नही मिटती, जब तक तजुर्बा नही होता।

ठीक अिसी तरह अस्पृश्यता-रूपी भ्रम हिन्दू जनताके हृदयमें घर कर गया है। बुद्धिके सहारे हम देखते है कि कोअी अस्पृश्य नही

है। जनताके पास अस्पृश्यकी कोअी संज्ञा या परिभाषा नही है। यदि अस्पृश्य अपनी मानी गअी काल्पनिक अस्पृश्यताको छिपावे, तो अुसे पहचाननेवाले चंद आदमियोको छोडकर कोअी अिस बातका कयास भी नही कर सकेगा कि वह अस्पृश्य है। अिस तरह, कअी 'अस्पृश्य' भाअी हर जगह बगैर किसी रोक-टोकके मंदिरोमें और दूसरे स्थलोमें चले जाते है।

यदि अस्पृश्यता कोअी धर्म होता, तो अेक प्रान्तका अस्पृश्य हरअेक प्रान्तमें अस्पृश्य माना जाता। किन्तु वस्तुतः आसामके अस्पृश्य सिंधमें अस्पृश्य नही माने जाते। त्रावणकोरके अस्पृश्य और कही अस्पृश्य नही है। वहाकी अस्पृश्यता, दूरता अित्यादिकी तो और जगहोमें गंध तक नही है।

हिन्दू जातिमे अस्पृश्यताका यह भ्रम अितना घोर — अितना भयानक हो अुठा है! श्री जमनालालजी अिसे मिटानेका खूब प्रयत्न कर रहे हैं। अुन्हे मंदिरोको खुलवानेकी अपनी प्रवृत्तिमे काफी सफलता मिलती जाती है। जबलपुरमे अेक साथ आठ मंदिरोका खुलना, अुसमें प्रतिष्ठित लोगोका शामिल होना अित्यादि आशाजनक बातें है। अिस भ्रमको मिटानेका राजमार्ग तो यह है कि जिनका भ्रम दूर हो चुका है वे अपने कार्योसे भ्रममे डूबे हुओको बता दे कि अस्पृश्यता नामका कोअी धर्म है ही नही।

हिन्दी-नवजीवन, ५-१२-'२९

धर्मक्षेत्रमें अधर्म

अेक काशीनिवासी लिखते है

"काशी परपरासे सनातनियोका धर्मप्राण स्थान है। सालमें लाखो यात्री श्री विश्वनाथ तथा माता गगाकी श्रद्धा-भक्तिसे आकर पूजा-अर्चा करते है। यह तीनो लोकोसे न्यारी शिवपुरी कहलाती है। यहा सस्कृत विद्यापीठ तथा हिन्दुओका विश्व-विद्यालय है, जिसके जन्मदाता हमारे प्रान्तके धर्मप्राण प० मदनमोहन मालवीयजी है। अैसे काशी-क्षेत्रकी क्या दशा है, अिसीका खुलासा आपके समक्ष रखनेकी अिच्छासे प्रेरित होकर लिख रहा हू।

"यहा पर वैष्णवो तथा शैव मतावलवियोका पक्का पुराना अड्डा है, जो कि सनातन धर्मकी रूढि पर स्थित है। यहा अिन दोनो मतोके मदिर अितने अधिक है कि कदाचित् ही और कही हो। यहा पर वसनेवाले अधिकतर अिन्ही दोनो मतोके अनुयायी है। यहा पर प्राणत्याग करनेवाले, सीधे विना किसी प्रकारकी यातना पाये ही, मुक्ति प्राप्त कर लेते है, यह परपरागत विश्वास वरावर चालू है, अिसीलिअे भारतवर्षके राजे-महाराजे, सेठ-साहूकार चतुर्थ अवस्थामें यही आकर वसते है तथा प्राण त्यागते है। अिस शहरमे केवल रेशमी कलावत्तूके कामकी साडी, दुपट्टे, हाथियोके झूल तथा अनेक प्रकारके सामान और साथ ही चादीकी कुर्सी, अवारी, तश्तरी आदि तैयार होते है, जो कि भारतवर्षकी जितनी रियासते है अुन सवमे चौगुने दामो पर अभी तक विका करते है। अिसके कारवारी यहाके अिने-गिने थोडेसे पूजीपति है। अिसके अतिरिक्त यहाके पीतलके वर्तन और लकडीके खिलौने भी वाहर जाते है।

अिन कामोमे थोडेसे हिन्दू तथा अधिकतर मुसलमान जुलाहे है। बाकी आबादीके लोग साधारणत नौकरी, रोजगार, खुर्दाफरोशीमे गुजर करते है। बहुतेरे बैठकर आसपासकी जमीनोके जमीदार तथा मकानोका किराया खानेवाले है। पर अिन सबमे बडा अेक दल है, जो नौसरबाजी, दलाली, मुकदमेबाजी, जुवा, चोरी, शराब-गाजा-भागकी ठेकेदारी, कारिन्दगिरी करता है तथा यात्रीको साथमें लेकर दर्शन कराकर पैसा ठगता है और मौका मिल जाने पर जानसे मार डालनेकी मनमें धारणा रखता है।

"काशीमे श्री गगाजीकी अेक ओरसे दूसरी ओर तक बराबर चद्राकार घाटोकी कतार तथा मदिर है। अिन घाटो पर प्राय करके सुबहके वक्त स्नानार्थियोकी खासी भीड बारहो महीने रहती है, जिसमें स्त्री-पुरुष दोनो होते है।

"समस्त भारतवर्षमें जितनी विधवायें अपने सबधियो द्वारा व्यभिचारिणी हो जाती है या अन्योसे भी, अुन सभीके छोडनेका स्थान काशी समस्त सनातनियोने निर्धारित कर रखा है। और यहा सालमें हजारो अैसी स्त्रिया, खासकर पर्वोमें, छोडी हुअी मिला करती है, जिनके आश्रयदाता मुसलमान भाअी थे। पर अब श्रीमान् वी० अेन० मेहता, भूतपूर्व कलेक्टरके अुद्योगसे अेक अनाथालय अैसी स्त्रियोके लिअे स्थापित है तथा आर्यसमाजने भी अपनी तरफसे अेक अनाथालय स्थापित कर रखा है। आर्यसमाज अनाथालयके मत्रीजीने हालमें अेक लेख 'आज' में छपाकर अुन स्त्रियोके चालचलनके सुधारका अुपाय भी पूछा था। क्योकि अुन्होने लिखा था कि जबसे यह अनाथालय स्थापित है, तबसे जितनी स्त्रिया अिसमे प्रविष्ट हुअी, सभी व्यभिचारिणी होकर अपने कुटुबियो द्वारा निकाली हुअी थी, जो कि यहा प्रविष्ट होनेके साथ ही विवाहकी अिच्छा प्रकट करने लगती है, विलब होनेसे अपनी आदतका परिचय यहा भी देती है तथा अिधर अेक भी मनुष्य जिन्हे रखने पर

अुद्यत नही होता। अैसी स्त्रिया पजाव भेज दी जाती है। वहीके लोग अिन्हे रख लेते है, पर जिन लोगोने अैसी स्त्रिया रखी है, वे आसू गिराते है और यही कहते है कि भगवान अिनमे वचावे। कारण अुनकी आदत ज्योकी त्यो वनी रहती है और मौका पाकर अपने पतिको जहर अित्यादि देकर अथवा मालमता लेकर दूसरोकी प्रेमिका बन जाती है, या कही दूसरे अनाथालयमे घुसकर पुन व्याहकी योजना कराती है।

"आपके समक्ष अैसी वातोके कहनेका साहस कभी करने योग्य नही, पर मेरी समझमे जितना ही यह विपय गोपनीय और निंद्य करके छोडा जा रहा है अुतना ही अुसका विपैला प्रभाव वढ रहा है, जिससे वडो वडोकी नाको दम है। हा, थोडे दिनोसे, जवसे आपका प्रभाव देश पर छाया है व शिक्षाका प्रभाव वढा है, सभव है कि यह वुराअी शिक्षित समाजसे दूर हो गअी हो। अिससे निदनीय तथा गोपनीय कोअी विषय दूसरा न होगा। पर जहा तक मेरा स्वत का अनुभव है, वम्बअीको छोड सर्वत यह वर्तमान हे—कही कुछ कम, कही कुछ ज्यादा। पर अिधर विहार तथा यू० पी० का हाल वर्णनातीत हो रहा है। अिसका सवूत ४९४ दफा ताजिरात हिंदकी रूसे अदालतमे पेश अर्जियोंसे किसी कदर ही चल सकेगा, जो कि यहाकी नीच जातियोने दी है। पर यहाकी नाममात्रको अुच्च कहलानेवाली जातियोमें तथा खासकर काशीपुरीका कोअी घर अैसा नही वचा होगा, जो व्यभिचारके ससर्गसे दूपित न हुआ हो।

"काशीके अधिकतर अमीर, मठो व मदिरोके अधिष्ठाता, अफसर, सभी वाहर तो अपनेको चारित्र्यवान वताकर अनेक सस्थाअें चलाते, आदर्श जीवन दिखलाते तथा भीतर-भीतर अैसी कअी स्त्रियोका पेट भरा करते है, जो कि मध्यम श्रेणीकी युवती स्त्रियोको अुनके भोगके वास्ते रुपये तथा जेवरका लोभ

देकर दर्शनो, पूजनो तथा अपने जातिभाअियोंके यहा जानेके वहाने घरमे निकालती है, तथा अपने प्रेमियोसे मिलाकर ही रहती है। अिन्ही अुद्देश्योकी पूर्तिके अर्थ यहा अधिक मेले व पर्व मनाये जाते है। दूसरा तरीका अिन कामोके वास्ते डॉक्टर व वैद्योका अड्डा और घाट पर जप-पूजाके अर्थ जमघट है। अिसके अलावा तीसरा तरीका यह निकाला गया हे कि कही पर वेचू वीर, कही दरगाह, कही देव व देवियोकी मन्नतोके वहाने करके स्त्रिया अपने पतियोको वाध्य करके नौकरोंके साथ, पडोसियोके साथ, तथा अन्य लोगोके साथ होकर जाती है व अपनी कुटिल अिच्छाको पूरा करती है। अिन कुवासनाओको पूरा करनेके लिअे यहा शहरमे कअी अड्डे है, जहा पर खुले आम ये हरकते हुआ करती है और अैसी जगहे वदमाशोके सहारे पर ही ठहरी है। अिन वदमाशोके भयसे जो लोग अिन वातोके विरोधी है, वे भी कानूनन कोअी रास्ता न देखकर चुप्पी साधे रहत है, तथा वहुतेरे अिनमे पीछेसे सहमत अिस कारण हो जाते है कि यह समाजकी अिच्छासे ही चलता है, मै अकेला क्या करूगा? अैसे अड्डोके पृष्ठपोषक खास करके पुलिसवाले भी गुप्त रूपसे रहते है।

"अिन वातोको दूर करनेका भार आप कदाचित् काशीके नगरपिताओ तथा म्युनिसिपैलिटी पर छोडेगे, जिसके अुत्तर-स्वरूप आप यह भी जान ले कि जितनी धाधली यहाकी म्युनिसि-पैलिटीमे है, अुतनी शायद ही कही हो। यहाके मेवर दो गुटोंमें विभाजित है, जिनमे आपसकी खीचातानी अिस कदर रहती है कि चाहे काशीके निवासी मर मिटे, पर अुनकी वातोकी ओर कौन ध्यान देता हे? रोज नये नये करोमे लोगोको अुत्पीडित करके अपनी जेव भरना अिनका अुद्देश्य है। कारण अिन पदोको प्राप्त करनेके लिअे कमसे कम प्रत्येक व्यक्तिको दो हजार खर्च करना पडता है, तिस पर तुर्रा यह कि वह रकम गुण्डो, वदमाशो, रडियो और दलालोंके पेटमे जाती है। अिन्हीको दूना

और तिगुना करनेकी अिनके मनमे आकाक्षा वनी रहना कुछ अनुचित नही कहा जा सकता।

"आप पूछेगे, अैसी कुत्सित वातोके लिखने तथा मेरे सामने पेश करनेकी क्या आवश्यकता हे? अत अिसके अुत्तर-स्वरूप निवेदन है कि मेरी समझमें मानसिक तथा शारीरिक अुन्नति अिस तरहकी वुराअी दूर किये वगैर नही हो सकती। दूसरे, मै भी अिन्ही वुराअियोंसे अुत्पीडित हुआ हू और मेरी आत्मा वार वार अिसे आपके समक्ष रखनेको वाध्य कर रही है।"

सभव हे, अिस लेखमे अतिशयोक्ति हो, लेकिन अतिशयोक्तिवाला अश निकाल डालने पर भी जो रहेगा, वह हमारे लिअे शोचनीय होगा। कोअी यह कहकर अिन वुराअियोकी ओर दुर्लक्ष न करे कि अैसी अपवित्रता अन्य धर्मोके क्षेत्रोमें भी पाअी जाती है, या हिन्दू धर्मके दूसरे तीर्थक्षेत्रोकी भी यही दशा है। हर हालतमे, हर जगह अैसी अनीति निंदनीय है और अुसे दूर करनेके लिअे प्रयत्न करना जरूरी है। अिन वुराअियोको दूर करनेका सवसे अच्छा मार्ग तो यह है कि जो अिन वुराअियोको जानते हे और अिन्हे निंदनीय समझते हैं, वे अपने जीवनको शुद्ध वनाये और शुद्धतामे दिनोदिन वृद्धि करते रहे। यह प्राचीन मार्ग है। जव अधर्म वढता है, तव साधु पुरुष तपश्चर्या करते है। और तपश्चर्याका अर्थ शुद्धि है।

अेक दूसरा और आधुनिक मार्ग नवयुवको द्वारा आदोलन मचानेका है। आजकल युवक-सघ वढ रहे है। युवकोमे सेवाभाव वढा है और वढ रहा है। यदि वे अिस कामको अुठा ले तो वहुत-कुछ कर सकते है। सव मदिरोकी फेहरिस्त वनाकर अुनके सरक्षको और पुजारियोंसे परिचय वढावें और जिन मदिरोंके खिलाफ शिकायत हो अुनकी यथासभव जाच करे। यात्रियो और दूसरे दर्शनार्थी लोगोको अिन वातोंसे सावधान कर दे। अनाथालय आदि सस्थाओंकी जानकारी हासिल करे। अिन कार्योंसे वहुतेरा सुधार अपने-आप हो जायगा। क्योंकि अनीति अधेरेमे ही जी सकती है, प्रकाशमें नही।

अैसे कार्य करनेवाले युवकोका जीवन विशुद्ध होना चाहिये। जो दूसरोकी शुद्धि करना चाहते है, अुनके खुद शुद्ध न होने पर अुनका कोअी प्रभाव नही पडता।

तीसरा मार्ग सभावित---अिज्जतदार और पवित्र लोगोकी समिति बनाकर, अुसके द्वारा तीर्थक्षेत्रोके सुधारकी चेष्टा करना है।

ये तीनो मार्ग साथ-साथ चल सकते है, चलने चाहिये। अैसी अनीति होते देख हम बहुधा निराश हो जाते है। परन्तु निराशाका कोअी कारण नही है। हमारी निराशा और मदताके कारण बहुतेरी अनीतिया जिंदी रह सकती है। हममे यह श्रद्धा होनी चाहिये कि अनीति क्षणिक वस्तु है, और कुछ ही लोगोकी क्यो न हो, मगर तेजस्विनी नीतिके सामने वह टिक नही सकती।

हिन्दी-नवजीवन, १२-१२-'२९

८१

कांग्रेस किसकी ?

सयुक्तप्रान्तके दौरेमे किन्ही सज्जनने दो-तीन प्रश्न पूछे थे और अुत्तर 'हिन्दी-नवजीवन' द्वारा मागा था। अुनमें से अेक प्रश्न यह था

> "क्या काग्रेस हिन्दू-मुसलमानोका सम्मिलित गिरोह है? यदि अिसका अुत्तर 'हा' हो तो क्या अैसी काग्रेसके कर्मचारी, -जो हिन्दू-मुस्लिम अुपद्रवके कारण होते है, काग्रेसी कहलानेके अधिकारी और अनुकरणीय है? और यदि अैसी समस्या अुपस्थित हो तो अुस दशामे सर्व-साधारणको क्या करना चाहिये?"

काग्रेस हिन्दू-मुसलमानोकी तो है ही, लेकिन वह अिससे भी कुछ अधिक है। काग्रेस भारतवर्षमें रहनेवाले हरअेक व्यक्तिकी सस्था है— हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिक्ख, अीसाअी, यहूदी वगैरा सब किस्मोकी

है। कांग्रेसके सदस्य वे सब स्त्री-पुरुष हो सकते है, जो महासभाके अुद्देश्योको स्वीकार करते है। कांग्रेसके कर्मचारियोमे से यदि कोअी हिन्दू-मुसलमानोके अुपद्रवका — झगडेका कारण बने, तो कांग्रेस अुसका बहिष्कार कर सकती है। कांग्रेसका सदस्य बनकर जो अेक-दूसरेके बीच वैमनस्य — दुश्मनी पैदा करता है, वह न केवल कांग्रेसका, बल्कि देशका भी द्रोही है।

यह तो अूपरके प्रश्नका अुत्तर भर है। परन्तु जब अितनेसे खुद मुझे ही सतोष नही होता, तो प्रश्नकर्ताको भला कैसे हो सकता है? दुखकी बात तो यह है कि दोनो कौमोके बीच वैमनस्य पैदा करनेकी किसीको आवश्यकता ही नही होती। अिस हालतका असर, कुछ ही अशोमे क्यो न हो, कांग्रेस पर भी पडता है। अिस वैमनस्यको मिटानेका तरीका क्या है? यह सवाल प्रश्नकर्ताके दिलमे तो है, लेकिन अिसे वह प्रकट नही कर सके है।

वैमनस्यको मिटानेके लिअे शुद्धि चाहिये। अेक-दूसरेमे वीरताके भाव पैदा होने चाहिये। आज तो हम अेक-दूसरेसे डरते है। यदि डर मिट जाय और आपसमे विश्वास पैदा हो जाय, तो सब वैमनस्य, सारी दुश्मनी आज ही दूर हो सकती है। अिस दौर्बल्य — कमजोरीको मिटानेका सबसे अच्छा मार्ग यह है कि हम अिस सम्बन्धमे किसीका अनुकरण न करे, बल्कि खुद ही डरना छोड दे। अगर अैसे कुछ ही लोग आज पैदा हो जाय, तो कांग्रेसकी शिकायत ही न रह पाये। हा, यह मै जानता हू कि अैसा वायुमण्डल पैदा करनेकी कोशिश हो रही है, और अिसे जानते हुअे मै अपना निजी विश्वास नही छोड सकता।

हिन्दी-नवजीवन, १९–१२–'२९

८२

राष्ट्रभाषा

हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है, अैसा यद्यपि सब लोग बुद्धिसे कबूल करते है, तो भी जिन सूबोमें हिन्दी मातृभाषा है वहा हिन्दी भाषाके प्रति जैसा प्रेम नवयुवकोका होना चाहिये वैसा देखनेमे नही आता है। हिन्दीमे जो कुछ साहित्य निकलता है वह प्राय अनुवाद है। यदि कुछ मौलिक वस्तु निकलती है तो वह प्रभावरहित देखी जाती है। यह कह सकते है कि रवीन्द्रनाथ हर जगह पैदा नही होते है, तुलसीदास करोडोमे से अेक ही होते है, परन्तु तुलसीदास, रवींद्रनाथ अित्यादिके पैदा होनेके लिअे क्षेत्र हम सब तैयार कर सकते है। नवयुवकोका सच्चा अुत्साह ही वह क्षेत्र है। अुनका प्रेम जब हिन्दी भाषाके प्रति बढेगा तब हिन्दीमय वायुमण्डल पैदा हो जायगा और अुसमे से कुछ कवि भी निकल सकते है।

आज तो हिन्दी जिनकी मातृभाषा है, अुन नवयुवकोकी बोलीमें न प्रेम देखनेमें आता है, न प्रयत्न। व्याकरणादिके जो दोष यू० पी०, बिहारके नवयुवकोकी हिन्दीमे आते है, कभी बगला और मराठीमें देखनेमे नही आते। राष्ट्रभाषाका प्रचार मद्रास आदि प्रान्तोमें होता है, परन्तु मेरा अनुभव है कि हिन्दी शिक्षक कष्टसे ही मिलते है। अुनमें भी तेजस्विता नही होती, त्याग-शक्ति बहुत कम होती है। हिन्दी-प्रचारके ही लिअे सर्वार्पण करनेवाले अनेक नवयुवक होने चाहिये, परन्तु अैसे यदि कोअी है तो मै अुनको नही जानता हू। अैसे अवश्य मिल सकेंगे, जो आजीविका मात्र लेकर सेवा करनेके लिअे तत्पर होगे, लेकिन अुनके पास हिन्दी भाषाकी शिक्षा देनेकी सामग्री नही होती।

नवयुवक चाहे तो अिस त्रुटिको मिटा सकते है। अेक नवयुवक भी अिस कार्यका आरभ करेगा तो काम आगे बढ सकता है।

जब किसी क्षेत्रमे दुर्दशा प्रतीत होती हे तब निराश होकर बैठे रहनेसे दुर्दशा बढती है। कर्तव्यपरायण मनुष्यका धर्म है कि दुर्दशाको देखकर अुसके निवारणकी चेष्टा शीघ्र करे, रास्तेमे रुकावटोका खयाल करके निरारम्भ न रहे।

प्रत्येक, पाठशालामे हिन्दी भाषोत्तेजक सघ बनन चाहिये। अैसे सघका कर्तव्य प्रत्येक क्षेत्रमे हिन्दीका अुपयोग बढाना, पारिभाषिक शब्दोका शोधन करना, विदेशी भाषाका अुपयोग राजनीति अित्यादिमें कभी नही करना, गूढ ग्रथोका गहरा अध्ययन करना, जहा हिन्दी शिक्षककी आवश्यकता देखी जाय वहा सहायता देना, विना शुल्क हिन्दी शिक्षक स्वयसेवक तैयार करना अित्यादि हो सकता है। प्रत्येक बडी पाठशालामें अेक-अेक नवयुवकके चित्तमे अैसी लगन पैदा हो जाय, तो वह बैठा नही रहेगा, अपने-आप सघ बन जायगा और अपने सहाध्यायीको अुसमे प्रवेश करनेका निमत्रण देगा। नवयुवकोमे आज जो जागृति आअी है, अुसको स्थायी बनानेका तरीका यही हे कि अुनका प्रत्येक क्षण किसी न किसी सेवाकार्यमे ही व्यतीत हो।

खयाल रखना चाहिये कि अिस लेखमे हिन्दीका अर्थ हिन्दुस्तानी भी है। मेरी दृष्टिके सामने वह हिन्दी नही हे, जिसमे मे अिरादतन फारसी या अरबी शब्दोका त्याग किया गया हो।

हिन्दी-नवजीवन, २६–१२–'२९

८३

महासभामें हिन्दी

हमारा दुर्दैव कुछ अैसा है कि हमे 'काग्रेस' नामसे जितना परिचय है अुतना 'महासभा' से नही। महासभाका नाम लेनेसे कोअी हिन्दू-महासभा समझते है और कोअी किसी दूसरी ही सभाका खयाल करते है। सयुक्तप्रातके दौरेमे जब मै काग्रेसके लिअे महासभा शब्दका प्रयोग करता था, तो मुझसे कहा जाता था कि महासभाके नामसे कोअी काग्रेसका अर्थ नही लगायेगे। यह आदतका प्रभाव है। हमें अग्रेजी शब्दके प्रयोगकी आदत पड गअी है, अिसलिअे जब कोअी हिन्दी शब्दका प्रयोग करता है, तो अुसे समझनेमे हमे कष्ट होता है।

अिसीलिअे यद्यपि महासभामे हिन्दी भाषाका ही प्रयोग करनेका कानून है, अग्रेजीका ही काफी प्रयोग होता है। महासभाके अिश्तहार प्राय अग्रेजीमे छपते है। महासभाके दफ्तरमे भी प्राय अग्रेजीका ही व्यवहार होता है। अेक-दूसरेको खत अग्रेजीमे लिखे जाते है। लाजपत नगरमे रास्तो पर जहा देखो अग्रेजीमे लिखे पटिये ही दिखाअी पडते थे। यह सब शोचनीय है। परतु अिस व्याधिकी औषधि, अिस रोगकी दवा सख्तीके साथ कानून मनवाना नही है। अिसकी औषधि या दवा तो है जनताका राष्ट्रभाषाके प्रति प्रेम और जनताकी तदनुसार चेष्टा — कोशिश। जनता चाहे तो महासभाका सारा काम हिन्दीमें करवा सकती है। बात यह है कि न जनतामे अितनी जागृति है, न अितना अुत्साह है और न अितना भाषाप्रेम ही है।

महासभाका दफ्तर हिन्दीमे रखनेके मार्गमें अेक बडी व्यावहारिक रुकावट है। राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरूने अिस ओर सदस्योका ध्यान भी खीचा था। जैसा कि मै पिछली बार लिख चुका हू, सयुक्त-प्रात, बिहार वगैरा हिन्दी भाषा-भाषी प्रातोमे अैसे लोग बहुत कम मिलते है, जो अिस कामके लिअे तैयार हो। जो थोडे-बहुत है या

होंगे वे अपने काममे लगे हुअे हैं। महासभाके कार्यालयमे क्या और और जगहोमे क्या, हिन्दी जिनकी मातृभाषा है, वे लोग राष्ट्रकार्यमें बहुत कम पाये जाते हैं। अैसी दशामे कौन आश्चर्य है कि राष्ट्र-भाषाके व्यवहारका कानून होते हुअे भी महासभाका बहुतेरा काम अंग्रेजीमे ही होता है।

दस साल पहिले तो सारा काम अंग्रेजी ही मे होता था। अिधर अिस दिशामे बहुत परिवर्तन हुआ है, फिर भी अभी बहुत कुछ बाकी है। महासभाका कुल बहस-मुबाहसा — सारा वादविवाद राष्ट्रभाषामे ही होना चाहिये और अुसके अंग्रेजी अनुवादकी भी कोअी जरूरत न रहनी चाहिये। अिसमे दो दिक्कते पेश आती हैं। अेक तो यह कि बंगाल, तामिलनाड वगैराके सदस्य बहुत कम हिन्दी समझते है और दूसरी यह कि वक्ता जो कुछ कहना चाहता है, सो सबको समझाना भी चाहता है। अिसलिअे अगर वह दोनो भाषाये जानता है, तो दोनोमें बहस करके अपना काम बना लेता है। अिन दिक्कतोको दूर करनेके दो अुपाय हैं। अेक तो यह कि जब कोअी वक्ता अंग्रेजीमे बोलने लगे, तब अुसे और राष्ट्रपतिको अिस बातका स्मरण दिलाना चाहिये। दूसरे, बंगाली और तामिल भाअी-बहन कह दे कि अुन्हें अंग्रेजीकी कोअी आवश्यकता नही है। अुनका धर्म है कि वे हिन्दी सीख ले अथवा अपने पडोसियोसे, जो कुछ कहा जाय, अुसका मतलब समझ ले। हिन्दी भाषा-भाषियोके प्रेम, अुनके निश्चय और विनय पर ही बंगाली, तामिल वगैरा भाअियोके हृदयका परिवर्तन निर्भर है। बगैर विनयके कुछ काम नही हो सकेगा। बलात्कार या जबरदस्तीसे हिन्दीको अपना स्थान नही मिल सकेगा।

हिन्दी-नवजीवन, २–१–'३०

८४

जवाहरलाल नेहरू

जवाहरलाल हिन्दका जवाहर सिद्ध हुआ है। अुनके व्याख्यानमें अुच्चतम विचार मधुर और नम्र भाषामें प्रकट हुअे हैं। अनेक विषयोंका प्रतिपादन होने पर भी व्याख्यान छोटा है। आत्माका तेज प्रत्येक वाक्यमें झलकता है। कअी लोगोंके दिलमें जो भय था, भाषणके बाद वह सब मिट गया। जैसा अुनका व्याख्यान था वैसा ही अुनका आचरण भी था। कांग्रेसके दिनोंमें अुन्होंने अपना सारा काम स्वतन्त्रता और संपूर्ण न्यायबुद्धिसे किया। और अपना काम सतत अुद्यमसे करते रहनेके कारण सब कुछ ठीक समय पर निर्विघ्नताके साथ पूर्ण हुआ।

अैसे वीर और पुण्य नवयुवकके सभापतित्वमें यदि हम कुछ न कर पायेंगे तो मुझे बड़ा आश्चर्य होगा। परन्तु यदि सेना ही नालायक हो तो वीर नायक भी क्या कर सकता है? अिसलिअे हमें आत्म-निरीक्षण करना चाहिये। क्या हम जवाहरलालके नेतृत्वके लिअे लायक हैं? यदि हैं, तो परिणाम शुभ ही होगा। स्वतन्त्रताकी घोषणा करने-मात्रसे स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। हममें स्वतन्त्रताका वायुमण्डल पैदा होना चाहिये। स्वतन्त्रता अेक चीज है, स्वच्छन्दता दूसरी। कअी बार हम स्वच्छन्दताको ही स्वतन्त्रता मान बैठते हैं और स्वतन्त्रता गंवा देते हैं। स्वच्छन्दताकी पराकाष्ठा स्वार्थ है, स्वतन्त्रताकी परमार्थ। स्वच्छन्दता समाजका नाश करती है, स्वतन्त्रता समाजको जीवन देती है। स्वच्छन्दतामें मर्यादाका त्याग किया जाता है, स्वतन्त्रतामें मर्यादाका पूर्ण पालन किया जाता है। पराधीनतामें हम बहुतसी बातें डरके मारे करते हैं, स्वाधीनतामें वे ही बातें हम अिच्छापूर्वक करते हैं।

पराधीन मनुष्य डरके वश होकर चोरी नहीं करेगा, किसीके साथ फसाद नहीं करेगा, झूठ नहीं बोलेगा, बाह्याचारमें शुद्ध-सा

प्रतीत होगा, डाकू आदिसे, स्वामीके बलसे बचेगा। पराधीन मनुष्य जो कुछ करता है, अुसमे वह अपने मनका साथ नही देता। स्वाधीन मनुष्यके जैसे आचार होते है, वैसे ही विचार भी। वह जो कुछ अच्छा-बुरा करता है, स्वेच्छासे करता है। अिसलिअे स्वाधीन मनुष्य अपने सत्कार्यका पूरा फल पाता है और अैसा होनेसे समाजकी नित्य वृद्धि होती है। स्वाधीन मनुष्य किसीकी रक्षाकी अपेक्षा नही करेगा।

अिसलिअे यदि हममे सच्ची स्वतत्रता आअी है, तो हम कौमी (साप्रदायिक) डरको छोड देगे। हिन्दू-मुसलमान अेक-दूसरेसे डरना भूल जायगे। दोनो साथ-साथ भूले तो बहुत ही अच्छा है, परतु स्वतत्र मनुष्य डर छोडनेके लिअे साथियोके सहयोगकी अपेक्षा न करे। यदि अेक पक्ष न्यायकी मर्यादाको छोड दे, तो भी वह तीसरी ताकतका सहारा नही मागेगा। वह अपनी ताकत पर ही निर्भर रहेगा। और हार गया तो अपनी ताकत बढानेकी कोशिश करेगा। लडते हुअे मर जाना जीत है, धर्म है। लडनेसे भागना पराधीनता है, दीनता है। शुद्ध क्षत्रियत्वके बिना शुद्ध स्वाधीनता असभव है। अिसीलिअे क्षत्रियके लक्षणमे 'अपलायनम्' को ही अद्वितीय स्थान है। अिस कारण हमे अपनी हरअेक बातमें 'अपलायनम्' का सेवन करना आवश्यक है।

हिन्दी-नवजीवन, ९–१–'३०

८५

प्रस्तुत प्रश्न

काशी विश्वविद्यालयके 'अेक राजनीतिके विद्यार्थी' ने निम्न-लिखित प्रश्न पूछे हैं

"लाहौरकी महासभाने पूर्ण स्वतत्रताको अपना लक्ष वनाकर त्रिविध वहिष्कारका अुपाय सोचा है। मेरे तुच्छ विचारमें यह अुपाय सफल होगा, अिसमे भारी सदेह है। पहली बात जो वाधक है वह है लोगोमें त्याग-भावनाकी कमी। अधिकाश लोगोसे यह आशा करना कि वे जेलमे जाकर चक्की पीसनेको तैयार होगे, मेरी समझमे गलत है। जेलोमे जाना तो दूरकी वात है, जनतामे छोटे-छोटे त्यागकी भी भावना लाना कठिन काम है। अुदाहरणके लिअे खद्दर ही को लीजिये। जनता अच्छी तरह अिसकी अुपयोगिता जानती है और यह भी समझती है कि सव वातोको लेते हुअे यह सस्ता भी पडता है, तिस पर भी अिसका प्रचार आवादीके लिहाजसे वहुत कम हो पाया है। यह केवल अिसलिअे कि जनताको विदेशी कपडा पहननेकी आदत पड गअी है और खद्दर पहननेसे अेक दो महीनो तक थोडी वहुत तकलीफ अुठानी पडती है।

"दूसरे भी दृष्टान्त हैं, जिनसे मालूम होता है कि जनतामे त्यागका भाव लाना टेढी खीर है।

"दूसरी वाधा यह है कि वहिष्कारके सफल होने पर भी हमारा अुद्देश्य सफल होगा, सरकार वदल जायगी, अिसमें सदेह है। मान लिया जाय कि महासभावाले धारासभाओमे नही जायेगे, लडके स्कूल-कॉलेजोका वहिष्कार कर देगे, कानूनपेशा लोग अदालते छोड देगे, तो भी मैं पूछता हू कि अिससे सरकारका क्या विगडेगा? अुस पर कौनसी अैसी आपत्ति

आयेगी, जिससे घबडा कर वह प्रबध छोड देगी ? धारासभाअँ सरकारके दूसरे पिट्ठुओसे भरी ही रहेगी, और सरकारके लिअे यह अेक सुविधाकी बात होगी। लडकोके अशिक्षित रहनेसे भी अुसका कुछ बिगडता नही, बल्कि बनता ही है। अदालते सूनी हो जायेगी, यह बात महत्त्व रखती है। लेकिन अिसका सफल होना बहुत कठिन है। वर्तमान समयमे सरकार ही अेक अैसी शक्ति है, जो मुद्दालेहकी अिच्छाओके विरुद्ध अुसकी जायदाद जब्त कर सकती है। लोग अपना दिया हुआ रुपया वसूल करनेकी कोशिश न करेगे या मारकाटका बदला न चुकावेगे, अैसी आशा भी ठीक नही है। अेक कर न देनेकी बात अैसी है, जो सरकारकी भलाअी-बुराअी या अुसके अस्तित्वसे सीधा सबध रखती है। नियमोके मुताबिक वह कर न देनेवालोकी भी जायदाद जब्त कर सकती है, और अगर अुसे नीलाममे लेनेवाले यहा न मिले तो दूसरे देशवालोको बुला सकती है। अत कर न देनेकी हालतमे वह जबरदस्ती कर वसूल करेगी और अिस तरह अपना अस्तित्व कायम रखेगी।

"अेक बात और है। बारडोली, चम्पारण, अफ्रीका आदि जगहोमे आपका अहिंसात्मक सत्याग्रह सफल हो चुका है, अिससे आपको अिसकी सफलतामे विश्वास करनेका बल मिलता है। परतु मौजूदा अुद्देश्य और पहलेके अुद्देश्यमे फर्क है। पूर्ण स्वाधीनताका वर्तमान अुद्देश्य बहुत ही अूचा है, और सरकारके जीवन या मरणमे अुसका सीधा सबध है, बारडोली वगैराके अुद्देश्योमें यह बात नही थी। बारडोलीमे केवल अिसी बातकी निष्पक्ष जाच करवा लेनी थी कि हम पर कर बढाना अुचित है या नहीं। जाच निष्पक्ष होनी चाहिये, यही झगडा था, जाचका सरकारके अस्तित्वमे कोअी सबध नही था। अुद्देश्यकी सिद्धि हो जाने पर भी, मेरी रायमे, बारडोलीके किसानोको जितना फायदा नहीं हुआ, अुससे अधिक मूल्यका अुन्हें त्याग करना पडा है। न केवल बारडोली किंतु अन्य स्थानोके विषयमे भी यह

बात ठीक है। अत परिस्थितिको देखते हुअे मेरी समझमें अगर सरकार पूरी तरह न मिटी, जैसा कि निश्चित है, तो सत्याग्रहके सफल होने पर भी हम असफल होंगे, हमारा प्रयत्न शायद निरर्थक होगा।"

सन् १९२२ मे जो प्रश्न पूछे जाते थे, ठीक वैसे ही प्रश्न अिन विद्यार्थीके हैं। परतु मुझे अिनमे कोअी आश्चर्य नही होता। प्रश्नोंके अुत्तर प्रश्नकर्ताके अतिरिक्त थोडे ही लोग पढते हैं। अुनमें से समाधान तो बहुत कमका होता है। कअियोको अैसे प्रश्नोत्तरोका खयाल भी नही रहता। अिसलिअे जब-जब अैसे प्रश्न पूछे जाय, तब-तब सपादकका कर्तव्य है कि वह अुनका अुत्तर देता रहे।

पहली बात त्याग-भावनाके अभावकी है। यह ठीक है और ठीक नही भी है। ठीक अिसलिअे है कि प्रश्नकर्ताके नजदीकी वायु-मण्डलमें त्याग-भावना प्रतीत नही होती है, और अिस कारण वह यही समझता है कि देश भरमें त्यागवृत्ति कम है, ठीक अिसलिअे नही है कि यदि त्याग-भावनाकी सर्वथा कमी होती तो देशका कुछ भी कार्य होना सभव न था। यह स्वीकार करते हुअे भी कि त्यागकी मात्राके बढनेकी काफी गुजाअिश है, मेरा अनुभव मुझे बताता है कि देशमे त्याग-भावना है और वह बढती जाती है। अिसमे जरा भी शक नही कि पूर्ण स्वराज्य पानेके लिअे त्यागकी मात्रा बहुत अधिक होनी चाहिये। खद्दर पहननेके सबधमे विद्यार्थीने जिस वैश्यवृत्तिका अुल्लेख किया है, अुसे आगे चलकर अुदार और पारमार्थिक वृत्तिमें परिवर्तित होना पडेगा।

त्रिविध बहिष्कारके विषयमे विद्यार्थीने जो कुछ लिखा है, अुसमें मुझे अज्ञान ही अधिक प्रतीत होता है, कारण कि काग्रेसने पाठ-शालाओ और अदालतोंके बहिष्कारका पुनरुद्धार नही किया है। परन्तु मेरा यह विश्वास अवश्य है कि तीनो बहिष्कार आवश्यक हैं। यह कहना कि कौंसिलोमे कोअी न कोअी तो जावेगा ही, फिर काग्रेसवाले क्यो न जाय, अुचित नही। शराबकी दुकान खाली न रहेगी, तो क्या

अुसमे भी हमे जाना ही चाहिये? यदि हम कौसिलोको निरर्थक अथवा हानिकर मानते हो तो अुनमे क्यो जाय? अब पाठशालाओकी बात लीजिये। सरकारी पाठशालाओको त्यागनेसे लडके अशिक्षित रहेगे, अिस मान्यतामे मै भयकर आत्मवचना पाता हू। अग्रेज सरकारके आनेके पहले लडके अशिक्षित नही रहते थे। बात यह है कि अग्रेजी सत्ताके भारतमे कायम होनेके पूर्व प्राथमिक शिक्षा आजसे कही अधिक थी और अुच्च प्रकारकी शिक्षा भी लोग काफी पाते थे। क्या आज हम अितने गिरे हुअे है कि सरकारी शिक्षा बद कर देनेसे हमारी शिक्षा ही बद हो जायगी? अिन विद्यार्थीको जानना चाहिये कि आजकल भारतवर्षमे राष्ट्रीय विद्यापीठ मौजूद है और अुनमे हजारो नवयुवक राष्ट्रीय शिक्षा पा रहे है। यदि लडके तमाम सरकारी पाठशालाअे छोड दे, तो भी अुन्हे अशिक्षित रहनेकी आवश्यकता न पडेगी। हा, यह अवश्य है कि अुन्हे गरीबोके खूनसे सने हुअे पैसोसे निर्मित शानदार मकान पाठशालाके लिअे नही मिलेगे और न स्वतत्रतानाशक शिक्षा मिलेगी।

अदालतोके बहिष्कारके सबधमे यह स्वीकार करना चाहिये कि वह कठिन काम है। आज अुनके प्रति जो मोह है, वह देश-हितका घातक है। जहा तक हो सकता है, अिस मोहको हटानेकी कोशिश करके ही हमे सतुष्ट हो जाना पडता है। किंतु यह भूलना नही चाहिये कि अदालतें प्रत्येक सल्तनतकी प्रधान आश्रय-स्थान होती है। अिस कारण जितने वकील अिन्हें छोड सके, जितने वादी और प्रति-वादी अिन्हे छोडें, अुतना लाभ ही है। हमे तो अदालतोकी प्रतिष्ठाको प्रतिदिन कम ही करना चाहिये।

अतमे यह जानना चाहिये कि प्रत्येक सस्था या मनुष्य अपनी प्रतिष्ठा पर ही निर्भर रहता है। धारासभा, पाठशाला, अदालत अित्यादिसे सरकार प्रतिष्ठा पाती है। बहिष्कारसे प्रतिष्ठा टूटती है। अत अुसे प्रजाके सम्मुख रखनेसे सरकारकी प्रतिष्ठा कम होगी। यह सर्वथा स्वाभाविक है। केवल बदूक-बलमे कोअी सरकार कायम नही रह सकेगी।

सत्याग्रहसे बारडोलीके लोगोने कमाया कम और गवाया अधिक, यह कहना यथार्थ नही है। वे स्वय जानते है कि सत्याग्रहसे अुन्हे अत्यधिक लाभ पहुचा है। यदि यह प्रत्यक्ष देखना हो तो बारडोली जाकर आज कोअी भी देख सकता है। हा, स्वराज्य पानेके लिअे अधिक कष्ट अुठाना होगा, अिसमे न दुखकी बात है, न आश्चर्यकी।

हिन्दी-नवजीवन, १६–१–'३०

८६

क्या अहिंसा छोड़ दी ?

अेक मित्र कहते है कि "आजकल किसी न किसी अखबारमें आपके लिअे अैसी बाते आती है, जिनसे यह भ्रम पैदा होता है कि अब आप हिंसाको भी पसन्द करनेके लिअे तैयार हो गये है। जैसा कि कहा जाता है, गुजरात विद्यापीठमें आपने यह घोषणा की है कि मेरे पकडे जाने पर हिंसामय सग्राम छेड देना, और यह भी कहा है कि यदि पराधीनता और हिंसामे से पसन्दगी करनी पडे तो आप हिंसाको स्वीकार करने पर आमादा हो जायगे। मै तो यह बात माननेके लिअे तैयार नही हू। परतु अखबारमें आनेके कारण सभव है कि जो लोग आपको अच्छी तरह नही पहचानते, वे अिसे मान भी लें। क्या आप अिस पर कुछ प्रकाश डालेंगे ?"

किसी भी पत्रकारके लिअे बगैर जाच-पडताल किये अिस तरह किसीके सबधमें गलत खबर छाप देना बहुत बुरी बात है। जो बात अूपर कही गअी है, वह मैंने कही ही नही। अहिंसा मेरे प्राणके साथ जुडी हुअी चीज है, अुसे मै कभी छोड नही सकता। मेरा विश्वास अहिंसा पर दिन प्रतिदिन बढता ही जाता है। और अुसकी सफलताका प्रत्यक्ष अनुभव भी मुझे होता रहता है। मेरे पकडे जानेके बाद लोगोको क्या करना होगा, अिस बारेमे मैंने जो कुछ भी कहा था वह ठीक अिसका अुलटा था। अर्थात्, मैंने तो यह कहा था कि

अगर अुस मौके पर लोग हिंसक प्रवृत्ति ग्रहण करें तो अहिंसावादी अुसे रोकनेकी चेष्टा करे। पराधीनताके बारेमें जो कहा था वह यह था कि अगर मुझको पराधीनताका या हिंसाकाण्डका साक्षी होनेके लिअे विवश होना पडे, तो मैं हिंसाकाण्डका साक्षी होना अवश्य पसन्द करूंगा। अिस कथनमें और जो अखबारमें छपा है, अुसमें बहुत फर्क है। हिंसा करनेकी तो मेरे कथनमें कोअी बात ही नहीं है। हम सब तो हिंसादि अनिष्ट कर्मोंके साक्षी, अनिच्छासे ही क्यों न हो, मगर हमेशा रहते आये हैं, और रहना होगा।

अुक्त पत्रसे अेक बात सीखने योग्य है। वह यह कि जब किसी प्रसिद्ध लोकसेवक या लोकनेताके सबबमें कोअी भी सामान्य अनुभवसे बाहरकी बात सुननेमें या पढनेमें आवे, तो जब तक अुससे पूछ न लिया जाय, अुस पर कभी विश्वास न करना चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन, २३-१-'३०

८७

राक्षसी विवाह

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी लिखते हैं

"बडी लज्जाके साथ मैं आपका ध्यान 'माथुर हितैषी' के ३० दिसम्बरके अंकमें प्रकाशित 'मथुरामें बालविवाहोंकी भरमार' शीर्षक लेखकी ओर आकर्षित करता हूं। ये विवाह हमारी माथुर चतुर्वेदी जातिमें हुअे हैं। दो वर्ष और २॥ और ३ वर्षकी कन्याओंके विवाह करनेका दुर्भाग्य हमारी जातिको ही प्राप्त है। काफी आन्दोलन किया गया। हमारी जातिके प्रतिष्ठित नेता श्री राधेलालजी चतुर्वेदीने बहुत प्रयत्न किया, पर ये बालविवाह नहीं रोके जा सके। पिछले वर्ष तो ८ महीने और सवा सालकी लडकियोंकी शादी की गअी थी। समझमें नहीं आता कि अिन लोगोंका क्या अिलाज किया जाय? यह बात

> ध्यान देने योग्य है कि हम लोग, यानी चतुर्वेदी समाज, अपनेको सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण समझते है और दूसरे ब्राह्मणो तकके हाथकी रोटी खानेमे पाप समझते है।"

जिन विवाहोका वर्णन बनारसीदासजीने किया है, अैसे विवाहोको राक्षसी न कहे तो क्या कहे? दुःखकी बात यह है कि अैसे विवाहोमे हिस्सा लेनेवाले लोग प्रतिष्ठित रहते हैं। अिससे अुनको रोकनेमें बहुत कठिनाअिया पैदा होती है, और अिसके साथ जब धर्मको मिलाया जाता है, तब तो कठिनाअियोकी मात्रा और भी बढ जाती है। कैसे भी हो, सब अुपद्रवोके लिअे सत्याग्रह अेक सपूर्ण अुपाय हो सकता है, हमेशा हर हालतमे सत्याग्रहका प्रयोग करनेकी हममें शक्ति नही रहती, या प्रयोग करनेका तरीका हमको मालूम नही होता, यह दूसरी बात है। अिससे सत्याग्रहकी नही, लेकिन सत्याग्रहीकी मर्यादा सिद्ध होती है। अेक प्रयोग अुपरोक्त परिस्थितिमे प्रत्येक मनुष्य कर सकता है, जिस घरमे अैसे विवाहका आदर किया जाय, अुसका त्याग करना चाहिये और अुसकी तरफसे किसी प्रकारकी मदद नही लेनी चाहिये। जैसे कि पिता अगर अपनी छोटी लडकीको व्याहना चाहता है या अुसे बेचना चाहता है, तो अुस हालतमे अुस घरके सब लडके-लडकी या कोअी अेक ही, जिसमे शक्ति है, पिताके घरका त्याग करे और अुसकी तरफसे कुछ भी मदद न ले। अैसा करनेमे पिताके हृदय पर कुछ न कुछ असर अवश्य होगा। परतु असर न भी हुआ तो भी जिन्होने त्याग किया है, वे अिस पापसे बच जायेगे। साथ ही अुन्हे श्रद्धा रखनी चाहिये कि अैसे त्यागका अतिम परिणाम शुभ ही हो सकता है। मैंने तो दृष्टात-रूपसे अैसे मौके पर सत्याग्रहका यह अेक ही प्रयोग बतलाया है। परिस्थितिको देखकर प्रत्येक सत्याग्रही और भी प्रयोगोकी तलाश कर सकता है।

हिन्दी-नवजीवन, ३०–१–'३०

वर्णधर्म और श्रमधर्म

(१)

निम्नलिखित प्रश्न पूछे गये है और अुनके अुत्तर प्रत्येक प्रश्नके नीचे ही दिये जाते है

प्र० -- टाल्स्टाय द्वारा प्रतिपादित श्रमधर्म आप मानते है क्या ?

अु० -- अवश्य।

प्र० -- क्या आप चाहते है कि प्रत्येक मनुष्य अपना सब काम स्वय करे ?

अु० -- न मै चाहता हू, न मै अिसे शक्य मानता हू और न टाल्स्टायने अिसे आवश्यक माना है। मनुष्य जितना स्वाधीन है, अुतना ही पराधीन भी। वह जब तक समाजमे रहता है, ओर अुसे रहना ही होगा, तब तक अुमे अपनी स्वाधीनता दूसरोकी, अर्थात् समाजकी स्वाधीनतासे मर्यादित रखनी पडेगी। अिसलिअे अितना ही कहा जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्य यथासभव अपना काम अपने आप कर ले, अर्थात् मै अपने लिअे पानीका लोटा भर लू, परतु अपने लिअे अपना कुआ न खोदू। पानीका लोटा न भरनेमे घमण्ड है, कुआ खोदनेके विचार या आरभमे मूर्खता है। अिसलिअे प्रत्येक कार्य स्वय किया जाय या दूसरोकी सहायतासे, अिसका निश्चय करनेके लिअे विवेक-बुद्धिका अुपयोग करना चाहिये।

प्र० -- क्या आप चाहते है कि सभी लोग शारीरिक श्रम द्वारा अपनी आजीविका अुपार्जन करे ?

अु० -- अवश्य। सब लोग अैसा नही करते है, अिसीमे जगतमें और विशेषतया भारतवर्षमे अत्यत दरिद्रता पैदा हो गअी है। अनारोग्यका भी यही अेक बडा कारण है। धनोपार्जनमे जो अति लोभ पैदा हुआ है, अुसका यह प्रधान कारण है। यदि सब अपनी आजीविका शारीरिक परिश्रमसे पैदा करें, तो लोभवृत्ति कम हो जायगी और

धनोपार्जनकी शक्ति भी अपने आप बहुत क्षीण हो जायगी। शारीरिक परिश्रम करनेसे अनारोग्य भी प्राय मिट जायगा और सबसे बडा लाभ यह होगा कि अूच-नीचका भाव सबका सब नष्ट हो जायगा।

हिन्दी-नवजीवन, ६–२–'३०

(२)

प्र० — वर्णाश्रम धर्ममे जो श्रम-विभाग है, क्या वह मानव-विकास और मानव-कल्याणके लिअे पर्याप्त नहीं है? श्रमधर्म और वर्णधर्म, अिन दोनोमे आप किसको अधिक मानते है।

अु० — अिस प्रश्नकी ध्वनि है कि श्रमधर्म और वर्णधर्म परस्पर विरोधी धर्म है। वस्तुत अैसा कुछ भी नही है। दोनो सहवर्ती और आवश्यक है। वर्णधर्म सामाजिक धर्म है और श्रमधर्म वैयक्तिक। ऋषियोने समाजको चार भागोमें बाटा और समाज-हितकी व्यवस्था करके अुसके द्वारा लोक-घातक प्रतिस्पर्धाको मिटानेकी चेष्टा की। अिसलिअे अुन्होने अेक वर्णको समाजकी ज्ञानवृद्धिका, दूसरेको समाजके जानमालका, तीसरेको समाजके व्यापारका और चौथेको समाजके परिचर्यात्मक व्यवहारका रक्षक बनाया। चारो कार्य अमुक प्रमाणमें आवश्यक थे और है, जिसलिअे अेकको अुच्च और दूसरेको नीच माननेका कोअी भी कारण न था। तुलाधारका दृष्टात देकर व्यासजीने यह बताया भी है कि प्रत्येक धर्मी स्वधर्मके पालनसे मोक्ष-पदके लायक बन सकता है और अेक-दूसरेके साथ स्पर्धा करनेसे, अेक-दूसरेको अुच्च-नीच माननेसे अधोगति होती है।

वर्णधर्मके यह माने भी कभी नही है कि कोअी वर्ण वैयक्तिक श्रमधर्मसे मुक्त है। श्रमधर्म किसी भी वर्णके सब व्यक्तियोंके लिअे है। ब्राह्मणको भी समित्पाणि होकर गुरुके पास जाना पडता था, अर्थात् अुसे भी जगलमें जाकर लकडी लानी और गोसेवा करनी पडती थी। यह काम वह समाजके लिअे नही, किन्तु अपने लिअे, अपने कुटुम्बके लिअे करता था। केवल बच्चे और अपग ही अिस श्रमसे मुक्त रहते थे।

श्रमधर्ममे से टाल्स्टायने जो आजीविका धर्म प्रस्तुत किया है, वह अेक अुपसिद्धात है। टाल्स्टायने देखा कि यदि श्रम या मेहनत सबको करना ही है तो अिसका यह अर्थ है कि मनुष्य अपनी आजीविका शारीरिक श्रमसे पैदा करे, बुद्धिबलसे कभी नही। वर्णधर्ममे प्रत्येक वर्णका धर्म समाज-हितके लिअे अेक कर्तव्य था और आजीविका अुसमे हेतु नही थी। क्षत्रियको धन मिले या न मिले, रक्षा तो करनी ही पडेगी। ब्राह्मणको भिक्षा मिले या न मिले, ज्ञान देना ही पडेगा। वैश्यको धन मिले या न मिले, कृषि-गोरक्षा करनी ही पडेगी। परतु टाल्स्टायका यह कथन सर्वथा ठीक है कि आजीविकार्थ हरअेकके लिअे शारीरिक श्रम करना आवश्यक है। अिस सर्व-साधारण धर्मका लोप होनेसे अथवा अिसे न जाननेके कारण ही आज अिस जगतमे दु खद विषमता पायी जाती हे। यो तो कुछ विषमता हमेशा रहेगी, किंतु वह विषमता अेक पेडके विविध पत्तोके समान सुदर और सुखद लगेगी। शुद्ध वर्णधर्ममे विषमता हे ही, और जब वह अपने शुद्ध रूपमे विद्य-मान था तब वह सुखप्रद, शातिप्रद तथा सुन्दर था। परतु जब कभी अेक मनुष्य अर्थ-सग्रह ही के कारण अपनी बुद्धिका अुपयोग करते है, तब घातक विषमता पैदा हो जाती है। जैसे यदि शिक्षक (ब्राह्मण), सिपाही (क्षत्रिय), व्यापारी (वैश्य) और बढअी (शूद्र) समाज-हितके लिअे नही, बल्कि धन-सग्रहके लिअे अपना धधा करे तो वर्णधर्मका लोप हो जाता है। क्योकि धर्ममे धन-सग्रहको कोअी भी स्थान नही हो सकता। समाजमे शिक्षक, वकील, डॉक्टर, सिपाही वगैराकी आवश्यकता है। परतु जब ये लोग स्वार्थवश काम करते है तब समाज-सरक्षक मिटकर समाज-भक्षक बन जाते हैं।

गीताके तीसरे अध्यायमे भगवानने

"सहयज्ञा प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापति ।
अनेन प्रसविष्यध्व अेप वोऽस्त्विष्ट-कामधुक् ॥"

अर्थात् 'यज्ञके साथ साथ पजाको पैदा करके प्रजापतिने कहा, अिसीसे तुम्हारी वृद्धि हो, यही तुम्हारी कामधुक् हो।'—यह

कहकर दुनियाके अेक महान सिद्धातका निरूपण किया है। और अब हम यज्ञका मूल अर्थ भलीभाति समझ सकते है। यज्ञका अर्थ शारीरिक कर्म है और यह ओश्वरकी प्राथमिक और प्रथम पूजा है। ओश्वरने हमे देह दी है। अन्नके विना देह रह नही सकती और विना परि-श्रमके अन्न पैदा नही हो सकता। अतअेव शारीरिक श्रम सर्व-साधारण धर्म बना। यही टाल्स्टायका ही क्या, सारे ससारका श्रमधर्म है। अिस महायज्ञको न जाननेके कारण ही दुनियामे राक्षसी-वृत्तिका अुदय हुआ और बुद्धिशाली लोगोने बुद्धिका अुपयोग दूसरोको लूटनेके लिअे किया। यह तो स्पष्ट है कि ओश्वर परिग्रही नही है। सर्वशक्तिमान होनेके कारण वह प्रतिदिन अितना ही अन्न पैदा करता है जितना प्रत्येक मनुष्य या प्राणीके लिअे काफी हो जाय। अिस महान नीतिको न जानते हुअे कओी लोग अनेक प्रकारके भोग भोगते है, अिससे दूसरोको भूखो रहना पडता है। अगर अिस लोभको छोडकर अैसे लोग अपनी रोटीके लिअे आप परिश्रम करे और आवश्यक रोटी ही खाये, तो जो कगालियत आज हम देखते है, वह नाबूद हो जाय। अब प्रश्नकर्ता समझ गये होगे कि वर्णधर्म श्रमधर्मका सहवर्ती है, अेक दूसरेका सहायक है और आवश्यक है।

हिन्दी-नवजीवन, १३-२-'३०

(३)

प्र० — चारो वर्णोके गुण किसी अेक ही व्यक्तिमें पाये जायें यह है तो अच्छा, पर क्या अधिकाश मनुष्य-समाज अैसा बन सकता है, और क्या समाजके सामने यह आदर्श रखना अुचित है?

अु० — कओी गुणकर्म तो सब वर्णोके लिअे समान है ही, और होने चाहिये, लेकिन सब वर्णोके सब गुण सबमें आना अनावश्यक और असभव है।

प्र० — टाल्स्टायका श्रमधर्म यदि सर्वमान्य हो अुठे, तो 'जब लग ताजा पोही बेही, तब लग भूलै राम सनेही' कहनेवाले कबीरको और पुष्पकी भाति सप्रतीक्ष भावसे बैठनेकी मनोकामनावाले रवीद्रका

अिस दुनियामे रहना दूभर न हो जायगा और क्या यह ससारके लिअे दु खकी बात न होगी ?

अु० — श्रमधर्म कबीर या रवीद्रनाथके सिद्धातोका खडन करनेवाला नही है, बल्कि अुन दोनोंके काव्यको अधिक शक्तिशाली और शोभास्पद बनानेवाला है। श्रमधर्म बौद्धिक शक्तिका ह्रास नही करता, अुलटे अुसका सच्चा पोषक है। भेद मात्र अितना ही है कि श्रमधर्मका अुपासक अकेली काव्य-रचना ही से अपनी आजीविका कभी पैदा नही करेगा और न श्रमका सर्वथा त्याग ही करेगा। कबीर श्रम-धर्मके पोषक थे ही। अुन्होने भजनादि बनाकर कभी कौडी भी नही कमाअी थी। वह कपडा बुनकर अपनी रोटी कमाते थे। धर्म-प्रचार अुनका स्वभाव या मनोरजनका विषय बन गया था। रवीद्रनाथ अिस युगके कवि-श्रेष्ठ है, क्योकि काव्य-रचना द्वारा वह अपने गुजारेके लिअे धन नही कमाते। काव्य-रचनामे अुन्हे जो कुछ आमदनी होती है, सो सब वह अपनी सस्थाको दे डालते है। अुनकी अपनी जायदादमें से अुनका निर्वाह होता है। वह श्रमधर्मको कहा तक मानते है, सो मै नही जानता, अितना जरूर जानता हू कि वह श्रमधर्मके निंदक कदापि नही है। अितिहासमे हमें पता चलता है कि प्राचीन कवियो अर्थात् ज्ञानियोने श्रमधर्मका पालन किया है, फिर भले वह अनजाने ही क्यो न हो। फलस्वरूप अुनकी प्रसादी आज भी मौजूद है।

प्र० — श्रमधर्मके अनुसार तो अीसा और बुद्ध और स्वय टाल्स्टाय भी दोषी ही रहते है। टाल्स्टायकी स्त्रीने ही कहा है कि पुस्तकें लिखनेके सिवा अिनसे कोअी काम नही हो सकता। लोगोकी हसी प्राप्त करने लायक बढअीगिरी या दूसरे काम अुन्होने सीखे हो सही, पर अिनसे टाल्स्टायका श्रमधर्म सतुष्ट नही हो सकता। क्या अिसी-लिअे अिस पर सावधानीपूर्वक विचार करनेकी जरूरत नही है ?

अु० — अिस मतव्यमें अितिहासकी विस्मृति है। अीसा तो बढअी थे। अुन्होने बौद्धिक शक्तिको अपनी आजीविकाका साधन कभी नही बनाया था। बुद्धदेवने ज्ञानप्राप्तिसे पहले कितना परिश्रम

किया था, सो हमें मालूम नहीं है। हां, अितना हम जानते हैं कि अुन्होंने अपनी आजीविकाका अुपार्जन धर्म-प्रचार द्वारा नहीं किया, वह भिक्षान्न खाते थे। अुसमें श्रमधर्मको कोअी हानि नहीं पहुंच सकती थी। परिव्राजकको काफी शारीरिक श्रम अुठाना पड़ता है। अब रहे टाल्स्टाय, सो अुनकी धर्मपत्नीने जो कुछ कहा है, वह सत्य है, परंतु पूर्ण सत्य नहीं है। विचार-परिवर्तनके बाद टाल्स्टायने जो पुस्तकें लिखी थीं, अुनकी आयमें से अपने लिअे अुन्होंने कुछ नहीं लिया था। लाखोंकी जायदादके मालिक होते हुअे भी वे अपने घरमें मेहमान बनकर रहते थे। ज्ञानप्राप्तिके बाद वह हर रोज आठ घंटोंकी मजदूरी करते थे। कभी खेत पर जाते थे तो कभी घरमें बैठकर जूते बनाते थे। अिन कामोंसे कुछ नहीं तो भी अपने पेटके लिअे आवश्यक मजदूरी वह अवश्य पा जाते थे। टाल्स्टाय जो कहते थे, वह करनेकी भी बहुत चेष्टा करते थे। यह अुनकी विशेषता थी। अिस सारे कथनका निचोड़ यह है कि जिस धर्मका पालन प्राचीन लोगोंने स्वतः किया और जिसका पालन आज भी जगतका अधिकांश करता है अुस श्रमधर्मको अुन्होंने जगतके सामने स्पष्ट रूपमें रखा है। सच तो यह है कि श्रमधर्म टाल्स्टायकी मौलिक शोध नहीं, शोध थी रूसके अेक महान लेखक बुरनाफकी। टाल्स्टायने अुसको बल दिया और जगतके सामने जाहिर किया।

हिन्दी-नवजीवन, २०-२-'३०

(४)

प्र० — टाल्स्टायने लिखा है 'पैसा और गुलामी अेक ही वस्तु है — अिसके अुद्देश्य अेक हैं और अिसके परिणाम भी अेकसे हैं।

रुपया गुलामीका नया और भयंकर स्वरूप है और पुरानी व्यक्तिगत दासताकी भांति यह गुलाम और मालिक दोनोंको पतित और भ्रष्ट बना देता है। अितना ही क्यों? यह जिससे भी अधिक बुरा है, क्योंकि गुलामीमें दास और स्वामीके बीच मानव-संबंधकी जो स्निग्धता रहती है, यह अुसे भी नष्ट कर देता है।'

क्या आप अिस बातसे सहमत है? क्या रुपया निर्दोष विनिमयका साधन कभी नही बन सकता? यदि बन सकता है तो कैसे, और नही तो क्यो?

अु०— प्रश्नकर्ताने जैसा लिखा है यदि वही बात टाल्स्टायने कही हो तो मुझे वह मालूम नही है। गुलामी और पैसा सजातीय शब्द नही है, अिसलिअे अिन दोनोमे मुकाबला नही हो सकता। गुलामी मनुष्यकी अेक स्थिति है और हमेशा त्याज्य है। पैसा जगतके साथ अपना आर्थिक व्यवहार चलानेका अेक साधन-मात्र है। फिर भले यह कितना ही बलवान साधन क्यो न हो, अुससे जितनी बुराअीकी सभावना है अुतनी ही भलाअी भी हो सकती है। यही बात दूसरे बहुतेरे जड साधनोके लिअे भी कही जा सकती है। किसी न किसी हालतमे और किसी न किसी रूपमे पैसेकी आवश्यकता तो रहेगी ही। गुलामीकी आवश्यकता न कभी थी, न रह सकती है। यहा पैसेका अर्थ समझ लेना चाहिये। जब मै अनाज देकर जूते खरीदता हू, तो जूते खरीदनेका साधन होनेके कारण अनाज पैसा बन जाता है। मगर चूकि बहुतेरे लोगोके लिअे अनाजके जरिये लेन-देन चलाना मुश्किल होता है, सज्ञा-रूपसे धातुका या कागजका अुपयोग हो सकता है। यह धातु अथवा कागज ही पैसा है। अिसमे कोअी बाधा नही पड सकती। किन्तु जब कोअी मनुष्य अैसे कागज, धातुके सिक्के या अनाजका आवश्यकतासे ज्यादा सग्रह करता है तब बुराअी पैदा होती है। अिससे यह सिद्ध होता है कि स्वय पैसेमे कोअी दोष नही है, परन्तु अुसके लोभमे दोष है। ठीक अिसके अुलटे गुलामी लोभकी निशानी है। अेक भी आदमीको गुलाम बनाकर रखनेमे लोभ है, दोष है। मगर पैसा या धनका अधिक मात्रामे रखना दोष है।

परन्तु जो मनुष्य वर्णधर्मको समझता है, वह सतुष्ट रहता है, अिसीलिअे वह धनका लोभ भी नही करेगा। और जो मनुष्य श्रमधर्म समझेगा वह किसीको गुलाम बनाकर नही रखेगा।

हिन्दी-नवजीवन, २७–२–'३०

८९

गंदा साहित्य

कोअी देश और कोअी भाषा गंदे साहित्यसे मुक्त नहीं है। जब तक स्वार्थी और व्यभिचारी लोग दुनियामें रहेंगे, तब तक गंदा साहित्य प्रकट करनेवाले और पढ़नेवाले भी रहेंगे। लेकिन जब अैसे साहित्यका प्रचार प्रतिष्ठित माने जानेवाले अखबारोंके द्वारा होता है, और अुसका प्रचार कलाके नामसे या सेवाके नामसे किया जाता है, तब वह भयंकर स्वरूप धारण करता है। अिस प्रकारका गंदा साहित्य मुझे मारवाड़ी समाजकी तरफसे मिला है और प्रतिष्ठित मारवाड़ी लोगोंकी ओरसे प्रकाशित अेक वक्तव्यकी प्रति भी मुझे भेजी गअी है। अिस वक्तव्यमें मारवाड़ी समाजको जागृत किया गया है और बताया गया है कि अैसे साहित्यका, जो कलाके नामसे परन्तु केवल धन कमानेके लिअे प्रकट होता है, समाजको बहिष्कार करना चाहिये। जिस पत्रको विशेषतया ध्यानमें रखकर यह वक्तव्य प्रकट किया गया है, वह 'चाँद' नामक मासिकका 'मारवाड़ी अंक' है। मैं अुसे पूरा पढ़ नहीं सकता और न पढ़नेकी अिच्छा ही है, लेकिन जो कुछ मैं पढ़ सका हूँ, वह अितना गंदा और बीभत्स है कि कोअी भी मनुष्य, जिसके दिलमें विवेक है या समाजके हितका जरा भी खयाल है, कभी अैसी बातें प्रकाशित नहीं करेगा। सुधारके नामसे अैसी चीजोंका प्रकट करना अनावश्यक और हानिकारक है। 'चाँद'के समान गंदे गीत गानेवाले लोग अखबार नहीं पढ़ा करते। पढ़नेवाले दो प्रकारके ही हो सकते हैं। अेक पढ़े-लिखे कामुक लोग, जो अपनी वासनाको किसी न किसी प्रकार तृप्त करना चाहते हैं, दूसरे निर्दोष-बुद्धि, जो आज तक व्यभिचारमें फँसे नहीं हैं, परन्तु जिनकी बुद्धि परिपक्व भी नहीं है, जो लालचमें पड़कर विकारवश हो सकते हैं। अैसे लोगोंके लिअे गंदा साहित्य घातक है। यही सब लोगोंका अनुभव

भी है। मुझे अुम्मीद है कि प्रतिष्ठित मारवाडी सज्जनोंके वक्तव्यका असर 'चाद' के सपादक अित्यादि पर होगा, वे अपने अिस अकको वापस ले लेगे और दुवारा अैसा गदा साहित्य प्रकट न करनेकी कृपा करेगे। अिससे भी बढकर कर्तव्य तो अिस बारेमे मारवाडी समाजका और सर्व-साधारण समाजका है। वह अैसा गदा साहित्य न कभी खरीदे और न पढे ही। हिन्दी पत्रोंके सपादकोंके सर पर दोहरा बोझ है। क्योंकि हिन्दीको हम राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं और अिसलिअे अिस भाषाकी रक्षा करनेका विशेष धर्म अुन्हे प्राप्त होता है। मेरे-जैसा राष्ट्रभाषाका पुजारी राष्ट्रभाषामे अुत्कृष्ट विचारोंको प्रकट करने-वाली पुस्तकोंकी ही प्रतीक्षा करेगा। अिसलिअे यदि सम्भव हो तो हिन्दी साहित्य सम्मेलनको अेक भाषा-समिति नियुक्त करनी चाहिये, जिसका धर्म प्रत्येक नअी पुस्तककी भाषा, विचार आदिकी दृष्टिसे परीक्षा करना हो। अिस परीक्षामे जो पुस्तके सर्वोत्तम मानी जाय और जो गदी ठहरे, समिति अुनकी अेक फेहरिस्त तैयार करे और अच्छी पुस्तकोंका प्रचार तथा गदी पुस्तकोंका बहिष्कार करनेके लिअे जनताको प्रेरित करे। अैसी समिति तभी सफल हो सकती है, जब अुसके सदस्य साहित्य-ज्ञान और साहित्य-सेवाके लिअे ही अपने-आपको अर्पित कर दे।

हिन्दी-नवजीवन, ६–३–'३०

वगाल-आसाममे हिन्दी

पाठकोको पता होगा कि सन् १९२८ मे कलकत्तेमे अेक हिन्दी-प्रचार-समिति स्थापित की गअी थी। ममितिके कोपाध्यक्ष श्री घनश्यामदास विडला थे। अिम ममितिके कार्यका विवरण और हिमाव मेरे पास आ गया हे। विवरणमे से निम्नलिखित वाते नीचे देता हू

"समेलनकी ओरमे फरवरी मासमे ही कलकत्तेमे चार पाठशालाअे खोली गअी — वैठकखाना रोड, भवानीपुर, वाग-वाजार और प्रवासी कार्यालय। अिनमे कोअी ६० विद्यार्थियोने नाम लिखाये। प्रवासी कार्यालयवाली पाठशाला शीघ्र ही वन्द कर देनी पडी, क्योकि वहाके विद्यार्थी अितने व्यस्त थे कि अुन्ह समय ही नही मिला। शेष पाठशालाओमे से वैठकखाना रोडकी पाठशाला आगे चलकर आर्य समाजवाली पाठशालामें मिला दी गअी। कलकत्तेमे तथा वाहर अन्यान्य पाठशालाअे खोलनेका भी शीघ्र प्रयत्न किया जाने लगा और परिणाम यह हुआ कि अप्रैलके अत तक अिन पाठशालाओके अतिरिक्त दो नअी पाठ-शालाअे खोली गअी — अेक आर्य समाज मदिर, कलकत्तामें और अेक खादी प्रतिष्ठान, सोदपुरमे। अिनके अतिरिक्त वोगरा, दीनाजपुर, वाकुरा, रानीगजकी चार पाठशालाअें सम्मेलनसे सम्वद्ध कर ली गअी। धीरे-धीरे आदोलन आगे वढाया गया और जुलाअीके अन्त तक अुपरोक्त दस पाठशालाओंके अतिरिक्त पाच नअी पाठशालाअे और खुली। अेक कलकत्तेमें शिमला व्यायाम समितिमे और चार वाहर — रगपुर, ढाका, जैसोर और मैमनसिंहमे खुली। अिन पाठशालाओंमें ढाका और रगपुरमें सम्मेलनके प्रचारक स्वय काम कर रहे हैं। दूसरी जगहो पर वहाके अुत्साही निवासी काम सभाले हुअे हैं।

अिसके बाद भी प्रचार-कार्य बराबर जारी रहा और नवम्बरके अन्त तक तीन नअी पाठशालाअे और खुली —अेक पल्ली सस्कार समिति कार्यालय कलकत्तामे, और दूसरी नवद्वीप तथा जमालपुरमे। जमालपुरके अुत्साही निवासियोने हिन्दी पुस्तकालय खोलनेके लिअे अेक जमीनका टुकडा भी खरीद लिया है।

"अिन अठारह पाठशालाओमे से रगपुर, ढाका, वागबाजार, भवानीपुर और बैठकखाना रोडकी पाठशालाओका खर्च सम्मेलनके जिम्मे रहा। शेप स्थानोके खर्चका भार तत्स्थानीय सज्जनोने ही सभाला। अिस समय कुछ सज्जन सहायताके रूपमे कुछ चाहते है। अुनमे लिखा-पढी हो रही है। प्राय सर्वत्र प्रयत्न यह किया जा रहा हे कि जहा पाठशालाअे हो वहासे ही अुन पाठशालाओका खर्च निकाला जाय। अिसके अनुसार प्रचारकोको हिदायत भी दी जा चुकी हे।

"पाठशाला खोलनेके अतिरिक्त अपने अनुकूल वायुमण्डल तैयार करनेके लिअे प्रचार-कार्य भी विशेष रूपसे किया गया। अिसके लिअे कअी सार्वजनिक सभाअें करके, समय-समय पर समाचार-पत्रोमे विज्ञप्तिया और लेख प्रकाशित करवाकर तथा प्रचार-सबधी यात्राअे करके और सार्वजनिक सस्थाओमे अिस आन्दोलनके अनुकूल प्रस्ताव पास करके प्रचार किया गया। रगपुरमे बगाल प्रातीय राष्ट्रभाषा सम्मेलन भी किया गया। अिस अधिवेशनका बहुत अच्छा प्रभाव पडा। अिससे प्रातके कोने कोनेमें हमारी आवाज पहुची और अिसके बाद वाले दौरेमे जब हम लोग जैसोर, झालाकोठी, बारीसाल आदि गये तो परिस्थिति बहुत कुछ अनुकूल पाअी। अिन कामोके अलावा तुलसी-जयतीका अुत्सव बडी धूमधाममे मनाया गया। अिस अवसर पर अेक कवि-सम्मेलन भी किया गया। यात्राओमे प्रचार-कार्यको सबसे अधिक सहायता मिली। हिन्दीकी आवश्यकता अब प्राय सभी अनुभव करते है और वह अवस्था आ गअी है, जब प्रत्येक जिलेमें अेक

केन्द्र स्थापित हो सकता हे। सम्मेलनकी ओरसे छात्रवृत्ति देकर चार प्रचारक तैयार किये गये है। अिनमे से दो रगपुर और ढाकामे काम कर रहे है, अेक सज्जन चादपुरमे है और अेक फिलहाल कलकत्तेमे ही काम करते है।

"आसामका हिन्दी-प्रचार कार्य अधिकाशमे श्री लक्ष्मीनारायण शास्त्री पर ही निर्भर है। वह बडे परिश्रम और अध्यवसायके साथ काम कर रहे है। पहलेसे स्वतत्र रूपसे काम करते रहनेके कारण अुनको अनुभव भी है, अत वह काममे सफल हो रहे है। अुन्होने ११ स्कूल खोले है, जिनमे से प्रत्येकमे औसतन ३०–४० विद्यार्थी पढते है। पिछले दिनो दिवालीके अवसर पर अुन्होने सफलतापूर्वक आसाम प्रान्तीय राष्ट्रभाषा सम्मेलन भी किया। खर्चका प्रबध वे किसी तरह वहीसे कर लेते है। किन्तु अब खर्च चलानेमे कठिनाअी हो रही है। अत वह भी सहायताके लिअे लिखा-पढी कर रहे हैं। सक्षेपमे पिछले सालका यही कार्यविवरण है।

"अिस समय सम्मेलनकी आर्थिक अवस्था खराब है और अिसलिअे काम आगे बढानेमे रोकना पड रहा है। खर्च कम करनेके विचारसे पिछले अक्तूबर महीनेसे मत्रीने दो प्रचारकोका खर्च, जिसे देनेमे कार्यसमिति असमर्थ थी, अपने अूपर ले लिया है। भवानीपुरकी पाठशालाके लिअे अध्यापकका जो खर्च लगता है, वह भी मत्री अपनी जेबसे ही देते है। धनाभावको मिटानेका प्रयत्न किया जा रहा है। आशा है, शीघ्र ही यह सकट दूर होगा।"

अिससे मालूम होता है कि काम कुछ न कुछ अशमे हो रहा है। अिस कार्यके और भी बढनेकी बहुत गुजाअिश है। प्रत्येक पाठशालाका खर्च स्थानिक मददसे पूरा करनेका प्रयत्न किया जा रहा है, और यह स्तुत्य हे। अिसी तरह सफलता प्राप्त हो सकती है। आरभ भले ही मुख्य केन्द्रसे किया जाय। अतमें तो सारा स्थानिक कार्य स्वावलबी ही बन जाना चाहिये। तभी प्रचार-कार्य विस्तृत और स्थायी

रूप पकड सकता है। बगाल और आसाम अैसे क्षेत्र है, जिनमे हजारो लोगोको हिन्दी पढाअी जा सकती है। अिस कार्यके दो विभाग तो है ही अेक शिक्षा और दूसरा स्थानिक सम्मेलनका व्याख्यान द्वारा प्रचार-कार्य। अेक तीसरे विभागकी और आवश्यकता है, और वह हे शिक्षाको सुलभ करनेके अुपायोका सशोधन। तज्ज्ञ और तत्परायण शिक्षक शिक्षणक्रमको शीघ्रतासे सफल करनेके लिअे प्रतिदिन अुपायोकी खोज करते रहते है। बगला और आसामी भाषाओके बहुतेरे शब्द हिन्दीसे मिलते-जुलते है। अिस विषय पर परिचय करानेवाली पुस्तके लिखना, स्वय-शिक्षक तैयार करना, हिन्दी-बगला और बगला-हिन्दीके छोटे-छोटे शब्दकोष प्रकट करना और नागरी लिपिमे बगला पुस्तके तथा बगला लिपिमे हिन्दी पुस्तके प्रकाशित करना आदि काम बहुत ही जरूरी है। अैसी पुस्तके स्वावलबी बन सकती है, जैसे कि मद्रासमे आज लगभग बन चुकी है। जब पुस्तके सचमुच ही अुपयोगी और अच्छी होती है, तब अुनकी प्रतिष्ठा अपने-आप बढ जाती है और लोगोसे अुन्हे प्रोत्साहन भी खूब मिलता हे।

अेक बात और। बगाल मारवाडी व्यापारियोका अेक बडा केन्द्र है। बगालमें हिन्दी-प्रचारका काम अिन्ही भाअियोकी अेक खास जिम्मेदारी है। अत अिस प्रचार-कार्यमे धनाभावके कारण कोअी रुकावट नही पडनी चाहिये।

हिन्दी-नवजीवन, १३-३-'३०

९१

स्वराज्य और रामराज्य

स्वराज्यके कितने ही अर्थ क्यो न किये जाय, मै भी अुसके कितने ही अर्थ क्यो न बताता रहा हू, तो भी मेरे नजदीक तो अुसका त्रिकाल-सत्य अेक ही अर्थ है, और वह है रामराज्य। यदि किसीको रामराज्य शब्द बुरा लगे तो मै अुसे धर्मराज्य कहूगा। रामराज्य शब्दका भावार्थ यह है कि अुसमे गरीबोकी सपूर्ण रक्षा होगी, सब कार्य धर्मपूर्वक किये जायगे और लोकमतका हमेशा आदर किया जायगा। पर रामराज्यकी प्राप्तिके लिअे सब लोगोको हाथ बटाना चाहिये। अिस कामके लिअे हमारे पास खादी ही अेक सर्व-व्यापक और रचनात्मक साधन है। लेकिन लोगोकी शक्तिको बढानेके लिअे किसी दूसरी व्यापक वस्तुकी भी आवश्यकता थी। नमक-कर वह वस्तु है, और हम अुसे पा चुके है। नमकका अुपयोग तो गरीब और अमीर, दोनो, समान रूपमे करते है, और चूकि अिस सर्वोपयोगी, सबके लिअे आवश्यक वस्तु पर कर लगाया गया है, हरअेक मनुष्य नमक-करके अिस कानूनका सविनय भग कर सकता है, और यो अपनी शक्ति बढा सकता है। अिस तरहके सविनय भगमे जो शक्ति बढेगी, अुसके शातिमय और शातिप्रद होनेके कारण राम-राज्य स्थापित करनेमे अुससे हमे बडी मदद मिलेगी। नमक-करके समान और भी अनेक कर है, जो जनताके लिअे भाररूप है और जिन्हे मिटानेका प्रयत्न करनेमे लोगोको सच्ची शिक्षा मिल सकती है, अुनकी शक्ति बढ सकती है। अैसे साधनोमे रामराज्यकी स्थापना आसान हो जायगी। पूर्ण रामराज्य हमे कब मिलेगा, सो तो कोअी नही कह सकता। परन्तु रातदिन अुसीकी रट लगाये रहना हम सबका धर्म है। और सच्चा चिंतन तो वही है, जिसमें रामराज्यके लिअे योग्य साधनका भी अुपयोग किया गया हो। यह याद रहे कि रामराज्य

स्थापित करनेके लिये हमे पाण्डित्यकी कोअी आवश्यकता नही है। जिस गुणकी आवश्यकता है, वह तो सब वर्गोके लोगोमे — स्त्री, पुरुष, बालक और बूढोमे — तथा सब धर्मोके लोगोमे आज भी मौजूद है। दु ख मात्र अितना ही है कि सब कोअी अभी अुसकी हस्तीको पहचानते नही है। क्या सत्य, अहिंसा, अनुशासन या मर्यादा-पालन, वीरता, क्षमा, धैर्य आदि गुणोका हममे से हरअेक, यदि वह चाहे तो, आज ही परिचय नही दे सकता? बात यह है कि हम लोग माया-जालमे फसे हुअे है, और अिसी कारण अपने पासकी चीजको पहचान नही रहे है, अुलटे दूरकी चीजोको पहचाननेका निरर्थक दावा करते है। नि सदेह यह बडे शोककी बात है।

पर तो भी 'हिन्दी-नवजीवन' के पाठकोसे मै प्रार्थना करूगा कि आज देशमे जो महायज्ञ आरभ हो चुका है, अुसमे वे पूरी तरह हाथ बटानेको तैयार रहे।

हिन्दी-नवजीवन, २०–३–'३०

९२

तलवारका न्याय

अेक अध्यापक महोदय लिखते है

"ब्रिटिश शासनमें भारतवर्षका भूमिकर जमीनका भाडा है या टैक्स, यह अेक जटिल समस्या है। टैक्स तो यह हो नही सकता, क्योकि सरकारकी मालगुजारी छोटेसे छोटे किसानसे भी, जिसकी खेतीकी आय अुसके भरण-पोषणके लिअे भी पर्याप्त नही है, बराबर वसूल की जाती है। भू-भाडेका सिद्धान्त भी नही ठहरता, क्योंकि अिसके अनुसार तो देशकी सारी जमीनकी मालिक सरकार हो जाती है, और लोगोको खेती करनेके लिये अुसीने अुसके नियत किये हुअे भारी भाडे पर जमीन लेनी

पडती है। किसानोको यह मौका ही नही कि वे अिस वातकी चेष्टा कर सकें कि जहासे सस्ते भाडे पर जमीन मिल सके वहासे ले। हमारी सरकार अिस समस्याको यह कहकर टालती रही है कि अुसने तो अपने पूर्वज मुगल वादशाहोकी ही परिपाटीका अनुसरण किया है। मुगलोंके वन्दोवस्तके आवार पर ही अुसने अपनी मालगुजारी नियत की है। यह वात कहा तक ठीक ठहरती है, यही नीचे वताया जाता है।

"श्रीयुत रमेशचन्द्र दत्त लिखित 'अिडिया अडर अर्ली व्रिटिश रूल' पुस्तकके पृष्ठ ८५ मे मुगल वादशाहोके शासन-कालके विभिन्न समयकी वगाल प्रान्तकी मालगुजारीके वदोवस्त-सवधी अक नीचे दिये जाते है

वदोवस्तका विवरण	वर्ष (अीस्वी)	मालगुजारी (रुपयोमे)	वृद्धि या कमी	समय वर्ष
अकवरके समयमे राजा टोडरमल द्वारा वदोवस्त	१५८२	१,०६,९३,१५२	—	—
सुल्तान शुजा द्वारा	१६५८	१,३१,१५,९०७	२४,२२,७५५ वृद्धि	७६
जफरखा द्वारा	१७२२	१,४२,८८,१८६	११,७२,२७९ वृद्धि	६४
शुजाखा द्वारा	१७२८	१,४२,४५,५६१	४२,६२५ कमी	६

"अिन अकोमे मालूम होता है कि राजा टोडरमलके वदोवस्तसे सुल्तान शुजा तक अर्थात् ७६ वर्षमें मालगुजारीकी वृद्धि केवल २४ लाख २२ हजार रुपये हुअी थी। मुगलकालकी अिस वृद्धिके मुकावलेमे अग्रेजी राज्यके शासन-कालके अकोका अव मिलान कीजिये। सन् १८७४ अी० मे अग्रेजी राज्यका भारतवर्षमें विस्तार प्राय पूर्ण हो चुका था, अिसलिअे अुसने आगेकी तुलना करनेमे हमें कोअी दिक्कत नही पडती। नीचे अग्रेजी राज्यमे भारतवर्षकी कुल मालगुजारीके कुछ अक दिये जाते है

वर्ष	मालगुजारी (रुपयोमे)	वृद्धि	समय
१८७४ ऑी०	१७ करोड ८८ लाख	—	—
१८९८ ऑी०	२३ " ३६ "	५ करोड ४८ लाख	१४ वर्ष
१९१३ ऑी०	२८ " ५ "	४ " ६९ "	१४ "
१९२० ऑी०	२९ " १ "	१ " ० "	७ "
१९२९ ऑी०	३६ " ५२ "	७ " ५२ "	९ "

"अिन अकोमे से पहले चार अध्यापक सी० अेन० वकीलके दिये हुअे है, और पिछला 'टाअिम्स ऑफ अिडिया' की सन् १९२९ की 'अिडियन अीयरबुक' से लिया है। अिन अकोसे विदित होता है कि जहा मुगल शासनकालमे ७६ वर्षोमे केवल २४ लाख रुपयोकी ही वृद्धि भूमिकरसे हुअी थी, वहा ब्रिटिश हुकूमतके अदर सन् १८७४ ऑी० से १९२९ तक केवल ५५ वर्षो ही मे मालगुजारीकी वृद्धि पूरे १८ करोड ५५ लाख रुपयोकी हो गअी। मुगलोके समयमे जहा ७६ वर्षोमे वृद्धि केवल २३ फीसदी हुअी थी, वहा अग्रेजी कालमे ६५ वर्षोमे १०० फीसदीसे भी अधिक वृद्धि हो गअी है।

"मालगुजारीकी वसूलीके अक लिये जाये तो और भी भारी और प्रत्यक्ष अतर दिखलाअी पडेगा। बगाल प्रान्त अग्रेजी राज्यमे सन् १७६५-६६ ऑी० से आया। अुससे कुछ वर्ष पहले मुसलमान नवाबके समयकी मालगुजारीकी वसूलीके बगाल प्रान्तके अक तथा साथ ही अग्रेजी आधिपत्यमे आने पर वसूलीके अक नीचे सर जॉन शोरके खरीतेसे दिये जाते है

सन्	कुल मालगुजारी (रुपयोमें)	वसूली कितनी हुअी (रुपयोमे)
१७६२-६३	१,४२,४५,५६१	६४,५६,१९८
१७६३-६४	"	७६,१८,४०७
१७६४-६५	"	८१,७५,५३३
	अग्रेजी आधिपत्य कायम होने पर	
१७६५-६६	"	१,४७,०४,८७५

"अिन अकोसे विदित होता है कि मुसलमानी शासनकालमें वदोवस्तके अनुसार जितनी मालगुजारी थी, वह सब वसूल किसी भी वर्ष नही होती थी, वह केवल नाममात्रकी ही थी। और सिर्फ अुसकी आधी ही के करीव वसूल होती थी। अग्रेजी शासनमे यह वात नही है। आजकल तो दुर्भिक्ष कालमें भी मालगुजारीकी वसूली पूरी कठोरतासे की जाती है।

"भारतके गरीव किसानो पर अग्रेजी राज्यमे भूमि-करकी भारी कठोरताके सवधमे सन् १८७५ अी० के भारत-सचिव लार्ड सेलिसवरी तकने अपने अेक खरीतेमे अिस प्रकार लिखा है

"'भारतवर्षमे यह अच्छा सिद्धान्त नही कि सरकारी आयका अधिकाश भाग मालगुजारीके रूपमे गावोसे वसूल किया जाय, जहा पर कि रुपये और पूजीकी नितात कमी है, और शहरोको अेक तरहसे ढीला छोड दिया जाय, जहा कि धन वहुत है और वहुतसा भोग-विलासोमे व्यर्थ नष्ट होता है। **यदि भारतवर्षका खून चूसना ही है** तो छुरा अुन्ही स्थानो पर चलाया जाय जहा पर खून वहुत जमा है या काफी है, अुन भागो पर नही जो पहले ही अुसकी कमीके कारण कमजोर है।'"

अिस लेखको पढकर मुझे मेमने और भेडियेके किस्मेका स्मरण हो आया। भेडिया किसी न किसी तरह मेमनेको खा जाना चाहता था, परन्तु किसी न्याय्य वहानेकी खोजमे था। जव कोअी ठीकसा वहाना न मिला तव मेमनेके वापदादोका दोष वताकर अुसने अुसे मार खाया। लोगोके पास जमीन है, परन्तु न्यायत अुसका मालिक कौन हे, अिस सवालकी छानवीनसे सल्तनतको क्या वास्ता? सल्तनत तो रुपयोकी भूखी है और तलवारके वलसे रुपये वसूल करती है। धारासभामे नौकरशाही लवी-चौडी वहस होने देती है, पर अुन वहसके पीछे विश्वास तो यह रहा है कि आखिर सरकारकी माल-गुजारीमे कुछ कमी नही होगी, फिर भले ही जमीन किसीकी क्यो न मानी जाय।

अिसलिअे हमारे सामने सच्चा सवाल तो यह है कि हम अिस तलवार-वलका मुकावला कैसे करे? क्या तलवारसे करेगे? यदि तलवार-वलका मुकावला तलवारसे ही करना है, तो अभी हमे वर्षों तक गुलामीमे रहना पडेगा। क्योकि कैसा भी शासन क्यो न हो, मालगुजारी भरनेवाले करोडो किसानोका तलवार-वल अेक ही दिनमे कभी वढ नही सकता। जमीन पर किसानका स्वामित्व सिद्ध करनेका अेक ही मार्ग है और वह यह है कि किसानोमे सत्याग्रहका मत्र फूक दिया जाय। यह अेक अैसा वल है जो सवमे छिपा हुआ है। किसानको अिस वलका ज्ञान-भर हो जाना चाहिये। यदि किसान यह समझ ले कि शातिपूर्वक अन्यायका विरोध करनेसे अुसकी जमीन अुससे कोअी नही छीन सकता, तो वह कदापि अन्यायके वश नही होगा। अिसी सत्याग्रहका सवक आज सारा हिन्दुस्तान सीख रहा है। यदि अिस पाठशालामे किसान भी शामिल हो गये तो अच्छा ही है। अुस हालतमें जमीनके स्वामित्वकी यह जटिल समस्या अपने-आप हल हो जायगी।

हिन्दी-नवजीवन, २७–३–'३०

९३

मद्यपान-निषेध

पडित देव शर्मा 'अभय' हरिद्वारके अिर्दगिर्द मद्यपान-निषेधके लिअे कुछ आन्दोलन करना चाहते है। मैंने अुन्हे यह कहकर अपनी समति दे दी है कि यदि अुनमें आत्मविश्वास हो तो वह अवश्य ही अिस कामको अुठा ले। असहयोगकी कल्पनाकी अुत्पत्ति आत्मशुद्धिकी भावनामें मे हुअी है। अिसीलिअे सन् १९२१ मे मद्यपान-निषेधका प्रचण्ड आन्दोलन शुरू हुआ था और अुसमें सफलता भी ठीक-ठीक मिली थी। वादमें यह आन्दोलन वद करना पडा या अपने-आप ही वद हो गया, क्योकि अुसमें अशुद्धि यानी वलात्कारने प्रवेश कर लिया था।

अबकी बार लोग जान गये है कि बलात्कारसे कभी सच्ची सफलता प्राप्त नही होगी। अिसलिअे जहा अशातिका कुछ भी भय नही है और काफी स्वयसेवक मिल सकते है, वहा मद्यपान-निषेधका आदोलन शुरू किया जा सकता है और किया जाना चाहिये।

यह आन्दोलन तीन प्रकारसे किया जा सकता है

१ शराब पीनेवालोंके घर जाकर अुन्हे समझानेसे,

२ शराबखानोंके मालिकोंको अपनी दुकाने बद करनेको समझा-बुझाकर, और

३ -शराबकी दुकानोंके आसपास धरना देकर।

ये तीनो कार्य साथ साथ भी किये जा सकते है। पहले दोमें तो किसी प्रकारका खतरा ही नही है। तीसरेमें बलात्कारका भय जरूर है। सभव है कि अिस बारेमे सरकार मुमानियतका हुक्म निकाले। यदि अैसा कोअी हुक्म निकला भी तो अुसमें डरकी कोअी बात नही है। अैसे हुक्मका अनादर करनेसे सहज ही सविनय भग हो सकता है।

जाहिर है कि अिस तरह पिकेटिंगका काम हरअेक आदमी नही कर सकता, और न हरअेक जगह ही यह काम हो सकता है। अिसलिअे यह आन्दोलन बहुत ही मर्यादित होगा। परतु मर्यादित होते हुअे भी यह काम निहायत अच्छा है और अिसका नतीजा भी अच्छा हो सकता है। अतअेव यदि कोअी व्यक्ति आत्मविश्वासपूर्वक अिस आदोलनका सचालन करेंगे, तो अुससे मुझे हर्ष ही होगा।

हिन्दी-नवजीवन, ३–४–'३०

९४

कुछ शर्तें

पूर्ण स्वराज्य पाना कठिन है और सहल भी। कठिन है, यदि हम कुछ करना ही न चाहे। सहल है, यदि सारी जनता अपने धर्मको समझ जाय। यही वात हम हर चीजके लिअे नही कह सकते। ममलन्, वेदाभ्यास। यह काम सबके लिअे सहल नही है। अिसके लिअे वरसोका अभ्यास आवश्यक है। परतु स्वराज्यके लिअे तो केवल हृदय-परिवर्तन ही आवश्यक है। क्योकि स्वराज्य हमारी जन्मसिद्ध सपत्ति है।

तव प्रश्न यह अुठता है कि स्वराज्यके लिअे वह कौनसी शर्त है, जिसका पालन सव कोअी कर सकते है? सुनिये

> १ नमक-कानूनकी सविनय अवज्ञा सव कोअी कर सकते है। अिसमे किसी प्रकारकी तालीम आवश्यक नही हे। आट गावके तमाम स्त्री-पुरुपो तथा लडके-लडकियोने मेरे देखते हुअे अिस कामको कर बताया। अिन लोगोने पहलेसे कोअी तालीम नही पाअी थी।
>
> २ सव कोअी तकली पर सूत कात सकते है। पर चरखा सबको मिल नही मकता, क्योकि वह जरा खर्चीला है। तकली तो घर-घरमे वामकी भी वना ली जा मकती है। अथवा सर्व-साधारण अुसे कुछ ही पैसोमें खरीद सकते है। अगर करोडो लोग तकली चलाना तथा रूअी धुनना मीख ले तो जितनी चाहिये अुतनी खादी वन मकती हे। अिस कामके लिअे भी किसी लवी-चौडी तालीमकी जरूरत नही पडती। सिवा अिमके तकली तो फुरमतके वक्त चलानेकी चीज है। अतअेव यदि लोगोके दिलमे यह वात वैठ जाय और अुनका हृदय-परिवर्तन हो जाय तो करोडो स्त्री-पुरप, वालक-वूढे अिस कामको

आसानीसे कर सकते है और अुनके अिस कार्यसे देशके कमसे कम ६० करोड रुपये हर साल बच सकते है। हम सब विदेशी वस्त्रका त्याग करके सिर्फ खादी ही पहनें। क्योकि यही हमारे पहननेकी चीज है। अगर हमारे पास पैसे नही है तो हम थोडे कपडोसे अथवा सिर्फ अेक लगोटीमे भी अपना काम चला सकते है।

चूकि यह लडाअी आत्मशुद्धिकी है, अिसलिअे यदि हम शराब, अफीम, तमाखू आदिके व्यसनी है तो हमें आज ही अिन व्यसनोको छोड देना चाहिये। अैसे और भी कअी काम है जिन्हे अगर चाहें तो हम सब कर सकते है। अूपर मैंने अिन कामोकी सिर्फ दो-अेक मिसाले ही दी है।

स्वराज्य-प्राप्तिके लिअे हिन्दू, मुसलमान और अन्य धर्मावलबियोका अेक-दूसरेको भाअी-भाअी मानना और अेक समान समझना जरूरी है। अस्पृश्यताके पापको समझकर अुसे दूर करना और दलित भाअी-बहनोंमे प्रेम करना भी आवश्यक है। ये सब वस्तुत स्वराज्यकी शर्ते नही है, पर तो भी स्वराज्यकी व्याख्याके अतर्गत अवश्य है। अब जब कि देशमे अद्भुत जागृति होती चली है, अिन पक्तियोके हरअेक पाठकको चाहिये कि वह अिस यज्ञमें यथाशक्ति बलिदान दे।

हिन्दी-नवजीवन, १०–४–'३०

गिरफ्तारियां और जंगली न्याय

कह सकते है कि गुजरातने वाजी रखी हे। गुजरातके गाव सविनय भगके लिअे मैदानमे आ गये है। स्त्री, पुरुप और वालक हाथ वटा रहे है। नमकके क्षेत्र कअी जगहोमे पाये जाते है। गैरकानूनी नमक लोगोके घरोमे पहुच चुका है। गुजरातको अव सरकारी नमक खाने-खरीदनेकी जरूरत नही रही। जो चाहे वह थोडी ही मेहनतसे जितना चाहिये अुतना तैयार नमक अपने लिअे ले आ सकता है।

लेकिन क्या सरकार अिस दृश्यको देखती रहती? नही। अिसी लिअे अुसने पकड-धकड शुरू की है। धोलेरासे लेकर जलालपुर तालुके तक जागृतिकी लहर फैल चुकी है। नेतागण गिरफ्तार हो चुके है। अिन सवके नाम देनेकी मै जरूरत नही समझता। कअी नाम तो मै भूल गया हू।

दरवार साहव और अुनके साथियोको हथकडिया डाली गअी, जेलमे मुण्डन कराया गया। यह सव अच्छा है, यदि गुजरात अिसका मूल्य समझे।

आटमे, अहमदावादमे, धोलकामे नमक-रूपी स्वमानकी रक्षा करनेवालो पर मार पडी है, यह विशेपता है, जिसकी कल्पना नही की थी। मैने सोचा था कि शायद सरकार जोरो-जुलमसे काम नही लेगी। कानूनन् मुकद्दमे चला कर लोगोको जेल भेजेगी। मेरा विचार झूठा ठहरा। कोअी अपना स्वभाव क्षण भरमें कैसे वदल सकता हे? सरकारने अपने लाल पजेका कुछ स्वाद चखाया है, अत अव हम अधिककी आशा रखे।

गुजरातसे आगे वढते है तो वम्वअीमे जमनालालजी, नरीमान वगैरा पकडे गये है। मामले फुर्तीसे साथ चल रहे है। मालूम होता है कि सजाका आधार मजिस्ट्रेटकी प्रकृति पर निर्भर है।

दिल्लीमे देवदास गाधीके साथी पीटे गये है। देवदास और अुनके साथी गिरफ्तार किये गये है।

जनता अिस सबका क्या जवाब देगी? यह लेख प्रकट होगा तब तक तो नअी बाते पुरानी हो चुकी होगी।

मैं जनतासे और अधिककी आशा रखता हू। विदेशी वस्त्रोकी होली होनी चाहिये, प्रत्येकके हाथमे तकली रहनी चाहिये। कॉलेज-शालाअे खाली हो जानी चाहिये। वकील और डॉक्टर अनेक प्रकारोमे मदद कर सकते है। स्त्रियोके बारेमे तो मैं अलग लिख ही चुका हू। स्वतन्त्रताकी अिच्छुक जनताके सब अगोका विकास हो जाना चाहिये। सरकारी नौकरीका मोह अभी तक कम नही हुआ है। यह कमजोरीकी निशानी है।

लेकिन कमजोरी और स्वतन्त्रताकी कभी बनी नही है। जहा-जहा कमजोरी है, जहा-जहा स्वार्थ है, वहा-वहासे अुनकी जडे खोखली हो जाय तो स्वराज्य आज ही है, और आज ही हम जेलके दरवाजे खोलकर सत्याग्रहियोको बाहर निकाल ला सकते है।

हिन्दी-नवजीवन, १७–४–'३०

९६

राष्ट्रपति जेल-महलमें

पडित जवाहरलाल अब जेलमे है। अिसका अर्थ यह है कि सरकारने सारे हिन्दुस्तानको जेलमे ठूस दिया है। यदि हम अितनी बात समझ जाय तो हमे सहज ही अपने धर्मका पता चल सकता है। यदि हम अपनी शक्तिसे जेलके दरवाजे खोलना चाहते है, तो हमे नीचे लिखे कामोमे जुट पडना चाहिये

१ हम सब जगह नमक बनायें और बाटें।

२ स्त्रिया शराबकी दुकानो पर धरना दे, अर्थात् विनयपूर्वक कलवारो और शराब पीनेवालोको शराब बेचने तथा पीनेसे रोकें।

३ अिसी तरह स्त्रिया विदेशी वस्त्र बेचनेवालो तथा पहननेवालोको भी विनयपूर्वक रोकें।

४ घर-घरमे कताओीका काम शुरू कर दे।

५ विद्यार्थी विद्यालयोंको छोडकर राष्ट्रके कार्यमे जुट पडे।

६ वकील लोग वकालत छोडे और अिस राष्ट्रयज्ञमे अपना सारा समय लगा दे।

७ दूसरे धधोवाले भी जितना समय अिन कामोके लिअे दे सके, दे।

८ सरकारी नौकर नौकरी छोडे।

९ किसी भी अवस्थामे अशात न बने, हिंसा न करें।

१० किसीको अपनेसे नीच न समझे। सब हिलमिल कर रहे।

यदि हम अितना कर सके, तो अवश्य ही हमारी शक्ति बढ जाय और कोअी हमे अपने मार्गसे रोकनेकी हिम्मत न कर सके।

हिन्दी-नवजीवन, १७–४–'३०

९७

सलाम अथवा बेंत?

अजमेरसे श्री हरिभाअू अुपाध्याय लिखते है

"जेलमे पथिकजी और बाबाजी (नृसिंहदासजी)से चक्की पिसवाअी जा रही है। न तो अुन्हे राजनैतिक कैदी माना है, न कोअी 'क्लास' ही मिला है। बाबाजीको 'सलाम' न करनेके अपराधमे काल-कोठरीकी सजा मिली है और सभव है कि बेंतें भी लगाअी जाय। अिस सजाके अुत्तरमे अुस वीरने जवाब दिया कि चाहे मेरी खाल कुत्तेसे नोचवा डालो, पर मै सलाम नही करूगा। मै जानता हू कि आपकी राय है कि मामूली तौर पर जेल अधिकारियोंको प्रणाम करना चाहिये, किंतु मै तो बाबाजीकी हिंमत और बहादुरी पर मुग्ध हू। और यदि अुन्हें सचमुच बेंते लगाअी गअी और मै अुस समय जेलमे रहा,

तो मैं भी अिस अमानुष व्यवहारके विरोधमें सलाम न करनेका विचार कर रहा हू।"

यदि हरिभाअूजीको मिली हुअी खबर सच है, तो जेलमे भी सत्याग्रह करनेका काफी सामान मौजूद है। आम तौर पर कैदीका जेलरको सलाम करना ही अच्छा है। परतु यदि कोअी सत्याग्रही सलाम न करे तो अुसके साथ जबरदस्ती कभी न की जानी चाहिये। अतअेव जब सलाम करानेके लिअे किसीके साथ जबरदस्ती की जाय तो दूसरोका भी धर्म हो सकता है कि वे भी सलाम न करें।

आश्चर्य यह भी है कि कअी जगहोमे सत्याग्रही कैदियोको जो रिआयते दी गअी है वे अिन कैदियोको नही मिली है। मेरे विचारमे तो किसी भी सत्याग्रही कैदीको अन्य कैदियोसे अलग न माना जाना चाहिये। परतु यदि अेक सत्याग्रहीके साथ खास बर्ताव किया जाता है, तो दूसरोके साथ भी वैसा ही बर्ताव किया जाना चाहिये। काग्रेसके नजदीक तो पथिकजी और नृसिंहदासजीका वही स्थान है, जो राष्ट्रपतिका। परतु कोअी अिस सल्तनतमे न्याय-बुद्धिकी — अिन्साफकी अपेक्षा कैसे रख सकता है?

हिन्दी-नवजीवन, २४-४-'३०

९८
'अहिंसाकी विजय'

श्री राजेन्द्रप्रसादको कौन नही जानता? वह पटनासे लिखते हैं

"पटनेका झगडा ता० २३-४-'३० की सध्याको खतम हो गया। अुस दिन जो जुलूस निकला अुसे पुलिसने नहीं रोका और न गिरफ्तार ही किया। सब तरहसे शाति है। अिस झगडेमें हमको लाभ ही लाभ रहा। पटनेको हम मुर्दा जगह जानते थे। अुसमे नअी जान आ गअी। मुसल्मानभाअी हमसे विरुद्ध थे। वे अब बहुत अशोमें हमारे साथ हमदर्दी करते हैं। दूसरे लोग जो अलग थे, अब मदद करने लग गये हैं। अिनमें मि० हसन

अिमाम सबसे प्रसिद्ध है। जनता बहुत कुछ अनुशासनमे आ गअी। जैसे-जैसे पुलिसकी मार बढती गअी, जनताकी भीड भी बढती गअी, और वह अधिकाधिक नियत्रित रूपसे मार खानेके लिअे तैयार होती गअी। जो थोडे लोग पहले भागते थे अुनकी सख्या घटती गअी और अतिम दिन, जिस दिन मारपीट नही हुअी, प्राय १५ हजारकी भीड थी और अुसमे बहुतेरे अैसे लोग थे जो सडको पर बैठकर मार खानेके लिअे तैयार होकर गये थे। अपनी ओरसे कभी कुछ भी अुपद्रव नही हुआ और जो जनतामे से कभी-कभी कुछ कटु शब्द कह दिया करते थे अुन्हे भी जनता ही रोकने लगी है। अहिंसाकी पूरी विजय रही।"

हिन्दुस्तानमे आजकल जो हवा बह रही है, अुसका जितना अनुभव करता हू अुतना ही मुझे यह प्रतीत होता जाता है कि जनताने शातिका सबक ठीक-ठीक सीख लिया है। अिसमे अभी कुछ कमी तो है। परतु यदि लोग आखिर तक निर्भय और शात बने रहे तो स्वराज्य दूर नही है।

स्वराज्यके लिअे तीन गुण बहुत ही जरूरी है शुद्धि, निर्भयता और अुद्यम। शराब आदि नशीली चीजोका त्याग शुद्धिकी निशानी है। नमकके कानून जैसे कानूनोके सविनय भगसे जनता निर्भयताका पाठ पढ रही है, और चरखे या तकलीके सर्वव्यापक होने पर जनता अुद्यमी बन सकती है। अिन तीनोकी सफलतासे जो आर्थिक लाभ होता है सो तो है ही। शराब वगैरा नशीली चीजोके त्यागसे २५ करोड रुपये बचेगे। नमक-करके रद्द होनेसे कमसे कम ६ करोड और तकलीके अुद्यमसे अर्थात् खादीके द्वारा ६० करोडकी बचत होगी।

भगवान अिस देशकी जनताको बल दे कि वह अिन कार्योको कर सके।

हिन्दी-नवजीवन, १-५-'३०

९९

बुराअियोकी जड़

फतहपुर — पूर्वखानदेशसे भाअी ऋषभदास लिखते है .

"देहातमें फैली हुअी बुराअियोकी तहमें आलस्यमें समय गवानेकी आदत मुख्य है। अिसी आदतके कारण देहातवाले दु खी, दरिद्र, व्यसनाधीन और चरित्रहीन बने हुअे है। 'बेकार दिमागमें शैतान रहता है', अिम कहावतका अनुभव यहा खूब हो रहा है। देहातमें छोटे बच्चोंसे लेकर बडे-बूढो तक यही आदत पाअी जाती है। अिस आदतके कारण केवल धनकी ही हानि नही होती, नैतिक अध पात भी होता है, जिसकी कल्पना बाहरवाले बहुत ही मुश्किलसे कर सकते है। मुझे भी धीरे-धीरे अब अिम नैतिक पतनका पता लग रहा है। लोगोंमें यह आदत बहुत पुरानी है, और बचपनसे ही वे अिसके शिकार बन जाते है। बादमें अिसका प्राबल्य अितना बढ जाता है कि लोग अिस बुराअीकी हानियोको महसूस तक नही करते। जब कोअी कार्यकर्ता अुन्हें अिस आदतसे होनेवाले नुकसान समझाता है, तो वे अिसे छोडनेकी सामर्थ्य अपनेमें नही पाते। अुनके पतनकी यह पराकाष्ठा है। और जगहोकी बात तो मै नहीं करता, किंतु जिन गावोमें मै काम करता हू, वहाकी हालत तो अितनी खराब है कि लोग भूखो मरना और आपत्तिमे रहना मजूर करते है, किंतु अपनी आदत नही छोडते। अिसका मुख्य कारण यह है कि बचपनमे ही लोगोमें यह आदत पड जाती है। गावोमें बच्चोकी शिक्षाका जो प्रबंध है, वह नहीके बराबर है, क्योकि दस पाच गावोके पीछे मुश्किलसे अेक प्राथमिक शाला होती है, जिसमें दर्जा चार या पाच तक शिक्षा दी जाती है। अिन शालाओमें दी जानेवाली शिक्षा गाववालोंके

लिअे किस प्रकार निरुपयोगी होती है, अुसकी चर्चा यहा न करूगा, क्योकि वह विपयातर होगा। जो शिक्षा मिलती है अुसीका विचार करे, तो भी पता चलता है कि वहुत ही कम लडके पढ सकते है, और जो पढते है वे १२ या १३ वर्षकी अुम्रमे पढना छोड देते है। अिन लडकोके लिअे सिवा अिधर-अुधर घूमनेके और कोअी काम नही रह जाता। लडके यही करते भी है। अुनके मा-वाप खेतीके दिनोमे ही अुनसे थोडा-वहुत काम ले सकते है, वादमें तो अुन्हीके लिअे पूरा काम नही रहता, अैसी दशामे वे लडकोसे कौनसा काम करवा सकते है? अिन १२–१३ वर्षके लडकोके अिस प्रकार वेकार व निरुद्यम रहनेका परिणाम कितना भयकर होता है, अुसका ठीक-ठीक वर्णन करना मेरी शक्तिके वाहर है। अिस अुम्रमे वालकोको अपना वक्त काममें, पढने-लिखनेमे, अच्छी सोहवतमे विताना चाहिये, किंतु होता विलकुल अिसके विपरीत है। अिसका परिणाम अितना भयानक होता है कि देखकर मेरी आत्मा सिहर अुठती है। वालक मुहसे गदेसे गदे शब्द वोलना, अश्लील हसी-मजाक करना, वीडी पीना, हस्तमैथुन करना, अनैसर्गिक मैथुन करना वगैरा खराव आदते सीखकर अपना जीवन वरवाद कर देते है। वचपनकी अिन आदतोको छुडाना वहुत ही कठिन होता है। मुझे यहा अिसका खूव अनुभव हो रहा है। मैं परेशान हू कि ये वुराअिया कैसे दूर हो। जव तक ये वुराअिया दूर नही होती, कुछ भी सच्चा काम नही हो सकता, अिसलिअे मैं अपने दोपोको दूर करके अिस वातका प्रयत्न कर रहा हू कि कुछ ठोस काम हो। किंतु जव तक राष्ट्रीय पाठशाला स्थापित करके शिक्षाका प्रवध न कर सकूगा, तव तक सफलता दूर ही रहेगी। खेद अिस वातका है कि जिस कार्यके लिअे योग्य कार्यकर्ता त्यागभावसे काम करनेकी अिच्छा रखकर देहातमें नही आते। शहरोमें राष्ट्रीय शिक्षाका जो काम चलता है, अुतनी शक्ति, धन तथा कार्यकर्ताओंकी मददसे देहातमें

बहुत कुछ काम हो सकता है। गावोमें खर्च बहुत ही कम लगता है। यहा शहरोके समान सरकारी स्कूलोके साथ प्रति-स्पर्धा भी नही होती। फिर भी वे गावोकी तरफ क्यो नही ध्यान देते? आशा है, आप 'नवजीवन' और 'यग अिडिया' द्वारा राष्ट्रीय शिक्षाके कार्यकर्ताओका ध्यान अिस विषयकी ओर आकर्षित करेंगे।

"आप बार बार अिस विषय पर लिखते है, जोर देते है, फिर भी अिस बातकी ओर लोगोका पर्याप्त ध्यान नही जाता। अिसलिअे पुन अिस सबधमे कुछ लिखनेके लिअे आपसे प्रार्थना करता हू।"

अिस लेखमें बताअी गअी बुराअियोका वर्णन यथार्थ है। अिसे देखकर भयभीत या निराश होनेका कोअी कारण नही है। हम न तो सर्वज्ञ है, न है सर्वशक्तिमान। हम अपने हिस्सेका फर्ज अदा करें, अितना ही अीश्वरने हमारे हाथोमे रखा है। अैसा करनेसे हम अपने कार्यमें ज्यादा सफल होगे और हममे आत्मसतोष पैदा होगा। दूसरे कार्यकर्ताओके न आनेसे भी हमे दु ख न होना चाहिये। किसीके न आने पर भी यदि हम अपने कर्तव्यमे परायण रहे, तो सभव है कि दूसरे आ जाय।

हिन्दी-नवजीवन, ३०-७-'३१

१००

मृतक बिरादरी भोज

भाअी वसतलाल मुरारका लिखते हैं.

"'मृतक विरादरी भोज मारवाडी समाजमे प्रतिदिन वढता जा रहा है। अिसे वद करनेके लिअे कोअी १२ महीने पहले पिकेटिंग आरभ की गअी थी। दो-तीन पिकेटिंगके बाद ही समाजके मुखियाओने पिकेटिंग वन्द कर देने और मृतक विरादरी भोजके विरुद्ध प्रचार करनेकी नवयुवकोको सलाह दी। अुनकी सलाह मानकर यह कार्य १० महीने तक वद रखा गया। परतु समाजके मुखियाओने कुछ भी ध्यान नही दिया। फिर नवयुवकोने 'मृतक विरादरी भोज निवारिणी सभा' नामक सस्था स्थापित की और समाजके पचोको डेढ महीनेका समय देकर जेठ वदी १ से आपके आदेशानुसार शातिपूर्वक पिकेटिंग आरभ कर दी। जव अिसकी सूचना समाजके पचोको दी गअी, तव अुन्होने मारपीट करनेकी धमकी दी। अशाति होनेका भय दिखलाया। नवयुवकोको ही जिम्मेवार ठहरानेकी धमकी दी। परतु अभी तक हम लोग ७ वार पिकेटिंग कर चुके हैं। पिकेटिंग करनेवालोमें ८५ स्वयसेवकोने भाग लिया है। पहली पिकेटिंगमें तो पचायत-पार्टीने स्वयसेवकोको भद्दी-भद्दी गालिया दी, और अुनको अुत्तेजित करनेके लिअे नाना प्रकारके षड्यत्र रचे। शातिभग करनेकी पूरी कोशिश की गअी, परतु हम लोगोकी ओरसे किसी प्रकारकी गडवडी नही होने पाअी। अव लोकमत हम लोगोके पक्षमें हो रहा है। पचायत-पार्टीकी ओरसे भी गाली-गलोज वद हो गअी है। अिसका कारण स्वयसेवकोका धैर्य और अुनकी सहनशीलता है।

"हम लोग जिस तरह पिकेटिंग कर रहे हैं, अुसके छपे हुअे कागज आपकी सेवामें भेज रहा हू। आप अिस विषयमें अपने आशीर्वाद सहित सम्मति भेजियेगा।"

अिन समाज-सुधारकोको धन्यवाद।

शांति और विनयका असर होता ही है। मृतक भोजमें न धर्म है, न कोअी अन्य अुचित कारण है। केवल मोह और धनसे अुत्पन्न होनेवाला अभिमान ही अैसे भोजनका कारण हो सकता है। धनिक लोग मृत्युके बाद किसी लोकोपयोगी कार्यके लिअे दान क्यों न दें? अैसा करनेसे अुन्हें यशप्राप्ति होगी, और मृतककी आत्माको अवश्य ही शांति मिलेगी। अैसा दान अेक प्रकारका श्राद्ध है, स्मारक है।

हिन्दी-नवजीवन, ३०-७-'३१

१०१

'हरिजनसेवक' के ग्राहकोसे

'हरिजनसेवक' अिस अंकसे अपना अेक वर्ष पूरा करता है। पत्रकी नीति ग्राहक जानते हैं। अिसमें राजनीतिक प्रश्नोंकी चर्चा तक नहीं की जाती है। केवल हरिजनसेवाके निमित्त ही अिसका अस्तित्व है, और यथासंभव स्वावलंबी बनानेकी चेष्टा है। अेक दृष्टिसे स्वावलंबी-सा है ही। क्योंकि जो घाटा आता है वह हरिजन-सेवक-संघकी ओरसे नहीं लिया जाता है, तो भी दूसरी और सच्ची दृष्टिसे स्वावलंबी नहीं है, क्योंकि जितने चाहिये अुतने ग्राहक अब तक नहीं बने हैं। आज तक लगभग १,६०० ग्राहक हुअे हैं। स्वावलंबी बनानेके लिअे कमसे कम ८०० तो और चाहिये ही। लेकिन जो आज मौजूद हैं, वे भी न रहें तो अिस अखबारके जारी रखनेका कोअी कारण नजर नहीं आता। अतअेव ग्राहकोंसे विनय है कि अपना चंदा अिस अंकके बाद दो अंक निकलने तक अवश्य भेज दें। अुसके बाद हिन्दुस्तानके जिन सज्जनोंका चन्दा नहीं आया होगा अुनको 'हरिजनसेवक' नहीं भेजा जायगा। पत्रका वार्षिक चन्दा ३॥ रु० है, और छ माहका २ रु०। जो मित्रगण अिस पत्रके ग्राहक बनाकर अथवा दूसरी तरह सहायता भेजते

रहे है, वे कृपया अपनी वह सहायता अिस वर्ष भी जारी रखें। सब सज्जन याद रखें कि अिस अखबारमे सार्वजनिक खबरे भी नही छापी जाती है, और हिन्दीमे हरिजन-सेवक-सघका यही अेक मुखपत्र है।

हरिजनसेवक, २३–२–'३४

१०२

मेरा हाथ नही है

दो मअीके पत्रमें महाराजा साहब गिद्धौरने मुझे लिखा है

"देवघरमे हुअे आपके भाषणकी जो रिपोर्ट अखबारोमें प्रकाशित हुअी है, अुसकी अेक प्रति मुझे मिली। मैने आपको तुरन्त ही यह सूचित करना ठीक समझा कि आपने जो यह सन्देह प्रकट किया है कि किसी पर्चे पर मेरा नाम मेरी आज्ञा लेकर प्रकाशित नही किया गया हे, वह अुचित ही था।

"मुझे अैसे किसी पर्चेका पता नही है। सचमुच यह बात बिलकुल ही झूठ है कि मैने किसी पर्चे पर अपना नाम प्रकाशित करनेकी आज्ञा दे दी थी। मै समझता हू कि अिस पत्रमें मैने अपनी स्थिति आपके सामने स्पष्ट कर दी है। मन्दिर-प्रवेश बिलके सम्बन्धमे मेरी व्यक्तिगत सम्मति चाहे जो कुछ भी हो, पर मै, आपके साथ ही, अिस बातके लिअे खेद प्रकट करता हू कि ये झूठी बातें फैलाअी जा रही है।

"देवघरमें जो असभ्य प्रदर्शन हुआ है, अुसके लिअे मै भी दुखी हू। अगर आप ठीक समझे, तो मेरे अिस पत्रको प्रकाशित कर दे।"

मुझे अिससे सन्तोष हुआ है कि महाराजा साहब गिद्धौरका अुस पर्चेमें कोअी हाथ नही था। यह खेदकी बात होती, अगर अैसे असत्यके प्रचारमें महाराजा साहब अपने नामका अुपयोग करने देते।

हरिजनसेवक, १८–५–'३४

१०३

वे अिसे करेंगे

जबसे मैंने पैदल यात्रा आरम्भ की है, सैकडो ग्रामवासी यात्रियोका अनुगमन करते रहे हैं। कुछ अपनी व्यथाओकी कहानी भी सुनाते हैं। अिस यात्रामे, जब मैं साखीगोपालके निकट पहुच रहा था, अेक प्रतिनिधि बुनकरने स्वय ही मुझसे कहा कि बुनकर बडे कष्टमें हैं, क्योकि अुनके कपडेकी कोअी माग नही है। मैंने अुससे कहा कि यह भविष्यवाणी तो मैंने पद्रह वर्ष पहले ही की थी कि जब तक ये लोग मिलके सूतका व्यवहार करेगे, तब तक मिलोकी प्रतियोगितामें ठहर नही सकते, हाथ-करघेका पोषणकर्ता और जीवनदाता तो चरखा ही है। अिसके अुत्तरमें, जहा तक मुझे स्मरण है, पहली ही बार मैंने सुना — 'हमें हाथका कता सूत दीजिये, हम अुसे बुनेगे।'

'अवश्य, यदि तुम जैसा मैं कहू, करोगे' — मैंने कहा।

'हम करेगे' — बूढेने जवाब दिया। यह बुनकर बूढा था और अिसकी कमर झुक गअी थी।

मुझे अुसके अुत्तरोंसे अत्यधिक प्रसन्नता हुअी और मैंने कहा — 'यह बडी अच्छी बात है। पर अैसी हालतमें मैं तुम्हे, तुम्हारी पत्नी और बच्चोको ओटना, धुनना और कातना सिखलाअूगा। तब तुम्हे अपने करघेके लिअे काफी सूत मिल जायगा। तुम्हे अच्छा, मजबूत और अेकसा सूत कातना होगा और टूट-फूट अेव खराबीसे बचना होगा। तब मैं अुम्मीद करूगा कि पहली बार कते अिस सूतसे तुम अपने निजी अुपयोगके लिअे खद्दर तैयार करोगे और अिसके बाद जो फालतू खादी बचेगी अुसे मैं खरीद लूगा। मैं तुम्हारे कुटुम्बका अेक सदस्य बननेका प्रयत्न करूगा और अपने अनुभवोका लाभ तुम्हे प्रदान करूगा। यदि तुम्हे मादक द्रव्योका व्यसन होगा तो अुसे छोडनेको कहूगा। तुम्हारे कुटुम्बके आय-व्ययकी मैं जाच करूगा और तुम्हे ऋण लेनेसे रोकूगा।'

बूढेका मुख प्रसन्नतासे चमक अुठा और वह बोला — 'हम निश्चय ही आपकी सलाहके मुताबिक चलेगे। अिस समय तो गरीबी और विनाश हमे घूर रहे है।' मैने अुससे कहा कि अपने कुछ साथियोको लेकर साखीगोपालके गोपबन्धु आश्रममें ३ बजे मुझसे मिलो।

वह अपने मित्रोके साथ आया। मैने सुबहकी बातचीतमें कही हुअी बहुतेरी बाते दोहरानेके बाद कहा — 'मै जानता हू कि तुम लोग अपने करघोको चलाने लायक सूत तुरन्त ही नही कात सकते। अिसलिअे काम आरम्भ करनेके लिअे होनहार और अुत्साही कुटुम्बोको मै काफी सूत दूगा। जब तक तुम अुस सूतको बुनोगे तब तक अपने करघोको आगे चलानेके लिअे तुम काफी सूत तैयार कर लोगे। अिस दिये हुअे सूतसे जो पहली खादी तुम बुनोगे, तुमसे ले ली जायगी। दूसरी बारके लिअे भी यदि तुम्हारे पास काफी सूत न होगा तो कुछ मै फिर दूगा। अिसके बाद तुम्हे स्वावलबी हो जाना पडेगा। पहले तुम अपने कुटुम्बकी कपडेकी आवश्यकता पूरी करोगे और अिससे जो बचेगा अुसे बेचोगे।'

मै अिसे अत्यधिक महत्त्व और शक्तिका प्रयोग समझता हू। भारतवर्षमें कदाचित् अेक करोड बुनकर है। कोअी हजारोमे भी अिनकी ठीक-ठीक सख्या नहीं बता सकता, पर अेक करोडकी सख्याका अनुमान बेजोखिमका है। यदि ये लोग बुनाअीकी कलाके साथ तत्सम्बन्धी अन्य प्राथमिक कार्यो (ओटाअी, धुनाअी, कताअी) को भी ग्रहण कर ले तो वे न केवल अपने अस्तित्वको सुरक्षित कर लेंगे वरन् खादीको भी सभाव्य सीमा तक सस्ती कर सकेगे और अब तक जैसी खादी बनती आअी है अुसकी अपेक्षा अधिक टिकाअू और खूबसूरत खादी तैयार कर सकेंगे।

'हरिजनसेवक' के पाठक जानते है कि मध्यप्रान्तमें कुछ अैसे हरिजन बुनकर कुटुम्ब है, जो अपने कामके लिअे स्वय धुन और कात लेते है। अिसके साथ मै ओटाअीको भी जोडता हू। यदि बुनकर स्वय अपने हितकी दृष्टिसे बुनाअीके पूर्ववर्ती सब अुपकरणोको स्वय ही करने लग जाय तो खादीका भविष्य सुरक्षित हो सकता है।

हरिजनसेवक, १–६–'३४

१०४

अतिशयोक्तिसे बचो

पडित लालनाथने मेरा अिस ओर ध्यान आकर्षित किया है कि अस्पृश्यता-निवारणका समर्थन करनेवाले कुछ अखबारोने देवघरकी दुर्घटनाके बारेमें बहुत बढा चढाकर लिखा है और मेरी मोटरके हुड पर लाठिया चलानेवाले लोगो पर यह अिलजाम लगाया है कि अुनका अिरादा मेरी जान लेनेका था। विरोध प्रदर्शन करनेवालो पर असा कोअी दोष नही लगाया जा सकता कि अुनका अिरादा मेरी जान लेनेका था। वहीसे बिना दस्तखतका अेक पर्चा भी प्रकाशित हुआ है। अुसमे सुधारकोके विरुद्ध प्रदर्शन करनेवालोको मार डालनेकी धमकी दी गअी है। मैं यह नही मान सकता कि यह बेनामका पर्चा किसी अुत्तरदायी मडल या व्यक्तिका छपाया हुआ है। जहा तक मैं जानता हू, कलकत्तेके जिन सनातनियोने मन्दिर-प्रवेश बिलके विरोधमें सभा अित्यादि करनेका जो दिन नियत किया था, अुस दिन अुनके विरुद्ध न तो कोअी प्रदर्शन ही किया गया और न अुन्हे कोअी नुकसान ही पहुचाया गया। फिर भी अिस बात पर मैं जितना भी जोर दू, अुतना थोडा है कि सुधारकोको मन, वचन और कर्मसे अहिसक रहना चाहिये। अुन्हे अिन सनातनियोके विरोध-प्रदर्शनो पर कोअी ध्यान नहीं देना चाहिये। मैंने जहा तक देखा है, जनता अिन सनातनियोके विरोध-प्रदर्शनोका तनिक भी समर्थन नही कर रही है। कुछ भी हो, अुनकी भावनाके प्रति आदर दिखाकर ही हमें अुन्हे जीतना है। अुनके कार्योके प्रति हमें असी कोअी बात मुहसे नही निकालनी चाहिये, जिससे वे चिढे या गुस्सा हो।

हरिजनसेवक, १५–६–’३४

१०५

अनुकरणीय

मध्यप्रान्तीय सरकारको मै अुसकी अिस घोषणा पर कि अबसे तथोक्त 'डिप्रेस्ड क्लासेज' (दलित जातिया) को 'हरिजन' और 'क्रिमिनल ट्राअिब्स' (जरायमपेशा जातिया) को 'घुमक्कड' कहा जायगा, बधाअी देता हू। अवश्य ही 'डिप्रेस्ड क्लासेज' और 'क्रिमिनल ट्राअिब्स' ये दोनो नाम भारी अपमानजनक थे। हमें आशा करनी चाहिये कि दूसरी प्रान्तीय सरकारे भी मध्यप्रान्तीय सरकारके अिस सुन्दर अुदाहरणका अनुकरण करेगी।

हरिजनसेवक, १५-६-'३४

१०६

शांतिसे अुपवास करने दें

मै आशा करता हू कि मेरे आगामी अनशन-सप्ताह (७ अगस्तसे १४ अगस्त तक) में कोअी वर्धा दौडनेका कष्ट न करेगा। अुन दिनो मै पूर्ण विश्राम और शाति चाहता हू। मेरे साथ सहानुभूति दिखाने और मेरे शरीरमे बल पहुचानेका सबसे अच्छा तरीका तो यही होगा कि मेरे तमाम मित्र हरिजनोको हर तरहसे अपनाने और विरोधियोको अपने शुद्ध और विनम्र व्यवहारसे जीतनेकी भरसक चेष्टा करे।

जिन लोगोने साहसपूर्वक अपनी भूल कबूल कर ली है, अुसका प्रायश्चित्त वे मेरे साथ अुपवास करके नही, बल्कि यह दृढ निश्चय करके करे कि अुनकी जिस भूलके कारण मुझे यह अुपवास करना पडा है, वैसी कोअी भूल वे आगे न करेगे।

हरिजनसेवक, ३-८-'३४

१०७

कुछ कूट प्रश्न

विहारके अेक सज्जन लिखते है

"मै मिथिला प्रान्तका मैथिल ब्राह्मण हू। हमारा कुल कट्टर सनातनी है, पर मुझ पर कट्टरताका कम ही असर पडा है। 'हरिजन' मे प्रकाशित आपके विचारोको मै दूसरोके आगे रखनेका भी साहस करता रहता हू। अिस प्रयत्नमें मुझे थोडी-बहुत सफलता भी मिली है। मेरे गावमे हम ब्राह्मणोके कुअेसे तीन चार वरस पहले हरिजन ही क्या अन्य शूद्र जातिया भी पानी नही भर सकती थी। पर आज वह वात नही रही। अव तो डोम और चमार अिन दो जातियोको छोडकर शेष सभी हिन्दुओको पानी भर लेने देते है। सिर्फ डोम और चमारोको ही पानीका कष्ट है। जन्मत मानी जानेवाली घृणा-भावना तो अुनके प्रति भी अव वहुत-कुछ कम हो गअी है। जो थोडी-सी घिन अुनके प्रति शेष रह गअी है, वह अुनकी गन्दी आदतोके ही कारण है। मुर्दार मासका खाना, मरघटका वस्त्र पहनना, सवका जूठन खाना, सूअरका पालना आदि वातोको ये लोग छोड दे, तो अुनके प्रति फिर अुतनी भी घृणा न रहे।

अव आपसे मै कुछ प्रश्न पूछनेकी ढिठाअी करता हू। आशा है, मेरी शकाओका समाधान आप कृपया 'हरिजन' के द्वारा कर देगे

१ जिस तरह आप अुच्च वर्णके कहलानेवाले हिन्दुओ पर हरिजनोको अपना लेनेके लिअे जोर देते रहते है, अुसी तरह आप हमारे हरिजन भाअियोसे क्यो नही कहते कि वे भी अपनी गन्दी आदतोको छोड दे और स्वच्छतापूर्वक रहे?

२ सनातन धर्मका क्या तो रहस्य है, और क्या लक्षण? आप अपनेको सनातनी हिन्दू कहनेका दावा करते है।

क्या सनातनियोके लिअे श्राद्ध, मूर्ति-पूजा, अवतार अित्यादिका मानना जरूरी नही है?

३ आपने कहा है कि मनुष्य जब अपने वर्णका परम्परागत धन्धा छोड देता है, तब वर्णका सकर हो जाता है। तब सनातनी 'वर्णसकर' का जो अर्थ लगाते है, वह कहा तक ठीक है? गीताके प्रथम अध्यायमे आये हुअे "स्त्रीपु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसकर" अिस श्लोककी सगति आप अपने अर्थके साथ कैसे बिठायेंगे?

४ प्राय सभी स्मृतिकारोका कथन है कि ब्राह्मणी तथा शूद्रके सयोगसे अुत्पन्न सतान चाडाल होती है। ब्राह्मणीके साथ जो शूद्र विवाह करेगा, वह अवश्य ही दुष्ट स्वभावका मनुष्य होगा, क्योकि शूद्रके लिअे तो ब्राह्मणी माताके तुल्य है। अिस पर आपकी क्या राय है? यह आपके वर्णधर्मके प्रतिकूल है या अनुकूल?

५ आपके विचारसे न कोअी वर्ण किसीसे अुच्च है, न कोअी किसीसे नीच, सभी सर्वथा समान है। यद्यपि सिद्धान्त रूपमे यह ठीक मालूम पडता है, पर व्यावहारिक दृष्टिसे तो यह असभव-सा ही जान पडता है। समारमे बुद्धि द्वारा किये गये कामोके लिअे शरीर द्वारा किये गये कामोसे अधिक मूल्य दिया जाता है। फिर ब्राह्मणको सत्त्वगुण-प्रधान, क्षत्रियको सत्त्व अेव रजोगुण-प्रधान, वैश्यको रजोगुण-प्रधान, और शूद्रको तमोगुण प्रधान शास्त्रोमे माना है। भागवतमे लिखा है कि जिस मनुष्यका वर्ण मालूम न हो, अुसका वर्ण-निर्णय अुसके गुणकर्मादिको देखकर कर लेना चाहिये। शूद्रोके विषयमे स्मृतियोका क्या मत है यह भी तो देखिये। स्मृतियोके साथ आपके तात्पर्यकी कहा तक सगति बैठती है?

६ आप भी वर्णको प्राय जन्मना ही मानते है। पर कितने ही मनुष्योमें, ब्राह्मण कुलमे जन्म लेने पर भी, ब्राह्मण स्वभाव या कर्मकी ओर प्रवृत्ति नही पायी जाती। अुन्हे आप अपनी वर्ण-व्यवस्थामें कहा स्थान देंगे? शास्त्रमें कहा है —

ब्राह्मणस्य शरीर हि क्षुद्रकामाय नेष्यते।
कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानत सुखाय च।।
अुत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वती।
स हि धर्मार्थम्अुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

अिस प्रकारकी तपस्या और धर्मकी ओर प्रवृत्ति यदि किसी शूद्रकुलोत्पन्न मनुष्यकी हो, तो अुसे ब्राह्मण क्यो न कहे ?

७ मनुष्य जैसा अन्न खाता है, वैसी ही वुद्धि अुसकी होती है। अिसलिअे शास्त्रोने चोर, डाकू, कृपण, वेश्या, कसाअी आदि मनुष्योका अन्न खानेसे हमे रोका है। सनातनी पडित कहते है कि दुष्टभावके मनुष्योका स्पर्श किया हुआ अन्न-जल ग्रहण करनेसे हममें भी अुनके ससर्गजन्य दुष्ट स्वभावके आ जानेका भय रहता है। और आप कहते हैं कि खान-पानका प्रतिवन्ध वर्ण-धर्मका कोअी आवश्यक अग नही। यह वात कहा तक ठीक है ?

८ जव हम लोग जनताके वीच अस्पृश्यता-निवारणका कुछ काम करने लगते हैं, तो सनातनी पडित आपके विरुद्ध न जाने कैसी-कैसी वातें वकते हैं। और वातें तो हम अुनकी काट देते हैं, पर जव वे आश्रमके अुस म्रियमाण वछडेके वारेमें दलील देते हैं, तव हम अुन्हे कोअी सन्तोषप्रद अुत्तर नही दे सकते। अिस प्रश्न पर क्या आप कुछ प्रकाश डालेंगे ?"

यह पत्र मेरे पास जून माससे पडा हुआ है। हरिजन-यात्रामें तो कुछ लिखना-लिखाना असभव नही तो मुश्किल तो था ही। यद्यपि पत्रको आये काफी समय हो गया है, तो भी पत्रमें आये हुअे प्रश्न अुत्तर देने लायक हैं।

१ हरिजनोको शौचादिके नियम पालनेकी शिक्षा तो अवश्य दी जाती है, किन्तु अुन्हे अैसी शिक्षा देना अेक वात है और नियम-पालनको अस्पृश्यता-निवारणकी अेक शर्त वना देना दूसरी वात है। अैसी शर्त शिक्षा-प्रचारमें घातक वन सकती है। अुनके दोषोंके जिम्मेदार वे नही, हम हैं। जव हम अुन्हे प्रेमसे अपना लेंगे, तव वे अपनी दूषित आदतोको तो अपने-आप ही छोड देंगे। आज तो अुनके अूपर शिक्षाका

असर कम ही पडता है। जब अस्पृश्यता हट जायगी, तब वे अपना सुधार शीघ्र कर लेगे। असका यह मतलब नही है कि हम मैले-कुचैले गन्दे लोगोको देव-दर्शन करने दे अथवा अुनका स्पर्श करे। हमें तो जो कहना और करना है, वह तो अितना ही है कि कोअी जन्मसे अस्पृश्य नही है। कर्मसे तो हम सभी अस्पृश्य बन जाते है। हरिजनोके तो हम देनदार है, लेनदार नही। वे जैसे है अुसी हालतमे हमे अुन्हे अपनाना है। हम अुन्हे अपनाते है, तो अिसमे अुनके प्रति कोअी कृपाकी बात नही है। हम अपना प्रायश्चित्त करके ही अुनकी गन्दी आदतोको दूर करा सकते है।

२ सनातन धर्मका विशेष लक्षण वर्णाश्रम है। यो तो मैने बहुतसी व्याख्याअे दी है, किन्तु वर्णाश्रमको ही सनातन धर्मका विशेष लक्षण माना जाय। श्राद्धादि न करनेसे कोअी सनातनी मिट नही जाता। लाखो देहाती भाअी श्राद्ध नही करते, तो भी सनातन-धर्मी तो वे है ही। यही बात मूर्ति-पूजा, अवतारादिके विषयमें भी है। मूर्ति-पूजा करोगे, अवतार मानोगे, तभी सनातनी हिन्दू कहे जाओगे अन्यथा नही, अैसा कोअी नियम मेरे देखनेमे नही आया है। मै तो अवतारवादको अच्छी तरह मानता हू। मूर्ति-पूजाको भी मानता हू और करता भी हू। लेकिन मै अपनेको जो सनातनी मानता हू, अुसका कारण तो मेरा वर्णाश्रमको मानना और धर्मशास्त्रोको जैसा मै जानता हू अुसके अनुसार आचरण करनेका सतत प्रयत्न करना है।

३ जब मनुष्य अपने वर्णके प्रतिकूल धन्धेको अपनी आजीविकाके लिअे करने लग जाता है, तब वह वर्णका सांकर्य करता है। ब्राह्मणने आजीविकाके लिअे वकालत की अथवा झाड़ू लगाअी, तो अुसने वर्णका सांकर्य किया। अिसी तरह जब धोबी अपनी आजीविकाके लिअे वकालत करता है या झाड़ू लगाता है, तब वह वर्ण-संकरताका भागी होता है। अिस अर्थमें आजकल वर्णका लोप हुआ ही मै मानता हू। गीतामें 'वर्णसंकर' का सम्बन्ध विवाहके साथ बताया है, पर यह याद रहे कि दुष्टा स्त्रियोंके आचरणके साथ अैसा कहा गया है। अिसका अर्थ तो मै यह निकालता हू कि जब स्त्री व्यभिचारसे

सन्तानोत्पत्ति करती है, तब वर्णसकर पैदा होते है। भले ही वर्णसकरका यह अेक कारण हो, पर यही अेक कारण नही है, अैसा मेरा अभिप्राय है। वर्णके नियत कर्मोका त्याग स्वयसिद्ध वर्ण-सकरता है।

४ स्मृतियोके नामसे जो ग्रथ आज हम देखते है, वे सबके सब यथार्थ है, अैसा मेरा विश्वास नही है। स्मृतियोमे बहुतसे श्लोक प्रक्षिप्त है। जो वचन सार्वभौम नैतिकताके विरुद्ध है, अुसे धर्म मानना अुचित नही। महाभारतादिमे हम देखते है कि वर्णान्तर विवाह खासी अच्छी सख्यामे होते थे। और आज तो वर्णधर्मका लोप हुआ ही मैं मानता हू।

५ अूपरके कारणोसे मैं यह मानता हू कि अुच्च-नीच भावोके समर्थनमे जो स्मृति-वचन आज दिखाअी देते है, वे सबके सब प्रक्षिप्त है। वर्णकी मान्यताका आधार अेक वैदिक ऋचा है। अुसमे चार वर्णोकी शरीरके चार मुख्य अगोसे अुपमा दी गअी है। यह कोअी नही कहेगा कि शरीरका अेक अग दूसरे अगसे अूचा है अथवा नीचा। सब अग अेक-सरीखे ही है। वर्णमे समानताका मानना ही धर्म हो सकता है। अुच्च-नीचका भेदभाव निश्चय ही अभिमानमूलक है, अिसलिअे अधर्म है।

६. ब्राह्मण हो या शूद्र, जिसने स्वधर्म तज दिया है, वह पतित हो गया। पतित दशामे वह किसी भी वर्णका नही है। वह पुन स्वधर्मका पालन — अपने धधेका पालन — करके अपनी भूल सुधार सकता है।

७ सच बात यह है कि मनुष्य जैसा खाता है, वैसा अुसका स्वभाव हो जाता है, पर किसीके हाथके छुअे हुअे खानेका असर अुस पर नही पडता। किसीको अपनेसे अधम अथवा अधिक पापी मानना और अैसा कहकर अुसके हाथका छुआ हुआ अन्न-जल ग्रहण न करना साफ ही अीश्वरका अनादर है। खाद्याखाद्यके नियम अवश्य है। जो बाह्य शौचादिक नियमोका पालन नही करते, अुनके हाथका स्पर्श किया हुआ अन्न या पानी ग्रहण न करे, किन्तु अमुक मनुष्य अमुक जातिका है अिसलिअे अुसके हाथका न खाना मेरी दृष्टिमे पाप है। रोटी-बेटी-व्यवहारका वर्णधर्मसे कोअी अनिवार्य सम्बन्ध नही है।

८ मेरे सम्बन्धमें अनेक दोषारोपण किये जाते हैं। हरिजन-सेवक अुनके अुत्तर देनेका प्रयत्न न करे। मैं कैसा क्या हू, अिसके साथ अस्पृश्यता-निवारणका कुछ भी सम्बन्ध नही हो सकता। किसी महान् वस्तुका निरीक्षण अुसके गुण-दोषसे ही करना चाहिये। यह सच है कि महाव्यथामे तडपते हुअे बछडेको मैंने धर्म समझकर ही जहरकी पिचकारी दिलवाअी थी। मैं और किसी तरह अुसकी सेवा नही कर सकता था, न अुसके दुःखका निवारण ही कर सकता था। मुझे आज भी, विचार करनेके बाद भी, अुस कार्यके लिअे पश्चात्ताप नही है। यदि मैंने अज्ञानके वश होकर पापकर्म किया होगा, तो परमात्मा मुझे क्षमा करेगा।

हरिजनसेवक, १२-१०-'३४

१०८

घोर अज्ञान

रीगससे अेक हरिजनसेवक लिखते हैं

"जयपुर-राज्य-युवकसम्मेलनके साथ २५-१२-'३४ को यहा पर जो खादी-प्रदर्शनीकी दुकान लगाअी गअी थी, अुस पर अेक बुनकर हरिजनका लडका कपडा बेचनेको अूपर बरडेमें बैठा था, और बरडेके नीचे चौकमें सभा की गअी थी, जिसमें कि गावके अन्य सवर्ण लोग थे। अुसे देखकर यहाके सवर्ण हिन्दू अिसलिअे बिगड गये कि अेक हरिजन लडकेको अूपर क्यो बैठने दिया, और सवर्ण लोगोने मदिरमें पचायत की और यह निश्चय किया कि—

(१) खादी-प्रदर्शनी और सम्मेलनमें गावका कोअी भी मनुष्य न जावे। अगर जायगा तो वह जाति-बाहर कर दिया जायगा।

(२) कन्या पाठशालामे लडकिया पढने न जाय, क्योकि पाठशालाका सबध सम्मेलनवाले लोगोसे है।

(३) हरिजन-पाठशालाके अध्यापकको कोअी अपने मकानमे न आने दे।

पचायतकी अितनी सख्ती होने पर भी गावके कोअी २८ युवकोने सम्मेलनके कार्यमे भाग लिया, और जब पचायतने अुन पर अेक अेक रुपया जुर्माना किया, तो अुन्होने जुर्माना देनेसे अिनकार कर दिया।

सम्मेलनके रसोडेमे जीमनेवाले सवर्ण भी थे और हरिजन भी। करीब तीन-चार सौ मनुष्य सभी अेक जगह जीमते थे। जबसे लोगोने यह बात सुनी है, तबसे तो खूब ही शोर मचा रहे है कि 'धर्म डुबो दिया, धर्म डुबो दिया'।"

अिस बर्तावमे सिवा घोर अज्ञानके और तो कुछ दिखाअी देता नही। यह अुच्च-नीचका भाव दूर न हुआ तो धर्मका नाश ही समझिये। सवर्णोके बहिष्कारसे लोग डरे नही, यह अेक शुभ चिह्न मालूम होता है। जिन्होने बहिष्कार किया है अुनके अूपर किसी भी प्रकारका क्रोध न किया जाय। साथ ही, अिस बहिष्कारसे डरकर कोअी अपना कर्तव्य न छोडे। बहिष्कार करनेवालोमे यदि कोअी प्रतिष्ठित लोग है, तो अुनसे वार्तालाप भी किया जाय। सभव है कि अिस बहिष्कारका कारण कुछ और हो।

हरिजनसेवक, १५-२-'३५

१०९

प्रतिज्ञापत्रका तात्पर्य

[ग्रामोद्योग-सघके सदस्योकी प्रतिज्ञाके अर्थमे काफी मतभेद देखकर सघके व्यवस्थापक-मडलने सदस्योके मार्गप्रदर्शनार्थ गाधीजीसे अेक नोट तैयार कर देनेकी प्रार्थना की थी। गाधीजीका वह नोट नीचे दिया जाता है]

"जिस रूपमे यह प्रतिज्ञापत्र हमारे सामने है, अिरादतन् अुसी रूपमे वह बनाया गया है। यह सामान्यरूपका प्रतिज्ञापत्र है। यह अेक भद्र पुरुपकी प्रतिज्ञा है। 'भारतवर्षके ग्रामवासियोका सब तरहसे हित साधन करनेका सघका जो अुद्देश्य है, अुसे पूरा करनेके लिअे मै अपनी शक्ति और बुद्धिको अधिकसे अधिक अशमे काममे लाअूगा'— अिन शब्दोका अर्थ करना प्रत्येक स्त्री या पुरुप सदस्यकी अपनी सत्यनिष्ठा पर छोड दिया गया हे।

सदस्योने केवल सघकी अुद्देश्य-सिद्धिके लिअे काम करनेकी ही नही, बल्कि 'सघके आदर्शोको अपने आचरणमे अुतारने तथा गावोकी बनी हुअी चीजोको ही काममे लानेकी' भी प्रतिज्ञा की है।

अिसलिअे व्यवस्थापक-मडलका सिफारिश करनेवाला मेम्बर यह जरूर देखेगा कि सदस्यताका अुम्मीदवार अपनी प्रत्येक प्रवृत्तिमे ग्रामवासियोका हित हृदयसे चाहता है या नही। अिससे यह अर्थ निकलता है कि अैसा व्यक्ति कमसे कम अपना कुछ समय नित्य गावोके काममे देगा। यह जरूरी नही कि गावोमे ही जाकर वह काम करेगा, पर गावोके लिअे काम करेगा। अिस तरह, शहरमे रहनेवाला सदस्य अमुक दिन अगर किसी आदमीके हाथ कोअी गावकी बनी चीज बेचता हे अथवा खरीदनेके लिअे अुसे समझाता है, तो यह माना जा सकता है कि अुस दिन अुसने कुछ ग्रामसेवा की है।

सिफारिश करनेवाला सदस्य यह भी देखेगा कि अुम्मीदवार, जहा तक कि सभव है, खुद गावकी बनी हुअी चीजोको ही काममे लाता है न—जैसे, मिलके कपडेकी जगह खादी, कारखानेके बने

चीनी मिट्टीके वर्तनोंकी जगह गावोंके वने मिट्टीके वर्तन, होल्डरकी जगह वरुकी कलम, साधारण कागजके स्थान पर हाथका वना कागज, अत्यंत गन्दे और हानिकारक आधुनिक टूथ-ब्रशके स्थान पर ववूल या नीमकी रोगाणुनाशक दातुन, वाजारमें मिलनेवाली चमडेकी चीजोंकी जगह गावोंके कमाये हुअे चमडेकी गावोंमे वनी हुअी चीजें, मिलकी शक्करके वदले गावोंका गुड, मिलके चावलकी जगह हाथका कुटा पूर्ण चावल आदि।"

हरिजनसेवक, ५-४-'३५

११०

हरिजनोंके लिअे कुअें

वम्वअी सरकारने वम्वअी सूवेमे हरिजनोंके लिअे कुअें वनवानेका जो निर्णय किया है, अुसके लिअे हमें अुसे धन्यवाद देना चाहिये। कामको देखते हुअे तो यह रकम वहुत ही कम रखी गयी है। यह तो हम सवको भलीभाति विदित है ही कि काग्रेस द्वारा स्थापित भूतपूर्व अस्पृश्यता-निवारक वोर्डकी तरफसे कअी वर्ष हुअे कि गुजरातमें हरिजनोंके लिअे कुअे वनवाये गये थे, और अव सन् १९३२ से यह काम हरिजन-सेवक-संघ कर रहा है। सघका कूप-निर्माणका कार्यक्रम काफी व्यापक है। और अव चुपचाप काम करनेवाले महान जनसेवक श्रीयुत जूठाभाअीने भी अिस सुन्दर धर्म-कार्य पर ध्यान देनेका निश्चय किया है। क्या अच्छा हो कि अिन अेक ही अुद्देश्यको लेकर काम करनेवाली अिन भिन्न-भिन्न सस्थाओंमे पूरा-पूरा सहयोग रहे। अगर सहयोगका प्रयत्न सभव न हो, तो कमसे कम श्रम और कार्यक्षेत्रका विभाग तो होना ही चाहिये। खैर, जो कुछ भी काम किया जाय अुसमें यह ध्यान रहे कि काम तीव्रतासे हो, अच्छा हो और पैसा कमसे कम खर्च हो। सस्तेसे सस्ता काम तो तभी हो सकता है, जव हरिजन हिन्दू या सवर्ण हिन्दू अथवा दोनों ही स्वेच्छापूर्वक अिस धर्मकार्यमें अपने शारीरिक श्रमका योग दे।

हरिजनसेवक, १७-५-'३५

१११

सर्वस्व-दान

महान हरिजनसेवक श्री ज्वालाप्रसाद मडेलिया अब अिस लोकमे नही है। केद्रीय हरिजन-सेवक-सघके वे कोषाध्यक्ष थे। और फिर अुस कार्यके कोषाध्यक्ष, जो अुन्हे प्राणोंके समान प्रिय था। आजकल प्राय जिस अर्थमे धनी शब्दका प्रयोग होता है, वह वैसे धनी नही कहे जा सकते थे। पर वे बिडला मिल्स, दिल्लीके सेक्रेटरी थे, और वहा अुन्होने जो कुछ कमाया, जो कुछ अुनके पास था, वह सब दान कर गये। अपने जीवन-कालमें भी अुन्होने परोपकारी कार्योमे दिल खोलकर पैसा दिया। वे अेक जन्मसिद्ध सुधारक थे। विधवाओका अुद्धार-कार्य अुन्हे अुतना ही प्रिय था, जितना कि हरिजनोका, और अपनी वसीयतमे वे अिन्ही दोनोके लिअे अपना सर्वस्व दान कर गये हैं।

हरिजनसेवक, २-८-'३५

११२

झूठे विज्ञापन

कलकत्तेसे अेक सज्जनने अच्छे प्रसिद्ध अखबारोमे से कुछ अैसे विज्ञापन काट-काटकर मुझे भेजे है, जो निरे झूठसे भरे हुअे है। मालूम होता हे कि आजकल बगालमे और अन्य प्रान्तोंमें भी हिन्दुस्तानी चाय पीनेके पक्षमें बडा प्रचड प्रोपेगेण्डा हो रहा है। चायके अेक विज्ञापनका नमूना देखिये। यह बगलाका अनुवाद हे

चाय पीओ चाय, हमेशा जवान दिखोगे

जलपाअीगुडी, १५ मअी

अुतरती अवस्थामें भी जवानी और ताकत कायम रखनेमें चाय मदद देती है, यह बात, मालूम होता है, श्रीयुत नेपालचद्र भट्टाचार्यके अनुभवसे प्रमाणित हुअी है। भट्टाचार्यजीकी

अवस्था आज अडतालीस वर्षकी है, पर देखनेसे अुनकी अुम्र चौंतीस सालसे अधिक नही जचती। चौदह सालकी अुम्रसे अुन्होने चाय पीना शुरू किया था। तवसे वे वरावर विला नागा चाय पी रहे है। और अिवर दो सालमे वे करीव ३० प्याले चाय नित्य नियमित रीतिसे पीते है। अिस सबधमे वे अपनी अेक खास विशेषता रखते है। चाय तैयार होते ही वे तुरन्त नही पीते, अुसे कुछ देर तक रखी रहने देते है, और सारी ही चाय नही पी जाते, थोडीसी चायदानीमे छोड देते है। अेक-अेक वारमे छ प्यालेसे लेकर दस-दस प्याले तक चाय भट्टाचार्यजी पी जाते है।

यह तो अैसे-अैसे विज्ञापनोकी अेक वानगी है। अिसे पढते हुअे अैसा मालूम होता है, गोया यह अखवारके अपने सवाददाताकी रिपोर्ट हो! चाय पीनेके पक्षमे यह विज्ञापन अेक अैसा दावा हमारे सामने रखता है, जिसे मनुष्यके अनुभवका कही भी समर्थन नही मिलता। देखनेमे तो अिससे अुलटा ही आता है। चायके पक्षमे वकालत करने-वाले भी वहुत ही थोडी चाय पीनेकी सलाह देते है। हिन्दुस्तानके लोग अगर चाय न पीये, तो अिससे अुनकी कोअी हानि तो होगी नही। मगर दुर्भाग्यसे यह चाय और अैसी ही दूसरी पीनेकी चीजें, जो अहानिकर समझी जाती है, अव हम लोगोमे जड जमा चुकी है। मेरा कहना यह है कि हमे विज्ञापन देते समय सचाअीका अुचित ध्यान जरूर रखना चाहिये। लोगोकी, खासकर हिन्दुस्तानियोकी यह अेक आदत वन गयी है कि किताव हो या अखवार, अुसमे छपे हुअे अेक-अेक शब्दको वे 'ब्रह्मवाक्य' मान लेते है! अत विज्ञापन वनानेमे अधिकसे अधिक सावधानी रखनेकी जरूरत है। अैसी-जैसी झूठी वातें, जिनकी तरफ अुक्त पत्रलेखकने मेरा ध्यान आकर्षित किया है, वडी ही खतरनाक होती है। नित्य तीस-तीस प्याले चाय पी डालना — यह क्या है! अिससे शरीर और दिमागमें भला ताजगी आयगी? अिससे तो पाचन-शक्ति कमजोर पड जायगी, और शरीर क्षीण हो जायगा। हलकी-सी चायके दो प्याले पी लेनेमें शायद

नुकसान नही होता, ओर मनुष्यका शरीर अितनी ही चाय पचा सकता है। फिर हिन्दुस्तानमे चायकी पत्तिया असलमे अुबाली जाती है, और अिस तरह अुनका सारा 'टैनिन' पानीमे खिच आता है। कोअी भी डॉक्टर यह प्रमाणित कर देगा कि मेदेके लिअे यह 'टैनिन' अच्छी चीज नही है। चाय पीना तो बस चीनी लोग जानते है। पत्तियोको वे छन्नीमे रखकर अुन पर खौलता हुआ पानी डालते है। पत्तियोको वे चायदानीमे कभी नही डालते। पानीमे पत्तियोका सिर्फ रग अुतर आता है। अुनकी वह चाय हलके पीले रगकी दीखती है, अैसी लाल रगकी नही जैसी कि हिन्दुस्तानमें साधारण रीतिसे बनाअी जाती है। तेज चाय तो जहर है।

हरिजनसेवक, ३०–८–'३५

११३

आभार

मेरे ६७ वे जन्मदिनके अुपलक्षमे मुझे अनेक बहिनो और भाअियोने हरअेक प्रान्तसे अपनी शुभ कामना और अपने आशीर्वादके तार और पत्र भेजे है। अुन सबका आभार अिन दरिद्र वाणीसे तो माना ही नही जा सकता। अीश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है कि सब भाअी-बहनोके शुद्ध प्रेमका वह मुझे पात्र बनाये और मुझे जनताका सच्चा सेवक बननेकी शुद्धि प्रदान करे। मै यह जानता हू कि जो तार और पत्र आये है अुनमे कोअी रूखी-मूखी विनयकी बात नही है, अुनमे तो हार्दिक भावोका प्रदर्शन है।

अिन सब सदेशोकी अलग अलग स्वीकृति भेजना असभव है। अिसलिअे मै यह आशा करता हू कि मेरी अिस स्वीकृतिसे ही सब बहने और भाअी सतुष्ट हो जायगे।

हरिजनसेवक, १२–१०–'३५

११४
दो प्रश्न

हरिजन-आन्दोलनके अेक कार्यकर्ताने मुझे दो प्रश्न लिख भेजे है। अुनमें से पहला यह है

> “मै अपने यहा अेक हरिजन रखता हू। अेक दिन मेरे यहा अेक मेहमान आते है जो अस्पृश्यताके हामी है। अिस समय यदि मै अपने नौकरसे अुन्हे पानी वगैरा दिलवा देता हू तो अुन्हें धोखा देता हू, और अगर नौकरसे न दिलवाकर खुद देता हू तो नौकरका जी दुखता है। मेरे लिअे यह अेक भारी धर्म-सकट है। अैसी हालतमे क्या करना चाहिये, कुछ समझमे नही आता।”

अिसमे धर्म-सकटका तो सवाल ही नही अुठता। जब हम किसी भगी हरिजनको अपना कुटुम्बी बनाकर रखे, तो पहलेसे ही अुसे अपने घरके सब नियम बता देने चाहिये। अुनमे यह साफ-साफ कह देना चाहिये कि हमारे यहा अस्पृश्यता माननेवाले मेहमान भी आते हैं, और अुनके दिलको न दुखानेके लिअे हम खुद ही अुन्हे पानी वगैरा देते है या दूसरे नौकरोसे दिला देते है। जो भगी नौकर हमारी अिस आदतको जानता है, अुसे दु ख माननेका कोअी कारण नही रह जाता। लेकिन अुक्त प्रश्नमे यह अध्याहार है कि अिस बर्तावसे भगीके सामने अेक नअी समस्या खडी हो जाती है। अिसलिअे अैसे मौको पर हम अपने मेहमान और भगी सेवक दोनोके सामने अपनी आपत्तिको खोल दे, तो न तो किसीको धोखा ही होगा और न किसी प्रकारका धर्म-सकट ही आयगा।

दूसरा प्रश्न यह है

> “कुछ हरिजनोको अेक भोज दिया जाता है, जिनमें अधिकतर चमार है और दो-चार राजपूत भी। भोजन बनाने और परोसनेवाले भगी है। पर यह बात भोजन करनेवालोको नही बताअी जाती। वे बिना जाने खाकर चले जाते है। अगर

अुन्हे यह बात भोजनसे पहले बता दी जाती तो वे छोडकर चले जाते और बादमे बताअी जाती तो झगडा करते। अिसलिअे अुन्हे अनजानमे खिलाना क्या धोखा नही हुआ? यह अुचित था या अनुचित?"

यह प्रश्न अगर किसी बीती हुअी घटनाके बारेमे है, तो बिलकुल निरर्थक है। मै भविष्यके बारेमे ही कह सकता हू। जब हम सब प्रकारके हरिजनोको भोजनके लिअे बुलावें, तो अुन्हे पहलेसे ही बता देना चाहिये कि भोजन बनाने और परोसनेवाले भगी हरिजन ही होगे। अगर हम यह बात साफ नही करते तो सरासर धोखा देना है। हमे यह बात कभी न भूलनी चाहिये कि अस्पृश्यतारूपी जहर हरिजनोमे भी फैला हुआ है।

हरिजनसेवक, २-११-'३५

११५

कन्या-वध

आज भी अिस हतभाग्य देशमे कन्या-वध जैसी निर्दय, अमानुषी प्रथा चल रही है, यह माननेमे कष्ट होता है। लेकिन जो पत्र मेरे सामने पडा है वह मुझे यह माननेको मजबूर करता है। बिहार, जिला भागलपुरके देहात अमरपुरमे राजपूत-कन्या-वध-विरोधिनी सभा स्थापित हुअी है। अिस बारेमे सभा-मत्रीने अेक दु खजनक खत लिखा है। अुसमे से नीचे थोडे फिकरे दिये जाते है

"भगवान बुद्धने बकरोकी रक्षाके लिअे अपने प्राणोकी बाजी लगा दी थी। आज अुन्हीकी सन्तान अपनी सद्य प्रसूता कन्याको मारनेमे लगी हुअी है। मनुष्यताको कलकित करनेवाली यह कुप्रथा हम राजपूतोमें ही है। अैसे भी घर है जहा अेक दारोगा, अेक तहसीलदार तथा पढे-लिखे युवक है। आज ५० वर्षोमे अुनके घर अेक भी कन्या नही रखी गयी। जरा अुस

दृश्यकी कल्पना करें, जब बच्ची पैदा होते ही मा अुससे अलग हो जाती है। दूध नही दिया जाता है, बच्ची दम घुटकर मर जाती है। यो नही मरी तो नमक चटाकर अथवा तम्बाकू खिलाकर मार दी जाती है। सबसे सरल तरीका तो यह है कि अुसके मुह-नाक पर मासका लोथा रख दिया जाता है। कैसा घृणित तरीका है! बकरेको तो हथियारसे मारते हैं, लेकिन निस्सहाय, मुहसे भी आवाज नही निकालनेवाली बच्चीको दम घुटाकर मारना — कितना अनर्थ है!

"पजाबके जाट राजपूतो और जाट सिक्खोमें यह कुप्रथा थी। पजाब कौंसिलमे अुसे रोकनेके लिअे खास कानून बनवाया गया। पर हमारे यहा लोग सकोच करते हैं।"

धर्म तो सिखाता ही है कि जीवमात्र अतमें अेक ही है। अनेकता क्षणिक होनेके कारण आभास मात्र है। लेकिन राष्ट्रभावना भी हमें यही पाठ देती है। हम अपनेको राजपूत अित्यादि नहीं मानते है, न बिहारी, पजाबी अित्यादि। हम अपनेको हिन्दुस्तानी मानते हैं और अेक ही राष्ट्र मानते और मनाते हैं। अिसलिअे धर्म-दृष्टि या राष्ट्र-दृष्टिसे हम अेक हैं और अेकके दोषकी जिम्मेदारी हम सब पर आती है। अिस न्यायसे अिस राजपूत-कन्या-वधके लिअे हम सब, राजपूत हो या कुछ भी हो, जिम्मेदार हैं। अेक-दूसरेके दोष, अेक-दूसरेकी आपत्तिके लिअे हम अुदासीन न रहते तो कन्या-वध आज तक निभ नही सकता। अिसमें न धर्मका बहाना है, न कोअी आवश्यकताका। कोअी अेक युग होगा कि जब राजपूत-जीवन अनिश्चित होनेके कारण कन्या-जन्म आपत्ति माना जाता होगा, आज तो यह बहाना रहा ही नही है। दूसरोकी अपेक्षा राजपूत-जीवन अधिक अनिश्चित है, अैसा नही कहा जा सकता है। राजपूतोंके सिर पर आज युद्धका बोझ नहीं रहा है। आज राजपूतको अपनी तलवार साथमें रखकर सोना नही पडता है। राजपूत-कौम भले ही हो, राजपूत-धर्म जैसी कोअी वस्तु नहीं रही। फिर कन्या-वध क्यों? कन्याका बोझ क्यो? बोझ तो अुन लोगो पर अवश्य पडता है जो

अपनी कन्याके लिअे पति खरीदते है और दम निकल जाय अितना दाम देना पडता है। अीश्वरकी कृपा है कि वे अपनी कन्याका वध करने तक नही पहुचे है। मुझे नही पता कि आज राजपूत-कन्या-वधके लिअे कोअी वहाना वताया जाता है क्या? अगर अैसा कोअी वहाना है, तो नअी सभाका अिस पर प्रकाश डालना कर्तव्य है।

लेकिन वहाना हो भी सही, अुसे दूर करना धर्म होगा। कोअी वहाना अिस राक्षसी प्रथाको कायम करनेमे कभी मान्य नही हो सकता है। लोकमतको सगठित करके शीघ्र ही अिस प्रथाको मिटाना चाहिये। सगठन करनेका वोझ राजपूत-कन्यावध-विरोधिनी-सभा पर ही हो सकता है। लम्बे व्याख्यानोसे प्रयत्न सफल नही होगा, न प्रस्तावोसे ही होगा। अिन दोनोकी थोडी आवश्यकता रहेगी। पर अत्यावश्यक वस्तु तो अिस वारेमे सविस्तर हकीकत है। अैसा नकशा वनाना चाहिये, जिसको देखनेसे ही क्षणमें पता चले कि कहा-कहा कन्या-वध होता है। गत वर्षमे कितनी वालिकाओका वध हुआ। वधकी सख्या निकालना कठिन होगा, असभव भी हो सकता है। वात यह है कि जितनी खवर मिल सके सब अिकट्ठी करनी चाहिये और प्रत्येक घरमे, जहा कन्या-वधकी सभावना भी हो, सभाका सन्देश पहुचना चाहिये। सिर्फ अखवारोमें प्रस्तावादि भेजनेका कोअी असर जो मा-वाप कन्या-वध कर रहे है अुन पर नही पडेगा। सभाके कार्यकर्ताओको यह भी याद रखना आवश्यक है कि वे किसी प्रकारकी अतिशयोक्ति न करें। अविश्रान्त, सच्चे और शात प्रयत्नसे अिस कार्यमें शीघ्र सफलता मिल सकती है, अैसा मेरा अभिप्राय और विश्वास है।

हरिजनसेवक, ४–७–'३६

११६
हिन्दू आचार

निम्नलिखित पत्र सात महीने मेरी फाअिलमें रखा रहा है

"हालमें अहमदाबाद और आसपासके गावोंमें मैं हरिजन-सेवाका काम कर रहा हू। सफाअीके कामके अलावा अुनसे धर्मकी बातें भी कहता हू। हालमें अेक हरिजन भाअीने मुझसे कहा कि 'तुम सत्य, अहिंसा, सादा जीवन आदिकी अैसी-अैसी बातें करते हो, जो न हम पूरी तरहसे कुछ समझते हैं और न अुन पर चलते हैं। अिसके लिअे तुम अमुक निश्चित बातें ही हमें समझाओ और अुन्हें आचारमें लानेका आग्रह रखो तभी हम कुछ सुधरेंगे।'

"मुझे अूपरकी बातसे यह सच जान पड़ता है कि हम हरिजनोंसे पवित्र जीवन बिताने जैसी सर्वसामान्य बातें करें, अिसकी अपेक्षा अगर हम हिन्दू धर्मकी कुछ सारूप आज्ञायें तैयार करके अुन्हें आचारमें लायें तो वे वैसा करने लगेंगे, जैसे नित्य प्रार्थना करना, स्नान करके ही जीमना, कामकी चोरी न करना, कोअी व्यसन न रखना आदि बातें जिसमें आ जाय, अिस प्रकारकी हिन्दू धर्मका सच्चा आचार बतानेवाली कुछ आज्ञायें आप तैयार कर दें तो अच्छा हो।"

अिस पत्रको मैंने अिस आशासे दबा रखा था कि अिसका जवाब खुद देनेकी अपेक्षा किसी विद्वान शास्त्रज्ञसे लिखाकर भेज दू तो अच्छा हो। अब यह काम आचार्य आनंदशंकर भाअीने मेरी प्रार्थनासे हाथमें ले लिया है। पर जो पुस्तक तैयार होगी अुससे अूपरके प्रश्नोंका हल, जैसा कि लेखक चाहता है, वैसा नहीं होगा। अिस पुस्तकमें से वह खुद आवश्यक चीजें निकाल लेगा अैसी मेरी आशा है। अिस प्रकारकी कोअी चीज मैं यहा दे देता हू। चूकि हरिजनोंमें काम करते मुझे बरसों हो गये हैं, अिसलिअे मेरा अनुभव शायद प्रश्नकार जैसे सेवकोंको कुछ मदद दे सके।

मैं हरिजनोसे हिन्दू धर्मके तत्त्वोकी बाते नही करता, अुनके मदिर अगर पृथक् होते है तो अुनमे चला जाता हू। अुनके पुजारीके साथ विनोद भी करता हू। अुस बेचारेको साधारणतया कुछ ज्ञान नही होता है। सवर्णोका पुजारी सब कुछ जानता है अैसा कहनेका मेरा आशय नही। मगर सवर्ण पुजारी मेरी बात सुनेगा ही क्यो? हरिजन पुजारी मुझे अेक बडा आदमी मानता है और मेरी बात सुनता तो है, पीछे भले ही अेक कानसे सुनकर दूसरे कानसे निकाल दे। यह तो अलग बात हुअी। हरिजन मडलीको तो मैं अिस प्रकार कहूगा — तुम्हे आज तक हमने दुतकारा ही है, तुम्हारी तरफ देखा भी नही, तुम्हारे दु ख-सुखमे भाग नही लिया। अिसलिअे हमारे धर्मका हमसे क्या तकाजा है, यह मैं तुम्हे बता दू।

१ सवेरे पौ फटनेसे पहले अुठनेकी आदत न हो तो डाल लेनी चाहिये।

२ बहुतसे लोग तो अुठते ही या तो बीडी-चिलम फूकने लगते है, या घरवालोको यो ही अटसट खबरे सुनाते हैं। अैसा करनेके बजाय, बिस्तर छोडनेसे पहले आलस्यको भगाते हुअे प्रभुका नामोच्चारण करना चाहिये और रात निर्विघ्न बीत जानेके लिअे भगवानका आभार मानना चाहिये।

३ बिस्तर छोडते ही बालबच्चोको अुठा देना चाहिये और जहा लोगोका आना-जाना न हो वहा बैठकर नीम या बबूलकी दातुन करनी चाहिये। साथमे, नमक या घरमे पिसे हुअे कोयलेमे दातोको अच्छी तरह घिसना चाहिये। दातुनको चीरकर अुससे जीभ साफ करें और अच्छी तरह कुल्ले करे, आखो पर पानीके छीटे मारें, कीचड हो तो अुसे निकालें, और चेहरा, कान, नाक वगैरा अच्छी तरह धोयें और साफ कपडेसे अुन्हे पोछें।

४ अगर शौचकी खबर हुअी हो तो, और गावके नजदीक पाखाना न हो, और अुसके होते हुअे भी वहा जाना पसद न हो तो दूर जाकर जहा लोगोकी आवा-जाही न हो, वहा शौचक्रिया करनी चाहिये। मलको धूल या मिट्टीसे अच्छी तरह ढक देना चाहिये,

और मलविमर्जनका भाग पानीमे ठीक तरहमे साफ कर देना चाहिये। मल दोनो ही अिन्द्रियोसे निकलता है, अिसलिअे दोनोको अच्छी तरह धोकर अुनका मैल साफ कर देना चाहिये। अिसके वाद पानी और मिट्टीमे हाथ धोने चाहिये, और लोटा भी खूव माजकर साफ करना चाहिये।

५ यह सव नित्यक्रिया करते समय मनमे रामधुन या कोअी भजन गाते जाय, और अैसी कोअी चीज न आती हो तो केवल रामनामकी ही रटना लगी रहे।

६ घर आते आते अिस तरह पौ फटनेका समय हो जायगा। कुटुवके लोग भी अिम वीचमे अिसी तरह शौचादिसे निवृत्त हो चुके होगे। अिसलिअे अुनके साथ वैठकर पाच मिनटमे लेकर आध घटे तक भगवानका भजन-कीर्तन करना चाहिये। अगर कोअी भजन वगैरा न आता हो, तो रामनाम तो सव ले ही सकते है।

७ अिमके वाद नाश्ता करके मवको अपने-अपने काममें लग जाना चाहिये, वालक भी काम पर न जाते हो तो पाठशाला पढने चले जाय।

८ दोपरहका भोजन करनेमे पहले साफ पानीसे मारे शरीरको अच्छी तरह रगड कर नहाना चाहिये। धोती-माडी वगैरा कपडे साफ करके धोने चाहिये। गरीव आदमी, जिन्हे कपडे रोज वदलनेकी मुविधा न हो, लगोटी पहनकर नहा ले। नहानेके वाद शरीरको खूव अच्छी तरह पोछना चाहिये।

९ अिस तरह नित्यका काम-धधा करते हुअे जव शाम हो जाय, तव खाना खानेके वाद और मोनेमे पहले औीश्वरका नाम लेना चाहिये और दिन निर्विघ्न विता देनेके लिअे अुसका आभार मानना चाहिये।

१० हर समय खाना खानेके वाद या अैमा कोअी भी काम करनेके वाद, जिममे कि हाथ गन्दे होते हो, हाथ धोने चाहिये। खाना खानेके वाद कुल्ला करके मुह माफ करना चाहिये।

११ हमें समझना चाहिये कि हमारे हरअेक कामको, हमारे हरअेक विचारको, अीश्वर देखता है, अिसलिअे अुसे तो कोअी धोखा दे ही नहीं सकता। तो फिर अुसके मिरजे हुअे अपने भाअी-बहनोंको हम किस तरह धोखा दें? भले ही वे हमारी धोखेबाजीको न जान सकें। और जान जाय तो धोखा दे ही कैसे सकते हैं?

१२ अिसलिअे हम जिसकी नौकरी करते हों अुसका काम दिल लगाकर करें, अुसे दगा न दें।

१३ और अगर किसीको धोखा न दें, तो किसीकी चोरी तो करें ही किसलिअे? खोटी तोल तोली, तो वह भी चोरी ही हुअी।

१४ हमें कोअी गाली दे या मारे या हमारी मा-बहनके साथ दुराचरण करे, तो हमें वह निश्चय ही अच्छा नहीं लगेगा। अिसलिअे हम किसीको गाली न दें, अपनी स्त्री या बाल-बच्चोंको भी न दें।

१५ न किसीको मारें-पीटें। अिसमें स्त्री और बालबच्चे भी आ गये। अिनका नाम अलगसे लेना पड़ा है, क्योंकि बहुतसे पुरुष अपनी स्त्री और बच्चोंको अपनी माल-मिलकियत समझते हैं। पर यह भारी भूल है। स्त्रीको तो हमारे धर्ममें पुरुषके समान ही माना है। अिसीसे वह अर्धांगिनी कही जाती है, सहधर्मिणी कही जाती है, देवी मानी जाती है। बालबच्चे भी हमारी मिलकियत नहीं हैं। माता-पिता अुनके रक्षक हैं, अिसलिअे अुनके प्रति भी नरमाअी, सहनशीलता और धीरज काममें लाना चाहिये।

१६ जिस प्रकार हम अपनी स्त्री या बालकोंके साथ सद्भाव रखें, अुसी प्रकार माता-पिता आदि बुजुर्गोंके साथ मान या आदरसे बरताव करें।

१७ और अूपरके १४ वें पैरामें जो बताया है अुसके अनुसार यह तो सत्य ही है कि पुरुष परस्त्रीको मा-बहिनके समान समझे, और अिसी तरह स्त्री परपुरुषको भाअी और बापके समान माने।

१८ जिस प्रकार मनुष्यमात्र अेक अीश्वरकी कृति है, अुसी तरह प्राणीमात्र भी अुसीकी कृति हैं, जिससे वे भी अेक कुटुम्ब

है। अिसलिअे अुनके साथ भी हमे सद्‌भाव रखना चाहिये। धरती मिट्टी या पत्थरका भी दुरुपयोग न किया जाय। हमारे धर्ममें तो हमें अिस प्रकारकी प्रार्थना भी सिखाअी गअी है 'हे धरती माता, तेरे अूपर हम रोज चलते है, तेरे ही आधार पर तो हम टिके हुअे है। हमारे पैरके स्पर्शके लिअे हमे तू क्षमा करना।' अैसा कहकर हम चुटकी भर धूल माथे पर चढा ले।

१९ और अिससे हम अपने पशुके साथ भी ममताका बरताव करे, अुसे ठीक-ठीक खिलावें, जितना बोझ वह ले जा सके अुससे अधिक अुसके अूपर लादना नही चाहिये, अुसे अच्छी जगहमे रखे, अुसे मारें-पीटें नही।

२० अिसी तरह जितनेकी जरूरत हो अुतने ही पेड-पत्तोंको तोडे। तोडनेमें विवेकसे काम ले। चाहे जिस तरह न काटें।

२१ जहा तक हो सके मासाहार न करें। पर गोमास तो लेना ही नही चाहिये। हमारे धर्ममे गोरक्षाके लिअे महान स्थान है।

२२ १९वे पैराके अनुसार सब जीव हमारे भाअी-बहन है। अिससे हमारे ऋषि-मुनियोंने सिखाया है कि गायको बतौर माताके मानकर हमें मनुष्य-जातिसे अितर समस्त जीवोंके प्रति भाअीचारेका बरताव रखना चाहिये। गायको माता मानना भी अुचित है, क्योंकि माताकी तरह वह भी हमे दूध देती है। जिसे दूध मिलता है अुसे मास-मछलीकी जरूरत नही रहती। फिर गाय तो हमें बैल भी देती है, और मरनेके बाद चमडा, खाद, गाडियों वगैराके लिअे चरबी आदि चीजे भी हमे दे जाती है। अिसलिअे गायकी हत्या तो करनी ही नही चाहिये।

२३ और गायकी हत्या न करें तो अुसके मरनेके बाद अुसका मास क्यों खावे? मुर्दार जानवरका मास तो दुनियामें कोअी समझ-दार आदमी खाते नही।

२४ व्यसनमें फसनेसे मनुष्य पागल सरीखा बन जाता है, कितनी ही बार तो अुसे बिलकुल ही भान नही रहता। अिसलिअे

दारू, ताडी, भाग, गाजा, अफीम, तमाखूको न पीना चाहिये, न खाना चाहिये।

२५ जुआ तो ठगी हे और अुसमे मिला हुआ धन हरामका पैसा है। अिसलिअे जुआ नही खेलना चाहिये।

२६ जैसा हमे अपना धर्म प्रिय हे वैसा ही दूसरोको अपना धर्म प्यारा है। अिसलिअे हमे सब धर्मोका आदर करना चाहिये, अुन्हे अेक समान मानना चाहिये। और अिससे हमें मुसलमान, अीसाअी वगैरा अन्य धर्मावलंबियोंके साथ द्वेष या लडाअी-झगडा करना ही नही चाहिये।

२७ जब धर्म यह सिखाता है कि हम सब अीश्वरकी सतान है, तो फिर अुसमे अूच-नीच कोअी हो ही नही सकता। अस्पृश्यताकी तो गन्ध भी नही होनी चाहिये।

२८ अतमे हमारा धर्म यह भी कहता है कि जो अपने शरीर-श्रमसे अपनी आजीविका पैदा नही करता, वह चोरीका अन्न खाता है। अिसलिअे सबको खेतीमें या कपडे बनानेमे या अैसी ही मजदूरीमे लगकर अपनी रोटी पैदा करनी चाहिये, और अिसीसे अपने अपने गावमे अनाज, खादी वगैरा खाने-पहननेकी चीजे पैदा करनी चाहिये।

अैसा मैने अनेक बार भिन्न भिन्न अवसरो पर कहा है और अुसीको यहा लेखनीबद्ध कर दिया है। अिसमे अवसरके अनुसार और अुसके अन्तर्गत सत्य, अहिंसा आदि सनातन तत्त्वोका अनुसरण करके और भी अैसे वचन बनाये जा सकते है।

हरिजनसेवक, २–१–'३७

११७

तीन प्रश्न

अेक साथीने नीचे लिखे अनुसार तीन प्रश्न पूछे है

"(१) अगर आज हरिजनोको मदिर-प्रवेश मिल जाता है, तो कल अैसा आन्दोलन अुठ सकता है कि जहा पुजारी जा सकते है वहा स्वच्छ होकर सब लोग क्यो नही जा सकते? असको रोकना मुश्किल है। दलीलसे यह नही समझाया जा सकता।

"(२) जिस मदिरमे हरिजनोका प्रवेश नही अुस मदिरमे अीश्वरका वास नही, अैसा जो कहा जाता है यह मुझे अेकातिक लगता है। अीश्वर मदिरोमें ही है, अन्यत्र नही, यह कहना जितना मिथ्या है अुतना ही मिथ्या यह भी है कि जिस मदिरमें हरिजन नही जा सकते अुस मदिरमें अीश्वरका वास नही।

"(३) महात्माजी कहते है कि अगर अस्पृश्यताका नाश न हुआ तो हिन्दू धर्म नष्ट हो जायगा। हजारो बरसोसे आज तक अस्पृश्यता टिकी हुअी है, तब भी हिन्दू धर्मका नाश नही हुआ, सो अब नाश किस प्रकार हो सकता है? जिस हिन्दू धर्ममे अस्पृश्यता है अुसी हिन्दू धर्ममे महात्माजीको शाति मिली है।"

(१) श्रद्धावान मनुष्यको भविष्यमे आनेवाली कठिनाअियोंके भयसे अपना वर्तमानका कर्तव्य नही छोडना चाहिये। जैसे हम है, वैसे ही हरिजन है, अैसा समझकर बरतना अुचित है। जो दलीलें हम समझते है, अुन्हे हरिजन भी समझते है, अैसा विश्वास रखे। जितनी मर्यादाकी रक्षा सवर्ण करते है, अुतनीका पालन हरिजन अवश्य करेंगे। आज तकका अनुभव यही बतलाता है। सवर्ण-अवर्णका भेद

अथवा सवर्णोके अन्दर-अन्दरका भेद वे नही समझेगे, क्योकि अैसा भेद अस्पृश्यतासूचक है, बुद्धि अुसे स्वीकार नही करती। बुद्धिका विषय होनेसे वह श्रद्धाका विषय नही हो सकता।

(२) जिस मदिरमे हरिजनोका प्रवेश नही, अुस मदिरमे अीश्वरका वास नही, यह वचन अवश्य अेकातिक है। अेकातिक अर्थात् अमुक दृष्टिसे सत्य। अिस अर्थमे लगभग सभी वचन अेकातिक होते है। पर अिससे अिस प्रकारके वचन दूषित नही ठहरते। व्यवहारके लिअे दूसरा रास्ता ही नही। भगवान कहा वसते है, अिस प्रश्नके अुत्तरमे श्री रामजीने कहा हे कि भगवान सतके हृदयमे वास करते है, असतके हृदयमे नही। यह वचन भी अेकान्तिक है। तो भी अिससे अुलटा या यह कहना कि 'भगवान दुर्जनके हृदयमे भी वसते है' अधिक शास्त्रीय भले ही हो, पर व्यवहार-दृष्टिसे हानिकारक है। हत्यारेके खजरमे और सर्जनके नस्तरमे शास्त्रीय दृष्टिसे दोनोमे ही अीश्वर हे, पर प्राकृत और व्यवहार-दृष्टिसे अेकमें देव हे, दूसरेमे असुर। अेकका प्रेरक राम है, दूसरेका रावण, अेकमें खुदा है, दूसरेमे शैतान, अेकमे ओरमज्द है, दूसरेमे अहरीमान। अिसलिअे मै तो अपने कथनसे अब भी चिपटा हुआ हू कि जहा हरिजनको स्थान नही, वहा हरिको भी नही।

(३) अिस वचनमे कुछ तथ्य नही जान पडता। हिन्दू धर्मका नाश तो हमारी आखोके सामने ही हो रहा हे, और अुसका अेक और मुख्य कारण अस्पृश्यता हे। जो मुर्देकी नाअी जी रहा हे, वह जीता नही है। मुझ जैसोको हिन्दू धर्मसे शाति मिलती है तो अिसका कारण तो यह हे कि अस्पृश्यताको मै हिन्दू धर्मका अग जरा भी नही मानता। प्रश्नकार अैसा कह सकता है कि मेरा नाशविषयक वचन भी अेकानिक हे। अैसा है ही, पर वह अचूक है। हिन्दू धर्मीका नाश हो जाय, तो हिन्दू धर्मका नाश ही समझना चाहिये। मै अकेला अुसका साक्षी रहू अिसका मुझे भले ही सतोष बना रहे, पर जिसका नाश हो रहा हो अुसके लिअे क्या कहा जाय?

हरिजनसेवक, २०-२-'३७

११८

हरिजनसेवकका धर्म

अेक हरिजनसेवक लिखते है

"अेक प्रभावशाली राष्ट्रसेवक अैलान करते है कि वे अपने व्यक्तिगत आचरणोमे हरिजनोके साथ पूर्ण समानताका व्यवहार रखते है। आश्रम अित्यादिमे हरिजनोकी बनाअी हुअी रसोअी भी बिना हिचकिचाहटके खा लेते है। फिर भी सर्व-साधारणके अूपर अुनके अिस आचरणका वांछित प्रभाव नही पडता। लोग कहते है—घरसे बाहर ये लोग कुछ भी करे, घरमे तो अैसा न करने पायेगे। हम लोग घर-गृहस्थीमें रहनेवाले है, बालबच्चोका शादी-ब्याह करना है। हम समाजके नियमोका अुल्लघन कैसे कर सकते है?

"अुक्त सेवकके अुदार मित्रगण सलाह देते है कि 'आप अपने घरमे भी हरिजनोके साथ अैसा ही व्यवहार करे, जैसा अन्य स्थानोमे करते है। अच्छा हो कि आप केवल यही दिखलानेके लिअे कि अपने घर व गावमे भी आप हरिजनोके साथ असमानताका व्यवहार नही करते, अपने ही गावमे अेक सार्वजनिक सभा करके हरिजनोसे पानी मगाकर पीयें या अुनके हाथसे भोज्य वस्तु ग्रहण करें। अैसा देखने पर लोग अिस विषय पर विशेष रूपसे विचार करेंगे।'

"अिस पर वे सेवक अुत्तर देते है—'मेरा व्यवहार तो सदा अेकसा ही होता है। घर पर या गावमे कोअी हरिजन मुझे पानी व भोज्य वस्तु दे देगा तो ग्रहण कर ही लूगा। पर प्रदर्शनका आयोजन करके लोगोको चिढाअूगा नही।'

"पर बात तो और ही है। जो हरिजन अुक्त सेवकको आश्रममे खिलाता है अुसने भी तो यही समझ रखा है कि

वाबू यहा पर तो हमारे हाथसे भोज्य वस्तु या पानी ग्रहण कर लेते हैं, पर घर पर अुन्हे पानी देना मेरे लिअे अनुचित है। अिस हालतमे घर पर तो विना विशेष आयोजनके अैसा प्रसग अुठ ही नही सकता।

"और क्या अुपर्युक्त प्रकारके आयोजन करनेका अर्थ 'लोगोको चिढाना' हो सकता हे? मैं तो अिसका अर्थ 'लोगोका भ्रम दूर करना' समझता हू।"

सुधारक लोगोको कव 'चिढाता' है, और कव 'लोगोका भ्रम दूर करता है' अिसका अुत्तर देना असभव नही है। अेक ही कार्यसे अथवा अेक ही वचनसे चिढ भी पैदा हो सकती है और भ्रम भी दूर हो सकता है। अिसका निर्णय प्रत्येक व्यक्ति पर ही छोडना चाहिये। अितना निश्चयपूर्वक अवश्य कह सकते हैं कि किसीको चिढानेके हेतु हम कुछ न करे, और भ्रम दूर करनेकी कोशिश अवश्य करे। जव सुधारकी सव क्रिया स्वाभाविक वन जाती है, तव चिढानेका प्रश्न ही पैदा नही होता। क्योकि स्वभावको कौन छोड सकता हे और जव क्रिया या वचन स्वाभाविक होते हैं, तव किसीको अुससे चिढ पैदा नही होती है। अिसलिअे अच्छा तो यही है कि सुधारक अपने कर्तव्यका पालन कर्तव्य समझकर ही करे, और दूसरे किसी खयालसे न करे। अैसा करनेसे अपने-आप भ्रम दूर हो जायगा।

हरिजनसेवक, २०–२–'३७

११९

हरिजन व अितरजन

अेक सज्जन लिखते है

"विहारमे अैसी हरिजन पाठशाला है, जिसमे सवर्ण लडकोकी सख्या अवर्ण अर्थात् हरिजन लडकोकी सख्यासे अधिक है। प्रथम दृष्टिमे यह वात अुचित-सी प्रतीत होगी, लेकिन अैसा नही है। विहारमे प्राथमिक शिक्षा मुफ्त नही दी जाती। सिर्फ हरिजन-सेवक-सघ द्वारा जो पाठशाला चलती है अुनीमें मुफ्त शिक्षा देते है। अिस कारण काफी हरिजनेतर लडके वहा जाते हैं। हरिजन-सेवक-सघकी नीति स्पष्ट है कि हरिजनेतर लडकोसे फीस ली जाय। अिस बारेमे प्रकाश डालनेकी आवश्यकता है क्या?"

आवश्यकता अवश्य है। यदि सब हरिजन शालाओमे ज्यादातर सवर्ण लडके आ जाय तो भविष्यमे हरिजन लडकोके शिक्षारहित हो जानेका भी पूरा डर है। अिसलिअे प्रत्येक सवर्ण लडकेके पाससे कुछ न कुछ फीस लेनी ही चाहिये। यह सभव है कि सवर्ण लडके भी हरिजन लडकोके जैसे ही गरीव हो। यदि अैसा है तो विहार हरिजन-सेवक-सघको विहार विद्यापीठके साथ मशविरा करके जितने सवर्ण लडके पाठशालामे आवे अुनके लिअे विद्यापीठसे खर्चेका हिस्सा लेना चाहिये। विद्यापीठका क्षेत्र अमर्यादित है, हरिजन-सेवक-सघका मर्यादित है, और होना भी चाहिये। अिसलिअे सवर्ण लडकोको मुफ्त सिखाना हरिजन-सेवक-सघके लिअे अनुचित होगा। विद्यापीठके लिअे शायद यह धर्म होगा।

हरिजनसेवक, २०-२-'३७

१२०

दृश्य तथा अदृश्य दोष

अेक खादीसेवक लिखते है .

"आप कार्यकर्ताओंके सदाचार पर बहुत जोर देते आ रहे है। आपने अधिकतर कामवासनासे बचनेको ही बहुत महत्त्व दिया है जो कि ठीक भी है। जब कभी अिस विषयमे किसी कार्यकर्ताकी गिरावटका अुदाहरण आपके सामने आया है, आपके हृदयको सख्त चोट लगी है और आपने अुसका अुल्लेख 'हरिजन' मे भी किया है। लेकिन क्या सदाचारका अर्थ केवल परस्त्रीके प्रति कामवासना न रखना ही है? क्या झूठ बोलना, अीर्ष्या व द्वेष रखना सदाचारके विरुद्ध नही है? चूकि हमारा समाज भी अिन बातोको अितनी घृणासे नही देखता जितनी घृणासे वह परस्त्रीके साथ सबधको देखता है, अिसलिअे शायद आप भी अिन बातो पर अधिक जोर नही देते। पर ये बुराअिया अुससे कम नही, बल्कि बाज हालातमे तो ये कही अधिक हानिकारक होती है।

"वैसे तो पापोकी तुलना ही क्या! परतु हमारे आज-कलके समाजमे तो अिन चीजोको अधिक बुरी निगाहसे नही देखा जाता। जब अेक जिम्मेदार मुख्य कार्यकर्ता अेक दिनमे चार-पाच सफेद झूठ बोले और किसी पर झूठे अिलजाम लगाये, तो क्या हृदय विदीर्ण नही हो जाता? क्या अिससे अपनेको व समाजको वह हानि नही पहुचाता?"

यह प्रश्न अच्छा है। दोषोमे अूचनीचकी भावना नही होनी चाहिये। जहा तक मेरा सबध है, मै तो असत्यको सब पापोकी जड मानता हू। और जिस सस्थामे झूठको बरदाश्त किया जाता है, वह सस्था कभी समाजसेवा नही कर सकती, न अुसकी हस्ती भी

ज्यादा दिनो तक रह सकती है। लेकिन मनुष्य झूठका प्रयोग जब करता है, तब अुस झूठ पर अनेक प्रकारके रग चढते है। अुनका अेक प्रकार व्यभिचार है। झूठके ही रूपमे झूठ शायद ही प्रगट होता है। व्यभिचारी तीन दोष करता है। झूठका दोष तो करता ही है, क्योकि अुसके पापको छुपाता है। व्यभिचारको दोष मानता ही है और दूसरे व्यक्तिका भी पतन करता है।

जितने और दोषोका वर्णन लेखकने किया है वे सब गुणवाचक है। अिनको हम न देख सकते है, न शीघ्र पकड सकते है। जब वे मूर्तिमत होते है, अर्थात् कार्यमे परिणत होते है, तभी अुनका विवेचन हो सकता है, अुनके दूर करनेका अुपाय भी तभी सभवित होता है। अेक मनुष्य किसीसे द्वेष करता है। अुसका कोअी परिणाम जब तक नही आता, तब तक अुसकी न कोअी टीका की जाती है न द्वेषी मनुष्यका सुधार किया जा सकता है। लेकिन जब द्वेषवश कोअी किसीको हानि पहुचाता है, तब अुसकी टीका हो सकती है और वह दडके योग्य भी बनता है। बात यह है कि समाजमे और कानूनमे भी व्यभिचार काफी बरदाश्त किया जाता है, अगरचे व्यभिचारसे समाजको हानि अधिक पहुचती है। चोरको सख्त सजा मिलती है और चोर बेचारा समाजमे बहिष्कृत हो जाता है। और व्यभिचारी सफेदपोश सब जगह देखनेमे आते है, अुन्हे दड तो मिलता ही नही। कानून अुनकी अुपेक्षा करता है। मेरा विश्वास है कि करोडोकी सेवा करनेवाली सस्थामे जैसे चोरोको, गुण्डोको स्थान होना ही नही चाहिये, ठीक अिसी तरह व्यभिचारियोको भी नही होना चाहिये।

हरिजनसेवक, २७–२–’३७

१२१

ब्रह्मचर्य

अेक सज्जन लिखते है

"आपके विचारोको पढकर मै वहुत समयसे मानता आया हू कि सन्तति-निरोधके लिअे ब्रह्मचर्य ही अेकमात्र सर्वश्रेष्ठ अुपाय है, सभोग केवल सतानेच्छासे प्रेरित होकर ही होना चाहिये, विना सतानेच्छाका भोग पाप है। अिन वातोको सोचते है तो कअी प्रश्न अुपस्थित होते है। सभोग सतानके लिअे किया जाय यह ठीक है, पर अेक-दो वारके सभोगसे सतान न हो तो? अैसे मनुष्यको मर्यादापूर्वक किस सीमाके अन्दर रहना चाहिये? अेक-दो वारके सभोगसे सतान चाहे न हो, पर आशा कहा पिड छोडती है? अिस प्रकार वीर्यका वहुत कुछ अपव्यय अनचाहे भी हो सकता है। अैसे व्यक्तिको क्या यह कहा जाय कि अीश्वरकी अिच्छा विरुद्ध होनेके कारण अुसे भोगका त्याग कर देना चाहिये? अैसे त्यागके लिअे तो वहुत आध्यात्मिकताकी आवश्यकता है। प्राय अैसा भी देखनेमे आया है कि सतान सारी अुम्र न होकर अुत्तरावस्थामे हुअी है, अिसलिअे आशाका त्याग कितना कठिन है! यह कठिनाअी तव और भी वढ जाती है, जव दोनो स्त्री व पुरुप रोगमे मुक्त हो।"

यह कठिनाअी अवश्य है, लेकिन अैसी वातें मुश्किल तो हुआ ही करती है। मनुष्य अपनी अुन्नति वगैर कठिनाअीके कैसे कर सकता है? हिमालय पर चढनेके लिअे जैसे जैसे मनुष्य आगे वढता है, कठिनाअी वढती ही जाती है। यहा तक कि हिमालयके सवसे अूचे शिखर पर आज तक कोअी पहुच नही सका है। अिस प्रयत्नमे कअी मनुष्योने मृत्युकी भेंट की है। हर साल चढाअी करनेवाले नये नये पुरुषार्थी तैयार होते है और निष्फल भी होते है, फिर भी वे अिस प्रयासको छोडते नही। विपयेन्द्रियका दमन हिमालय पहाड पर चढनेसे तो कठिन है ही, लेकिन अुसका परिणाम भी कितना अूचा है!

हिमालय पर चढनेवाला कुछ कीर्ति पायेगा, क्षणिक सुख पायेगा, अिन्द्रियजित मनुष्य आत्मानद पायेगा और अुसका आनन्द दिन प्रति दिन वढता जायेगा। ब्रह्मचर्य-शास्त्रमे तो अैसा नियम माना गया है कि पुरुषवीर्य कभी निष्फल होता ही नही, और होना ही नही चाहिये। और जैसा पुरुषके लिअे अैसा ही स्त्रीके लिअे भी, अिसमे कोअी आश्चर्यकी वात नही। जव मनुष्य अथवा पुरुष निर्विकार होते है तव वीर्यहानि असभवित हो जाती हे, ओर भोगेच्छाका सर्वथा नाश हो जाता हे। और जव पति-पत्नी सतानकी अिच्छा करते है, तभी अेक दूसरेका मिलन होता हे। और यही अर्थ गृहस्थाश्रमीके ब्रह्मचर्यका है। अर्थात् स्त्री-पुरुषका मिलन सिर्फ सतानोत्पत्तिके लिअे ही अुचित है, भोगतृप्तिके लिअे कभी नही। यह हुअी कानूनी वात, अथवा आदर्शकी वात। यदि हम अिस आदर्शको स्वीकार करे तो हम समझ सकते है कि भोगेच्छाकी तृप्ति अनुचित है, और हमे अुसका यथोचित त्याग करना चाहिये। यह ठीक हे कि आज कोअी अिस नियमका पालन नही करते। आदर्शकी वात करते हुअे हम शक्तिका खयाल नही कर सकते। लेकिन आजकल भोगतृप्तिको आदर्श वताया जाता है। अैसा आदर्श कभी हो ही नही सकता। यह स्वयसिद्ध है। यदि भोग आदर्श है तो अुसे मर्यादा नही होनी चाहिये। अमर्यादित भोगमे नाश होता है यह सभी स्वीकार करते है। त्याग ही आदर्श हो सकता है और प्राचीन कालसे रहा है। मेरा कुछ अैसा विश्वास वन गया है कि ब्रह्मचर्यके नियमोको हम जानते नही है अिसलिअे वडी आपत्ति पैदा होती है, और ब्रह्मचर्य-पालनमे अनावश्यक कठिनाअी महसूस करते है। अव जो आपत्ति मुझे पत्रलेखकने वताअी है वह आपत्ति ही नही रहती, क्योकि सततिके कारण तो अेक ही वार मिलन हो सकता हे, अगर वह निष्फल गया तो दोवारा अुन स्त्री-पुरुषोका मिलन होना ही नही चाहिये। अिस नियमको जाननेके वाद अितना ही कहा जा सकता हे कि जव तक स्त्रीने गर्भधारण नही किया तव तक प्रत्येक ऋतुकालके वाद जव तक गर्भधारण नही हुआ है तव तक प्रतिमास अेक वार स्त्री-पुरुषका मिलन क्षतव्य हो सकता है, और

यह मिलन भोगतृप्तिके लिअे न माना जाय। मेरा यह अनुभव है कि जो मनुष्य वचनसे और कार्यसे विकार-रहित होता है, अुसे मानसिक अथवा शारीरिक व्याधिका किसी प्रकारका डर नही है। अितना ही नही, वल्कि अैसे निर्विकार व्यक्ति व्याधियोसे भी मुक्त होते है और अिसमे कोअी आश्चर्यकी वात नही है। जिस वीर्यसे मनुष्य जैसा प्राणी पैदा हो सकता है, अुसके अविच्छिन्न सग्रहसे अमोघ शक्ति पैदा होनी ही चाहिये। यह वात शास्त्रोमे तो कही गअी है, लेकिन हरअेक मनुष्य अिसे अपने लिअे यत्नसे सिद्ध कर सकता है। ओर जो नियम पुरुषोके लिअे है वही स्त्रियोके लिअे भी है। आपत्ति सिर्फ यह हे कि मनुष्य मनसे विकारमय रहते हुअे शरीरसे विकार-रहित होनेकी व्यर्थ आशा करता है और अन्तमे मन और शरीर दोनोको क्षीण करता हुआ गीताकी भाषामें मूढात्मा और मिथ्याचारी वनता हे।

हरिजनसेवक, १३–३–'३७

१२२

अेक भ्रम

"हिन्दुस्तानमे अछूतोद्धारका आन्दोलन आपसे पहले भी आर्यसमाज ५० वर्षसे कर रही है, पर जितना कार्य आपने अिसकी अुन्नतिके लिअे किया है, अुतना पहले कभी भी नही हुआ। अिसलिअे आप ही को अिस कार्य-पद्धतिका जन्मदाता कहना चाहिये। और साथ ही, अिसके भले और वुरेकी जिम्मेवारी भी आप ही पर निर्भर करती है।

"मैंने आपके अिस आदोलन पर वहुत अच्छी तरह विचार किया है, पर मेरी तुच्छ सम्मतिमे तो आपके अिस आन्दोलनमे न तो अछूतोको और न तो हिन्दू धर्मको ही कोअी ज्यादा लाभ हो रहा है। आपके अिस प्रोपेगेडाने तमाम देशके हर खास व आममे और अछूतोमे यह विचार फैला दिया

है कि अुच्च जातिके हिन्दू समुदाय-रूपमे भारी अत्याचारी है, अछूतो पर जुल्म करते है, और अुनके दु ख, कष्ट और पतनके कारण है। अिस विचारने अछूतोके अन्दर अुच्च जातिके हिन्दुओ तथा हिन्दू धर्मके प्रति घृणा पैदा कर दी है। अिसीका परिणाम यह है कि आज आवेडकर जैसे लोगोकी धमकी हजारो हरिजनोको धर्मविमुख बना रही है, और अुन्हे पतित होनेकी ओर प्रोत्साहित कर रही है। देखना अब यह है कि हम जितना प्रोपेगेडा कर रहे है अुसमे कितनी सचाअी है, हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज अुसके लिअे कितना दोषी है।

"अगर यह कहा जाय कि अुच्च जातिके हिन्दू अिसलिअे जालिम है कि वे अछूतोके साथ खानपानका व्यवहार नही रखते, अपने मदिरोमे अुन्हे जाने नही देते, अपने कुओमे अुन्हे पानी नही भरने देते, तो अैसा व्यवहार तो वे अग्रेजो, मुसलमानो, पारसियो आदि दूसरी कौमोके साथ भी करते है। तो क्या यह कहा जाय कि सवर्ण हिन्दू अिन कौमो पर जुल्म कर रहे है?

"अगर अछूतपन धर्ममे समझा जाय तो डॉक्टर, वैद्यादि और कुछ दूसरी जातिया भी शास्त्रानुसार अछूत है और अुनके घरका जलपान भी मना है। पर हम देखते है कि हिन्दू समाज अुन्हे अछूत नही मानता, क्योकि अक्सर देखनेमे आता है कि ब्राह्मण, क्षत्रियादि अुन जातियोके जूठे बर्तन मलते है, कपडे धोते है, और और भी तरह तरहकी नीच टहल करते है, अुनका साहस नही कि मालिकोकी किसी भी तरह बराबरी कर सके। अुच्च जातिके हिन्दू होते हुअे भी वे पतित है और नीच माने जाते है। कारण यह है कि वे निर्धन है। निर्धनता ही अछूतपनका कारण है। यह देखा गया है कि अेक धनाढ्य अछूतके साथ कोअी छुआछूतका व्यवहार नही करता।

"अिसलिअे अछूतोको अुन्नत करनेके लिअे अुनकी आर्थिक अवस्थाकी अुन्नति करना बहुत जरूरी है। जिसके बगैर छुआ-

छूतका भूत मरनेका नही। अछूतोंके साथ रोटी खाने, मंदिरोमें अुन्हें जाने देने या कुओंसे पानी भरने देनेमें कुछ होने-जानेका नही। अैसा करनेमें अुनके जीवनमें कोअी फर्क नही पड़ेगा, अिससे अुन्हें समताका दर्जा नही मिलेगा। मेरे विचारमें अछूतोद्धारका आन्दोलन अितना धार्मिक नही जितना कि आर्थिक है। और हमें भी यह सवाल अुसी तरह हल करना होगा, जिस तरह कि दूसरे देश अमीरी और गरीबीके प्रश्नको हल कर रहे हैं।

"राज्यकी लापरवाही और मशीनोंके कारण हमारे देशकी दस्तकारियां बिलकुल नष्ट हो चुकी हैं, हम रहे-सहे केवल काश्तकार रह गये हैं। पर अब तो यह काम भी लाभदायक नही है, क्योंकि हमारा मुकाबला अुन देशोंके साथ है, जहां कि आबादी २, ५ तथा १२ आदमी प्रतिवर्ग मील है, अर्थात् कैनेडा, ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका तथा रूस। पर हमारे देशकी आबादी तो २०० मनुष्य प्रतिवर्ग मील है।

"अिसलिअे जमीनके कम होनेके कारण हमारे प्रस्तुत पदार्थोंका मूल्य अधिक होता है और अिससे हमारी आयमें भारी कमी आ जाती है। अूपर कमर-तोड़ टैक्स अलग हमारा कचूमर निकाल रहे हैं। भला अिस दशामें दलितोंका अुद्धार हो तो कैसे? अिसी कारण आज सारा हिन्दुस्तान बेकार और दलित होता चला जा रहा है। अछूतोंको यह बात समझानी होगी कि अुच्च जातिके हिन्दुओंके साथ खान-पान रखनेसे, अुनके मन्दिरोंमें प्रवेश करनेसे तथा अुनके कुओंसे पानी भरनेसे अुन्हें रोटी नहीं मिलेगी। जब तक कि हमारे देशमें फिरसे दस्तकारियां जोर न पकड़ें, तब तक यह सब अशक्य है।

"अुनकी रुकावटके लिअे न हिन्दू धर्म दोषी है न सवर्ण हिन्दू, और न अुनके विधर्मी होनेसे ही यह प्रश्न हल होगा।"

यह पत्र मुझे गत नवम्बर मासमें मिला था। लेकिन कार्यवश अब तक मैं अिस पर कुछ लिख नहीं सका था। लेखक महोदय

लाहौरके अेक विद्वान है। आश्चर्यका विषय है कि वे अेक भारी भ्रमणामें पडे हुअे है। त्रावणकोरके हालके चमत्कारने शायद अुनके भ्रमको दूर कर दिया हो, तो भी अैसा भ्रम बहुतसे लोगोको रहता है। अिसलिअे अच्छा यह होगा कि अुनके पत्रका अुत्तर दिया जाय।

त्रावणकोरमे जिन हरिजनोने मदिर-प्रवेशके बारेमे प्रवल आन्दोलन अुठाया, वे सव पैसे-टकेसे कैमे सुखी थे। अुनके नेता त्रावणकोरके भूतपूर्व जज श्री गोविन्दन थे, और आज भी है। पैसा अुन्हे शाति नही दे रहा था। मदिर-प्रवेशने अुन्हे शाति प्रदान की है, यह हम प्रत्यक्ष देख रहे है। महाराजा और महारानी पर वे मुग्ध हो गये है। महाराजा अगर अुन्हे अपना आधा राज्य भी सौंप देते, तव भी वह काम नही हो सकता था, जो मदिर खोल देनेसे हो गया है। अिस चमत्कारका अर्थ यह है कि मनुष्य वहुतसी चीजोको धनसे भी वहुत कीमती समझता है। स्वमानके लिअे मनुष्य अपना सर्वस्व चढा देता है। धर्मके लिअे लोगोने अनेक सकट सहे है, और मृत्यु तकको आलिगन किया है।

विधर्मियोसे हिन्दू जाति छुआछूतका व्यवहार रखती है, अिसमे भी घृणा तो अवश्य है ही। लेकिन विधर्मियोको वलवान होनेके कारण अितना वुरा नही लगता जितना कि हरिजनोको लगता है, जो सहधर्मी होते हुअे भी अछूत माने जाते है।

यह कहना भी ठीक नही है कि चार वर्णोके वीचमे भी खान-पानका प्रतिवध है। अिसमे और अछूतपनमे अैसा अन्तर है, जैसा कि हाथी और चीटीमे। अछूतोका जाति-वहिष्कार है। अुनके पास कितना ही धन हो, यदि दस्तूरके वाहर जाकर वे कुछ करते है तो पीटे जाते है। अवश्य मेरा विश्वास है कि हरिजनोके कष्टोके लिअे सवर्ण हिन्दू ही जिम्मेवार है। अुन्होने अधर्मको धर्म वना रखा है। अुनके प्रश्नको सिर्फ आर्थिक वना देना मौजूदा स्थितिसे अिनकार करना ही कहा जा सकता है।

लेखक महोदयके लिखनेसे कुछ अैसा प्रतीत होता है कि यद्यपि वे हिन्दू है, तो भी अपने समाजसे वे वाहर-से रहते है। ब्राह्मण कोअी

अैसे नही पाये जाते, जिनसे कोअी राजपूत या अन्य वर्णके हिन्दू घृणा करें। अिसके विपरीत बल्कि हम हमेशा यह देखते है कि ब्राह्मण या और कोअी भी अगर जान-बूझकर गरीबी पसन्द करते है तो धनिक भी अुन्हे पूजते है।

अतमे, लेखकका पत्र विनय और ध्यानपूर्वक पढते हुअे भी, अस्पृश्यताके बारेमें मैने जो कुछ कहा है और किया है, अुसके सबधमे मुझे कोअी पश्चात्ताप नही है।

हरिजनसेवक, २०–३–'३७

१२३

अिसके मानी क्या?

"हरिजनों, अुनके मित्रों तथा सहकारियोंको अुज्जैनके महाकाले-श्वरके मंदिरमें जानेकी मुमानियत करनेवाला नोटिस बोर्ड महाराजा साहब, ग्वालियरने हटा दिया है —" अिस आशयका अेक तार मुझे ग्वालियरसे मिला है।

अिसके पहले कि नोटिसके हटाये जाने पर कोअी अपनी राय जाहिर कर सके, अिस असरके पूरे मानी जान लेना बहुत जरूरी है। अगर मंदिर-प्रवेशकी रुकावट तो कायम ही रही हो और केवल वह नोटिस ही हटा दी गयी हो, तो अिससे तो अुन जलील किये गये हरिजनों और अुनके सवर्ण साथियोंको कोअी समाधान नही मिल सकता। नोटिस-बोर्डको हटा हुआ देखकर यदि कोअी हरिजन भाअी असावधानीसे मंदिरमें प्रवेश करनेकी हिम्मत भी करे, तो मुमकिन है अुसे सजा भी भुगतनी पड़े। मगर अुस नोटिसके हटाये जानेके मानी अगर मंदिर-प्रवेशकी स्वतंत्रता ही मानना है, तो अिस सिलसिलेमें अेक अैलान निकालकर अिस फैसलेको साफ-साफ जाहिर कर देना अुचित होगा। और अगर अेक मंदिरसे रुकावट अुठा ली जाती है,

तो रियासतके प्रबंधाधीन जो तमाम मंदिर हैं — जिनकी संख्या करीब पचासकी है — अुन सब परसे ही वह रुकावट क्यों न अुठा ली जाय? अिसलिअे मैं आशा करता हूं कि रियासतके अधिकारी अिस मसले पर प्रकाश डालेंगे और अुस नोटिसके हटाये जानेके क्या मानी हैं, यह जनताको समझा देंगे। अपनी रिआयाके अत्यंत गरीब और लाचार लोगोंको अेक अैसे सवाल पर न्याय देनेमें, जो कमाल दर्जेका धार्मिक महत्त्व रखता हो और जिसके लिअे जरासी भी आर्थिक हानि न अुठानी पड़ती हो, राजा लोग और अुनके सलाहकार भीरु नजर आते हैं। त्रावणकोरकी अितनी बड़ी अचरज भरी मिसालमें वह देख सकते थे कि अगर वह अपने मंदिर हरिजनोंके लिअे खुले कर देते हैं तो अैसा करनेसे कोअी नाराज तो नहीं होता। हो सकता है कि राजा लोग अपने अुन मध्यम श्रेणीके हिन्दुओंसे डरते हों, जिनके साथ अुनके रोजमर्राके संबंध रहते हैं और जो अुन अनेक गरीब हरिजन या दूसरे मूक दुखियोंसे कोअी वास्ता नहीं रखते। हाथकी अुंगलियों पर गिने जानेवाले राजाओंको छोड़ दीजिये, तो बहुतसे अैसे राजा हैं जिन्हें अस्पृश्यता-निवारणके बारेमें कोअी खास धार्मिक आपत्ति भी नहीं है। राजा लोगोंकी पुरानी पदवियोंसे तो प्रगट होता है कि वे धर्मरक्षक समझे जाते हैं। फिर क्या वे हरिजनोंके लिअे मंदिर खुलवा देनेके अपने कर्तव्यको पूरा करनेमें लापरवाही ही करते रहेंगे? अुस रोज मैंने महाराजा त्रावणकोरकी 'पद्मनाभदास' की पदवीकी ओर पाठकोंका ध्यान खींचा था। अब मुझे दी० ब० हरबिलास सारडासे मालूम हुआ है कि अुदयपुरके महाराणा भी अपने अिष्टदेव श्री अेक-लिंगजीके दीवान ही कहलाते हैं और जब जब वे वहां जाते हैं तो पुजारीका काम खुद ही करते हैं। अिसलिअे मैं राजाओं और अुनके सलाहकारोंसे आदरपूर्वक लेकिन पुरअसर शब्दोंमें दरखास्त करूंगा कि वे हिम्मतके साथ और साफ-साफ शब्दोंमें अपनी-अपनी रियासतोंके मंदिर हरिजनोंके लिअे खोल देनेकी घोषणा कर दें और अपने-आपको अपने धर्मके सच्चे संरक्षक (ट्रस्टी) साबित कर दें।

हरिजनसेवक, २७–३–'३७

१२४

गोसेवामें बाधाअें

अेक पिंजरापोल गोशालाके मत्री लिखते है

"हमारे यहा गोशालामे अब तक मरे हुअे जानवर चर्मकारोको यो ही मुफ्त दे दिये जाते थे। पर अिस साल हमारे यहा मरे हुअे पशुओका चमडा मजदूरी पर अुतरवाकर बेचा गया। अिससे यहाके रूढिवादी लोगोंमे भारी असतोष फैल गया है। कृपया अिस विषय पर आप अपनी राय लिखकर भेज दे, या 'हरिजनसेवक' मे प्रकाशित करा दे, जिससे यहाकी जनताका यह भ्रम दूर हो जाय। क्योंकि वे अिस कार्यको धर्म और अहिंसाके विरुद्ध मान रहे हैं। और यह भी स्पष्ट हो जाय कि अिससे सनातन धर्मको कोअी हानि नहीं पहुचती, साथ ही, यह कार्य गोशाला तथा गोरक्षाके अुद्देश्यके विपरीत नहीं है।"

मेरा तो दृढ विश्वास है कि मृत पशुके चमडेका सदुपयोग करनेसे न धर्मकी हानि होती है, न सनातनी हिन्दुओंको अिससे दुःख होना चाहिये। हा, मृत पशुके चमडेका पूरा-पूरा अुपयोग न करनेसे अवश्य धर्म-हानि होती है, क्योंकि अिससे गोवध बढता है। गायकी कीमत दिन-प्रति-दिन कम होती जाती है, अिसलिअे गाय ज्यादा बिकती है, और सीधे कसाईखानोंमें चली जाती है। अगर हम गोसेवाको हिन्दू धर्मका अनिवार्य अंग समझ लें, तो न हम चर्मकारके धंधेको नीच मान सकते हैं, न चर्मकारको अछूत। गाय मरती है केवल हमारे अज्ञानसे। धर्मका नाम लेनेसे धर्मकी रक्षा नहीं हो सकती, वह तो शास्त्रका रहस्य जान लेने और अुसका पालन करनेसे ही हो सकती है। मैंने कअी बार लिखा है कि भारतवर्षकी गोशालाअें यदि अपने धर्मको जान लें और अुसका भलीभांति पालन करें, तो गोवध नष्ट किया

जा सकता है, और सबको गायका दूध सुलभ हो सकता है। मेरे अिस वाक्यमें कोअी अतिशयोक्ति नहीं है। गोधन प्राय सब हिन्दुओंके हाथमें है। यदि वे गाय न बेचने — जो गोवधका कारण है — के धर्मका पालन करें, तो गोकुशी हो ही नहीं सकती। हरअेक गोशाला आदर्श दुग्धालय अर्थात् स्वावलंबी बन जाय, और अुसमें दुग्धालय और गोवंशवृद्धिके शास्त्री कार्य करे। स्वावलंबी गोशालाको तो नित्य बढना ही है। साथ ही, मृत पशुओंके चमडेका भी वह सस्ता सदुपयोग करेगी। अिसका अर्थ यह होता है कि गोधनकी पुष्टिके साथ-साथ हमारे ज्ञानकी भी पुष्टि होगी, और अिससे हमें देशकी बेकारी दूर करनेमें बडी सहायता मिलेगी। अेक भी गोशाला अिस कार्यको करे, तो अुसका अनुकरण दूसरी गोशालाअें भी करेंगी।

हरिजनसेवक, ३–४–'३७

१२५

ब्रह्मचर्य पर नया प्रकाश

अब अेक नयी बात आप लोगोंसे कहना चाहता हूं। सोचा था कि विनोबा सुनावें। पर अब समय है, तो मैं स्वयं कह देता हूं। मेरा स्वभाव ही अैसा है कि अच्छी बात सबके साथ बांट लेता हूं। बातका आरम्भ तो बहुत वर्षों पुराना है। मैं जुलू-युद्धमें गया था। देखो, अीश्वरका खेल अिसी तरह चलता है। मेरा निश्चय हो गया कि जिसको जगतकी सेवा करनी है, अुसके लिअे ब्रह्मचर्य पालन करना आवश्यक है। विवाहित दम्पतिको भी ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। जिससे मेरा मतलब यह था कि अुन्हें प्रजोत्पादक क्रियामें नहीं पडना चाहिये। मैं यह समझता था कि जो प्रजोत्पादन करते हैं, वे ब्रह्मचारी नहीं हो सकते। अिसलिअे मैंने ब्रह्मचर्यका आदर्श छगनलाल आदिके सामने रखा। अुस वक्त तो मैं बिलकुल जवान था। और जवान तो सब कुछ कर सकता है। मैं आपसे कह दूं कि आप सब ब्रह्मचारी बनें

तो क्या वह होनेवाली बात है? वह तो अेक आदर्श है। अिसलिअे मैं तो विवाह भी करा देता हू। अेक आदर्श देते हुअे भी यह तो जानता ही हू कि ये लोग भोग भी करेगे। प्रजोत्पादन और ब्रह्मचर्य अेक-दूसरेके विरोधी है, अैसा मेरा खयाल रहा।

पर अुस दिन विनोबा मेरे पास अेक अुलझन लेकर आये। अेक शास्त्रवचन है, जिसकी कीमत मैं पहले नही जानता था। अुस वचनने मेरे दिल पर अेक नया प्रकाश डाल दिया। अुसका विचार करते-करते मैं बिलकुल थक गया, अुसमे तन्मय हो गया। अब भी मैं अुसीसे भरा हू। ब्रह्मचर्यका जो अर्थ शास्त्रोमे बताया है, वह अति शुद्ध है। नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह है, जिसने जन्मसे ही ब्रह्मचर्यका पालन किया हो। स्वप्नमे भी जिसका वीर्य-स्खलन न हुआ हो। लेकिन मैं नही जानता था कि प्रजोत्पत्तिके हेतु जो सभोग करता है अुसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी क्यो माना गया है। कल यह बुलन्द बात मेरी समझमे आ गअी। जो दम्पति गृहस्थाश्रममें रहते हुअे केवल प्रजोत्पत्तिके हेतु ही परस्पर सयोग और अेकान्त करते हैं, वे ठीक ब्रह्मचारी ही है। आज हम जिसे विवाह कहते हैं, वह विवाह नही, अुसका आडम्बर है। जिसे हम भोग कहते है वह भ्रष्टाचार है। यद्यपि मैं कहता था कि प्रजोत्पत्तिके लिअे विवाह है, फिर भी मैं यह मानता था कि अिसका मतलब सिर्फ यही है कि दोनोको प्रजोत्पत्तिमे डर न मालूम हो, अुसके परिणामको टालनेका प्रयत्न न हो, और भोगमें दोनोकी सहमति हो। मै नही जानता था कि अुसका अिसमे भी अधिक कोअी मतलब होगा। पर यह भी शुद्ध विवाह नही है। शुद्ध विवाहमे तो केवल ब्रह्मचर्य ही है। शुद्ध विवाह कब कहा जाय? दम्पति प्रजोत्पत्ति तभी करे जब जरूरत हो, और अुसकी जरूरत हो तभी अेकान्त भी करे। अर्थात् सभोग प्रजोत्पादनको कर्तव्य समझकर तथा अुसके लिअे ही हो। अिसके अतिरिक्त कभी अेकान्त न करे। अेकान्तवास भी न करे। यदि अेक पुरुष अिस प्रकार हेतुपूर्वक सभोगको छोड़कर स्थिरवीर्य हो, तो वह नैष्ठिक ब्रह्मचारीके बराबर है। सोचिये, अैसा अेकान्तवास जीवनमें कितनी बार हो सकता है? वीर्य-

वान नीरोग स्त्री-पुरुषोके लिअे तो जीवनमे अेक ही वार अैसा अवसर हो सकता है। अैसे व्यक्ति क्यो नैष्ठिक ब्रह्मचारीके समान न माने जाय? जो वात मै पहले थोडी-थोडी समझता था वह आज सूर्यकी तरह स्पष्ट हो गअी है। जो विवाहित है, अिसे ध्यानमे रखे। पहले भी मैने यह वात वताअी थी। पर अुस समय मेरी अितनी श्रद्धा नही थी। अुसे मै अव्यावहारिक समझता था। आज व्यावहारिक समझता हू। पशुजीवनमें दूसरी वात हो सकती है। लेकिन मनुष्यके विवाहित जीवनका यह नियम होना चाहिये कि कोअी भी पति-पत्नी विना आवश्यकताके प्रजोत्पत्ति न करे और विना प्रजोत्पादनके हेतुके सभोग न करे।"*

हरिजनसेवक, ३-४-'३७

१२६

धर्म-संकट

अेक सज्जन लिखते है

"करीव ढाअी साल हुअे, हमारे शहरमें अेक घटना हो गअी थी, जो अिस प्रकार है।

"अेक वैश्य गृहस्थकी १६ वरसकी अेक कुमारी कन्या थी। अिस लडकीका मामा, जिसकी अुम्र लगभग २१ वर्षकी थी, स्थानीय कॉलेजमे पढता था। यह तो मालूम नही कि कवसे अिन दोनो मामा और भाजीमे प्रेम था, पर जव वात खुल गअी तो अिन दोनोने आत्महत्या कर ली। लडकी तो फौरन ही जहर खानेके वाद मर गअी, पर लडका दो रोज वाद अस्पतालमें मरा। लडकीको गर्भ भी था। अिस वातकी शुरू-शुरूमे तो खूव चर्चा चली। यहा तक कि अभागे मा-वापको शहरमें रहना भारी हो गया। पर वक्तके साथ-साथ यह वात भी दव गअी

* गाधी-सेवा-सघके द्वितीय अधिवेशनके विवरणसे।

और लोग भूलने लगे। कभी-कभी जब अैसी मिलती-जुलती बात सुननेको मिलती है, तब पुरानी बातोंकी भी चर्चा होती है और यह वाकया भी दोहरा दिया जाता है। पर अुस जमानेमे, जब सभी करीब-करीब लडकीको और लडकेको भी बुरा-भला कह रहे थे, मैंने यह राय अर्ज की थी कि अैसी हालतमे समाजको विवाह कर लेनेकी अिजाजत दे देनी चाहिये। अिस बातसे समाजमे खूब बवण्डर अुठा। आपकी अिस पर क्या राय है?"

मैंने स्थानका और लेखकका नाम नही दिया है, क्योंकि लेखक नही चाहते कि अुनका अथवा अुनके शहरका नाम प्रकाशित किया जाय। तो भी अिस प्रश्न पर जाहिर चर्चा आवश्यक है। मेरी तो यह राय है कि अैसे सम्बन्ध जिस समाजमे त्याज्य माने जाते है, वहा विवाहका रूप वे यकायक नही ले सकते। लेकिन किसीकी स्वतत्रता पर समाज या सम्बन्धी आक्रमण क्यो करे? ये मामा और भाजी सयानी अुम्रके थे, अपना हित-अहित समझ सकते थे। अुन्हे पति-पत्नीके सम्बन्धसे रोकनेका किसीको हक नही था। समाज भले ही अिस सम्बन्धको अस्वीकार करता, पर अुन्हे आत्महत्या करने तक जाने देना तो बहुत बडा अत्याचार था।

अुक्त प्रकारके सम्बन्धका प्रतिबन्ध सर्वमान्य नही है। अीसाअी, मुसलमान, पारसी अित्यादि कौमोंमें अैसे सम्बन्ध त्याज्य नही माने जाते है — हिन्दुओंमें भी प्रत्येक वर्णमें त्याज्य नही है। अुसी वर्णमे भी भिन्न प्रान्तमे भिन्न प्रथा है। दक्षिणमे अुच्च माने जानेवाले ब्राह्मणोंमे अैसे सम्बन्ध त्याज्य नही, बल्कि स्तुत्य भी माने जाते है। मतलब यह है कि अैसे प्रतिबन्ध रूढियोंसे बने है। यह देखनेमे नही आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या नास्तिक निर्णयसे बने है।

लेकिन समाजके सब प्रतिबन्धोंको नवयुवक वर्ग छिन्न-भिन्न करके फेंक दे, यह भी नही होना चाहिये। अिसलिअे मेरा यह अभिप्राय है कि किसी समाजमें रूढिका त्याग करवानेके लिअे लोकमत तैयार

करनेकी आवश्यकता है। अिस बीचमे व्यक्तियोको धैर्य रखना चाहिये। धैर्य न रख सके तो बहिष्कारादिको सहन करना चाहिये।

दूसरी ओर, समाजका यह कर्तव्य है कि जो लोग समाज-बन्धन तोडे, अुनके साथ निर्दयताका बरताव न किया जाय। बहिष्कारादि भी अहिंसक होने चाहिये। अुक्त आत्महत्याओका दोष, जिस समाजमे वे हुअी, अुस पर अवश्य है, अैसा अूपरके पत्रसे सिद्ध होता है।

हरिजनसेवक, १–५–'३७

१२७

विवाहकी मर्यादा

श्री हरिभाअू अुपाध्याय लिखते है

"'हरिजनसेवक' के अिसी अकमे 'धर्म-सकट' नामक आपका लेख पढा। अिसमे आपने लिखा है कि 'अुक्त प्रकारके (अर्थात् मामा-भाजीके सम्बन्ध जैसे) सम्बन्धका प्रतिबन्ध सर्वमान्य नही है। अैसे प्रतिबन्ध रूढियोसे बने है। यह देखनेमे नही आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या तात्त्विक निर्णयसे बने है।'

"मेरा अनुमान यह है कि ये प्रतिबन्ध शायद सन्तानोत्पत्तिकी दृष्टिसे लगाये गये है। अिस शास्त्रके ज्ञाता अैसा मानते है कि विजातीय तत्त्वोके मिश्रणसे सतति अच्छी होती है। अिसलिअे सगोत्र और सपिण्ड कन्याओका पाणिग्रहण नही किया जाता।

"यदि यह माना जाय कि यह केवल रूढि है, तो फिर सगी और चचेरी बहनोके सम्बन्ध पर भी कैसे आपत्ति अुठाअी जा सकती है? यदि विवाहका हेतु सन्तानोत्पत्ति ही है और सन्तानोत्पत्तिके ही लिअे दम्पतिका सयोग करना योग्य है, तो

फिर वर-कन्याके चुनावके औचित्यकी कसौटी सुप्रजननकी क्षमता ही होनी चाहिये। क्या और कसौटियां गौण समझी जाय? यदि हां तो किस क्रमसे, यह प्रश्न सहज अुठता है। मेरी रायमें वह अिस प्रकार होना चाहिये

(१) पारस्परिक आकर्षण और प्रेम
(२) सुप्रजननकी क्षमता
(३) कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधा
(४) समाज और देशकी सेवा
(५) आध्यात्मिक अुन्नति

आपका अिस सम्बन्धमें क्या मत है?

"हिन्दू शास्त्रोंमें पुत्रोत्पत्ति पर जोर दिया गया है। सधवाओंको आशीर्वाद दिया जाता है, 'अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव'। आप जो यह प्रतिपादन करते हैं कि दम्पति संतानके लिअे संयोग करें, तो अिसका क्या यही अर्थ है कि सिर्फ अेक ही संतान अुत्पन्न करें, फिर वह लड़का हो या लड़की? वंश-वर्धनकी अिच्छाके साथ ही 'पुत्रसे नाम चलता है' यह अिच्छा भी जुड़ी हुअी मालूम होती है। केवल लड़कीसे अिस अिच्छाका समाधान कैसे हो सकता है? बल्कि अभी तक समाजमें 'लड़कीके जन्म' का अुतना स्वागत नहीं होता, जितना कि लड़केके जन्मका होता है। अिसलिअे यदि अिन अिच्छाओंको सामाजिक माना जाय तो फिर अेक लड़का और अेक लड़की — अिस तरह दो संतति पैदा करनेकी छूट देना क्या अनुचित होगा?

"केवल संतानोत्पादनके लिअे संयोग करनेवाले दम्पति ब्रह्मचारीवत् ही समझे जाने चाहिये — यह ठीक है। यह भी सही है कि संयत जीवनमें अेक ही बारके संयोगसे गर्भ रह जाता है। पहली बातकी पुष्टिमें अेक कथा प्रचलित है —

वसिष्ठकी कुटियाके सामने अेक नदी बहती थी। दूसरे किनारे विश्वामित्र तप करते थे। वसिष्ठ गृहस्थ थे। जब भोजन

पक जाता तो पहले अरुन्वती थाल परोसकर विश्वामित्रको खिलाने जाती, बादको वसिष्ठके घर पर सब लोग भोजन करते। यह नित्यक्रम था। अेक रोज वारिश हुअी और नदीमें बाढ आ गअी। अरुन्वती अुस पार न जा सकी। अुसने वसिष्ठसे अिसका अुपाय पूछा। अुन्होंने कहा — 'जाओ, नदीसे कहना, मैं सदा-निराहारी विश्वामित्रको भोजन देने जा रही हू, मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्वतीने अुसी प्रकार नदीसे कहा और अुसने रास्ता दे दिया। तब अरुन्धतीके मनमें बडा आश्चर्य हुआ कि विश्वामित्र रोज तो खाना खाते हैं, फिर निराहारी कैसे हुअे? जब विश्वामित्र खाना खा चुके, तब अरुन्वतीने अुनसे पूछा, 'मैं वापिस कैसे जाअू, नदीमें तो बाढ है?' विश्वामित्रने अुलटकर पूछा — 'तो आअी कैसे?' अरुन्वतीने अुत्तरमें वसिष्ठका पूर्वोक्त नुसखा बतलाया। तब विश्वामित्रने कहा — 'अच्छा, तुम नदीसे कहना, सदा-ब्रह्मचारी वसिष्ठके यहा लौट रही हू, नदी, मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्धतीने अैसा ही किया और अुसे रास्ता मिल गया। अब तो अुसके अचरजका ठिकाना न रहा। वसिष्ठके सौ पुत्रोंकी तो वह स्वय ही माता थी। अुसने वसिष्ठसे अिसका रहस्य पूछा कि विश्वामित्रको सदा-निराहारी और आपको सदा-ब्रह्मचारी कैसे मानू? वसिष्ठने बताया — 'जो केवल शरीर-रक्षणके लिअे ही अीश्वरार्पण बुद्धिसे भोजन करता है वह नित्य भोजन करते हुअे भी निराहारी ही है और जो केवल स्वधर्म पालनके लिअे अनासक्तिपूर्वक सन्तानोत्पादन करता है, वह सयोग करते हुअे भी ब्रह्मचारी ही है।'

"परन्तु अिसमें और मेरी समझमें तो शायद हिन्दू शास्त्रमें भी केवल अेक सन्तति — फिर वह कन्या हो या पुत्र — का विधान नहीं है। अतअेव यदि आपको अेक पुत्र और अेक पुत्रीका नियम मान्य हो, तो मैं समझता हू कि बहुतसे दम्पतियोंको समाधान हो जाना चाहिये। अन्यथा मुझे तो अैसा लगता है कि बिना विवाह किये अेक बार ब्रह्मचारी रह जाना शक्य हो

> सकता है, परन्तु विवाह करने पर केवल सतानोत्पादनके लिअे, और वह भी प्रथम सततिके ही लिअे सयोग करके फिर आजन्म सयममे रहना अुसमे कही कठिन है। मेरा तो अैसा मत बनता जा रहा है कि 'काम' मनुष्यमे स्वाभाविक प्रेरणा है। अुसमे सयम सुनस्कारका सूचक है। 'सततिके लिअे सयोग' का नियम बना देनेसे सुसस्कार, सयम या धर्मकी तरफ मनुष्यकी गति होती है, अिसलिअे यह वाछनीय है। सतानोत्पत्तिके ही लिअे सयोग करनेवाले सयमीका मैं आदर करूगा, कामेच्छाकी तृप्ति करनेवालेको भोगी कहूगा, पर अुसे पतित नही मानना चाहता, न अैसा वातावरण ही पैदा करना ठीक होगा कि पतित समझकर लोग अुनका तिरस्कार करे। अिस विचारमे मेरी कही गलती होती हो तो बतावे।"

विवाहमे जो मर्यादा बाधी गअी है, अुसका शास्त्रीय कारण मै नही जानता। रूढिको ही, जो मर्यादाकी वृद्धिके लिअे बनाअी जाती है, नैतिक कारण माननेमे कोअी आपत्ति नही है। सतान-हितकी दृष्टिसे ही अगर भाअी-बहनके सम्बन्धका प्रतिबन्ध योग्य है तो चचेरी बहन अित्यादि पर भी प्रतिबन्ध होना चाहिये। लेकिन भाअी-बहनके सम्बन्ध या अैसे सम्बन्धके अतिरिक्त कोअी प्रतिबन्ध धर्ममे नही माना जाता। अिसलिअे रूढिका जो प्रतिबन्ध जिस समाजमे हो, अुसका अनुसरण अुचित मालूम देता है। नैतिक विवाहके लिअे जो पाच मर्यादाअें हरिभाअूजीने रची है, अुनका क्रम बदलना चाहिये। पारस्परिक आकर्षण और प्रेमको अन्तिम स्थान देना चाहिये। अगर अुसे प्रथम स्थान दिया जाय तो दूसरी सब शर्ते अुसके आश्रयमे जानेसे निरर्थक बन सकती है। अिसलिअे अुक्त क्रममे आध्यात्मिक अुन्नतिको प्रथम स्थान देना चाहिये। समाज और देशसेवाको दूसरा स्थान दिया जाय। कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधाको तीसरा। पारस्परिक आकर्षण और प्रेमको चौथा। अिसका अर्थ यह हुआ कि जिस जगह अिन प्रथम तीन शर्तोंका अभाव हो, वहा पारस्परिक प्रेमको स्थान नही मिल सकता। अगर प्रेमको प्रथम स्थान दिया जाय, तो वह

सर्वोपरि बनकर दूसरोंकी अवगणना कर सकता है और करता है, अैसा आजकलके व्यवहारमें देखनेमें आता है। प्राचीन और अर्वाचीन नवलकथाओंमें (अुपन्यासोंमें) भी यह पाया जाता है। अिसलिअे यह कहना होगा कि अुपर्युक्त तीन शर्तोंका पालन होते हुअे भी जहां पारस्परिक आकर्षण नहीं है वहां विवाह त्याज्य है। सुप्रजननकी क्षमताको शर्त न माना जाय। क्योंकि यही अेक वस्तु विवाहका कारण है, विवाहकी शर्त नहीं।

हिन्दू शास्त्रोंमें पुत्रोत्पत्ति पर अवश्य जोर दिया गया है। यह अुस कालके लिअे ठीक था, जब समाजमें शस्त्र-युद्धको अनिवार्य स्थान मिला हुआ था, और पुरुषवर्गकी बड़ी आवश्यकता थी। अुसी कारणसे अेकसे अधिक पत्नियोंकी भी अिजाजत थी और अधिक पुत्रोंसे अधिक बल माना जाता था। धार्मिक दृष्टिसे देखें तो अेक ही संतति 'धर्मज' या 'धर्मजा' है। मैं पुत्र और पुत्रीके बीच भेद नहीं करता हूं, दोनों अेक समान स्वागतके योग्य हैं।

वसिष्ठ विश्वामित्रका दृष्टान्त साररूपमें अच्छा है। अुसे शब्दश: सत्य अथवा शक्य माननेकी आवश्यकता नहीं। अुससे अितना ही सार निकालना काफी है कि सन्तानोत्पत्तिके ही अर्थ किया हुआ संयोग ब्रह्मचर्यका विरोधी नहीं है। कामाग्निकी तृप्तिके कारण किया हुआ संयोग त्याज्य है। अुसे निन्द्य माननेकी आवश्यकता नहीं। असंख्य स्त्री-पुरुषोंका मिलन भोगके ही कारण होता है, और होता रहेगा। अुनसे जो दुष्परिणाम होते रहते हैं, अुन्हें भोगना पड़ेगा। जो मनुष्य अपने जीवनको धार्मिक बनाना चाहता है, जो जीवमात्रकी सेवाको आदर्श समझकर संसार-यात्रा समाप्त करना चाहता है, अुसके लिअे ही ब्रह्मचर्यादि मर्यादाका विचार किया जा सकता है। और अैसी मर्यादा आवश्यक भी है।

हरिजनसेवक, १५-५-'३७

१२८

मेरी भूल

१ मजीके 'हरिजनसेवक' मे 'धम-सकट' शीर्षक लेखमे मैंने लिखा है कि मामा-भाजीके विवाहसम्बन्ध दक्षिणमें अुच्च माने जानेवाले ब्राह्मणो तकमें त्याज्य नही है, बल्कि स्तुत्य भी माने जाते है— औसाओ, मुसलमान, पारसी अित्यादि कौमोमें भी अैसे सम्बन्ध त्याज्य नही माने जाते। प्रो० बलवन्तराय ठाकोरने अिस सम्बन्धमें अेक दिलचस्प पत्र लिखकर मेरी अिस गलतीको सुधारा है, और अुन्होंने बताया है कि मामा-फूफीके लडके-लडकीके बीच दक्षिणमें विवाहसम्बन्ध हो सकता है, पर मामा-भाजीमें नही। मुसलमानोमे अैसा सम्बन्ध मना है, अैसा कवि नमन बतलाते हैं। अिस भूल-सुधारोंके लिअे मैं अिन दोनो सज्जनोका आभार मानता हू। मामा-फूफीके लडके-लडकीके सम्बन्धका मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान था। तो मामा-भाजीके बीच भी सम्बन्ध होता होगा, अैसा अनुमान निकालकर मैंने निश्चयात्मक वाक्य लिख दिया। जिसके लिअे मै अपनेको अक्षतव्य समझता हू। अैसे विषयमें अैसे अनुमानोके लिअे स्थान नही होता, यह मुझे समझ लेना चाहिये था। यदि अनुमान निकाला तो शकाको स्थान देना चाहिये था। पर मैंने तो नि शक रीतिसे, जिसका मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान न था अुसे जिस तरह लिख मारा मानो वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। जिससे मेरे सत्यके आग्रहको लाछन लगा है। जिसकी माफी पाठकोसे तो मागता ही हू। वे तो अुदारतापूर्वक माफी दे देगे, पर मेरी अतरात्मा यो झटसे माफ करनेवाली नही। अनुमान-प्रमाण निकालनेमें बहुत सावधानीसे काम लेना पडता है, यह सार—मर्म अपनी अिस भूलमें से मै अधिक स्पष्टता-पूर्वक निकालता हू, और जिसके बाद अब अैसी भूले न करनेमे अधिक सावधान रहनेका प्रयत्न करूगा।

हरिजनसेवक, १२–६–'३७

क्या किया जाय?

नीचे लिखा पत्र व नोटिस और दरख्वास्त तीनो ही चीजे पढने योग्य है

"अिसके माथ जो छपी हुअी नोटिम हे वह महीने भर पहले निकाली गअी थी। परिणामस्वरूप, वहुतसी दरख्वास्ते आ रही है, जिनमे से नमूनेकी अेक दरख्वास्त अिसके साथ है। सभीमे प्राय यही शिकायते है कि कम मजदूरी पर काम लिया जाता है, अिनकार करने पर मारा-पीटा जाता है, गालिया दी जाती है और झूठी-झूठी तोहमते लगाकर पुलिस और अदालतकी मारफत परेशान किया जाता हे। जवानी शिकायत करनेवाले भी आते है, और अिसी तरहकी वात मुनाते है। जमीदार प्राय असामियोको तग तो करते रहते है, लेकिन ब्राह्मण क्षत्रियको अधिक तग नही कर पाते, क्योकि वह वदला चुका लेते है। यहा अेक जाति अहीर हे, जो गाय-भैंस पालनेका धधा करती हे। वह कुछ सरकश होती हे। अुमे जमीदार आदि नही सताते, क्योकि वदलेमे पिटने या घर वगैरा फुकनेका डर रहता है। पर चमारोको मारने और गाली देनेमे अैसी आशका नही रहती। चमार अपनेको अिम मामलेमे वहुत हीन समझता ह। दोके वदले अेक मारनेका माहम भी वह नही रखता। और अपनी आर्थिक दशाके कारण वह सरकारमे भी फरियाद नही कर पाना। अेक फरियादके करनेमे २०-२५ रुपयेका खर्च हो जाता हे। दो-चार पेशिया मामूली वात हे और जितनेमे २०-२५ रुपये लग जाना वहुत सहज हे, जो अुमके वूतेके वाहरकी वात ह।

"कही-कहीके कोअी-कोअी हाकिम तो शायद अिन दरख्वास्तोको थानेदारोके पाम भेजकर अिन जुल्मोकी जाच करा ले, पर प्राय तो यही कहेगे कि वाकायदा दरख्वास्त

दिखाअिये। और अुनके वातावरणमें गरीबकी मौत है। मार और गालियोंका प्रतिकार न करने जानेसे अुनसे ज्यादा गालियां और झिड़कियां नसीब होंगी। और अुचित-अनुचित खर्चोंका तो कुछ पूछना ही नहीं।

"अगर चमार जरा कड़े पड़ने लगें, अर्थात् यही नहीं मारनेके बदलेमें वह भी मारने लगें तो अुन पर जुल्म करनेवालोंको कुछ भय हो सकता है। आपका अिस मामलेमें अुनके लिअे जो आदेश हो, वह 'हरिजनसेवक' के द्वारा प्रगट हो तो और जगहोंके हरिजनोंके लिअे भी वह मार्गप्रदर्शक होगा।"

हरिजनोंको सूचना

"यों तो सारे हिन्दुस्तानको ही गरीबीने जकड़ रखा है। मगर हरिजन तो हर जगह खास तौरसे अुसके शिकार हैं। अिन्साफ तो यह है कि गरीबीकी वजहसे अुनके साथ अधिक दया की जाय। पर होता है अिसका अुलटा। अुनसे सख्त काम लिया जाता है और मजदूरी कम दी जाती है। अिसकी शिकायत अक्सर सुनी गयी है कि बेगारमें अुन्हींको पकड़ा जाता है और अुनके अिनकार करने पर अुन्हें मारा-पीटा जाता है। कानूनके मुताबिक यह सब नाजायज है। यहांके हरिजन-सेवक-संघने यह अिन्तजाम किया है कि अिस जिलेमें हरिजनों पर जहां कहीं जिस प्रकारके अत्याचार हों वहांसे पूरी और सच्ची खबर पाने पर अुसका माकूल अिन्तजाम किया जायगा, जिससे कि जिस तरहके जुल्म बन्द हो जायें। अिस तरहके जुल्मोंकी खबरें पते पर भेजनी चाहिये।"

अेक दरख्वास्त

"हम गरीब अछूतों पर ने घोर अत्याचार मचा रखा है। ये दोनों जमींदार हम दीन हरिजनोंसे आधे आने पर जेठकी कड़ी धूपमें आधी छटाक चना खिलाकर १२ बजे तक खेत खुदवाते हैं, और जो कम मजदूरीकी वजहसे जानेसे अिनकार

करता है, अुसे घाममे झुकाकर अुसकी पीठ पर अीटे रखवा देते और पिटवाते है। यह सजा हम गरीब हरिजनोको अक्सर मिलती रहती है और रोज दो-चार हरिजन अिन लोगोसे गालिया, लाठिया और थप्पडे खाते रहते है। अुस दिन अेक भाअीको काम न करने पर ने अपने दरवाजे पर बुलवा-कर, अुसके पैरोको तीन फुटके अन्तर पर करवाकर झुका दिया और पीठ पर अीटें रखवा दी। १० वजेसे १२ वजे तक कडाकेकी धूपमे अुसे यह सख्त सजा दी गयी।

"जमीदारोने हमारे अेक हरिजन भाअीसे आधी छटाक चने पर दो दिन तक खेतकी खुदाअीका काम लिया। तीसरे दिन जब अुसने जानेसे अिनकार किया और कहा कि 'बाबू, हमारे अूपर पाच प्राणियोका भार है, अितनेमे कैसे गुजर होगी?' तो बस, अिसी पर अुसे तीन लाठिया अैसी मारी कि वह जमीन पर गिर पडा। असाढका महीना है और हमे भी खेत पर जाना है। पर ये लोग हमे बैलोकी तरह पीट-पीटकर हमसे बेगार लेते है। यह अर्जी हम लोग लुक-छिपकर दे रहे है। हम दीन हरिजनोकी जल्द सुध ली जाय, वर्ना अुन सबको अिसका पता लग जाने पर हमारे अूपर बहुत बुरी बीतेगी।"

मैने नाम व पते छोड दिये है। जिन भाअीने यह पत्र लिखा है वे अहिंसाके पुजारी है। प्रश्न अुनका बिलकुल ठीक है। जो जालिमका सामना करता है वह कुछ न कुछ बच जाता है, और जिसमे सामना करनेकी शक्ति ही नही वह पीटा जाता है। अिस स्थितिमे अहिंसावादी क्या करे? सताये हुअेको यह शिक्षा (सलाह) दे कि वह जुल्म करनेवालेको पीटे, या कमसे कम अदालतमे तो मामला ले जाय? दोनो बाते कानूनके अनुकूल है। जिसे गैरकानूनी तौर पर पीटा जाता है अुसे अपनी रक्षाके लिअे सामना करनेका अधिकार कानून देता है। कोर्टमे जानेका तो अुसे अधिकार है ही।

लेकिन अहिंसावादी अैसी शिक्षा (नसीहत) नही देगा। वह समझता है कि मारका बदला मारसे लेनेसे जुल्मको मिटानेका सच्चा

मार्ग जगतको नहीं मिलता। यह मार्ग दुनियाने आज तक ग्रहण तो किया है, लेकिन अिससे जुल्म कम नहीं हुआ — रूपान्तर अुसका भले ही हो गया हो।

अहिंसावादी तो अुत्पीड़ितोंको असहयोगकी शिक्षा देगा। कोअी आदमी किसीकी गुलामी करनेके लिअे मजबूर नहीं किया जा सकता। अिसलिअे जिन हरिजनों पर सख्तियां होती हों, अुन्हें यह सीखना चाहिये कि जुल्म ढानेवाले जमींदारोंकी जमीनोंको छोड़ दें। जमीनें छोड़कर कहां जाय यह प्रश्न स्वभावतः अुठता है। हरिजनसेवकका धर्म है कि वह अैसे निराधारोंके लिअे कोअी न कोअी धन्धा तलाश कर दे। अिसमें कठिनाअी नहीं होनी चाहिये। अहिंसाका मार्ग कठिन तो है, लेकिन अुसका परिणाम स्थायी और दोनोंके लिअे ही शुभ होता है। मारका बदला मारसे लेना तो चलता ही आया है। किन्तु अुससे जगतमें न सुख बढ़ा है, न अन्याय व जुल्म ही दूर हुआ है। अुसे मिटानेकी कुंजी तो अहिंसा ही है, अैसा मेरा अनुभव है।

जो मैंने अूपर बताया है वह अन्तिम अिलाज है। लेकिन मारका जवाब मार नहीं है, अितना निश्चय कर लेनेके बाद और असहयोगकी शिक्षा देनेके पहले अहिंसावादी सेवक जमींदारोंके पास जायगा, और अुन्हें अुनका धर्म समझानेकी कोशिश करेगा। सम्भव है कि जमींदार कुछ पिघल जाय। अैसे जुल्मोंके बारेमें लोकमत पैदा किया जा सकता है। जब जालिम मूढ़ बन जाता है, किसीकी बात सुनता ही नहीं है, तब असहयोग यानी अुसका त्याग सर्वोत्कृष्ट अुपाय है।

अैसी शंका न की जाय कि जब दलित चमार असहयोग करेंगे, तो दूसरे अुस जालिमसे मिल जायंगे। अिस समय तो सिर्फ दुःखियोंका ही प्रश्न है। दूसरे मिलेंगे तो अुन्हें भी असहयोग सिखाया जा सकता है।

हरिजनसेवक, ३–७–'३७

१३०

तिरंगा राष्ट्रीय झंडा

तिरगे राष्ट्रीय झडेके वारेमे कानपुरसे अेक सज्जन लिखते है

"राष्ट्रपति पडित जवाहरलालजीकी आज्ञानुसार हमारे नगरमे भी पहली अगस्तको राष्ट्रीय झडा फहराया गया था। अुस दिन तथा अुसके वाद कुछ दुखद दृश्य देखनेमे आये। अिसीसे मै आपको यह पत्र लिख रहा हू।

"जो झडा अुस दिन फहराया गया था, अुसे लोगोने चाहे जिस तरहका अपनी पसदके माफिक वना लिया था। आकार प्रकार या रग अेक सरीखे थे ही नही। कुछ झडे चौरस थे तो कुछ लम्बे आकारके। कुछ झडोका रग हलका था, तो कुछका खूव गहरा। कुछमे चरखेका निशान था और कुछमे नही।

"आज पन्द्रह दिन ही हुअे है, पर अिन झडोकी वहुत वुरी दशा हो गअी है। रग कच्चा होनेसे सफेद हिस्सा तो अुनका दीखता ही नही, वह कुछ हरा और कुछ पीला हो गया है। कुछ झडे तो मैले चीथडे-से लगते है। खादी भडारमे लाये हुअे झडोकी भी यही दशा हुअी है।

"झडेका प्रश्न दिन-दिन महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है। अिसलिअे प्रवन्ध अैसा होना चाहिये कि अेकमे आकार और रगके झडोका ही अुपयोग किया जाय। रग पक्का होना चाहिये, ताकि सव ऋतुओमे वह अेकसा वना रह सके।

"मुझे तो अैसा लगता है कि झडे अेक ही केन्द्रसे तैयार कराये जाय और वहीसे वेचे जाय। राष्ट्रीय झडे खानगी रीतिसे न वन सकें, अैसा प्रचार करना चाहिये।"

जिस पत्रमें जैसा लिखा है यदि वैसा हुआ हो तो यह सोचनीय बात है। यह झंडा आज सबह सालसे काममें लाया जाता है। किसी भी राष्ट्रके झंडेका मूल्य तभी है, जब वह अेक निश्चित नियमके अनुसार तैयार किया गया हो। यह नियम प्रत्येक वस्तुके साथ लागू होता है। बाजारमें हम कोआी भी चीज खरीदने जाते हैं तो अुसका रंग, रूप और आकार देखकर अुसे खरीदते हैं, और जैसी चीज हमें चाहिये वैसी मिलने पर ही अुसके अूपर हम लोग पैसा खर्च करते हैं। तो फिर जिस राष्ट्रीय झंडेकी खातिर लोग प्राण तक अर्पण कर देते हैं, अुसकी कितनी अधिक कीमत नहीं होगी? यदि अुसकी अितनी अधिक कीमत है तो अुसे हम चीथड़ोंका या अपनी मरजीके माफिक न बनायें। अैसा करके तो हम अपने झंडेका अपमान करते हैं। परन्तु अेक-सरीखे झंडे मिलेंगे कहांसे? कानपुरके अिन सज्जनने जो तजवीज सुझाअी है वह ठीक है। किसी अेक ही जगह बनवानेसे झंडे अेक-सरीखे बन सकेंगे। जैसे टकसालमें सिक्के बनते हैं अथवा जैसे कारखानेमें अनेक चीजें बनती हैं, अिसी तरह अगर यह झंडे लाखोंकी संख्यामें बनवाये जायं तभी सस्ते और अेक समान बन सकते हैं। यह काम चरखा-संघ और कांग्रेस कार्यालयकी मार्फत ही हो सकता है, क्योंकि शुद्ध नमूना और रंग वगैराका वर्णन वहींसे निकल सकता है।

हरिजनसेवक, ११-९-'३७

१३१
शिमलामे हरिजनसेवा

शिमलामे गत पाच वरससे वाल्मीकि (हरिजन) युवक-सघ काम कर रहा है। अिस सघके सचालक पडित विश्वनाथन् है। मत्री लाला लखमणसिंह समोतरा है, जो खुद वाल्मीकि हरिजन है। दोनो ही अवैतनिक रूपसे काम करते है। सघकी तरफसे गर्मियोमे अेक रात्रि-पाठशाला चलती है, जिसमे सब कौमोके बालक दाखिल हो सकते है। पाठशालाके २१ विद्यार्थियोमे ८ सवर्ण हिन्दू है। अिस पाठशालामे तीन हरिजन अध्यापक है, जो सब वर्णोके विद्यार्थियोको पढाते है। अिनके अतिरिक्त दो सवर्ण हिन्दू और सिक्ख अध्यापक भी है। आचार्य हरिजन है। सघ केवल सेवाभावसे विना फीस लिये काम करनेवाले डॉक्टरो द्वारा दवा वगैराकी सहायता मुफ्त देता है।

अेक आपसका सहकारी कोष भी है। अिसमे पैसा रुपया ब्याज पर कर्जा दिया जाता है। अिस हिसाबसे सूदकी दर १८ प्रतिशत हुअी। यह बहुत ज्यादा है। यह दर छ प्रतिशत या ज्यादासे ज्यादा आठ प्रतिशतसे अधिक नही होनी चाहिये। अिसका अर्थ यह तो है ही कि रुपया अुधार देनेमे अधिक सावधानी रखी जायगी। अिससे लाभ ही होगा। अुधार दिये हुअे रुपयेका अुपयोग किस प्रकार हो रहा है अिसकी देखभाल रखनी चाहिये।

सघका अेक वाचनालय भी है। सघके मकानमें अक्सर गरीब निराश्रित हरिजनोके कुछ रात ठहरनेका भी प्रबन्ध रहता है। मैं चाहता हू कि अिस सघको अपने सेवाकार्यमे पूरी सफलता मिले।

हरिजनसेवक, ९-१०-'३७

१३२

अेक सुन्दर हरिजनसेवकका देहान्त

हरिजन-आन्दोलन अितनी तेजीसे शुरू हुआ, अुनके पहलेसे ही मणिलाल कोठारीको मै जानता था। और जबसे मेरा अुनसे परिचय हुआ तभी मैने यह देख लिया था कि अुनमें छूतछातकी जरा भी गन्ध नहीं थी। हरिजनोंको सहायता करते हुअे जो जोखिम अुठानी चाहिये अुसे अुठानेको वे हमेशा तैयार रहते थे। अगर यह कहा जाय कि अच्छे कामोंके लिअे पैसा अिकट्ठा करनेकी अुनमे लगभग अद्वितीय शक्ति थी, तो अिसमे कोअी अतिशयोक्ति नही। अुनमे यो तो बहुतसी शक्तिया थी, किन्तु पारमार्थिक कार्योंके लिअे धन-सग्रह करनेकी अुनमे जो शक्ति थी, अुसके लिअे तो लोग हमेशा ही अुन्हे याद करेगे। हरिजन-कार्यके लिअे अुन्होंने काफी पैसा अिकट्ठा किया था, और हिम्मतके साथ मुझसे कहा था कि अगर मै अच्छा हो जाअू, तो जितना पैसा आपको चाहिये अुतना ला दूगा। पैसा अिकट्ठा करा देनेके लिअे जहा-तहासे अुनके पास मागे आती ही रहती थी। मणिलाल तीव्र लगनके आदमी थे। कोअी भी पारमार्थिक काम हो, वह अुन्हे अपनी तरफ खीच सकता था। सेवा करनेका अुनका लोभ अुन्हे चाहे जिस जोखिममे अुतार सकता था। अुनकी कमी अुनके कुटुम्बको तो खटकेगी ही, हरिजनोको भी खटकेगी, पर दूसरे अनेक सेवा-क्षेत्रोमें अुनके अभावकी बहुत समय तक याद रहेगी, अिसमे सन्देह नही।

अीश्वर अुनकी आत्माको शाति प्रदान करे।

हरिजनसेवक, २३-१०-'३७

१३३

‘मिस्टर’ और ‘अेस्क्वायर’

वनाम

श्री, मौलवी, मौलाना, जनाव आदि

कुछ मित्रोने मुझसे कहा कि वम्वअीमे श्री जिन्नासे मिलनेके लिअे जानेसे पहले मैंने जो वक्तव्य दिया था, अुसमें ‘जिन्ना’ के पहले ‘श्री’ रखनेसे अुन्हे जरूर बुरा लगा होगा। मैं अिससे पशोपेशमे पड गया और कहा कि अगर अुन्हे बुरा लगता, तो वे शिष्टताके साथ मुझे अुमका अिशारा कर देते, ताकि मैं अुनमे माफी माग लेता और फिर अुमी विशेषणका प्रयोग करता, जो अुन्हे मवसे ज्यादा पसन्द होता। पाठकोको याद होगा कि असहयोग जव जोरोसे चल रहा था, अुन दिनो ‘मिस्टर’ और ‘अेस्क्वायर’ का प्रयोग काग्रेसजनो और राष्ट्रीय अखवारोने छोड दिया था और धर्मका कोअी भेदभाव किये वगैर सवके लिअे अधिकतर ‘श्री’ का ही प्रयोग किया जाता था। यह रिवाज अव यद्यपि वहुत कुछ कम हो गया है, पर मैंने अुसको कभी नही छोडा। क्योकि अपनी वुरी आदतके सिवा, वल्कि मैं कहूगा कि अपनी दासमनोवृत्तिके वगैर, भारतीय नामोंके आगे या पीछे हम ‘मिस्टर’ और ‘अेस्क्वायर’ का प्रयोग कभी न करते। युरोपमें कोअी अग्रेज किसी विदेशीके नामके साथ कभी ‘मिस्टर’ या ‘अेस्क्वायर’ नही लगाता, वल्कि अुनके अपने अपने देशोंमें प्रचलित विशेषणोका ही प्रयोग करता है। अिस प्रकार हिटलरको कभी ‘मिस्टर’ नही कहा जाता, वह तो हर हिटलर ही कहलाता है। अिसी प्रकार, मुसोलिनीके साथ मिस्टर या हरके वजाय ‘सिन्योर’ ही लगाया जाता है। नामके आगे-पीछे लगानेके अपने विशेषणको हमने क्यो छोड दिया होगा, यह मैं नही जानता। लेकिन प्रचलित आदतसे अेक क्षणके लिअे भी अलग होकर विचार करे, तो हमें मालूम पड जाना चाहिये

कि भारतीय नामोके आगे या पीछे 'मिस्टर' और 'अेस्क्वायर'का प्रयोग बडा हास्यास्पद लगता है।

मगर यह बात मुझे माननी होगी कि आपसके सन्देहके अिन दिनोमे मुसलमान नामोके पहले 'श्री' का प्रयोग शायद हमारे मुसलमान दोस्तोको अच्छा न लगे। मुसलमान मित्रोके साथ मैने अिस बारेमें बातचीत की है। अुन्होने कहा कि साधारणत मौलवी शब्द अिसके लिअे काम आता है। दक्षिणमे मैने अक्सर 'जनाब'का प्रयोग होते देखा है। जो भी हो, मै यह कह सकता हू कि हिन्दुस्तानी मुसलमानोके नामोके पहले 'श्री' शब्दका प्रयोग करनेमे अुनके प्रति अधिकाधिक मित्रताके सिवा मेरे मनमे और कोअी भाव नही रहा है। मुझे तो जब कोअी 'मिस्टर' कहता है, तो बडी झूझल आती है। हिन्दुओमें प्रचलित प्रथा तो नामके अन्तमे 'जी'का प्रयोग करनेकी है। 'साहब' भी 'जी' का ही पर्यायवाची है। मुझे याद है कि स्वर्गीय हकीम अजमलखाको मै हमेशा हकीमजी कहा करता था। कुछ मुसलमान मित्रोने मुझसे कहा कि मुसलमान 'साहब'को ज्यादा पसन्द करेगे। अिससे पहले मुझे अिस तरजीहका कोअी पता नही था। लेकिन अिस सशोधनके बादमे अनजाने 'जी'का प्रयोग हुआ हो, अुसके अलावा मैने अुन्हे हमेशा हकीम साहब ही कहा। 'मिस्टर' अजमलखा तो मै अुन्हे अपनी नगी पीठ पर भीगी हुअी नेतोकी मारके डरके सामने भी नही कह सकता। मालूम यह होता है कि अग्रेजी शिक्षा पानेके बाद ही हम 'मिस्टर' और 'अेस्क्वायर' बने है!!! क्या अिस साचेमें ढले हुअे पाठक भारतमें प्रचलित शुद्ध नामोकी सूची देकर मुझे और मेरे जैसे आदमियोकी मदद करेगे?

हरिजनसेवक, २९-१०-'३८

१३४

जयपुरकी स्थिति

मालूम होता है कि जयपुरके अधिकारी अुस समय तक खुश न होंगे, जब तक कि वे जयपुरके देशभक्तोंके होशहवास अच्छी तरह दुरुस्त न कर देंगे। क्योंकि अब अुन्होंने जयपुर राज्य प्रजा-मंडलको, जिसके कि जमनालालजी प्रेसिडेण्ट हैं, गैरकानूनी घोषित कर दिया है। जयपुरकी कौंसिल ऑफ स्टेटके प्रेसिडेण्टके नाम लिखे अपने पत्रको जमनालालजीने प्रकाशित कर दिया है। अुम्मीद थी कि वह पत्र अधिकारियोंको अपना पुराना हुक्म वापिस लेनेकी प्रेरणा करेगा, मगर जयपुर कौंसिल (जिसके बारेमें भूलसे पिछले सप्ताह मैंने यह लिखा था कि अुसमें सब बाहरके ही आदमी हैं, मगर अब मुझे मालूम हुआ है कि अुसके चार सदस्य जयपुर राज्यके ही हैं), प्रगट रूपसे अिस बातके लिअे अुतारू दीखती है कि अुन सब कार्योंका अस्तित्व ही मिटा दिया जाय, जिनसे जमनालालजी और अुनके सहयोगियोंका सम्बन्ध है, फिर वे चाहे सामाजिक हों, या मानव-सेवाके अथवा अैसे ही कोअी और।

अधिकारियोंका अुन लोगोंसे, जिनको वे पसंद नहीं करते, पेश आनेका यह अेक नया तरीका है। मैं केवल आशाके विरुद्ध आशा कर सकता हूं कि जयपुरके अधिकारी अखिल भारतीय संकटको अुत्पन्न करनेमें जल्दबाजीसे काम न लेंगे। क्योंकि अिस बातके तीन कारण हैं, जिससे जयपुरका सवाल वह महत्त्व धारण कर लेगा।

जमनालालजी खुद ही अेक संस्था हैं। अिसके अलावा वे कांग्रेसके खजानची और अुसकी वर्किंग कमेटीके मेम्बर भी हैं। फिर जयपुरमें जो तरीका अख्तियार किया जा रहा है, वह अितना भीषण है कि पूरी शक्तिके साथ अुसका मुकाबला करना ही चाहिये। क्योंकि अुसका मुकाबला न किया गया तो रियासतोंमें होनेवाली अैसी हरअेक हलचलका ही अन्त हो जायगा, जिसका प्रजाकी वैध राजनीतिक आकांक्षाओंमें जरा भी कोअी सम्बन्ध हो।

जयपुरके बारेमें विचित्र बात यह है कि वहां असली शासन महाराजका नहीं बल्कि अेक अूंचे अंग्रेज अधिकारीका है। क्या अिसका मतलब यह है कि वे केन्द्रीय सत्ताकी अिच्छानुसार चलते हैं? अगर अैसा न हो तो क्या कोअी अंग्रेज दीवान अैसी नीति पर चल सकता है, जो खुद राज्यके लिअे विनाशक हो? मैं समझता हूं कि जयपुरका खजाना अितना भरा-पूरा है कि सर्वनाशके आधुनिक हथियारोंका सहारा लेनेके बावजूद प्रजा आत्मसमर्पण न करे और राज्यका लगातार बहिष्कार करती रहे, तो भी अुससे हर हालतमें राज्यका काम चलता रहेगा। लेकिन यह वक्त है कि राजा लोग और केन्द्रीय सरकार अिस सम्बन्धमें अपनी कोअी समान नीति बना लें। या जैसा कि कुछ लोग कहते हैं, यह समझा जाय कि जयपुरने जो तरीका अख्तियार किया वही अुनकी समान नीति है? मैं तो केवल यही अुम्मीद कर सकता हूं कि अैसा नहीं है।

हरिजनसेवक, २१-१-'३९

१३५

औंधका शासन-विधान

औंध राज्यके लिअे जो नया शासन-विधान हालमें बनाया गया है, अुसमें कितनी ही चौंका देनेवाली चीजें हैं। पर अिस टिप्पणीमें तो मैं अुसके मताधिकार और न्यायकी अदालतें अिन दोके विषयमें ही लिखना चाहता हूं।

अब तक मैं यह मानता और कहता आया हूं कि हरअेक वयस्क आदमीको — फिर वह निरक्षर हो या साक्षर — मत देनेका अधिकार होना चाहिये। लेकिन कांग्रेस विधानको जिस तरह अमलमें लाया जा रहा है, अुसका निरीक्षण करते करते मेरी राय बदल गअी है। अब मैं यह मानने लगा हूं कि मताधिकारके लिअे अक्षरज्ञानका होना आवश्यक है। अिसके दो कारण हैं। मत बतौर अेक खास अधिकारके माना जाय, और अुसके लिअे कुछ योग्यता आवश्यक समझी जाय।

सादीसे सादी योग्यता अक्षरज्ञानकी — लिखना-पढना आ जानेकी — है। और अक्षरज्ञानवाले मताधिकारके विधानके अनुसार बना हुआ मन्त्रि-मडल यदि मताधिकारसे वचित निरक्षर प्रजाजनोंके हितकी चिन्ता रखनेवाला होगा, तो अत्यावश्यक अक्षरज्ञान तो देखते-देखते आ जायगा। औंधके शासन-विधानमें प्राथमिक शिक्षाको नि शुल्क और अनिवार्य बना दिया गया है। श्रीमत आप्पा साहबने मुझे यह विश्वास दिलाया है कि वे अिस बातकी फिक्र रखेंगे कि औंध राज्यमे से छ महीनेके अन्दर ही निरक्षरता नष्ट हो जाय। अिसलिअे मुझे आशा है कि मताधिकारके लिअे अक्षरज्ञानकी जो योग्यता निश्चित की गअी है, अुसका औंध राज्यमें कोअी विरोध नही होगा।

प्रचलित प्रथामें दूसरा फेरफार यह किया गया है कि नीचेकी अदालतमें न्यायको मुफ्त और बहुत सादा बना दिया है। लेकिन आलोचक शायद नाराज होंगे, न्यायके अिस मुफ्तपने और सादगीके कारण नही, बल्कि दूसरी अेक बातसे। वह यह कि बीचकी तमाम अदालतोको अुडा दिया गया है, और पक्षकारो और आरोपियोका भाग्य अेक ही आदमीकी अूची अदालतके हाथमें सौप दिया गया है। पौन लाखकी जनसख्यामें बहुतसे न्यायाधीशोका होना अनावश्यक है और अशक्य भी है। और अगर योग्य प्रकारके मनुष्यको मुख्य न्यायाधीश बना दिया जाय, तो यह सभव है कि वह बडी-बडी तनखाहवाले न्यायाधीशोंके मडल जितना ही शुद्ध न्याय दे। न्यायका स्वरूप अितना सादा कर देनेमे कल्पना यह रही है कि अदालतोका अटपटा और लम्बा-चौडा काम नष्ट कर दिया जाय, और बडे-बडे कानूनोके पोथो और ब्रिटिश अदालतोमे काममें आनेवाले कायदेकी रिपोर्टोका अुपयोग भी निकाल दिया जाय।

हरिजनसेवक, २८-१-'३९

१३६

दानकी जगह काम

जो भूखे और बेकार है, अुन्हे भगवान केवल अेक ही विभूतिके रूपमे दर्शन देनेकी हिम्मत कर सकते है, वह विभूति है काम और अन्नके रूपमे वेतनका आश्वासन।

नगोको जिनकी जरूरत नही है अुन्हे कपडे देकर मैं अुनका अपमान नही करना चाहता। मैं अुसके बदले अुन्हे काम दूगा, क्योकि अुन्हीको अुन्हे सख्त जरूरत है। मैं अुनका आश्रयदाता बननेका पाप कभी नही करूगा। लेकिन यह महसूस करने पर कि अुनको तबाह करनेमे मेरा भी हाथ रहा है, मैं अुन्हे समाजमे सम्मानका स्थान दूगा। अुन्हे जूठन या अुतरन तो हरगिज नही दूगा। मैं अुन्हे अपने अच्छेसे अच्छे खाने और कपडेमे हिस्सेदार बनाअूगा और अुनके परिश्रममें खुद योग दूगा।

बिना प्रामाणिक परिश्रमके किसी भी चगे मनुष्यको मुफ्तमें खाना देना मेरी अहिंसा बरदाश्त ही नही कर सकती। अगर मेरा वश चले तो जहा मुफ्त खाना मिलता है अैसा प्रत्येक 'सदावर्त' या 'अन्नछत्र' मैं बन्द करा दू। अुनकी बदौलत राष्ट्रका पतन हुआ है, और आलस्य, सुस्ती, दभ तथा गुनहगारीको बढावा मिला है।

हरिजनसेवक, २५-२-'३९

१३७
सनातनी कौन है?

सनातनी वह है जो सनातन धर्मका पालन करे। महाभारत — शातिपर्व — में सनातन धर्मकी व्याख्या अिस प्रकार की गयी है

सत्य दानस् तप शौच सतोपो ह्री क्षमार्जवम्,
ज्ञान शमो दया ध्यानम् अेप धर्म सनातन ।
अद्रोह सर्वभूतेपु कर्मणा मनसा गिरा,
अनुग्रहश् च दान च सता धर्म सनातन ।

चूकि मैं अिन नियमो पर यथाशक्ति चलनेका प्रयत्न करता रहा हू, अिसलिअे मुझे अपने-आपको सनातनी कहनेमे सकोच नही होता। पर अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनके दिनोमे मेरे विरोधियोको मेरा यह नाम बुरा लगा और वे अपनेको ही सनातनी बताते थे। मैंने नाम पर अुनमे झगडा नही किया। अिसलिअे मैंने विरोधियोको अुसी नामसे पुकारा है, जो अुन्होने अपने लिअे पसन्द कर लिया। अब मुझे सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा, पजाबकी तरफसे अेक पत्र मिला है। अिसमें अिस बात पर नाराजगी जाहिर की गयी है कि मै अपने विरोधियोको सनातनी बताकर यह अर्थ क्यो निकलने देता हू कि सभी सनातनी अछूतरनको मानते है, और अुन्हे बुरीसे बुरी गालिया देनेमे आनद आता है। आगे चलकर अिस खतमें लिखा है

> "सच पूछिये तो अिसमे हमे बडा दु:ख हुआ और हमे अन्देशा है कि पजाबमे हमारे धार्मिक और सामाजिक कार्यको हानि पहुचेगी।
>
> "महात्माजी, आप दक्षिणके पास होनेके कारण हम अुत्तर-वालोंसे दक्षिणके सनातनियोको ज्यादा जानते है। यहा पजाबमें तो हम लोग हरिजनोको मदिर-प्रवेश और दूसरी महूलियतें देनेकी हिमायत करते रहे है। हमने अिस तरह व्यवस्थाअे भी अखिल भारतीय सनातन धर्म महासभाकी परिपद्से ले ली है। हमारा सगठन, सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा पजाब, जिसकी

६०० शाखायें और ३०० महावीर दल है, जुद विसी दिशामें काम कर रही है। अिस प्रांतमें बहुत कम मन्दिर अैसे हैं जिनके महन्त या पुजारी लोग हरिजनोंको देवदर्शनका अधिकार देनेसे अिनकार करते हों।

"आप आसानीसे सोच सकते हैं कि आपके लेखका हमारे काम पर क्या असर हो सकता है। अपढ जनता अेक तरहके सनातनी और दूसरी तरहके सनातनीमें फर्क नहीं कर सकती, अिसलिअे अुसने हमें आपका विरोधी समझ लिया है। हमारे वक्तव्यों और खंडनोंसे कोअी लाभ नहीं। हमारे सैकडों व्याख्यानोंसे आपकी बातका असर ज्यादा होता है। हमने पंडित मदनमोहनजी मालवीय और गोस्वामी गणेशदत्तजीके नेतृत्वमें हरिजन-अुद्धारका काम किया है और अब भी कर रहे हैं।

"मेरी प्रार्थना है कि जो लोग हरिजन-आन्दोलनके विरोधी हैं अुनके लिअे कोअी और शब्द निकालिये। 'सनातनी' शब्द तो जंचता नहीं।"

लेखकका यह समझना गलत है कि मैं अुत्तरके सनातनियोंको नहीं जानता। अगर काशीको अुत्तरमें गिना जा सकता हो तो वहांसे तो बड़े हठी सुधार-विरोधी निकले हैं। लेखक भाअी पंजाबके सनातनियोंकी ही बात करते तो ज्यादा मुनासिब होता। मगर मुझे यह खयाल नहीं आ सकता था कि जिस सीमित अर्थमें मैं वह शब्द अिस्तेमाल कर रहा था अुसे कोअी नहीं समझ सकेगा। मुझे लगता है कि मेरे सुधार-विरोधियोंको सनातनी बतानेसे जितना बिगाड़ हुआ है अुससे लेखकने ज्यादा समझ लिया है। अवश्य ही, पंजाबके सनातनियोंको अपनी खुदकी स्थिति साफ करनेमें तो कोअी कठिनाअी न होनी चाहिये। कुछ भी हो, वे अिस लेखको अपने समर्थनमें काम ले सकते हैं। असलमें दक्षिणके भी सारे सनातनी सुधारके या मेरे विरोधी नहीं हैं। हरिजन-यात्रामें ही मुझे पता लग गया था कि मैं कहीं भी गया तो वहां पर मेरे विरोधी आटेमें नमकके बराबर ही थे। बादके अिन बरसोंमें तो अुनकी संख्या और भी घटी है। हिन्दुओंका

भारी बहुमत पक्षमें न होता तो राजाजीका हरिजन-मदिर-प्रवेश कानून पास नहीं हो सकता था। न यह सभव था कि सनातनियोका विरोध कुछ भी व्यापक होता तो दक्षिणके बडे-बडे मदिर हरिजनोके लिअे खोल दिये जाते। अिसलिअे जब मैं सनातनियोके विरोधकी बात करता हू, तो अुसका मतलब अुन मुट्ठीभर लोगोसे ही हो सकता है, जो सनातनी कहलानेमे खुश होते हैं और जिनका धधा ही अस्पृश्यताके सुधारका विरोध करना और मुझे कोसना हो गया है। मैं यही प्रार्थना कर सकता हू कि किसी दिन अुनकी आखे खुले और वे भी अुस सुधारके पक्षमे हो जाय, जो हिन्दू धर्मको कमसे कम अस्पृश्यताके कलकमे तो पाक करके ही छोडेगा।

सेगाव, १९–१२–'३९

हरिजनसेवक, २३–१२–'३९

१३८

डाकका थैला

राजनीति और धर्म

प्र० — अपनी 'आत्मकथा' मे आपने कहा है कि धर्मसे भिन्न राजनीतिका आप खयाल भी नही कर सकते। क्या अब भी आपका अैसा ही खयाल है? यदि हा, तो भारत जैसे विविध धर्मोवाले देशमे कैसे आप अेक सामान्य राजनीतिक नीतिके ग्रहण किये जानेकी आशा करते है?

अु० — बेशक, मै अब भी धर्मसे भिन्न राजनीतिकी कल्पना नही कर सकता। वास्तवमे धर्म तो हमारे हरअेक कार्यमे व्यापक होना चाहिये। यहा धर्मका अर्थ कट्टर-पथसे नही है। अुसका अर्थ है विश्वकी अेक नैतिक सुव्यवस्थामे श्रद्धा। वह अदृष्ट है, अिसलिअे वास्तविकता अुसकी कम नही हो जाती। यह धर्म हिन्दू धर्म,

अिस्लाम, अीसाअी धर्म आदि सबसे परे है। यह अुन धर्मोंका अुच्छेद नहीं, बल्कि समन्वय करता है और अुन्हें वास्तविक धर्म बनाता है।

प्र० — क्या यह ठीक है कि कुछ सिक्खोंको, जो कुछ मामलोमें आपकी सलाह लेने आये थे, आपने यह सलाह दी थी कि गुरु गोविन्दसिंहने तो अुपदेश दिया था कि तलवारसे काम लो, पर मैं तो अहिंसाका समर्थक हू, अिसलिअे सिक्ख अिन दोनोंमें से केवल अेक ही मार्ग ग्रहण कर सकते है?

अु० — अिस प्रश्नमें अगर शरारत नहीं तो कमसे कम पूछा गया है बुरी तरहसे। मैंने सिक्खोंसे जो कुछ कहा था वह यह था कि अगर अुनका यह खयाल है कि गुरु गोविन्दसिंहने अहिंसामें सोलहो आने श्रद्धा रखनेकी शिक्षा नहीं दी है तो वे अुस समय तक अपनेको वाजिब तौर पर कांग्रेसी नहीं कह सकते जब तक कि कांग्रेसका मौजूदा ध्येय बना हुआ है। मैंने यह भी कहा था कि अैसी दशामें वे कांग्रेसमें शामिल हुअे या अुसमें रहे तो वे अपनी स्थितिको विषम बना डालेंगे और संभवतः अपने कार्यको भी हानि पहुचायेंगे।

अहिंसा, अिस्लाम और सिक्ख धर्म

प्र० — सब धर्मोंका आदर करनेका अुपदेश देकर आप अिस्लामकी ताकतको तोडते हैं। आप पठानोंकी बन्दूकें छीनकर अुन्हें नामर्द बना देना चाहते हैं। अिस हालतमें हममें और आपमें मेल तो कहीं हो ही नहीं सकता।

अु० — मैं नहीं जानता कि खिलाफतके दिनोंमें अिस सबंधमें आपके क्या विचार थे। मैं आपको हाल ही का थोडा अितिहास बता दू। खिलाफत आंदोलनकी नींव मैंने ही डाली थी। अलीबंधुओंकी रिहाअीके लिअे जो हलचल हुअी थी अुसमें भी मेरा हाथ था। अिसलिअे जब अलीबंधु रिहा हुअे तो वे और ख्वाजा अब्दुल मजीद, शुअैब कुरेशी, मुअज्जमअली और मैं हम सब मिले और कार्यकी अेक योजना निकाली जिसे सब लोग जानते हैं। अुन सबके साथ

मैंने अहिंसाके सब पहलुओं पर चर्चा की और अुन्हे वताया कि सच्चे मुसलमानोकी भाति अगर वे अहिसाको स्वीकार न कर सके तो मेरे लिअे अुनके पास कोअी जगह नही रहेगी। वे मेरी वातके कायल तो हो गये मगर अुन्होने कहा कि विना हमारे अुलेमाओकी ताअीदके हम अिस पर अमल न कर सकेंगे। और अिसलिअे स्वर्गीय प्रिंसिपल रुद्रके मकान पर कुछ अुलेमा जमा हुअे। प्रिंसिपल रुद्रके जीवनकालमे मै जव जव दिल्ली आता था, अुन्हीके घर पर ठहरता था। अिन अुलेमाओमे और और लोगोके साथ मौलाना अवुल कलाम आजाद, मरहूम मौलाना अव्दुल वारी, मौलाना अव्दुल मजीद और मौलाना आजाद सुभानी भी थे। ये नाम मै अपनी याददाश्तसे ही लिख रहा हू। पहले दो की तो मुझे अच्छी तरह याद है। वाकी अुस समय न भी रहे हो तो वादमे शामिल जरूर हो गये थे। मौलाना अवुल कलाम आजादने अिस वहसमे प्रमुख भाग लिया था। सवने यह फैसला किया कि अहिसामे विश्वास करना अिस्लाममे जायज ही नही, वल्कि जरूरी भी है, क्योकि अिस्लाममे अहिसाको हमेशा हिंसासे ज्यादा पसन्द किया गया है। यह वात गौर करनेके काविल है कि सन् १९२० मे जव काग्रेसने अहिसाको स्वीकार किया, अुससे पहलेकी यह घटना है। मुसलमानोके कअी वडे-वडे जलसोमे मुस्लिम विद्वानोने अहिसा पर वहुतसे व्यारव्यान और अुपदेश दिये। वादमे विना किसी दुविधाके सिक्ख भी आये और अुन्होने अहिसा पर मेरे विचारोको कान लगा कर सुना। वे महान और गौरवशाली दिन थे। अहिसा तो सक्रामक ही सावित हुअी। अुसके जादूसे जनतामे अितनी जागृति हुअी जितनी पहले अिस देशमे कभी नही देखी गयी थी। सव कौमोने अनुभव किया कि वे अेक है और अुन्होने सोचा कि अहिसासे अुन्हे अेक अैसी ताकत मिल गयी है जिसका मुकाविला कोअी कर नही सकता। वे अुजले दिन गये और अव अूपरके जैसे सवालोका जवाव देनेके लिअे मुझे गभीरतासे वाध्य होना पड रहा है। अहिसामे वह श्रद्धा मै आपको नही दे सकता जो कि आप अुसमें नही रखते है। वह श्रद्धा तो अीश्वर ही आपको दे सकता है। मेरी श्रद्धा तो अव भी वैसी ही

अचल है। आप और आप जैसे दूसरोंके मेरी प्रवृत्तियों पर सन्देह करनेके बावजूद भी मेरा यह दावा है कि अेक-दूसरेके धर्मके प्रति आदर अेक शांतिदायक समाजमें स्वाभाविक रूपसे ही होता है। विचारोंका खुला घात-प्रतिघात और किसी भी दशामें असंभव है। धर्म हमारे स्वभावकी बर्बरताको संयत करनेके लिअे है, अुसे ढीला छोड़ देनेके लिअे नहीं। ओीश्वर केवल अेक है, यद्यपि नाम अुसके अनेक हैं। क्या आप यह आशा नहीं करते कि मैं आपके धर्मका आदर करूं? यदि आप यह आशा करते हैं, तो क्या मैं आपसे नहीं चाह सकता कि आप भी मेरे धर्मका आदर करें? आप कहते हैं कि मुसलमानोंकी हिन्दुओंके साथ कुछ भी समानता नहीं है। आपके जिस अलगावके बावजूद भी संसार धीरे-धीरे विश्वव्यापी भाओीचारेकी ओर कदम बढ़ा रहा है। वहां जाकर मानवजाति अेक राष्ट्र हो जायगी। सामान्य लक्ष्यकी ओर जो कूच हो रहा है, अुसे न तो आप ही रोक सकते हैं, न मैं रोक सकता हूं। पठानोंको नामर्द बनानेका जवाब तो बादशाह खानसे मिलेगा। हमसे मिलनेसे पहले ही अुन्होंने अहिंसाको स्वीकार कर लिया था। अुनका विश्वास है कि पठानोंका अहिंसाके द्वारा ही कुछ भविष्य बन सकता है। अहिंसा न होगी तो और नहीं तो अुनकी आपसी खूरेजी ही अुन्हें आगे बढ़नेसे रोके रहेगी। और अुनका खयाल है कि अहिंसाको स्वीकार करनेके बाद ही पठान सीमाप्रान्तमें जम सके हैं और ओीश्वरके सेवक — खुदाओी खिदमतगार बने हैं।

और भी निन्दा

प्र० — अलीबंधुओंने जो अमानुल्लाको भारत पर हमला करनेके लिअे आमंत्रित करने और मुस्लिम राज स्थापित करनेका षड्यंत्र रचा था, अुसमें साथ देनेसे आप नहीं हिचकिचाये। आपने मौलाना मुहम्मदअलीके तारका मसविदा भी बनाया था, जिसमें अुस वक्तके अमीरको यह सलाह दी गयी थी कि वह अंग्रेजोंके साथ कोओी समझौता न करें। कहा जाता है कि स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानंदजीने यह मसविदा देखा था। और अब आप चाहते हैं कि सिन्धके हिन्दू

अपने मुसलमान आक्राताओंके सामने सब कुछ समर्पित कर दे और यह माग पेश न करें कि सिंध बम्बओी सूबेके साथ मिला दिया जाय, जो कि सिन्धमे न्यायपूर्ण शासनकी पुनरावृत्तिका अेकमात्र अुपाय है। आप यह अनुभव क्यो नही करते कि ज्ञान और प्रगतिके अिस युगमें अल्पसख्यक जो आशा करते है वह अुनके अुचित अधिकारोका असली सरक्षण है, अुनके पूर्ण होनेका पवित्र अुपदेश नही।

अु० — अैसे बहुतसे पत्र मेरे पास आये है। अब तक मैंने अुन्हे दरगुजर ही किया है। लेकिन अब मै देखता हू कि यह बात हिन्दू महासभामे पहुचकर बढ-चढ गयी है। अेक क्रुद्ध सम्वाददाता तो धमकी देते है कि अुन जैसे आदमी अितने प्रामाणिक स्थानसे कही गयी बात पर जरूर विश्वास करने लगेगे। अिसलिअे अपनी प्रतिष्ठाकी खातिर मुझे अिस सवालका जवाब देना ही होगा। लेकिन मेरे अिन सम्वाददाताको जानना चाहिये कि अपने बारेकी हरअेक अफवाह या लेखकी तोड-मरोडका प्रतिवाद करने बैठू तो जीवन मुझे दूभर हो जायगा। जिसकी रक्षाके लिअे अैसी कच्ची दीवालकी जरूरत है, वह प्रतिष्ठा ही क्या? जहा तक कि अमीरके साथ मेरे षड्यन्त्रका सबध है, मै कह सकता हू कि अुसमे लेशमात्र भी सत्य नहीं है। और, मुझे मालूम है कि अलीबन्धुओंके सामने जब यह आरोप आया था तो दृढतासे अुन्होने अुससे अिनकार किया था और मैंने अुनका पूरा विश्वास किया। मुझे याद नही है कि मौलाना मुहम्मदअलीकी ओरसे अुस समयके अमीरके लिअे मैंने तारका कोअी मसविदा तैयार किया था। जिस तारकी बात कही गयी है, अुसमे यो तो कोअी दोष नही है और अुसमे जो अनुमान लगाया गया है अुसका भी कोअी मौका नही है। स्वर्गीय स्वामीजीने वह बात मुझसे कभी नहीं पूछी। मृत व्यक्तियोके खिलाफ अुस समय तक कुछ कहना अनुचित है जब तक कि अुसके समर्थनके लिअे कोअी निश्चयात्मक प्रमाण न हो और अुसका कहना सगत हो। यह सारी कथा 'यग अिडिया' के मेरे लेखोको लेकर खडी की गयी है। अुनसे जो अनुमान लगाये गये है, अुनका कोअी भी औचित्य नही है। अग्रेजोको बाहर निकाल

देनेके अभिप्रायसे भारत पर हमला करनेके लिअे मैं किसी सत्ताको आमंत्रित करनेका गुनाह नहीं करूंगा। पहली बात तो यही कि वह मेरे अहिंसा धर्मके विरुद्ध है। दूसरे यह कि अंग्रेजोंकी बहादुरी और शस्त्रोंके प्रति मुझे अितना मानका भाव है कि मैं नहीं सोच सकता कि भारत पर कोअी भी आक्रमण तब तक सफल हो सकेगा जब तक कि बहुतसी जबरदस्त ताकतें ही न मिल गयी हों। कुछ भी हो, मैं नहीं चाहता कि ब्रिटिश राज खतम हो तो अुसकी जगह और कोअी दूसरा विदेशी राज आ जाय। मैं तो खालिस स्वराज्य चाहता हूं, फिर चाहे अुसमें खामियां भी हों। आज भी मेरी स्थिति वैसी ही है जैसी कि अुस समय थी जब मैंने 'यंग अिंडिया' के अुन वाक्योंको लिखा था, जिन्हें मेरे विरुद्ध प्रयुक्त करनेकी कोशिश की जा रही है। मैं अपने पाठकोंको यह भी याद दिला दूं कि मैं गुप्त तरीकोंमें विश्वास नहीं करता।

सिंधके लिअे अब भी मेरी वही सलाह है। सिन्धका बम्बअी प्रान्तके साथ मिलानेका प्रस्ताव चाहे और आधारों पर ठीक हो या न हो, लेकिन अिस आधार पर तो निश्चय ही वह ठीक नहीं कि अिस अेकीकरणसे सिंधवासियोंके जान और मालको अधिक संरक्षण मिलेगा। प्रत्येक भारतवासीको, फिर वह हिन्दू हो या और कोअी, अपने आप अपनी रक्षा करनेकी कला सीखनी चाहिये। सच्चे लोकतंत्रकी यह शर्त है। सरकारका तो संरक्षण देना अेक कर्तव्य है। लेकिन कोअी भी सरकार अुन लोगोंकी रक्षा नहीं कर सकती, जो सरकारके अुन्हें संरक्षण देनेके कर्तव्यमें हाथ नहीं बटायेंगे।

दिल्ली आते समय रेलमें, ४-२-'४०

हरिजनसेवक, १०-२-'४०

१३९

प्रश्न-पिटारी

अेक घरेलू कठिनाअी

प्र० — मैं विवाहित हूँ। मेरी पत्नी अेक अच्छी स्त्री है। हमें बच्चे भी हैं। अभी तक हम लोग शान्तिपूर्वक साथ-साथ रहे हैं। दुर्भाग्यवश पत्नीकी जान-पहचान अेक अैसी औरतसे हुअी, जिसे अुसने अपना गुरु बना लिया है। अुसने अुस स्त्रीसे गुरुमन्त्र लिया है और अब मेरी पत्नीका जीवन मेरे लिअे बिल्कुल अज्ञात या प्रच्छन्न हो गया है। अिसकी वजहसे हमारे बीच अुदासीनताका भाव पैदा हो गया है। मुझे समझमें नहीं आता है कि मैं क्या करूँ। तुलसीदास द्वारा चित्रित राम मेरे आदर्श नायक हैं। क्या मुझे वही करना चाहिये जो रामने किया था, यानी क्या मैं अपनी पत्नीसे सब तरहका सम्बन्ध तोड़ लूँ?

अु० — तुलसीदासने हमें सिखाया है कि हमें समर्थ लोगोंका अन्धानुकरण न करना चाहिये। महापुरुष या समर्थ लोग, जो काम बिना किसी हानिके कर सकते हैं, वह हम नहीं कर सकते। सीताके प्रति रामके प्रेमका खयाल करो। तुलसीदास हमें बताते हैं कि स्वर्णमृगके दर्शनके पहले ही वास्तविक सीता रामके आदेशसे लुप्त हो गअी थी और अुनकी छायामात्र रह गअी थी। यह बात लक्ष्मण तकसे छिपाअी गअी। कविने आगे और बताया है कि रामके सामने दैवी हेतु था। स्वर्णमृगके प्रकट होनेके बाद रामने सीताकी अिसी छायासे काम लिया था। फिर भी सीताने कभी रामके किसी कार्यका विरोध नहीं किया। ससारी पुरुषके विषयमें अिस प्रकारकी सारी बातोंका अभाव होता है, जैसा कि आपके मामलेमें है। अिसलिअे मेरी सलाह है कि अपनी पत्नीके साथ निबाहो और तब तक अुसके बीच हस्तक्षेप न करो जब तक कि अुसके आचरणके विरुद्ध आपको शिकायत करनेकी कोअी वजह न हो। अगर आपने किसीको अपना 'गुरु' बनाया होता, अुससे 'गुरुमत्र' लिया होता और अगर आप यह भेद अपनी पत्नी पर प्रगट न करते, तो मुझे विश्वास है कि आप भी भेद बतानेसे अिनकार करने पर अपनी

पत्नी द्वारा हस्तक्षेप किये जानेको पसन्द न करते। मैं मानता हूं कि पति-पत्नीके बीच कोअी भेद या गोपनीयता नहीं होनी चाहिये। विवाह-बंधनके प्रति मेरे मनमें बड़ी अूची धारणा है। मैं मानता हूं कि पति-पत्नी अेक-दूसरेमें अपनेको विलीन कर देते हैं। वे दो शरीरोंमें अेक प्राण व अेकमें दो शरीर हैं। पर ये बातें यांत्रिक रूपमें नहीं लागू की जा सकती। जिसलिअे जब आप अेक अुदार विचारके पति हैं तो आपको अपनी पत्नीको भेद बतानेमें अुनकी हिचकिचाहटकी कद्र करनेमें कोअी कठिनाअी न होनी चाहिये।

कलकत्ता जाते हुअ रेलमें, १६–२–'४०

हरिजनसेवक, २४–२–'४०

१४०

प्रश्न-पिटारी

व्यर्थकी रटाअी

प्र० — अिस बातसे सब सहमत हैं कि खाली जबानसे प्रार्थनाका रोज-रोज दुहराया जाना निरर्थकसे भी बुरा है। अुसका प्रभाव आत्मा पर सुलानेवाला पड़ता है। मुझे बहुधा अचरज होता है कि आप क्यों रोजकी दिनचर्या बनाकर सुबह-शाम ग्यारह महाव्रतोंके दोहराये जानेको प्रोत्साहन देते हैं। क्या अिनका हमारे बच्चोंकी नैतिक चेतनाको शिथिल करनेवाला असर नहीं पड़ सकता? क्या अिन महाव्रतोंकी शिक्षा देनेका और कोअी अच्छा तरीका नहीं है?

अु० — बार बार दोहरानेकी क्रिया अगर यांत्रिक ही न हो तो अुससे अद्भुत परिणाम होता है। अिसी कारण मैं मालाको अंधविश्वासकी चीज नहीं समझता। अिससे चंचल मनको स्थिर करनेमें मदद मिलती है। मगर व्रतोंको रोज दोहरानेकी बात अलग है। अिससे साधकको नित्य अुठते और सोते समय स्मरण होता है कि अुसने ११ व्रत लिये हैं और अुन्हींके अनुसार अुसे आचरण करना है। अवश्य ही यदि कोअी

अिस भ्रममें कि खाली रटनेसे ही पुण्य मिल जायेगा, जबानसे व्रतोंको दोहराते हैं तो अुनका असर जाता रहेगा। आप यह पूछ सकते हैं, "व्रतोंको दोहरानेकी जरूरत ही क्या? आप जानते हैं कि आपने व्रत लिये हैं और आपसे अुनके पालनकी आशा रखी जाती है।" अिस दलीलमें जोर है। पर अनुभव बताता है कि जान-बूझकर रटनेमें निश्चयको बल मिलता है। दुर्बल शरीरके लिअे बलवर्द्धक औषधियां जो काम देती हैं, दुर्बल मन और आत्माके लिअे वही काम व्रत देते हैं। तन्दुरुस्त शरीरके लिअे जैसे ताकतकी दवाओंकी जरूरत नहीं होती, ठीक अुसी तरह सबल मन व्रतों और अुनके नित्यस्मरणके बिना अपना स्वास्थ्य कायम रख सकता है। पर व्रतोंका ध्यानपूर्वक विचार करनेसे मालूम हो जायेगा कि हममें से अधिकांश अितने दुर्बल हैं कि हमें अिनकी सहायताकी आवश्यकता रहती है।

सेवाग्राम, १–४–'४०
हरिजनसेवक, ६–४–'४०

१४१

प्रश्न-पिटारी

गोमांस

प्र० — अेक बहुत जरूरी सवाल है, जिसके बारेमें आपको मुस्लिम जनताके दिलको संतोष दिलाना चाहिये। वह यह है कि क्या हिन्दू बहुमतके राज्यमें मुसलमानोंको गोमांस खानेकी अिजाजत होगी? गोमांस तो मुसलमानोंकी कौमी खुराक है। अगर अिस सवालका आप संतोषजनक जवाब दे सकें तो काफी गांठें खुल जायेंगी।

अु० — मुझे मालूम नहीं कि यह सवाल क्यों अुठा है, क्योंकि जिन प्रान्तोंमें कांग्रेसने हुकूमत की है, वहां अुसने मुसलमानोंको गोमांस खानेमें कोअी रुकावट नहीं डाली। यह सवाल गलतफहमीसे भी भरा हुआ है। हिन्दू बहुमतका राज्य तो हो ही नहीं सकता। यदि

स्वतंत्र हिन्दुस्तानमें हम लोग अेक-दूसरेके साथ अमनसे रहना चाहते हैं, तो जो विभाग होंगे वे राजनीतिक विभाग होंगे, धार्मिक नहीं, क्योंकि अुनके पैदा होनेका कारण मजहब नहीं होगा। आज भी, काफी मजहबी मतभेद होते हुअे, हमारी राजनीतिक पार्टियोंके सदस्य अक्सर भिन्न भिन्न धर्मके होते हैं। फिर यह कहना भी ठीक नहीं है कि गो-मांस मुसलमानोंका राष्ट्रीय आहार या कौमी खुराक है। पहली बात तो यह है कि हिन्दुस्तानके मुसलमान हिन्दुस्तानी हैं, कोअी जुदी कौम नहीं। दूसरी यह कि गोमांस अुनका मामूली खाना नहीं है, अुनकी खुराक तो सबकी खुराक है। अलबत्ता, मुसलमानोंमें अैसे बहुत कम हैं, जिन्होंने मांस खाना मजहबके लिहाजसे छोड़ दिया है। अिसलिअे वह जब मिले तो हरअेक किस्मका मांस खा लेते हैं और अिसमें गोमांस भी शामिल है। लेकिन असल बात तो यह है कि गरीबीके कारण सालमें ज्यादातर तो जनताको मांस मिलता ही नहीं।

अगर यह काल्पनिक प्रश्न है, तो भी अुत्तर देना आवश्यक है। मैं हिन्दू हूं, पक्का निरामिषभोजी हूं और गायको पूजता हूं, जैसे मैं अपनी माता — अफसोस कि वह आज अिस जगतमें नहीं है — को पूजता हूं। साथ ही, मेरी यह पक्की राय है कि अगर वे चाहें तो मुसलमानोंको गाय मारनेका अधिकार होना चाहिये। अुन्हें सफाअीके नियमका पालन करना होगा। और यह काम अैसे करना होगा जिससे हिन्दुओंकी भावनाओंको ठेस न पहुंचे। यह अधिकार मुसलमानोंके लिअे आवश्यक है, अगर हम आपसमें मित्रताके साथ रहना चाहते हैं। अन्तमें मैं समझता हूं कि अिस तरहसे हम गायको बचायेंगे भी। सन् १९२१ में खुद मुसलमान भाअियोंकी कोशिशसे हजारों गायोंकी जानें बच गअी थीं।

आज तो आकाश काले बादलोंसे घिरा हुआ है। पर मैं अुम्मीद नहीं छोड़ूंगा कि ये बादल तितर-बितर हो जायेंगे और हमारे अभागे देशमें साम्प्रदायिक अैक्य जरूर पैदा होगा। यदि मुझसे कोअी पूछे कि मैं अिसका कोअी सबूत दूं, तो मेरा जवाब यह होगा कि मेरी आशाकी बुनियाद तो श्रद्धा है और श्रद्धाको सबूतकी कोअी जरूरत नहीं।

फासीकी प्रथा

प्र०—क्या आपकी रायमे फासीकी सजा अहिंसाके असूलके विरुद्ध हे? यदि असा हे, तो स्वतत्र हिन्दुस्तानमे आप असके बदलेमे कौनसी सजा रखेंगे?

अु०—फासीकी सजाको तो मैं अहिसाके विरुद्ध समझता हू। केवल ओश्वरको, जो जीवन देता ह, जान लेनेका अधिकार हे। अहिसा तो सभी सजाओंकी विरोधी हे। जो राज्य अहिसाके आधार पर अपना शासन चलाता हे, वहा तो हत्या करनेवालेको भी असी जगह भेजना चाहिये, जहा असका मानसिक और नैतिक सुधार हो सके। हरअेक गुनाह अेक किस्मकी बीमारी है और अिसका अिलाज भी अिस दृष्टिमे होना चाहिये।

अीश्वरकी अिच्छा

प्र०—साधारण मनुष्य अपनी अिच्छा और अीश्वरकी अिच्छाके बीचका भेद किस तरह पहचाने?

अु०—अीश्वरकी जिच्छा पहचानना बहुत कठिन बात हे, जिसके लिअे अुचित शिक्षाकी आवश्यकता हे। अिसलिअे सिवा जिसके कि पक्का सबूत हो, जो अिच्छा पैदा होती है अुसे मनुष्य अपनी ही समझे, अीश्वरकी नही।

कांग्रेसके प्रति गुनाह हे?

प्र०—स्वतत्रता-दिवसके जलसोमे बाज कांग्रेस कमेटियोने आदमपुर दोआबामे राष्ट्रीय झडे अशुद्ध खादी और कागजके बनाकर बेचे। जब मैंने अुनसे प्रार्थना की कि अेसा नही करना चाहिये, तो अुन्होने जवाब दिया कि यदि हम शुद्ध खादीके झडे बेचें तो अेक अेक पैसेमे नही बेच सकते। अिस तरह तो हम कुछ मुनाफा अपने लिअे भी कर सकते है।

किसी-किसी जगह तो मैंने मिलके कपडेके झडे भी देखे और अुन पर चरखेका चित्र नही था। मेरा अभिप्राय तो यह है कि चरखा

और खादी हमारे झंडेकी आत्मा है और जिस झंडे पर चरखेका चित्र न हो और जो अप्रमाणित खादी या कागजका बना हुआ हो, वह राष्ट्रीय झंडा कहलाया नहीं जा सकता।

अु० — आप जो कहते हैं वह बिलकुल ठीक है। जिन्होंने अैसे झंडोंका अुपयोग किया है, जैसा कि आपने लिखा है, अुन्होंने कांग्रेसका अपमान किया है। अुन्होंने झंडेका आदर नहीं किया। झंडा तो अेक खास नमूनेका होना है। अगर हमीं अपने झंडेकी अिज्जत नहीं करेंगे, तो औरोंसे क्या अुम्मीद रख सकते हैं? आपके बयानसे मुझे अैसा लगता है कि अच्छा हो अगर हमारे केन्द्रीय दफ्तरमें भिन्न-भिन्न नापके झंडे बनाकर रखे जायं और अप्रमाणित झंडेका अुपयोग करनेका किसीको अधिकार नहीं होना चाहिये।

हरिजनसेवक, २७-४-'४०

१४२

प्रश्न-पिटारी

हरिजन-सेवा और कौमी अेकता

प्र० — आप हरिजन-सेवाका काम कर सकते हैं, खादी और ग्रामोद्योगके कामके लिअे संगठन कर सकते हैं, मगर जब हिन्दू-मुस्लिम-अैक्यका प्रश्न आता है, तो अुसे टालनेके लिअे आप अनेक बहाने गढ लेते हैं, क्योंकि दरअसल आप यह काम करना ही नहीं चाहते।

अु० — यह अिलजाम मुझ पर कअी अपरिचित पत्र लिखनेवालोंने लगाया है। मगर हालमें यह अिलजाम मेरे साथ गाढ परिचय रखनेवाले अेक मुसलमान सज्जनने अुग्रतासे दोहराया है और अिस प्रश्नका हल 'हरिजन' में करनेके लिअे तकाजा किया है। हरिजनों और मुसलमानोंकी तुलना की ही नहीं जा सकती। हरिजनोंकी तो जो भी मदद की जा सके अुसकी अुनको जरूरत है। हरिजन-कार्य तो परोपकारका काम

है। मुसलमानोंको मेरे परोपकारकी जरूरत नहीं। वह अेक ताकतवर कौम है। अगर कोअी हरिजनोंकी तरह अुनकी सेवा करने लगे, तो अुसे वह अपना अपमान समझेंगे। खादी और ग्रामोद्योगकी मिसाल मेरे विरोधमें खड़ी करनेमें तो विचार-शून्यता जाहिर होती है। ये प्रवृत्तियां तो जो कोअी भी अुनसे फायदा अुठाना चाहे अुन सबकी मददके लिअे संगठित की गअी हैं और सचमुच तो हिन्दू, मुस्लिम और दूसरे लोग भी अिनसे फायदा अुठा रहे हैं। कौमी अैक्यके बारेमें मैंने यथाशक्ति प्रयत्न किया है, और कर रहा हूं। भले ही मुझे सफलता न भी मिली हो, मगर मेरे मनमें जरा भी शक नहीं कि मेरा प्रयत्न ठीक दिशामें चल रहा है और अन्तमें यह हमें मंजिल पर जरूर पहुंचायेगा।

प्र० — आपको बीदरकी घटनासे बहुत दर्द हुआ है। जिनका नुकसान हुआ है अुनके लिअे आप न्यायकी मांग करते हैं। और आप चाहते हैं कि हैदराबादसे बाहर रहनेवाले मुसलमान अुन्हें न्याय दिलायें। अगर मुसलमानोंके साथ बुरा सलूक हो, जैसा कि बिहारमें हुआ, तब भी आपको अितना ही दर्द होगा?

अु० — मैं नहीं जानता कि यहां बिहारकी कौनसी घटनाकी तरफ अिशारा है। मैं यहां अितना ही कह सकता हूं कि मेरे पास मुसलमानों पर हिन्दुओंकी ज्यादतीका अेक भी अैसा किस्सा नहीं आया, जिसकी मैंने पूरी तरह जांच-पड़ताल न करवाअी हो। खिलाफतके दिनोंसे मैं हमेशा अैसा करता आया हूं। मुझे हमेशा सत्यको ढूंढ निकालनेमें, या जिन पर ज्यादती हुअी हो अुन लोगोंको सन्तोष देनेमें भले ही सफलता न हुअी हो, पर मैंने अिसीके लिअे पूरा-पूरा प्रयत्न किया है। बिहारके विषयमें जो अिलजाम लगाया गया है वह अितना अस्पष्ट है कि अुस बारेमें अिससे ज्यादा खुलासा मैं नहीं दे सकता। अगर कोअी खास मिसाल मेरे सामने रखी जाये, तो मैं कह सकूंगा कि अुसके बारेमें मैंने क्या किया था। मगर घड़ी भरके लिअे मान लिया जाय कि मैंने न्याय देनेके अपने धर्म-पालनमें चूक की, या मुझे मुसलमानों पर हिन्दुओंके अन्याय करनेसे अुतना दर्द नहीं होता जितना कि हिन्दुओं

पर मुसलमानोंके अन्याय करेंगे, तो क्या अिस बिना पर बीदरके बारेमें रियासत बेदरकारी बता सकती है? मैं तो कह चुका हूं कि आज तक जितने भी हिन्दू-मुस्लिम फसाद हुअे हैं, अुन सबमें बीदरसे टक्कर खानेवाली अेक भी मिसाल मुझे नहीं मिलती है। मेरी मांग तो अितनी ही है कि अेक अैसी अदालतके द्वारा पूरा न्याय दिया जाये, जिसकी तटस्थताको सब लोग स्वीकार करते हों। जिन लोगोंका नुकसान हुआ है, अुन्हें हरजाना मिले। बीदरके बारेमें मैं जो मांगता हूं वह अैसी सब घटनाओंके लिअे भी है।

कोअी अुलझन नहीं

प्र० — हिन्दुस्तानकी परिस्थितिके बारेमें अब भी जनताके मनमें काफी अुलझन है। अिसे कैसे दूर किया जा सकता है?

अु० — अुलझन तो तभी दूर हो जानी चाहिये थी, जब कांग्रेसी मन्त्रियोंने अिस्तीफा दिया। वे जनताके चुने हुअे प्रतिनिधि थे। आश्चर्य-जनक मेहनत और काबिलियतके साथ वे अपने काममें जुट गये थे, जिसके लिअे गवर्नरोंने भी अुनकी मुक्तकंठसे तारीफ की। न अुन्होंने खुद आराम लिया, न अपने मातहतोंको लेने दिया। जनताकी हालत सुधारनेके लिअे अुन्होंने अपने सामने निश्चित कार्यक्रम रखा था। आफिस छोड़ते वक्त अुन्हें काफी दुःख हुआ होगा। लेकिन यह अनुभव करके अुन्हें ताज्जुब हुआ कि जिस प्रांतीय स्वराज्यको सर सेम्युअल होरने अूंची आवाजसे सही और मुकम्मिल बतलाया था, वह क्षणभरमें मिट्टीमें मिल गया। लोकप्रिय मन्त्रियोंकी स्थिति केवल रजिस्टरी कारकुनोंकी जैसी हो गअी, जिनका काम यही रह गया कि लड़ाअीके मामलेमें वे केन्द्रीय सरकारकी अिच्छाओं पर अमल करें। अिस महत्त्व-पूर्ण मसले पर अुनके साथ जाब्ते या गैरजाब्तेसे कोअी सलाह-मशवरा नहीं किया गया। अिस्तीफा तो फिर लाजिमी था ही। यह अुनकी कार्रवाअी अपनी हद तक मुकम्मिल थी, पर अुसका महत्त्व जितना महसूस होना चाहिये था अुतना नहीं हुआ। क्योंकि कांग्रेस अहिंसाको अपना चुकी है।

कांग्रेस जिम्मेदार नहीं

प्र०—बहुतसे लोगोंका यह विश्वास है कि कांग्रेसने ही बटवारेकी तजवीजके बारेमें मुस्लिम लीगको अुत्तेजित किया है। क्या यह सही बात है?

अु०—मैं अैसा नहीं मानता। लेकिन अगर किया हो, तो भी अुससे निश्चित लाभ हुआ है। यह अच्छा हुआ कि जो भीतर था वह बाहर निकल आया। अब मसलेसे पेश आना ज्यादा आसान होगा। वह अपने आप ही सुलझ जायेगा। अेक निश्चित लाभ तो यह है कि राष्ट्रीय मुसलमान अपने फर्जके बारेमें जाग्रत हो गये हैं।

सेवाग्राम, ६–५–'४०

हरिजनसेवक, ११–५–'४०

१४३

हिन्दी-पाठकोंसे

जबसे मैंने 'हरिजनबंधु'में गुजराती लिखना शुरू किया है, तबसे भले मीठे लफ्जोंमें सही, लेकिन पाठकोंकी तरफसे शिकायतें आ रही हैं कि मैंने गुजरातीका पक्षपात किया है। मैंने अिस शिकायतका अुत्तर तो दिया, मगर पाठकोंको अुससे संतोष नहीं है। अिसलिअे वियोगीजी लिखते हैं कि कुछ-न-कुछ तो 'हरिजनसेवक'के लिअे ही मुझे लिखना चाहिये। अिस बारेमें मुझे समझानेकी आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि राष्ट्रभाषामें लिखना मुझे प्रिय है। अिसलिअे अितना ही कहूं कि मैं कोशिश करूंगा।

कांग्रेसने राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीको माना है। हिन्दुस्तानी वह भाषा है जो अुत्तरमें हिन्दू-मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी या अुर्दू लिपिमें लिखते हैं। मेरी कोशिश जैसी हिन्दुस्तानीमें लिखनेकी रहेगी।

हरिजनसेवक, २४–८–'४०

१४४

प्रश्न-पिटारी

जीवन-निर्वाह

प्र० — आपने अेक बार 'हरिजन' में लिखा था कि गावमें ग्रामवासियोंके अन्दर आपसमें सूत कतवाकर खरीदनेमें जीवन-निर्वाह मजदूरीका सवाल नही आता और चरखा-संघ अिनमें हस्तक्षेप न करे। परन्तु क्या अैसा खादीधारी कांग्रेसके नियमानुसार प्रमाणित खादीधारी होकर प्रतिनिधि बन सकता है?

गावमें ग्रामसेवक अिस पर क्या करेगा? वह तो जीवन-निर्वाह मजदूरीका प्रचार करता है और गावमें कअी लोग चरखा-संघकी खादी खरीदते है। परन्तु अैसे बहुतसे है जिनके लिअे जीवन-निर्वाह मजदूरी देकर खादी पहनना सभव नही है और साथ-साथ कत्तिनको भी बेकारीसे रिहाअी मिलती है और गावमें खादी स्थायी-सी बन जाती है। ग्रामसेवक अिसे प्रोत्साहित करेगा क्या? अिस पर आप अपनी सविस्तार राय जाहिर करें।

अु० — अेक बात याद रखनेसे अैसे प्रश्न पैदा नही हो सकते। वाक्यका अर्थ भी अैसा न किया जाय, जिससे वक्ताका हेतु निष्फल हो जाय। अिस न्यायसे दोनो प्रश्न देखें। जिधर मजदूरी दी नही जाती और अपने आप ही कोअी कात लेते है अुनको प्रतिबंध नही होना चाहिये। हा, अितना आवश्यक है कि कोअी स्वावलम्बनका बहाना निकालकर खादीके नियमका भग न करें।

जो ग्रामसेवक है अुसे भी वही नियम लागू होता है। आपके प्रश्नमें अेक कठिन वस्तु है सही। कत्तिनको काम चाहिये। जीवन-निर्वाह मजदूरी अुसे नही मिल सकती है। सेवक भी अितनी मजदूरी देकर निजी कामके लिअे खादी नही पहन सकता। अैसी हालतमें खादी तो वह अवश्य बनवावे, कत्तिनोंको काम भी दे, लेकिन वह कांग्रेसका सदस्य न बने। बाहर रहकर कांग्रेसकी सेवा करे। बाहर रहनेवाले बाज वक्त ज्यादा सेवा करते है और लालचसे मुक्त रहते

है। अिस तरह नियमके वाहर जो खादी वने, अुसे देहातके वाहर नही ले जाना चाहिये। खादीका अुपयोग अुसी देहातमे हो जाना चाहिये। अगर अुसे वाजारमे निकाले, तो नियमका भग होगा और खादीको धक्का लगेगा। कत्तिनोकी मजदूरी वढाकर चरखा-सघ वडी कठिनाअियोंके बीचमे से अपना रास्ता निकाल रहा है। कही भी वगैर मागके अेकाअेक हजारो मजदूरोकी मजदूरी अेक या दो पैसेसे आठ या वारह पैसे की गअी हे, अैसा मैने नही सुना हे।

चरखा-सघके मुलाजिम

भिवानी काग्रेस कमेटीके मत्री पूछते हैं

प्र०—जो सज्जन चरखा-सघके खादी-आश्रममे मुलाजिम है, क्या अुनके लिअे कोअी हिदायत आपकी तरफसे अैसी है कि वे सत्याग्रहके फारम पर दस्तखत न करे? वाकी तमाम नियम सत्याग्रहियोके वे सज्जन पूरे करते है, सिर्फ वे चरखा-सघकी अिजाजतके विना जेल नही जा सकते, अिसलिअे सत्याग्रहके फारम पर दस्तखत नही कर सकते। क्या वे काग्रेस वर्किंग कमेटीके मेंवर रह सकते हैं या अुनको अलग हो जाना चाहिये?

अु०—चरखा-सघका नियम जैसा कि आप पूछते है, अैसा ही है। मुलाजिम दो काम अेकसाथ नही कर सकते। चरखा-सघका काम भी काग्रेसका ही हे। चरखा-सघका काम विगाडकर कोअी मुलाजिम जेल नही जा सकता। अिसलिअे जैसा कि आप लिखते है अैसा नियम है। जाहिर हे कि यदि अैसा नियम योग्य है, तो कोअी मुलाजिम काग्रेस कमेटीमे नही रह सकते। क्योकि कमेटी गिरफ्तार हो सकती हे और कमेटी चाहे तो अुस सदस्यको हुक्म कर सकती हे कि वह जेल जाये।

अप्रमाणित खादी

वही मत्री महोदय यह भी पूछते हैं

प्र०—काग्रेस कमेटीकी वर्किंग-कमेटीके मेम्बर अप्रमाणित खादी वेचते है, लेकिन वे कताअी-बुनाअीकी मजदूरी चरखा-सघके मुताविक

देकर मदद बनवाते है। सिर्फ अुनके पास प्रमाणपत्र नहीं है। क्या कांग्रेस वर्किंग कमेटीके मेम्बर रहते हुअे अैसा करना कांग्रेस-शासनके अन्दर है या अुनको अलग हो जाना चाहिये?

अु०—मेरा अभिप्राय है कि वह कांग्रेस कमेटीके सदस्य नहीं हो सकते। यदि यह सही है कि वह सज्जन मजदूरी नियमके मुताबिक देते है, तो क्या वजह है कि वह चरखा-संघसे प्रमाणपत्र नहीं लेते?

नास्तिक आस्तिक कैसे बने?

प्र०—नास्तिकवादीका अीश्वर और धर्मके प्रति विश्वास कैसे बैठाया जाय?

अु०—अिसका अेक ही अुपाय है। अीश्वरभक्त अपनी पवित्रता और अपने धर्मके प्रभावसे नास्तिक भाअी-बहनोंको आस्तिक बना सकता है। यह काम बहसमें नहीं हो सकता। अगर अैसा हो सकता तो जगतमें अेक भी नास्तिक न रहता, क्योंकि अीश्वरके अस्तित्व पर अेक नहीं अनेक पुस्तकें लिखी गअी है। अिसलिअे आज अेक भी नास्तिक नहीं होना चाहिये। लेकिन देखते है अुससे अुलटा। पुस्तकें भी बढती रहती है और नास्तिकोंकी संख्या भी बढती चली जाती है। हकीकतमें जो नास्तिक माने जाते है या अपनेको मनवाते है वे नास्तिक नहीं है और जो आस्तिक माने जाते है वे आस्तिक नहीं है। नास्तिक कहते है, "अगर तुम आस्तिक हो तो हम नास्तिक है।" अैसा कहना ठीक भी है, क्योंकि अपनेको आस्तिक माननेवाले सब सचमुच आस्तिक नहीं होते। अीश्वरका नाम या तो रूढिवश होकर लेते है या जगतको धोखा देनेके लिअे। अैसे लोगोंका प्रभाव नास्तिकों पर कैसे पड सकता है? अिसलिअे आस्तिक विश्वास रखें कि यदि वे सच्चे है, तो अुनके नजदीक नास्तिक नहीं होंगे। सारे जगतकी वे फिक्र न करें। अगर कोअी नास्तिक जगतमें है तो वे भी अीश्वरकी दयासे होते है न? अीश्वर चाहता तो जगतमें कोअी नास्तिक होता ही नहीं। कहा गया है कि अीश्वरका नाम लेनेवाले आस्तिक नहीं, परन्तु अीश्वरके काम करनेवाले आस्तिक है।

क्या निष्फल होगी ?

प्र० — आप कहते हैं कि आज कांग्रेसमें पूरी अहिंसक शक्ति नहीं है। तो अगर कांग्रेस आज सत्याग्रहकी हलचल शुरू करे, तो अुसे निष्फल ही होना है न?

अु० — कांग्रेसकी जैसी लौकिक संस्था कभी पूर्णतया अहिंसक नहीं बन सकती, क्योंकि सब सदस्य अेक समान अहिंसक नहीं हो सकते। मगर कांग्रेसके पास पूर्ण अहिंसाको पहचाननेवाले और पूर्ण अहिंसाका पालन करनेवाले सदस्य हों, तो अुनकी सरदारीके नीचे कांग्रेस अवश्य सफल सत्याग्रह कर सकती है। कांग्रेसने आज तक तो अैसा करके दिखा भी दिया है।

सेवाग्राम, २६–८–'४०
हरिजनसेवक, ३१–८–'४०

१४५

पाठकोसे

जब तय हुआ कि 'हरिजनसेवक' में भी मुझे लिखना है, तो मैंने सोचा कि 'हरिजन', 'हरिजनबन्धु' और 'हरिजनसेवक' तीनों अेक ही जगह छपनेसे मुझे सुभीता होगा। श्री वियोगी हरिने भी यह सूचना पसंद की। कअी महीनोंसे 'हरिजनसेवक' के बारेमें अुनका भार हलका करनेकी बात चल रही थी। अुनका प्रधान याने अेक ही कार्य हरिजन-निवासको हरिजनोंका आदर्श शिक्षालय बनाना है। अुनको अिस दिशामें काफी सफलता भी मिली। 'हरिजनसेवक' का भार अुन पर खासा पड़ता था। अुसे कम करनेकी कोशिश चल रही थी। अुसमें कुछ सफलता भी मिली थी। अब 'हरिजनसेवक' छपाया करनेका स्थान बदलनेसे वह और भी कम होगा। अुनको 'हरिजनसेवक' के कामसे सर्वथा मुक्ति तो नहीं मिल सकती है। दूसरे भी संपादक वे ही रहेंगे। अुससे भी मुक्ति देनेकी मैंने कोशिश

तो की। अच्छा हुआ मुझे सफलता न मिली। 'हरिजनसेवक' वियोगीजीकी कृति है। अुनके ही अुत्साहसे चलता था। ग्राहक भी वे ही बनाते थे। अिसलिअे अुचित है कि 'हरिजनसेवक' से अुनका सम्बन्ध कुछ न कुछ बना रहे। अुनके लेख तो 'हरिजनसेवक' में आते ही रहेंगे।

'हरिजनसेवक' की भाषा अवश्य बदलेगी। मेरा हिन्दुस्तानीका ज्ञान बहुत कच्चा है, अुसका व्याकरण कुछ भी नहीं। बोलते सुनते जो सीख सका वही है। अिसलिअे व्याकरणके दोष मेरी भाषामें रह जायेंगे। अैसे दूसरे भी साथी हैं जो लिखते रहेंगे। अिन त्रुटियोंको पाठक लोग अुदारतासे बरदास्त करेंगे, अैसी आशा रखता हूँ। अिसका अर्थ यह होता है कि 'हरिजनसेवक' कोअी भाषाकी दृष्टिसे नहीं लेंगे। जो लेंगे या पढेंगे वे अुसमें जो विचार आवेंगे अुन्हें जाननेके लिअे। पाठकोंके आग्रहके वश होकर मैंने 'हरिजनसेवक' में भी लिखनेका निश्चय किया है। गुजराती लेखोंके अनुवादसे हिन्दी-हिन्दुस्तानी बोलनेवाली जनता सतुष्ट रहेगी, अैसा मैंने मान लिया था। लेकिन अितनेसे अुसकी तृप्ति नही हुअी। अेक बात है सही। जब अनुवाद दिल्लीमे होता था, अुस पर मेरा अकुश नहीं रहता था। अब निश्चय यह हुआ है कि अनुवाद भी मेरी देखभालके नीचे होगे। अिसलिअे जो अनर्थ कअी बार 'हरिजनसेवक' मे रह जाते थे, वे अब नही रहेगे या नही-से हो जायेगे।

सेवाग्राम, २–९–'४०

हरिजनसेवक, ७–९–'४०

१४६

प्रश्न-पिटारी

खादी और पवित्रता

प्र० — मेरे पास खादी तो है, लेकिन मेरा हृदय पवित्र नहीं है। अिस हालतमें खादी कैसे पहनी जाय?

अु० — आप अखबार नहीं पढ़ते हैं क्या? मैंने हजारों बार लिखा है, कहा है कि खादी लिबासके रूपमें तो सबके लिअे है। शराबी, व्यभिचारी, चोर, डाकू सब पहनें। लेकिन खादीमें अेक अधिक गुण माना गया है। वह हमारी स्वतंत्रताकी निशानी है। अिसलिअे जो स्वतंत्रता हासिल करना चाहे अुनको तो खादी पहनना ही है। अुनके लिअे आप जो कुछ कहते हैं वह सही है, क्योंकि सत्याग्रहीका हृदय पवित्र होना चाहिये। वह शराब नहीं पीयेगा, न व्यभिचारी होगा और अुनके लिअे खादीका लिबास फर्ज है।

अेक लक्षण

प्र० — आप कहते हैं कि अहिंसकको सब कुछ खो देनेके लिअे तैयार रहना चाहिये, चूंकि अुनका सम्बन्ध आत्मासे नहीं है, किन्तु शरीरसे है। यदि हम सब कुछ खोनेको हर घड़ी तैयार रहें, तो फिर हिंसक या अहिंसक युद्धकी आवश्यकता ही क्या? युद्ध तो अिसीलिअे करना पड़ता है न कि हम अपने धन-जनको आक्रमणकारीके हमलेसे बचायें?

साथ ही आप यह भी कहते हैं कि यदि अपने धन-जनकी हिफाजतकी अिच्छा हमारे मनमें होगी, तो हमारी अहिंसा अशुद्ध हो जायगी। अिन दोनोंका मेल कैसे होगा?

अु० — आपका प्रश्न बहुत अच्छा है। मैंने जो लिखा है वह अहिंसक सेनाके लिअे है। हिन्दुस्तानको ही लीजिये। करोड़ों लोग

अहिंसक सेनामें भर्ती नहीं होंगे। लेकिन अुनकी रक्षाके लिअे जो सत्याग्रही बनेंगे, अुनको [illegible] मौत [illegible] होगा।

धर्म-संकट

प्र० — मैं अेक बार स्टेशनसे दूर रेलवेके नजदीकसे जा रहा था। मैंने अेक नवयुवकको ठीक रेलवेके पास खड़ा हुआ देखा। मुझे शक आया कि वह रेलगाड़ीसे टकराकर आत्म-हत्या करना चाहता है। अिसलिअे मैंने अुसे वहाँसे हट जानेको कहा। वह थोड़े ही मेरी माननेवाला था? मैंने बहुत मिन्नत की। लेकिन अुसने अेक न सुनी। मैंने अुसकी जान बचानेका निश्चय किया। मैंने अुससे लड़ाअी की। अुसे कुछ खून निकला। मुझे थकान मालूम होने लगी। लेकिन रेलगाड़ीके चले जाने तक मैंने अुसको पकड़े रखा। अगर मैं नहीं लड़ता तो वह मरनेवाला था ही। मैंने क्या किया — हिंसा या अहिंसा? जब मैंने लड़ाअी शुरू की, तब मुझे कुछ खयाल नहीं था कि मैं हिंसा कर रहा हूँ या अहिंसा। और अब भी कुछ निर्णय नहीं कर सकता हूँ।

अु० — अच्छा ही हुआ कि आपने अुस समय हिंसा-अहिंसाका खयाल नहीं किया। जगत अिस तरह नहीं चलता है। अभ्याससे हमारेमें अेक आदत हो जाती है। मुझे तो कुछ शक नहीं कि आपका वह कार्य अहिंसक और बहादुरीका था। आपने अुस नवयुवककी जान बचाअी, अिसलिअे आप अुसके सच्चे दोस्त सिद्ध हुअे। जैसे अेक सर्जन अपने मरीजकी जान बचानेके लिअे मरीजको दर्द होते हुअे भी चीर-फाड करके अुसे बचाता है, अैसा आपने किया। धन्यवाद।

सेवाग्राम, २-९-'४०
हरिजनसेवक, ७-९-'४०

१४७

प्रश्न-पिटारी

देशीराज्योंमें

प्र० — क्या देशीराज्योंमें कांग्रेसके सदस्य ही न बनाये जाय?

अु० — यह प्रश्न बार-बार पूछा जाता है। मैंने तो शुरूसे ही राय दी है कि देशीराज्योंमें कांग्रेसके सदस्य बनाना हर तरहसे अनुचित है। अैसा करनेमें घर्षणकी संभावना रहती है और संतोषकारक संगठन भी नहीं हो पाता। देशीराज्यवाले जो कांग्रेसके सदस्य बनना चाहते हैं, वे ब्रिटिश हिन्दुस्तानमें अपने नजदीककी कांग्रेस कमेटीके सदस्य बनें। अच्छा तो यह होगा कि देशीराज्यवाले अपने ही राज्यमें बन सके अितना काम करें। वह तो ज्यादातर रचनात्मक ही हो सकता है। अुसीके मारफत सच्ची जागृति और देशभावना पैदा हो सकती है। कांग्रेसके सदस्य बननेके बदले कांग्रेसी वृत्तिवाले और कांग्रेसी भावनावाले बननेसे ज्यादा और सच्चा काम हो सकता है, अैसा मेरा मत है।

चरखा-संघके कार्यकर्ता

प्र० — यदि बनाये जाय तो चरखा-संघके अथवा प्रजामण्डलके कार्यकर्ता अिस कामको न करें? सहयोग भी न दें?

अु० — दोनों संस्थाअें अपने-अपने क्षेत्रसे बाहर न जाय। चरखा-संघको तो मना है ही। चरखा-संघ कांग्रेसकी कृति है, लेकिन अुसका राज्य-प्रकरणसे किसी प्रकारका संबंध नहीं। यह पारमार्थिक और आर्थिक संस्था है। अैसी संस्थाके मारफत दो काम नहीं लिये जा सकते। प्रजा-मण्डलके लिअे दूसरी नीति है। परिणाम अेक ही है। प्रजामण्डल कठिनाअियोंका सामना करके अपना काम करते हैं। अुन पर कांग्रेसके सदस्य बनानेका बोझ डालनेमें मैं बड़ा खतरा देखता हूं।

जब सदस्य न बनाये तो सहयोग कैसे दें? अगर सहयोगका अर्थ मानसिक सहानुभूति किया जाय तो वह तो मिलेगा ही। तीनों संस्थाओंके कार्यक्षेत्र अंकित हैं। अपने रस्ते सामने ही ये अेक-दूसरेकी सहायता कर सकते हैं। फिर यह है भी स्वाभाविक। अेक ही भावना तीनोंको प्रेरित करती है। अगर कांग्रेस राज्य-शासनमें सफल हो तो चरखा-संघ और प्रजामण्डलोंको अुन सफलताका लाभ होगा ही। अिसीलिअे चरखा-संघकी सफलतासे कांग्रेसकी सेवा होती है। अेसे भी प्रजामण्डल अपने कार्यमें सफल हों तो अितनी हद तक कांग्रेसको अवश्य बल मिलेगा। लेकिन अपने क्षेत्रके बाहर जायेंगे तो नुकसान होना संभव है।

सेवाग्राम, ९-९-'४०
हरिजनसेवक, १८-९-'४०

१४८

पाठकोंसे

'हरिजनसेवक' का प्रथम अंक जो पूनासे प्रकाशित हुआ, अुसमें काफी छपाअीकी गलतियां रह गअी हैं। पाठकगण क्षमा करेंगे। पूनामें हिन्दुस्तानी जाननेवाले कम मिलते हैं। यूं तो गुजराती जाननेवाले भी कम ही हैं। 'हरिजन' किस हालतमें शुरू हुआ यह पाठक जानते हैं। 'हरिजनबंधु' पूनामें प्रकाशित करनेमें बहुत आपत्ति न आअी, क्योंकि मेरे पास गुजराती काम करनेवाले साथी मौजूद थे। हिन्दुस्तानी काम करनेवाले जगह जगह बिखरे हुअे हैं। लेकिन मैं आशा करता हूं कि 'हरिजनसेवक' की छपाअी जल्दी ठीक हो जायगी और गलतियां कम होती जायंगी। 'हरिजनसेवक' की भाषामें रस लेनेवाले अगर अपनी टीका मुझे भेजेंगे तो अुनका अुपकार होगा।

संपादक रहना वियोगीजीने तारसे स्वीकार तो कर लिया था, लेकिन वे लिखते हैं कि अुनको मुक्ति मिलनेसे ज्यादा संतोष होगा।

बिना जिम्मेदारीके सपादक रहनेमे वे नैतिक दोष मानते है। वे अैसा भी कहते है कि अुन्हे लिखनेकी फुरसत भी कम मिलेगी। अुनका दृष्टि-बिन्दु मै समझता हू। अुसकी मेरे नजदीक कीमत भी है। अिसलिअे अुनको मुक्ति दी है। प्यारेलालने मेरी बात मान ली और सपादक होना स्वीकार किया। अुनका स्वभाव जानते हुअे मै अुन्हे मुक्त रखना चाहता था। लेकिन मेरे निकटवर्ती साथियोंमें से वही सपादक-पद ग्रहण करने योग्य है। वह अुर्दू अच्छी तरह जानते है, हिन्दीका भी अभ्यास है। अिसलिअे हिन्दुस्तानी सपादककी जिम्मेदारी अुठानेकी अुनमें शक्ति है। वे 'यग अिडिया' के सपादक रह चुके है। यह सब होते हुअे भी पाठकोकी अुदारताकी और टीकाके रूपमें अुनकी मददकी मुझे जरूरत रहेगी।

मुख्य वस्तु हेतु-सिद्धि है। 'हरिजनसेवक' प्रकाशित करनेका हेतु तो यही है कि हिन्दुस्तानी जाननेवाली जनताके सामने सत्याग्रहके सब पहलू रखे जायें। सत्याग्रहका अर्थ सिर्फ सिविल-नाफरमानी नही। अुससे कअी गुना महत्त्वकी वस्तु तरह तरहका रचनात्मक कार्यक्रम है। अुसके सिवा सिविल-नाफरमानी कोअी चीज नही है। यह तेरह अगोवाला कार्यक्रम क्या है, कैसे चलाया जा सकता है, अुनकी प्रगति कैसे हो रही है, यह सब 'हरिजनसेवक' द्वारा बतानेकी चेष्टा की जायगी। पहले भी कार्य तो वही था, लेकिन मेरी सीधी देखभालमे नही होता था। अब यथासभव मेरी देखभाल रहेगी। 'हरिजनसेवक' का मूल अुद्देश्य — हरिजनसेवा — कभी भूला नही जायगा। क्योंकि छुआ-छूतका भूत जब तक हममें भरा है, तब तक स्वराज आकाश-पुष्प-सा रहेगा।

अब पाठक समझेंगे कि भाषाको मैने क्यो गौण-पद दिया है। भाषाकी कोअी स्वतत्र कीमत नही है। भाषा न शब्दजाल है, न शब्दाडम्बर। विचारोंको प्रकट करनेका अेक बडा साधन अवश्य है। विचारमे कुछ शक्ति होगी, कुछ कहने लायक बात होगी, या लेखकके पास पाठकोंके लिअे कुछ अुपयोगी सूचना या सदेशा होगा, तो भाषा कैसी भी हो पाठकके हृदयमे वह अवश्य प्रवेश करेगी।

तेरह प्रकारका कार्यक्रम

अुपरोक्त कार्यक्रम नीचे दिया जाता है

(१) हिन्दू-मुस्लिम या कौमी अेकता
(२) अस्पृश्यता-निवारण
(३) मादक पदार्थोंका त्याग
(४) चरखा व खादी
(५) दूसरे ग्रामोद्योग
(६) ग्राम-सफाई
(७) नयी या बुनियादी तालीम
(८) प्रौढ़-शिक्षण
(९) स्त्री-जातिकी अुन्नति
(१०) आरोग्य और स्वच्छताकी तालीम
(११) राष्ट्रभाषा (हिन्दुस्तानी) का प्रचार
(१२) स्वभाषा या मातृभाषाका प्रेम
(१३) आर्थिक समानता

सेवाग्राम, ८–९–'४०

हरिजनसेवक, १४–९–'४०

१४९

सत्याग्रहमे अुपवासका स्थान

मै देखता हू कि सत्याग्रहके सिलसिलेमे मेरे अनशनकी वात अखवारोमे आ चुकी है। भारतभूपण मालवीयजी महाराज मुझ पर वहुत प्रेम करते है। मेरे स्वास्थ्य, मेरी राजनीति और मेरे वाह्याचार और अतराचारके वारेमें हमेशा फिकर करते रहते है। हमारे वीच जो मत-भेद होता हे, अुसे हम दोनो सहन कर लेते है। अुससे हमारे घनिष्ठ मवधमें तनिक भी फर्क नही आता। सेवाग्राम छोडनेके अेक दिन पहले ही अुनका खत मुझे मिला था। अुसमे वर्तमान दशामें मेरा कर्तव्य क्या होना चाहिये, अुस वारेमे लिखते हुअे अुनके अन्तिम शब्द ये थे "अनशन तो किसी हालतमे न किया जाय।"

मुझे कबूल करना चाहिये कि अनशनकी अुनकी वातमे अेक अश तक सत्य है। मैंने मित्रोसे कहा था कि मेरे जीवनमे शायद अेक और अनशन है और वह शीघ्र भी आ सकता है। वात यह है कि जहा तक मुझे स्मरण है मेरा अेक भी जाहिर अुपवास खास अिरादेसे नही हुआ है। वह अीश्वरकी दी हुअी वख्शिश थी। सव अुपवासोका परिणाम अच्छा ही था। जो हो, मुझे अुन अुपवासोके वारेमे पश्चात्ताप नही। मुझे आशा हे कि पाठक यह पढकर चिंतित नही होगे। अगर अनशनको आना हे तो अवेगा। और अिससे भला ही होनेवाला है। अीश्वरको मजूर होगा वही होगा।

अव सत्याग्रहमे अुपवासकी मर्यादाके वारेमे दो शब्द कहू। आज-कल सत्याग्रहके नामसे काफी अुपवास होते है जो जाहिरमे आये है। अुनमें से वहुत तो निरर्थक थे, कअी दूपित थे। अुपवास अेक प्रचड शस्त्र है। अुसका शास्त्र है। पूर्ण शास्त्र कोअी जानता नही। अशास्त्रीय ढगसे अुपवास करनेवालोको तो हानि होती ही है, लेकिन और लोगोको भी नुकसान पहुच सकता है। अिसलिअे वगैर अधिकारके

किसीको अुपवास नहीं करना चाहिये। अुसी व्यक्तिके सामने अुपवास हो सकता है, जिसका अुपवासके निमित्तके साथ वास्ता हो और जो अुपवासीके साथ वास्ता रखता हो। अैसा अुपवास भाई फूलसिंहजीका था। अुनका सम्बन्ध मोठवाड़ोंके साथ अच्छा था। वहांके हरिजनोंकी सेवा अुन्होंने काफी की थी। वहांका अत्याचार प्रसिद्ध ही था। सब अुपाय न्याय पानेके लिअे हो चुके थे। अुपवासके सिवा कोअी चारा नहीं था। अुपवास सफल हुआ। लेकिन सफलता निष्फलता तो अीश्वरके अधीन है। वह यहां अप्रस्तुत है। अैसे ही मेरे सब जाहिर अुपवास थे। अुनमें से राजकोटका शिक्षाप्रद है। अुसकी काफी निन्दा हुअी थी। वह अुपवास शुरूमें सर्वथा निर्दोष और आवश्यक था। दोष बादमें आया। वह था मेरी यह मांग रखना कि वािसरॉय दखलअन्दाजी करें। अगर मैं वह नहीं मांगता तो मुझे विश्वास है कि परिणाम अच्छा ही होता। यों भी परिणाम अच्छा ही हुआ। लेकिन क्योंकि भगवान मेरी आंख खोलना चाहता था, अुसने मुंहमें डाली हुअी रोटी छीन ली। सत्याग्रहके अभ्यासके लिअे राजकोटका अुपवास बहुत अुपयुक्त है। यदि अुपवासके बारेमें मैंने जो सिद्धान्त बताया है वह स्वीकार कर लिया जाय, तो राजकोटके अुपवासकी आवश्यकताके बारेमें शंकाको स्थान नहीं। लेकिन निर्दोष अुपवास असावधानीसे कैसे दूषित हो सकता है, यह बतानेमें राजकोटके अुपवासका महत्त्व है। अुपवासीमें स्वार्थका, रोषका, अविश्वासका, अधीरताका प्रवेश होना नहीं चाहिये। मेरे अिस अुपवासमें ये सब दोष आ गये थे, अैसा माननेमें कुछ अतिशयोक्ति नहीं होगी। अुपवास फलके लिअे था। क्योंकि अुसके छूटनेकी शर्त मरहूम ठाकुरसाहबके कुछ करने पर निर्भर थी। अिसलिअे फल-सिद्धिमें मेरा स्वार्थ था, दोष था। अन्यथा मैं वाअिसरॉयकी ओर नहीं देखता, प्रेम मुझे रोक लेता। मैं जिसको पुत्रवत् मानता हूं अुसकी शिकायत अुसके सरदारके पास क्यों करूंगा? अविश्वास तो था ही कि ठाकुरसाहब मेरे प्रेमको नहीं पहचानेंगे। और अुपवास जल्दी खतम होनेकी अधीरता मुझमें थी। अिन सब दोषोंके कारण अुपवास दूषित हुआ। राजकोटके अुपवासके परिणामोंका विचार यहां

अप्रस्तुत होनेके कारण अुसकी चर्चा मैं छोड़ देता हूं। राजकोटके अुदाहरणसे हमको — अुपवासीको — कैसे सावधान रहना है अुसका पता चलता है। और शुद्धतम अुपवास भी थोड़ीसी असावधानीसे दूषित कैसे हो सकता है यह हमने सीख लिया। अिसीमें से हमने पाया कि सत्याग्रही अुपवास करनेवालोंमें सत्य और अहिंसाकी मात्रा तो भरपूर होनी चाहिये। अुसके अुपरांत सत्याग्रहीमें आत्मविश्वास होना चाहिये कि भगवान अुपवास करनेकी शक्ति दे देगा और अुपवास सर्वथा निर्दोष है। जरा भी शंका हो तो अुपवास त्याज्य है। अुपवासीमें अखूट धैर्य, दृढ़ता, अेकाग्रता, शांति होने चाहिये। ये सब गुण अेकाअेक नहीं आते हैं। अिसलिअे जिसका जीवन यमनियमादिके पालनसे शुद्ध नहीं है, वह सत्याग्रही अुपवास नहीं कर सकता है।

याद रखना चाहिये कि यहां शरीर-शुद्धि और आत्मशुद्धिके अुपवासकी चर्चा नहीं की गयी है। शरीर-शुद्धिके अुपवास नैसर्गिक वैद्योंकी सलाहसे ही हो सकते हैं। आत्मशुद्धिके अुपवास महापापी भी कर सकते हैं। और अैसे अुपवासके लिअे तो हमारे यहां साहित्यका सागर भरा है। आत्मशुद्धिके अुपवासको आजकल हम भूल ही गये हैं। जो करते हैं वे देखादेखीसे अथवा रूढ़िवश होकर करते हैं। अिसलिअे अैसे अुपवाससे हम लाभ नहीं अुठा पाते। जो सत्याग्रही अुपवास करना चाहते हैं अुनके लिअे आत्मशुद्धिके अुपवासका जाती अनुभव आवश्यक समझा जाय। शारीरिक भी लाभदायी तो है। अंतमें सब अुपवासकी जड़ तो अेक ही है — शुद्धि।

सेवाग्राम, ८–१०–'४०

हरिजनसेवक, १२–१०–'४०

१५०

पाठकोंसे

जब मैंने 'हरिजनसेवक' मौकूफ करनेका निश्चय जाहिर किया तब आशा तो यह थी कि वह अेक ही हफ्तेके लिअे मौकूफ रहेगा। आशाका आधार था वाअिसराय साहबसे मेरा पत्रव्यवहार। वह आधार निष्फल साबित हुआ है। अिसलिअे अभी तो 'हरिजनसेवक' मौकूफ ही रहेगा।

यह बुरा परिणाम है, अैसा माननेका कोअी कारण नहीं है। अैसा थोड़ा ही है कि जिसे हम बुरा मानते हैं वह बुरा ही है? भला बुरा मनमानी बात है। सचमुच क्या कैसा है, सो तो अीश्वर ही जानता है।

सत्याग्रह कड़ी परीक्षा है — सत्याग्रहीके लिअे और विरोधीके लिअे। अिन दोनोंमें भेद है सही। सत्याग्रही परीक्षामें अुत्तरोत्तर आत्म-शुद्धिमें और शक्तिमें आगे बढ़ता है। सत्याग्रह जैसे जोर पकड़ता है, विरोधीके दोष ज्यादा प्रकट होते हैं। अिसका प्रत्यक्ष अुदाहरण तो आज हमारी आंखोंके सामने है। मेरा अभिप्राय है कि वाअिसराय साहबके निर्णयसे सत्याग्रहियोंकी शुद्धि और शक्ति बढ़ी है — बढ़नी ही चाहिये। अगर यह पृथक्करण ठीक है तो अिस परिणामको अशुभ माननेका कोअी कारण नहीं।

लेकिन यह अवसर न अंग्रेजोंके गुण-दोष दिखानेका है, न परिणामके शुभ-अशुभ होनेकी तुलना करनेका। मैं तो सिर्फ 'हरिजनसेवक' मौकूफ रखनेका कारण पाठकोंको बतलाना चाहता हूं। मेरे सामने दो मार्ग थे — अेक तो सरकारके बंधनको स्वीकार करके कुंठित स्थितिमें 'हरिजन-सेवक' चलानेका और दूसरा बंधनको अस्वीकार करते हुअे 'हरिजन-सेवक' मौकूफ करनेका। सामान्य नीति तो यह है कि अकड़कर कोअी अंगुली भी मांगे तो अुसे ठुकरा देना। अिस नीतिका आधार हिंसा

है। दूसरा मार्ग है अंगुली मांगनेवालेको सारा हाथ ही दे देना। अिस नीतिका आधार अहिंसा है। हिंसक अनित्य वस्तुके संग्रह और असकी रक्षामें अपनी ताकत खर्च करता है और नित्य वस्तुको भूलता है अथवा गौण समझता है। अहिंसक अनित्यका त्याग करता है, या त्यागके लिअे तैयार रहता है और नित्यके लिअे मर मिटता है। अिसीका नाम सत्याग्रह है। यहां 'हरिजनसेवक' अनित्य वस्तु है, क्षणिक साधन-मात्र है। अिसलिअे अंगुली-हस्तकी नीति ग्राह्य है। सरकार कहती है प्रतिबंधमें रहकर अखबार चला सकते हो। सत्याग्रही कहता है प्रतिबंध कबूल करनेसे बेहतर यह है कि अखबार ही बन्द कर दूं। अैसा करके वाणी-स्वातंत्र्य और स्वराज्यरूपी नित्य वस्तुकी रक्षाके लिअे सत्याग्रही ज्यादा ताकत हासिल करता है। मेरे लिअे दूसरा मार्ग था ही नहीं। रचनात्मक कार्य जिसका प्रतीक है, अुसे गुमाकर तो मैं रचनात्मक कार्य नहीं चला सकता था। अुसकी कीमत अहिंसाका प्रतीक होनेमें है। अगर मैं अिस मौके पर अहिंसाका प्रचार न कर सकूं, तो मेरे लिअे अन्य वस्तु निकम्मी-सी बन जाती है।

अब देखें अंगुली-हस्त नीति कैसे काम करती है। अंगुली मांगनेवाला समझता है कि अुसके लिअे अुसे लडना पडेगा। लेकिन सत्याग्रही तो अंगुलीके बदलेमें अपना हाथ भी दे देता है। अपनी कल्पनासे बाहरकी वस्तु देखकर मांगनेवाला आश्चर्यचकित होता है, शायद क्षणभर घबराहटमें भी पड जाता है। अगर अैसा ही अनुभव करता रहे तो वह पिघले भी। वह पिघले या न पिघले, सत्याग्रही तो अनित्य वस्तुका त्याग करके नित्यकी रक्षाके लिअे सशक्त होता है, शुद्ध होता है, अनित्य-मात्रका त्याग करनेकी पूरी तैयारी बताता है। अिस दृष्टिसे 'हरिजनसेवक' मौकूफ करना सर्वथा अुचित प्रतीत होता है।

आशा है पाठक भी अैसा ही मानेंगे। सचमुच अगर वे अिस त्यागका रहस्य समझे हैं, तो अुन्हें 'हरिजनसेवक' के अभावमें कुछ आपत्ति नहीं होनी चाहिये। यों तो अुनके साथ जो वार्तालाप मैं प्रति सप्ताह करता था अुसके छूटनेका मुझे अवश्य दुःख है। और मैं मानता हूं

कि पाठकोंको भी होगा। लेकिन अगर त्याग धर्म है — और है ही — तो जिस धर्मके पालनमें सुख और सन्तोषका अनुभव होना चाहिये। पाठकगण समझें कि तेरह प्रकारका कार्यक्रम जो मैंने अुनके सामने रखा है, अुससे अधिक मैं कुछ नहीं रख सकूंगा। अुसमें जितनी वृद्धि वे करें कि जो अुनका अन्तरात्मा कहे अुससे अुलटे वे कभी न चलें, भले अुसमें अपनी देहका और सर्वस्वका नाश क्यों न हो। पाठकगण याद रखें कि वाणी और लेखनीमें जो शक्ति है, अुससे कअी गुनी अधिक शक्ति आचारमें — अमलमें है। वे मेरे आजके आचारसे और अब जो कुछ भी करूं अुससे जो ज्ञान पा सकते हैं पावें।

अब व्यावहारिक बात। पाठकोंके कुछ पैसे 'हरिजनसेवक' कार्यालयमें जमा हैं। जिनके हैं वे अपने पैसे पानेके अधिकारी हैं। अैसे सज्जन 'हरिजनसेवक' कार्यालय, पूनासे अपने पैसे मंगवा सकते हैं। छः महीनेके अन्दर अन्दर अगर 'हरिजनसेवक' प्रगट हो सकेगा तो जिनके पैसे जमा हैं अुनको मिलता रहेगा। छः मास तक प्रतिबंध नहीं छूटेगा तो 'हरिजनसेवक' हमेशाके लिअे मौकूफ किया जावेगा। बन्द करनेमें जो खर्च होगा अुसे बाद करके जो रहेगा वह जिनको चाहिये अुनको भेजा जायगा। अन्यथा सब बचत, तीनों अखबारोंकी, हरिजन-सेवक-संघको हरिजन-सेवाके लिअे भेज दी जायगी।

तब तकके लिअे वन्देमातरम्।

सेवाग्राम, २–११–'४०

हरिजनसेवक, ९–११–'४०

१५१
आश्रमकी प्रार्थना

आश्रमकी प्रार्थनाका काफी प्रचार हुआ है। अुसका विकास अपने आप होता रहा है। 'आश्रम-भजनावलि' के अनेक सस्करण निकल चुके है। अुसकी माग वढ रही है। प्रार्थनाकी अुत्पत्ति कृत्रिम रूपसे नही हुअी। अुसमे जिन श्लोको और भजनोको स्थान प्राप्त हुआ है, अुन सवका अपना अेक अितिहास है।

भजनोमे सभी धर्मोको अनायास ही स्थान मिला है। मुस्लिम सूफियो और फकीरोके भजन अुनमे है, गुरु नानकके और अीसाअियोके भजन भी है।

आश्रममे चीनवाले रह चुके है, ब्रह्मदेशके साधु और लकाके गृहस्थ भी रह चुके है। मुसलमान, पारसी, यहूदी, अग्रेज वगैरा भी रहे है। अिसी तरह सन् १९३५ मे कुछ जापानी साधु मेरे पास मगनवाडी (वर्धा) मे आकर रहने लगे थे। अुनमे से अेक अभी-अभी तक मेरे पास ही थे। जापानके साथ लडाअीकी घोषणा होने पर वे गिरफ्तार कर लिये गये। रोज सुवह-शाम वे अपनी प्रार्थना, ढोलकी आवाजके साथ, चलते-फिरते किया करते थे। सेवागामके वे अेक आदर्श व्यक्ति थे। आश्रमके दैनिक कार्यामे अुत्साहपूर्वक हाथ वटाते थे। मुझे याद नही पडता कि कभी किसीके साथ अुनका झगडा हुआ हो। वेमतलव किसीने वातें करते मैने अुन्हे नही देखा। अुन्होने अपने भरसक हिन्दीका अभ्यास किया। व्रत-पालनमें वे सदा जाग्रत रहे। आश्रमकी शामकी प्रार्थना अुनके नित्यजपके मत्रसे शुरु हुआ करती थी। मत्र था

'नम्यो हो रेंगे क्यो'

अर्थात्, सद्धर्मके प्रवर्तक भगवान वुद्धको नमस्कार हो।

जव पुलिस अुन्हे गिरफ्तार करने आयी, तो जिस व्यवस्था, शीघ्रता और तटस्थतासे तैयारी करके वे मुझसे मिलने आये, अुसे मै

भूल नहीं सकता। विदाअीके समय अपने ढोलके साथ वे मेरे सामने आ खड़े हुअे, अपने प्रिय मन्त्रका अुच्चार किया और विदा चाही। मैंने सहज भावसे उन्हें कह दिया 'आप जा रहे हैं, लेकिन आपका मन्त्र आश्रमकी प्रार्थनाका अेक अविभाज्य अंग रहेगा।' तबसे अुनकी गैरहाजिरीमें आश्रमकी प्रार्थना अिसी मन्त्रसे शुरू होती है। मेरे लिअे यह मन्त्र साधु केशोकी पवित्रता और अेकनिष्ठाका स्मारक है। अतः अिसमें त्याग शक्ति है।

जिन दिनों साधु केशो यहां थे, बीबी रेहाना तैयबजी कुछ दिनोंके लिअे रहने आअी। वह चुस्त मुसलमान है। मुझे पता न था कि वह कुरान-शरीफकी अच्छी जानकार है। जिस वक्त गुजरात-रत्न अब्बास तैयबजी साहबका अिन्तकाल हुआ, अुनके कमरेमें रोनेकी आवाज न अुठी, बल्कि बीबी रेहानाके कुरान-शरीफके पाठकी गूंजसे कमरा भर गया। तैयबजी साहब मरे ही कब थे? वे तो अपने कामोंके रूपमें हमेशा ही जिन्दा हैं।

जब रेहानाबहन आ गअी, तो मैंने मजाकमें कहा "तुम आश्रम-वालोंको मुस्लिम बनाओ, मैं तुम्हें हिन्दू बनाअूंगा।" संगीत तो अुनका अुत्कृष्ट है ही — अुनके पास सब प्रकारके भजनोंका भण्डार भी है। वह हमें नित-नये भजन सुनाती थी। कुरानकी मीठी-मीठी, अूंचे अर्थों-वाली आयतें भी सुनाया करती थी। मैंने कहा "कुछ आयतें यहां जो सीखना चाहें अुन्हें सिखाती जाओ।" अुन्होंने सिखाना शुरू कर दिया। फिर क्या पूछना था? सबके साथ समरस हो गअी। भक्तोंने जो आयतें सीखीं, अुनमें सबसे मशहूर 'अल् फातेहा' है। यों, यह आयत भी प्रार्थनामें दाखिल हुअी। रेहाना बहन अपने काम पर चली गअी, मगर अपनी याद छोड़ गअी। अिस आयतका मतलब है

"मैं पापात्मा शैतानसे बचनेके लिअे परमात्माकी शरणमें जाता हूं।"

"अीश्वर अेक है, वह सनातन है, निरालंब है, अज है, अद्वितीय है। वह सबको पैदा करता है, अुसे कोअी पैदा नहीं करता।

"प्रभो, तेरे ही नामसे मैं सब शुरू करता हूं। तू दयाका सागर है, तू मेहरवान है, तू सारे विश्वका सरजनहार है। मालिक है। हम तेरी ही आराधना करते है, तेरी मदद मागते हैं। तू ही अन्तमे न्याय करेगा। तू हमे सीधा रास्ता दिखा — अुन लोगोका रास्ता, जो तेरी कृपादृष्टिके पात्र बने हैं, अुनका नहीं, जो तेरी अप्रसन्नताके पात्र बने है और मार्ग भूले है।"

अेक मित्र, जो खुद चुस्त हिन्दू है, और मेरे हिन्दू होनेके दावेसे अिनकार भी नही करते, मीठा अुलाहना देते हुअे कहते है "अब तो आपने आश्रममे 'कलमा' भी शुरू करा दिया। अब वाकी क्या रहा?" यह लेख अुन्हीकी अिस शकाके अुत्तरमे लिखा गया है। साधु केशोके जापानी मत्र और कुरानकी आयतसे मेरा और आश्रमके हिन्दुओका हिन्दुत्व अूपर अुठा है। आश्रमके हिन्दुत्वमें सब धर्मोके प्रति समानताका भाव रहा है। जब खानसाहब मेरे पास आते है, तो रोज प्रार्थनामे भावपूर्वक शरीक होते हैं। रामायणका स्वर अुन्हे मीठा लगता है। गीताका अर्थ वे ध्यानसे सुनते है। अुनका मुस्लिमपन अिससे कम नही हुआ। क्या मैं कुरानको अुतनी ही अिज्जतसे न पढू? न सुनू? विनोबा और प्यारेलालने जेलमें स्वय बडी मेहनत और मुहब्बतके साथ कुरान सीखा। अरबीका अध्ययन किया। अुन्होने कुछ गवाया नही, काफी कमाया है। हिन्दू-मुस्लिम अेकता अैसी ही कोशिशोसे होगी। और किसी तरह कभी नही। रामके नाम हजारो नही, अरबो है, अगणित हैं। अल्लाह कहो, खुदा कहो, रहीम कहो, रहमान कहो, रज्जाक कहो, रोटी देनेवाला कहो, सब अुसीके नाम हैं।

सेवाग्राम, २-२-'४२
हरिजनसेवक, ८-२-'४२

१५२
वैयक्तिक या सामुदायिक?

श्री जमनालालजीने गोसेवाका महान बोझ अपने सिर अुठाया है। अिस बारेमें गोसेवा-संघकी सभाके सामने अेक महत्त्वका प्रश्न यह था कि गोपालन वैयक्तिक हो या सामुदायिक?

मैंने राय दी कि सामुदायिक हुअे बगैर गाय बच ही नहीं सकती, और अिसलिअे भैंस भी नही बच सकती। हरअेक किसान अपने घरमें गाय-बैल रखकर अुनका पालन भलीभांति और शास्त्रीय पद्धतिसे नही कर सकता।

गोवंशके ह्रासके दूसरे अनेक कारणोंमें व्यक्तिगत गोपालन भी अेक कारण हुआ है। यह बोझ वैयक्तिक किसानकी शक्तिके बिलकुल बाहर है।

मैं तो यहां तक कहता हूं कि आज संसार हरअेक काममें सामुदायिक रूपसे शक्तिका संगठन करनेकी ओर जा रहा है। अिस संगठनका नाम सहयोग है। बहुतसी बातें आजकल सहयोगसे हो रही हैं। हमारे मुल्कमें भी सहयोग आया तो है, लेकिन वह अैसे विकृत रूपमें आया है कि अुसका सही लाभ हिन्दुस्तानके गरीबोंको बिलकुल नहीं मिला।

हमारी आबादी बढ़ती जा रही है और अुसके साथ व्यक्तिगत रूपसे किसानकी जमीन कम होती जा रही है। नतीजा यह हुआ है कि प्रत्येक किसानके पास जितनी चाहिये, अुतनी जमीन नही है। जो है वह अुसकी अड़चनोंको बढ़ानेवाली है।

अैसा किसान अपने घरमें या खेत पर निजके गाय-बैल नहीं रख सकता। रखता है तो अपने हाथों अपनी बरबादीको न्यौता देता है। आज हिन्दुस्तानकी यही हालत है। धर्म, दया या नीतिकी परवा न करनेवाला अर्थशास्त्र तो पुकार-पुकार कर कहता है कि आज हिन्दुस्तानमें लाखों पशु मनुष्यको खा रहे हैं। क्योंकि वे अुसे कुछ लाभ

नही पहुचाते, फिर भी अुन्हे खिलाना तो पडता ही है। अिसलिअे अुन्हें मार डालना चाहिये। लेकिन धर्म कहो, नीति कहो या दया कहो, ये हमें अिन निकम्मे पशुओको मारनेसे रोकते हैं।

अिस हालतमे क्या किया जाय? यही कि जितना प्रयत्न पशुओको जिन्दा रखने और अुन्हे बोझ न बनने देनेका हो सकता है, किया जाय। अिस प्रयत्नमे सहयोगका अपना बडा महत्त्व है।

सहयोगसे यानी सामुदायिक पद्धतिसे पशुपालन करनेसे

१ जगह बचेगी। किसानको अपने घरमे पशु नही रखने पडेगे। आज तो जिस घरमे किमान रहता है, अुसीमे अुसके सारे मवेशी भी रहते हैं। अिससे हवा बिगडती है और घरमे गन्दगी रहती है। मनुष्य पशुके साथ अेक ही घरमे रहनेके लिअे पैदा नही हुआ। अैसा करनेमे न दया है, न ज्ञान है।

२ पशुओकी वृद्धि होने पर अेक घरमे रहना असभव हो जाता है। अिसलिअे किसान बछडेको बेच डालता है, और भैसे या पाडेको मार डालता है, या मरनेके लिअे छोड देता है। यह अधमता है।

३ जब पशु बीमार होता है, तब व्यक्तिगत रूपसे किसान अुसका शास्त्रीय अिलाज नही करवा सकता। सहयोगसे चिकित्सा सुलभ होती हैं।

४ प्रत्येक किसान साड नही रख सकता। लेकिन सहयोगके आधार पर बहुतसे पशुओके लिअे अेक अच्छा साड रखना सहल है।

५ व्यक्तिश किसान गोचरभूमि तो ठीक, पशुओके लिअे व्यायामकी यानी हिरने-फिरनेकी भूमि भी नही छोड सकता। किन्तु सहयोग द्वारा ये दोनो सुविधाअे आसानीसे मिल सकती हैं।

६ व्यक्तिश किसानको घास अित्यादि पर बहुत खर्च करना होगा। सहयोग द्वारा कम खर्चमे काम चल जायगा।

७ व्यक्तिश किसान अपना दूध आसानीसे नही बेच सकता। सहयोग द्वारा अुसे दाम भी अच्छे मिलेंगे और वह दूधमे पानी वगैरा मिलानेसे भी बच सकेगा।

८ व्यक्तिगत किसानके पशुओंकी परीक्षा असभव है। किन्तु गाव भरके पशुओंकी परीक्षा आसान है। और अुनकी नस्ल-सुधारका अुपाय भी आसान है।

९ सामुदायिक या सहकारी पद्धतिके पक्षमे अितने कारण पर्याप्त होने चाहिये। सबसे बड़ी और प्रत्यक्ष दलील यह है कि वैयक्तिक पद्धतिके कारण ही हमारी और हमारे पशुओंकी दशा आज अितनी दयनीय हो अुठी है। अिसे बदलकर ही हम बच सकते हैं और पशुओंको बचा सकते हैं।

मेरा तो दृढ विश्वास है कि जब हम अपनी जमीन भी सामुदायिक पद्धतिसे जोतेंगे, तभी अुसमे पूरा फायदा अुठा सकेंगे। बनिस्बत अिसके कि गावकी खेती अलग-अलग सौ टुकड़ोंमें बट जाय, क्या यह बेहतर नहीं कि सौ कुटुम्ब सारे गावकी खेती सहयोगसे करें और अुसकी आमदनी आपसमे बाट लिया करे? और, जो खेतीके लिअे ठीक है, वही पशुके लिअे भी समझा जाय।

यह दूसरी बात है कि आज लोगोंको सहयोगी पद्धति पर लानेमें कठिनाअी है। कठिनाअी तो सभी सच्चे और अच्छे कामोमे होती है। गोसेवाके सभी अग कठिन हैं। कठिनाअियां दूर करनेसे ही सेवाका मार्ग सुगम बन सकता है। यहां तो बताना यह था कि सामुदायिक पद्धति क्या चीज है, और वह वैयक्तिकसे अितनी अच्छी क्यों है? यही नहीं, बल्कि वैयक्तिक गलत है, सामुदायिक सही है। व्यक्ति अपने स्वातन्त्र्यकी रक्षा भी सहयोगको स्वीकार करके ही कर सकता है। अतअेव यहा सामुदायिक पद्धति अहिंसात्मक है, वैयक्तिक हिंसात्मक।

सेवाग्राम, ८–२–'४२
हरिजनसेवक, १५–२–'४२

१५३

अंधोको आंख

मोगाके डॉक्टर मथुरादासके नेत्रयज्ञ मैंने कभी देखे नही थे। अुनकी कलाके वारेमे काफी सुना था। पिछले महीनेके अन्तमे स्वर्गीय जमनालालजीके निमन्त्रणसे डॉक्टर मथुरादास अपने साथियोको लेकर वर्धा आये थे। दो दिनमे अुन्होने करीव तीन सौ अधोको आखे दी।

अिस यज्ञका आरभ रेवाडीके भगवद्भक्ति आश्रमसे हुआ है। आश्रमके साथ जमनालालजीका सवध होनेके कारण अिस वार अुन्होने वर्धामे यह यज्ञ करवाया। डॉक्टर मथुरादासकी कला और परिश्रमको देख कर मेरा सिर झुक गया। वे अेक मिनटमे अेक आखका मोतियाविन्दु निकालते है। शायद ही कभी असफल होते होगे। यह सारा काम वे मुफ्त करते है और हजारोको आख देते है।

डॉक्टरजीका कहना है कि नाक काटनेकी 'वीमारी' की तरह मोतियाविन्दुकी वीमारी भी हिन्दुस्तानमे ही ज्यादा देखनेमे आती है। अिसलिअे अिस तरहके ऑपरेशन करनेवालोमे, सारी दुनियाके अदर, डॉक्टरजीका स्थान वहुत अूचा है। अव तो डॉक्टरजीका अनुसरण दूसरे भी कर रहे है, और होना भी यही चाहिये। डॉक्टर और वैद्य तो परोपकारके पुतले होने चाहिये।

जिस तरह व्यापारी अपने व्यापारके लिअे मुस्तैद रहता है, अुसी तरह जमनालालजी भी हमेशा पारमार्थिक कामोको अपनानेमे मुस्तैद रहा करते थे। अिसीलिअे अुन्होने अपने कामोमे नेत्रयज्ञकी योजनाको भी स्थान दे रखा था। परमार्थ या लोकसेवा ही आजकल अुनका पेशा वन गया था। अुनकी अिच्छा थी कि मध्यप्रातमे अैसे नेत्रयज्ञ वार-वार हुआ करे। आशा है, अुनकी अिस अिच्छाकी पूर्ति वरावर होती रहेगी। डॉक्टर मथुरादास तो अैसे यज्ञोके लिअे हमेशा तैयार ही रहते है।

कलकत्ता जाते हुअे, १७-२-'४२

हरिजनसेवक, २२-२-'४२

कड़ी परीक्षा

बाओीस बरस पहलेकी बात है। तीस सालका अेक नवयुवक मेरे पास आया और बोला, "मैं आपसे कुछ मागना चाहता हू।"

मैंने आश्चर्यके साथ कहा "मागो। चीज मेरे बसकी होगी तो मैं दूगा।"

नवयुवकने कहा "आप मुझे अपने देवदासकी तरह मानिये।"

मैंने कहा "मान लिया! लेकिन अिसमें तुमने मागा क्या? दरअसल तो तुमने दिया और मैंने कमाया।"

यह नवयुवक जमनालाल थे।

वह जिस तरह मेरे पुत्र बनकर रहे सो तो हिन्दुस्तानवालोंने कुछ-कुछ अपनी आखो देखा है। जहा तक मैं जानता हू, मैं कह सकता हू कि अैसा पुत्र आज तक शायद किसीको नही मिला।

यो तो मेरे अनेक पुत्र और पुत्रिया है, क्योकि वे सब पुत्र-वत् कुछ न कुछ काम करते है। लेकिन जमनालाल तो अपनी अिच्छासे पुत्र बने थे और अुन्होने अपना सर्वस्व दे दिया था। मेरी अैसी अेक भी प्रवृत्ति नही थी, जिसमें अुन्होने दिलसे पूरी पूरी सहायता न की हो। और वह सभी कीमती साबित हुआी, क्योकि अुनके पास बुद्धिकी तीव्रता और व्यवहारकी चतुरता दोनोका सुन्दर सुमेल था। धन तो कुबेरके भण्डार-सा था।

मेरे सब काम अच्छी तरह चलते है या नही, मेरा समय कोओी नष्ट तो नही करता, मेरा स्वास्थ्य अच्छा रहता है या नही, मुझे आर्थिक सहायता बराबर मिलती है या नही, अिसकी फिक्र अुनको बराबर रहा करती थी। कार्यकर्ताओंको लाना भी अुन्हीका काम था। अब अैसा दूसरा पुत्र मैं कहासे लाअू? जिस रोज मरे अुसी रोज जानकीदेवीके साथ वह मेरे पास आनेवाले थे। कओी बातोका निर्णय करना था, लेकिन भगवानको कुछ और ही मजूर रहा। अैसे पुत्रके अुठ जानेसे बाप पगु बनता ही है। यही हाल आज मेरा है। जो हाल

मगनलालके जानेसे हुअे थे, वे ही अीश्वरने अिस बार फिर मेरे किये है। अिसमें भी अुसकी कोअी छिपी कृपा ही है। वह मेरी और भी परीक्षा करना चाहता है। करे। अुत्तीर्ण होनेकी शक्ति भी वही देगा।

सेवाग्राम, १६–२–'४२
हरिजनसेवक, २२–२–'४२

१५५

प्रश्न-पिटारी

धनवान व गरीब

प्र० — धर्ममय अुपायोंसे लाखों रुपये कैसे कमाये जा सकते हैं? वणिक्-शिरोमणि स्व० श्री जमनालालजी कहा करते थे कि धन कमानेमें पाप तो होता ही है। वनिक कितना ही सज्जन क्यों न हो, वह अपने कमाये धनको अपनी असली जरूरतसे कुछ अधिक तो खर्च कर ही डालता है। यह भी पाप है। अिसलिअे ट्रस्टी बननेकी बात छोडकर धनवान न बनने पर ही जोर क्यों न दिया जाय?

अु० — प्रश्न अच्छा है। अिससे पहले भी यह पूछा जा चुका है। जमनालालजीने जो यह कहा कि धन कमानेमें पाप तो है ही, सो ठीक वैसी ही बात है, जैसी गीतामें कही गअी है कि आरम्भ-मात्र दोषपूर्ण है। मेरा यह विश्वास है कि जानबूझ कर पाप न करते हुअे भी धन कमाया जा सकता है। अुदाहरणके लिअे, अगर मुझे अपनी अेक अेकड जमीनमें सोनेकी कोअी खान मिल जाय, तो मैं धनवान बन जाअूंगा।

मगर धनवान न बनने पर तो मेरा जोर है ही। मैंने जो धन कमाना छोड दिया, अुसका मतलब ही यह है कि मैं दूसरोंसे भी छुडाना चाहता हूं। लेकिन जो धनकी आशा छोडना नहीं चाहते, अुनसे मैं क्या कहूं? अुन्हें तो मैं यही कह सकता हूं कि वे अपने धनका अुपयोग सेवाके लिअे करें। यह भी ठीक है कि धनवान अपने

भरसक कोशिश करने पर भी अगर अपने गरीब साथियोंके मुकाबले कुछ ज्यादा ही खर्च कर डालेगा। लेकिन यह कोअी नियम नहीं। आम तौर पर स्व० जमनालालजी मध्यम श्रेणीके अनेक लोगोंकी और अपने साथियोंकी तुलनामें कम ही खर्च करते थे। मैंने असे सैकड़ों धनवानोंको देखा है, जो अपने लिअे बड़े कंजूस होते हैं। वे जैसे तैसे अपना गुजारा करते हैं। यह भी नहीं कि जिसमें वे किसी तरहका गौरव अनुभव करते हों। अपने अूपर कम खर्च करनेका अुनका अेक स्वभाव ही बन जाता है।

धनवानोंके लड़कोंके बारेमें भी मुझे यही कहना है। मेरा आदर्श तो यह है कि धनवान लोग अपनी सन्तानके लिअे धनके रूपमें कुछ न छोड़ें। हां, अुनको अच्छी शिक्षा दें, रोजगार-धंधेके लिअे तैयार करें और स्वावलम्बी बना दें। मगर दुःख तो यह है कि वे अैसा नहीं करते। अुनके लड़के-बाले पढ़ते तो हैं, गरीबीकी महिमा भी गाते हैं, लेकिन अपने लिअे वे अधिकसे अधिक धन चाहते हैं। अैसी हालतमें मैं अपनी व्यावहारिक बुद्धिका अुपयोग करके अुन्हें वही सलाह देता हूं, जो अुनके बसकी होती है। हम लोगोंको — जो गरीबीको पसन्द करते हैं, अुसे धर्म मानते हैं और आर्थिक समानताके हामी हैं — धनवानोंका द्वेष न करना चाहिये। यदि वे अपने धनका सदुपयोग करते हैं, तो अुनसे हमें सतोष होना चाहिये। साथ ही, हमें यह श्रद्धा रखनी चाहिये कि अगर हम अपनी गरीबीमें सुखी और आनन्दित रहेंगे, तो धनवान लोग भी हमारी नकल करेंगे। सच तो यह है कि गरीबीमें धर्मका दर्शन करनेवाले और मिलने पर भी धनका त्याग करनेवाले तो अिनेगिने ही पाये जाते हैं। अिसलिअे हमें अपने जीवन द्वारा यह सिद्ध करके दिखाना होगा कि असलमें धर्मके रूपमें स्वीकार की गअी गरीबी ही सच्ची संपत्ति है।

संचालकका धर्म

प्र० — अेक संचालक अपनी संस्थाके साधारण सेवकोंसे अधिकसे अधिक त्यागकी अपेक्षा रखता है, मगर खुद अपने कमाये धनसे ही

क्यो न हो, अपने साथियोंके मुकाबले कही ज्यादा आरामसे रहता है। तो क्या आपकी रायमे अुसका यह व्यवहार ठीक है?

अु० — जो सचालक अपने साथियोंसे अपने त्यागसे भी अधिक त्यागकी आशा रखता है, अुसके सब प्रयत्न निष्फल होते है, अिसमे मुझे कोअी सन्देह नही। यह कथन सिर्फ अुन परोपकारी सस्थाओके लिअे है, जिनके सचालक स्वय त्यागी होते है।

वैयक्तिक गोपालनमें हिंसा क्यो?

प्र० — आपने लिखा है कि वैयक्तिक गोपालनमे हिंसा है और सामुदायिकमे अहिंसा। अिसे जरा और स्पष्ट करके समझाअिये।

अु० — यह तो अेक स्वयसिद्ध-सी बात है कि वैयक्तिक गोपालनमे हिंसा है, क्योंकि व्यक्तिगत गोपालनकी प्रथाके कारण ही आज गाय बोझरूप बन गअी है। मै यह कह चुका हू कि वैयक्तिक गोपालनमें गायकी अच्छी देखभाल हो ही नही सकती। हर आदमी न तो अपना साड रख सकता है, और न किफायतसे दूध-घी बेच सकता है। अगर हरअेक आदमी अपनी चिट्ठी अपने ही खर्च और प्रबधसे भेजना चाहे, तो करोडोके लिअे यह अेक नामुमकिन बात ही रहेगी। यही हाल गोपालनका है। सार्वजनिक डाकघरके जरिये क्या अमीर और क्या गरीब सभी समान रूपसे अपनी चिट्ठिया भेज सकते है। अिसी तरह अगर गोपालनको सफल होना है, तो वह सहयोगके सहारे ही सफल हो सकेगा। हर आदमी अपने आपमे गायका मालिक बनकर अकेला गोसेवा या गोपूजा नही कर सकता। यह कार्य तो सब मिल कर ही कर सकते है। मालिक तो मेरा अेक ही हो सकता है, मगर सेवा तो मेरी हजारो कर सकते है। अगर अेक ही आदमी मेरी सेवाका अधिकार लेकर बैठ जाय, तो सोचिये मेरी क्या दशा होगी? ठीक वही दशा आज गायकी हो रही है।

तनसे कैसे?

प्र० — आप कहते है कि हमें जमनालालजीकी विविध प्रवृत्तियोकी सेवा तन, मन और धनसे करनी चाहिये। धनकी बात मै समझता हू। मनसे भी कुछ समझमें आता है। लेकिन तनसे कैसे?

जु० — सवाल कुछ अजीब-सा है, लेकिन जितना अजीब दिखाओ पड़ता है, दरअसल अुतना अजीब है नहीं। 'अ' का मन कहता है कि वह गोसेवा या खादीके काममें तनसे मदद करे। 'अ' के पास धन तो है नहीं। अुसे अपने गुजारेके लिअे कुछ काम-धंधा भी करना है। अैसी दशामें वह तनसे सेवा कैसे करे? जब अुसे अपने काम-धंधेसे फुरसत मिले, तब लोगोंके घर जाकर अुन्हें सदस्य बना सकता है। गोसेवा और खादी-सम्बन्धी साहित्य बेच सकता है। प्रचारार्थ निकलनेवाली पत्रिकाओंको सेवाभावसे घर-घर पहुंचा सकता है। गायका शुद्ध घी या अहिंसक चमड़ा या खादी बेच सकता है। अगर सर्वस्व देकर सेवा करना चाहता है, तो सिर्फ निर्वाह-मात्रका खर्च लेकर अिन संघोंकी सेवामें अपना सारा समय दे सकता है।

सेवाग्राम, २८-२-'४२

हरिजनसेवक, १-३-'४२

१५६

खादी-विद्यार्थी

आजके खादी-विद्यार्थीके बारेमें कुछ लिखनेके लिअे मुझे कहा गया है। मैंने कुछ-कुछ लिखा तो है ही, लेकिन अुसे जितना स्पष्ट किया जाय अुतना कम है। 'खादी-विद्या' का अर्थ केवल कताओ-बुनाओ आदि क्रियाओंका ज्ञान ही नहीं है, सिर्फ यही अर्थ होता तो अुसे खादीकी कारीगरी कहा जाता।

'खादी-विद्या' में खादी तैयार करनेके मर्मको जानना सबसे महत्त्वकी बात है। खादी भापसे चलनेवाले यन्त्रोंके बजाय हाथके यन्त्रोंसे ही क्यों बनाओ जाय? जो काम भाप आदिकी शक्तिकी मददसे अेक आदमी कर सकता है, वह अनेक आदमियोंसे हाथों द्वारा क्यों कराया जाय? हाथोंसे ही करना है, तो तकलीसे ही क्यों नहीं? तकलीमें भी बांसकी तकली क्यों नहीं? और जब अेक पत्थरकी

मददसे काता जा सकता है, तो बासकी तकली भी क्यो? अैसे सवाल सहज ही पूछे जा सकते है। अिन सवालोको हल करना 'खादी-विद्या' का आवश्यक अग है। मै यहा अिन सवालोकी चर्चामे नही अुतरना चाहता। सिर्फ यही बतलाना चाहता हू कि 'खादी-विद्या' मामूली चीज नही है।

आज हमारे पास जिस विद्याको सिखानेके आवश्यक साधन नही है। अिसलिअे शिक्षकोको सिखाते-सिखाते खुद सीखना भी है, और सीखकर अपने ज्ञानको समृद्ध भी बनाना है। अिसी तरह विद्यार्थियोको भी अपने प्रयत्नसे अपना ज्ञान बढाना है। पुराने जमानेमे, यानी शास्त्रोका निर्माण होनेसे पहले, विद्यार्थी स्वय प्रयत्नपूर्वक अपने शिक्षकोसे ज्ञान प्राप्त कर लिया करते थे। अपने समयके वे सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी सिद्ध हुअे है। आज हमारी भी कुछ अैसी ही स्थिति है।

सेवाग्राम, २२–२–'४२
हरिजनसेवक, ८–३–'४२

१५७

गृहस्थ-धर्म

अेक बहनने, जो अखण्ड कुमारिका रहना चाहती थी और जो अेक अच्छी सेविका है, योग्य साथी मिलने पर शादी कर ली है। लेकिन अब अुसे अिसका रज होता है और वह अपनेको गिरी हुअी मानती है। मैने अुसकी अिस भूलको सुधारकर यह गलत खयाल तो दूर कर दिया है, लेकिन मै जानता हू कि अैसी और भी बहुतसी बहनें है, जिनके लिअे अुक्त बहनको लिखे गये मेरे पत्रका सार यहा देना लाभदायी होगा।

अगर कोअी बहन अखण्ड कुमारिका रह सकती है तो अच्छा ही है, लेकिन अैसा तो लाखोमे कुछ ही कर सकती है। शादी करना स्वाभाविक है। अुसमें शर्मकी कोअी बात नही हो सकती।

शादीको गिरी हुअी चीज माननेसे मन पर बुरा असर पड़ता है, और गिरनेके बाद अुठना प्रयत्नकी बात हो जाती है। अगर प्रयत्न निष्फल भी जाता है। अिससे बेहतर तो यह है कि शादीको धर्म समझा जाय और अुसमें संयमका पालन किया जाय। गृहस्थाश्रम भी चार आश्रमोंमें अेक है। बाकी तीनों अुसी पर टिके हुअे हैं। लेकिन आजकल विवाह भोग-विलासका ही साधन बन गया है, अिसलिअे अुसके परिणाम भी विपरीत हुअे हैं। और, वानप्रस्थ व संन्यास तो नाममात्रको रह गये हैं। ब्रह्मचर्याश्रम भी नहीं-सा हो गया है।

अुस बहनका और अुसके समान दूसरी सब बहनोंका धर्म तो यह है कि वे अपने गृहस्थ-जीवनको धर्म समझकर बितावें और अुसे ब्रह्मचर्य-जीवनसे भी अधिक सुशोभित करके दिखावें। अैसा करनेसे अुनकी सेवाशक्ति बहुत बढ़ेगी। सेवावृत्तिवाली बहन अपने लिअे सेवाभावी साथी ही पसन्द करेगी और दोनोंकी संगठित शक्तिसे देशको लाभ ही होगा।

आम तौर पर बहनोंको मातृधर्मकी शिक्षा नहीं मिलती। लेकिन अगर गृहस्थ-जीवन धर्म है, तो मातृ-जीवन भी धर्म ही है। माताका धर्म अेक कठिन धर्म है। पति-पत्नीको संयमसे रहकर सन्तान पैदा करनी है। माताको यह जान लेना चाहिये कि गर्भधारणके समयसे अुसका क्या-क्या कर्तव्य हो जाता है। जो स्त्री देशको तेजस्वी, आरोग्यवान और सुशिक्षित सन्तान भेंट करती है, वह भी सेवा ही करती है। जब बच्चे बड़े होंगे, तो वे भी सेवाके लिअे ही तैयार होंगे। अिसलिअे जिसके दिलमें सेवाकी अखण्ड जोत जलती है, वह तो हर हालतमें सेवा ही करेगी और जिस चीजसे सेवाधर्मका पालन नहीं हो पाता, अुसमें कभी न फंसेगी।

सेवाग्राम, ३-३-'४२

हरिजनसेवक, ८-३-'४२

१५८

धनुष-तकुआ

मेरा खयाल है कि रचनात्मक कार्यमे धनुष-तकुअेका बडा हिस्सा रहनेवाला है। आज मैं चरखेके मुकाबले धनुष-तकुअेके गुण-दोषोकी छानबीनमे नही पडूगा। मुझे विश्वास हो चुका है कि हम हजारोकी संख्यामे चरखे तैयार नही कर सकते। अुन्हे तैयार करनेके लिअे काफी धन चाहिये, जो हमारे पास नही है। हर जगह वे तैयार भी नही किये जा सकते। अुन्हे अेक जगहसे दूसरी जगह ले जाना भी मुश्किल है।

अच्छा काम देनेवाली तकली भी हर जगह तैयार नही हो सकती। तकली पर हम तेजीके साथ कात भी नही सकते।

अिसलिअे तमाम खादी-सेवकोंसे मेरी विनती है कि वे धनुष-तकुअेका अभ्यास करे — अुसे बनाना सीख ले और अुसका प्रचार करे।

नये चरखे बनाना आज मौकूफ रखा जाय। जो मौजूद है, वे भले जोरोंसे चले। जो अपने-अपने स्थानोमे चरखे बना सकते है या बनाना चाहते है, वे भले बनाये। लेकिन धनुष-तकुअेकी हवा पैदा करनेके लिअे तमाम नये कतवैयोको धनुष-तकुआ ही दिया जाय।

हरिजनसेवक, ८–३–'४२

१५९

प्रश्न-पिटारी

भूखमरी

प्र० — ग्राम-सरक्षक दलोंके सगठनकी अपेक्षा अिस वक्त अनाजकी तगी और महगीका सवाल देहातोमे ज्यादा महत्व रखता है। भूखकी अग्नि भाषणोंसे कैसे शात होगी? देशमें न अितने पूजीपति हैं, और न अुनकी त्याग-भावना ही अितनी तीव्र है कि वे अिस मामलेको सुधार सकें। कृपया मार्ग बतलाअिये।

ज० — मेरी दृष्टिसे तो सरक्षक-दलोंका भी यह काम है। कैसे भी हो, मैंने भूखमरीका अुपाय बताया तो है। आजसे अुसका अुपयोग होना चाहिये।

(१) शास्त्रीय दृष्टिसे खाना। अिससे अनाज बचता है।

(२) जो खाद्य फसल अिस ऋतुमें बोअी जा सकती है, बोना।

(३) जो जगली भाजी अित्यादि खाद्य वस्तु बगैर प्रयत्नके अुगती है, अुनका सशोधन करना और अुपयोग करना।

(४) बेकारी मिटाना। कोअी मनुष्य बेकार न बैठे। मजदूरी न मिले तो अपने लिअे पैदा करे, जैसे कातना।

मुझे डर है कि यदि लडाअी शीघ्र बन्द न हुअी और जापानका प्रवेश हिन्दमे हुआ, तो खाद्य पदार्थ अेक जगहसे दूसरी जगह ले जाना मुश्किल हो जायगा, असम्भव भी हो सकता है। अिसलिअे जिस जगह आवश्यकतासे अधिक अनाज वगैरा है, अुसे आवश्यक जगह पहुचाना चाहिये।

मैं जानता हू कि अिन सब चीजोंका करना भी मुश्किल है, लेकिन अुसके सिवाय कोअी दूसरा अिलाज मैं नही पाता।

कारकून क्या करें?

प्र० — शहरोंसे देहातोमें जानेवाले धनी लोगोंके कर्तव्य आपने कुछ बताये। लेकिन हजारों शहर छोडनेवाले लोग असे हैं, जिनका

सारा जीवन कारकूनी करनेमे वीता हे। अुनके पास अपना धन तो है ही नही, और अुनमे से कअियोके तो किसी जगह अपने बाप-दादोका कोअी घर या गाव भी नही है। अुनके लिअे कुछ सलाह दीजियेगा।

अु० — सम्भव हे, कारकून लोग अपने मालिकोके साथ जाये। जो नही जायेगे, अुनको देहातमे जाकर कुछ न कुछ करना होगा। अेक काम तो कातनेका है। आजसे ही तैयारी की जाय तो मौका आने पर हम तैयार रह सकेगे।

सेवाग्राम, १६–३–'४२
हरिजनसेवक, २२–३–'४२

१६०

हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा

जिस हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाका जिक्र मैने 'हरिजनसेवक' मे किया था, वह अव वनने जा रही है। अुसका कच्चा ढाचा वन गया है। वह कुछ मित्रोके पास भेजा गया है। थोडे ही दिनोमें सभाकी योजना वगैरा जनताके सामने रखी जायगी। वाज लोगोका यह खयाल वन गया है कि यह सभा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी विरोधिनी होगी। जिस सम्मेलनके साथ सन् १९१८से मेरा सम्बन्ध वना हुआ है, अुसका विरोध मै जान-बूझकर कैसे कर सकता हू? विरोध करनेका कोअी मजबूत सवव भी तो होना चाहिये न? लेकिन वैसा कुछ है नही। हा, यह सही है कि अुर्दूके वारेमे मै सम्मेलनके चन्द सदस्योसे आगे जाता हू। वे मानते हैं, मै पीछे जा रहा हू। जिसका फैसला तो वक्त ही करेगा।

यह स्पष्ट करनेके लिअे कि सम्मेलनके प्रति मेरे मनमे कोअी विरोधी भाव नही है, मैने श्री पुरुषोत्तमदास टडनसे पत्र-व्यवहार किया

था, जिसके फलस्वरूप सम्मेलनकी स्थायी समितिने नीचे लिखा निर्णय किया है

"हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अपने प्रारम्भसे ही हिन्दीको राष्ट्रभाषा मानता आया और मानता है। अुर्दू हिन्दीसे अुत्पन्न अरबी-फारसी मिश्रित अेक विशेष साहित्यिक शैली है। सम्मेलन हिन्दीका प्रचार करता है। अुसका अुर्दूसे विरोध नहीं है।

"अिस समितिके विचारमें महात्मा गांधीकी प्रस्तावित हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके सदस्य हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और अुसकी अुपसमितियोंके सदस्य रह सकते हैं। किन्तु व्यावहारिक दृष्टिसे अुचित यह होगा कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके पदाधिकारी प्रस्तावित हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके पदाधिकारी न हों।"

मैं अिससे अधिक अुदारताकी आशा नहीं कर सकता था। मेरी यह राय रही है और अब भी है कि अगर पदाधिकारी अेक ही रह सकते, तो संघर्षका सवाल ही न अुठ पाता। जिनमें कुछ अुठ सकता है। लेकिन दोनों ओरसे सज्जनताका व्यवहार होने पर संघर्ष हो ही नहीं सकता। हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाकी सफलतासे राष्ट्रभाषाका सवाल राजनीतिके क्षेत्रसे बाहर निकल आयेगा। राजनीतिसे तो अुसका कभी सम्बन्ध होना ही न चाहिये था।

सेवाग्राम, २२–४–'४२

हरिजनसेवक, २६–४–'४२

१६१

खादी व ग्रामोद्योग

अेक प्रश्नका अुत्तर

प्र० — आपने कओी बार कहा है कि खादी व अन्य ग्रामोद्योग अेक-दूसरेके पूरक हैं। परन्तु दोनोंके विकासकी दृष्टिसे अुनके विशेपज्ञोंका अलग-अलग मण्डल बनाकर काम करनेकी नीति आपने रखी है। नतीजा यह आया है कि खादीके कार्यकर्ता देहातमें जाने पर भी ग्रामोद्योगका काम क्वचित ही कर पाये हैं। खादी-अुत्पादनके कामसे अुन्हें अुतनी फुर्सत ही नहीं कि वे अन्य कामोंमें हाथ बटावें। अभी-अभी आपने खादी व ग्रामोद्योग दोनोंके सहकारी भण्डार चलानेकी सूचना दी है। अब समय पलटा खा रहा है। दूर-दूर माल भेजना या दूरसे माल मंगवाना दुश्वार हो गया है। क्या अिस दशामें खादी और ग्रामोद्योगके केन्द्रोंको अेक कर देना ठीक नहीं होगा? खादी-अुत्पादनमें लगे कार्यकर्ता दूर-दूर खादी बेचनेकी चिन्ता छोडकर मर्यादित सीमाके लिअे ही खादी बनवावें और अुसी सीमाके लिअे ग्रामोद्योगोंका भी काम करें, यह क्या ज्यादा हितावह नहीं होगा?

खादी-कार्यकर्ताओंको यह कहा जाता है कि वे चरखेके साथ कारीगरोंके घरोंमें प्रवेश करें। कारीगरोंको शिक्षा दें। अुनमें ग्रामोद्योगी भावना जाग्रत करें। स्वच्छता, आरोग्य और अुनके रहन-सहनमें सुधार करें। पर संघकी नीतिके अनुसार कार्यकर्ताकी हालत तो यह है कि खादी-अुत्पादनके लेन-देन और हिसाब-किताबके कामसे अुसे फुरसत ही नहीं। रात-दिन तन-मनसे संघका काम करते हुअे यदि कारीगरोंके घरोंमें वह सुधारकका काम नहीं कर सका, तो अुसमें कार्यकर्ताको आप कितना दोष देंगे? वह क्या करे?

अु० — प्रश्न अच्छा है। खादी-कार्यकर्ताका सारा समय यदि खादीमें ही जाता है, तो वह न दूसरे ग्रामोद्योगोंको संभाल सकेगा,

न ग्राम-सुधारको। तब तो दूसरे अुद्योगोंको देखनेवाला अन्य सेवक होगा और ग्राम-सुधारका तीसरा। मेरा कुछ खयाल है नहीं कि सुव्यवस्थित गांवमें अेक ही सेवक तीनों काम देखेगा। जैसे खादी-कामके लिअे सामान बांटना, सूतका लेन-देन करना, खादी बेचना आदि। अिसमें दो घण्टेसे ज्यादा जाने नहीं चाहिये। ग्रामोद्योगोंमें अुससे भी कम। और बाकी समय तालीम और ग्राम-सुधारमें जायगा। अैसा होता नहीं है, क्योंकि खादी-सेवकोंका समय लोगोंको कातनेका काम समझानेमें और फालतू लेकिन खादीके ही कामोंमें जाता है। अैसे ही ग्रामोद्योगोंका। यह ठीक है कि अब समय आया है, जब खादीका बाजार वह जिधर पैदा होगी वहीं प्राप्त होगा। और ग्रामोद्योगोंका भी अैसा ही होगा। तब तो खादी-सेवक खादीका, दूसरे ग्रामोद्योगोंका और सुधारका भी काम करेगा। आज तो अितना ही कहा जाय कि ये तीनों कार्य परस्पर-विरोधी कभी नहीं हैं। योग्यताके मुताबिक अेक-दूसरेके साथ अुन्हें मिल ही जाना है। यह काम कृत्रिमतासे नहीं होगा, स्वाभाविकतासे होगा। वस्तुस्थिति जैसी है, अुसके लिअे मैं किसीको दोष देना नहीं चाहता हूं। मेरे पास गुण-दोषकी तुलना करनेका सामान भी नहीं है। वर्तमान स्थिति स्वाभाविक-सी लगती है। हमारी बुद्धि जहां तक जा सकी है, गअी है। अुसके विकासके लिअे तो विद्यालय निकला है। अुसमें से पता चल जायगा कि सब प्रवृत्तियोंका सम्मिश्रण कैसे हो सकता है।

सेवाग्राम, १५–४–'४२

हरिजनसेवक, ३–५–'४२

१६२

सूत-मापका रहस्य

मैं देखता हू कि सूत-मापके बारेमे अपनी कल्पना साथियोको मैं पूरी तरह समझा नही सका हू। यहा समझानेका प्रयत्न करता हू। धातुके सिक्के या कागजके नोट सच्चा माप नही है, क्योकि अुनकी कीमत कृत्रिम है। पाच रुपयेका नोट अेक पैसेका भी कागजका टुकडा नही है। अुस पर सरकारी मुहर है, अिसलिअे अुसकी कीमत है। फिर भी यह माप या अैसा माप बडे पैमाने पर व्यापार करनेके लिअे आवश्यक है। खादी और अन्य ग्रामोद्योगोके पीछे अुल्टी कल्पना है। हम बडे पैमाने पर व्यापार नही चाहते है। हमारी दृष्टि-मर्यादामें सात लाख देहातोमे से कोअी अेक गाव है। हम अुस देहातकी स्वतन्त्रता अैसी चाहते है, जैसी सात लाखकी, और सारे जगतकी। अिसलिअे हमारे देहात कमसे कम खाने-पहननेमे यथासम्भव स्वावलम्बी होने चाहिये।

अैसे देहातमे पारस्परिक व्यवहारके लिअे धातुके या अन्य किसी कृत्रिम मापकी आवश्यकता नही हो सकती है। हमारा माप तो कोअी अैसी देहाती चीज होनी चाहिये, जिसे हर कोअी बना सकता है, जिसका आसानीसे सग्रह हो सकता है, और जिसका दाम हर रोज बदलता नही है। अैसी वस्तु क्या हो सकती है? साबुन नही, तेल नही, तरकारी नही। अिस तरह गिनते-गिनते खाली सूत रह जाता है। अुसे सब अुत्पन्न कर सकते है। अुसकी हमेशा जरूरत रहती है। अुसका सग्रह भलीभाति हो सकता है। अगर सूत-माप हम देहातोमे दाखिल कर सकें तो देहातकी बहुत अुन्नति कर सकेंगे और वे शीघ्रतासे स्वावलम्बी बन सकेंगे। सूत-मापके सभी लाभ बतलानेका यह प्रयत्न नही है। अुसका अर्थ क्या है और वह कैसे काम करेगा, यही बताना है।

अिसके लिअे अेक दुकानकी आवश्यकता रहती है, जिसमें देहातियोके नित्य अुपयोगकी चीजे मिल सके। यह बात निरपवाद होनी

चाहिये कि देहाती अुस दुकानसे कोअी भी वस्तु सूत देकर ही खरीद सकें। अिसका परिणाम यह होगा कि अुक्त दुकानसे माल लेनेके लिअे लोगोंको सूत कातना ही होगा। दुकानमें अमुक जातिका ही और अमुक मापोंमें ही सूत लिया जायगा। अिसलिअे देहाती जो सूत कातेंगे, वह अच्छी तरहसे बाधा हुआ होगा। और क्योंकि सूतसे अनेक चीजें खरीदी जा सकती है, अिसलिअे सूतका अेक धागा भी वे व्यर्थ नही जाने देंगे। सूतकी प्रतिष्ठा अेकाअेक बढ़ जायगी। सूतके बदलेमें जो माल मिलेगा वह अच्छा होगा। महंगा नहीं होगा। अेक बच्चा भी अुस दुकानसे निर्भय होकर माल खरीद सकेगा, क्योंकि जैसा-तैसा सूत दुकानमें नहीं लिया जा सकेगा, अिसलिअे आरम्भमें अिस कामके लिअे अेक खास-चौकसीकी आवश्यकता होगी, जिसका काम सूतका माप जाचनेका होगा। सूत मैला न हो जाय, अिसलिअे अुसे कागज या अन्य किसी वस्तुमें रखनेकी आवश्यकता होगी। चौकसीके कागजमें बन्द किया हुआ सूत दुकानवाले आख मूदकर ले लेंगे।

चौकसी और दुकानदारका सम्बन्ध चरखा-संघ जैसी संस्थाके साथ होने पर सूत नित्य संघके दफ्तरमें जायगा। वहासे बुननेवालोंके हाथोंमें।

अैसी दुकानमें नुकसानकी गुंजाअिश नहीं है। वस्तुओंके दामोंमें बहुत घट-बढ होनेकी सम्भावना नही होगी। दुकानमें अैसी ही वस्तु करीब-करीब रखी जायगी जो देहातमें ही मिल सके। अैसी वस्तुओंका विस्तार रफ्ता-रफ्ता बढ़ता ही रहेगा।

अिस योजनामें प्रत्येक घर टकसाल बन जाता है, और जितने चाहिये अुतने पैसे (सूत) बना सकता है। साफ है कि अैसी दुकानोंमें मादक पदार्थ, विदेशी पदार्थ, नुकसानकारक पदार्थ नहीं बिक सकते हैं। अिसलिअे सूतका सम्बन्ध जहा तक बन सके पवित्र होगा।

सेवाग्राम, १७-४-'४२
हरिजनसेवक, ३-५-'४२

१६३

कत्तिनोसे रकम काटनेकी मर्यादा क्या हो ?

प्र० — कत्तिनोको दी जानेवाली मजदूरीमे से अुन्हे खादी देनेके लिअे जो रकम काट ली जाती है, अुसका परिमाण कितना हो, अिस बारेमे कअी तरहके विचार प्रगट किये जाते हैं। कुछ अैसा मानते हैं कि कारीगरोको खादी देनेका यह तरीका अेक प्रकारकी जवरदस्ती है। कारीगरोको खादी पहननी चाहिये, अैसा प्रचार अवश्य किया जाय, मगर अुनकी कमाअीमे से कुछ हिस्सा काटकर जमा रखनेका तरीका ठीक नही है। कुछ यह कहते हैं कि चरखा-सघने कताअीकी दरे जान-बूझकर बढाअी हैं, और यह दृष्टि रखकर बढाअी है कि कारीगर लाजिमी तौर पर खादीधारी बनें। अिसलिअे निश्चित मर्यादा तक अिस प्रकारकी रकम काटकर खादी देना अनुचित नही समझना चाहिये।

यह मर्यादा कितनी हो अिस बारेमें फिर मतभेद है। कोअी कहता है कि यह मर्यादा कारीगरकी कमाअीके १२।। प्रतिशतसे ज्यादा न हो, कोअी कहता है २५ प्रतिशत हो, और कोअी कहता है कि कताअीके दाम अधिकसे अधिक कपडके — खादीके — ही रूपमें चुकाये जायें। सघका मुख्य आदर्श वस्त्र-स्वावलवन है। अुस तक पहुचनेके लिअे अच्छा तो यही है कि सघ कताअीका काम यह समझकर करे कि वह रोटी देनेके लिअे नही, वल्कि कपडा देनेके लिअे ही है।

आजकल अनाजके दाम बढते ही जा रहे हैं। कताअीकी दरे वही हैं, जो साल या दो साल पहले जारी थी। कत्तिनकी कमाअी तो बढी नही, अेक अर्थमें तो वह घटी ही है। फिर भी खादीके लिअे की जानेवाली कटौती जारी ही है। अब तो पूजी जमा करनेके लिअे कारीगरो पर और कटौती लादी गअी है। यह तो चरखा-सघके जीवन-वेतनके सिद्धान्तका मजाक हो रहा है, अैसा भी अेक खयाल है।

आपसे प्रार्थना है कि अिसमें नीति क्या हो, मर्यादा किस प्रकारसे जांची जाय, अिस बारेमें अपनी राय प्रकाशित करके खादीका काम करनेवालोंका मार्गदर्शन कीजिये।

अु० — असल बात यह है कि जब कत्तिनोंकी मजदूरी बढाओी गओी, तब अेक ही खयाल रहा था कि जिनको कभी सच्ची मजदूरी नहीं मिली, अुनको वह मजदूरी देना चरखा-संघ जैसी पारमार्थिक संस्थाका धर्म होता है। चरखा-संघकी हस्ती खादी पहननेवालोंके लिअे नहीं, वस्त्र-स्वावलम्बन करनेवालोंके लिअे नहीं, लेकिन मजदूरीने खादी बनानेवालोंके लिअे थी, अुनमें भी कत्तिनोंके लिअे। विचार-श्रेणी यह थी कि कातनेका काम करोडोंका है, और अुन्हें धन्धा मिले तो भूखमरी मिटनेमें कुछ मदद मिल सकती है।

अब अगर कत्तिनोंकी मजदूरी बढानी है, तो यह मजदूरी तभी बढ सकती है जब कि सभी खादी पहनें, अन्यथा सबको कातनेका धन्धा नहीं मिल सकता। थोडे ही लोगोंको मदद देनेके लिअे चरखा-संघ जैसी संस्थाकी आवश्यकता नहीं हो सकती थी। अगर सबको खादी पहननी है, तो कत्तिनोंको तो पहननी ही है। कत्तिनें खादी न पहनें और हम अुन्हें अुनकी मांगके सिवा भी ज्यादा मजदूरी देते रहें, तो वह केवल दान ही हो जायगा। दान चरखा-संघका ध्येय कभी नहीं था। अिसलिअे जैसे अेक तरफ कत्तिनोंको ज्यादा मजदूरी देना हमारा धर्म था, वैसे ही दूसरी तरफ अुन्हें और अुनके परिवारको खादी पहनानेका भी धर्म था। अिस दूसरे धर्मके पालनके लिअे हम कत्तिनोंसे अवश्य ही यह कह सकते हैं कि अुन्हें जो ज्यादा मजदूरी मिलती है, अुसका प्रथम अुपयोग तो वे खादीका खर्च निकालनेमें करें।

लेकिन हम अैसा करनेमें सफल नहीं हो सकते थे, अिसलिअे हमने मध्यम मार्ग ग्रहण किया। जितना आगे जा सकते थे, अुतना आगे बढे। हमारे पास किसीको मजबूर करनेका साधन नहीं था, न हमने रखा है, न भविष्यमें रखना है। चरखा-संघ अहिंसाका प्रतीक है, और अहिंसाका बडा प्रयोग है। अिसके मूलमें शुद्धतम न्यायबुद्धि है। जिनके साथ हमेशा ही अन्याय हुआ है, अुनको न्याय देनेकी चेष्टा

है। अिसलिअे हमारे सब निर्णयोंकी जडमें शुद्धतम न्यायबुद्धि होनी चाहिये।

अितना याद रखा जाय कि हमारा ध्येय तो हर कत्तिनको अेक घण्टेका अेक आना दिलानेका है। अुससे हम दूर पडे है। वहा तक पहुचनेकी हमारे पास सामग्री नही है। हमारे औजार अैसे नही है कि जिनसे कत्तिनोंको अेक घण्टेका अेक आना दिया जा सके।

महगाअीके अिन दिनोंमे हम अगर कत्तिनोंको ज्यादा दे सकें तो देनेका धर्म होता है। अिसका निर्णय तो चरखा-शास्त्री और अनुभवी ही कर सकते है।

सब निर्णयोंमें विवेककी तो आवश्यकता है ही। अगर विवेक कहता है कि कत्तिनोंकी मजदूरीकी बढतीमें से अुन्हे अेकाअेक खादी पहनानेके लिअे हम पैसा नही काट सकते है तो हरगिज न काटें, कत्तिनोको अपनी और अपने घरवालोंकी आवश्यकतासे अधिक खादी लेनी पडे, अैसी कटौती हरगिज न की जाय। अर्थात्, कत्तिनोंको कुटुम्बीजन समझकर लेना है। अुनके अज्ञानका दुरुपयोग हम कभी न करे। अुनकी आवश्यकताओंको समझे और समझकर जैसा अुचित लगे, वैसा करें।

सेवाग्राम, २०–५–'४२
हरिजनसेवक, ३१–५–'४२

१६४

'सर्वोदय'

हिन्दी भाषा-प्रेमी जानते ही है कि 'सर्वोदय' मासिक वर्धासे निकलता है। अिसके संपादक श्री काका कालेलकर और श्री दादा धर्माधिकारी है। वैसे तो सचमुच तीन है, क्योंकि श्री किशोरलाल भी प्राय प्रति अंकमें लिखते है। अिस मासिकका अुद्देश्य है, सत्याग्रह-शास्त्रकी तात्त्विक चर्चा करना और अुसके शुद्धतम रूपका प्रचार करना, जिससे सबका — जगतमात्रका — अुदय होवे। पिछले चार वर्षोंसे यह मासिक निकल रहा है, लेकिन प्रतिवर्ष करीब दोसे तीन हजारका घाटा रहता है। अिसलिअे अब यह प्रश्न अुठ खडा हुआ है कि क्या अितना घाटा सहकर भी यह मासिक चलाया जाय? कअी मित्रोंकी राय है कि घाटा अुठाकर भी 'सर्वोदय' जारी रखा जाय। कअी कहते है कि जब अुसकी कद्र अुसका खर्च निकलने जितनी भी नही है, तो फिर अुसे निकालनेसे फायदा क्या? अिन दोनों पक्षोका समर्थन अेक हद तक हो सकता है। लेकिन अेक मध्यम मार्ग तो यह है कि ग्राहकोंसे पूछा जाय। ग्राहक अिस घाटेकी बात स्पष्ट रूपसे नही जानते है। अगर वे 'सर्वोदय' का निकलना आवश्यक समझते है, तो प्रत्येक ग्राहक कमसे कम अेक और ग्राहक बना दे तभी घाटा मिट सकता है। अभी करीब ९०० ग्राहक है। दो हजार होनेसे घाटा मिटेगा। जो ग्राहक नये ग्राहक नही बना सकते, वे अगर धनी है तो अेक या दो ग्राहकोंका चन्दा भेज सकते है। कुछ जिज्ञासु किन्तु मुफ्त मागनेवाले लोग रहा ही करते है। वे चन्दा दे ही नही सकते। यदि अुनका चन्दा देनेवाले कुछ सज्जन मिल जाय, तो अुनको 'सर्वोदय' पहुच सकता है। 'हरिजनसेवक' में अिस बातका खास अुल्लेख करनेका खास मतलब यह है कि अिससे 'सर्वोदय' के ग्राहकोंके अलावा दूसरोको भी घाटेका पता चल सकेगा। 'सर्वोदय' की नीति बिलकुल 'हरिजन'

की ही है। लेकिन 'सर्वोदय' में 'हरिजन' की नीतिका शास्त्रीय विवेचन किया जाता है, और वह तटस्यताके साय। अैसी कोअी बात नही है कि सम्पादकोंको 'हरिजन' की नीतिका अनुसरण करना ही चाहिये। जहा तक अुनकी बुद्धि जा सकती है, वही तक वे 'हरिजन' की नीतिका प्रचार करते है। और क्योकि प्राय वे 'सर्वोदय' को तथाकथित राजनीतिसे अलग रखनेकी चेष्टा करते है, अिसलिअे 'हरिजन' यदि खतरेमें पड जाय तो भी 'सर्वोदय' बच जाय और अुसके मारफत लोगोंको कुछ तो खुराक मिला करे, अैसा भी लोभ 'सर्वोदय' निकालनेमें रहता है।

सेवाग्राम, ४–७–'४२
हरिजनसेवक, १२–७–'४२

१६५

अेक चेतावनी

अेक चेतावनी देता हू। विकती पूनिया लेकर कातनेकी आदत खोटी है। अन्तमें यह खादीको नुकसान पहुचायेगी। अब तो धुनाईकी शोधके बाद पूनी बना लेना आसान हो गया है। अिसे सब सीख लें।

हरिजनसेवक, २६–७–'४२

१६६

'खादी पैदा करो'

जैसे 'अनाज पैदा करो' की घोषणा हम चारों ओरसे सुनते हैं, वैसा ही खादीके बारेमें भी समझिये। अगर हम खादी पैदा न करेंगे तो करोड़ोंको नंगा रहना पड़ेगा, जैसे कि अगर हम अनाज पैदा न करेंगे तो करोड़ोंको भूखों मरना पड़ेगा — और अुनकी मृत्युसंख्या युद्धमें होनेवाली मृत्युसंख्यासे बहुत अधिक होगी। फर्क अितना ही होगा कि युद्धमें लोग जान-बूझकर मरते हैं, और वीर कहलाते हैं। भूखसे मरनेवालोंको कोअी याद तक न करेगा, और न मरेंगे तो केवल हमारे अज्ञान और आलस्यके कारण।

कपड़ेके न मिलनेसे हम मरेंगे तो नहीं, लेकिन नंगा रहना भी तो हम पसन्द नहीं करेंगे। यह युद्ध आगे बढ़ा तो मिलें चलनेवाली नहीं। वे तो लड़ाअीका सामान पैदा करेंगी।

तब खादी कैसे पैदा हो? मैंने तो कहा है कि अिस वक्त पैसे देकर नहीं लेकिन घर-घर चरखे चलाकर सूत पैदा हो सकता है। प्रत्येक क्षणका हम हिसाब करें और अुसका सदुपयोग करें तो कपड़ोंका घाटा हो ही नहीं सकता है। चूंकि अैसे सूतके दानरूपमें प्राप्त होनेसे वह मजदूरीके सूतसे सस्ता ही होगा, अिसलिअे खादी भी अपेक्षाकृत सस्ती ही होगी।

हरिजनसेवक, २–८–'४२

१६७

चरखा-जयन्ती

गाधी-जयन्ती अेक बहाना है, सच्ची बात तो चरखा-जयन्ती ही है। चरखा न होता तो शायद जयन्ती ही न मनानी पडती। मनानी पडती भी, तो अुसका महत्त्व न होता। बगैर हेतुके, मनुष्योकी जयन्ती मनानेमे तो मै कुछ लाभ नही देखता, फिर वह भले ही रिश्तेदारो या मित्रवर्गका निर्दोष आनन्दोत्सव ही क्यो न हो। लेकिन गाधी-जयन्तीके बहानेसे चरखा-जयन्तीका सुयोग हुआ, तो अिसमे हेतुके बडे और व्यापक होनेके कारण जयन्ती अुपयोगी वस्तु सिद्ध हुअी है।

चरखा-सघने जयन्ती मनानेका निर्णय कर लिया है। अुसका कार्य खादीके लिअे चन्दा अिकट्ठा करना, सूत कतवाना व सूत अिकट्ठा करना रहेगा। अिसके लिअे चरखा-सघके सामने नारणदास गाधीका अुदाहरण है ही। वे कअी वर्षोसे सूत और चन्देकी रकम अिकट्ठा करनेकी प्रतिज्ञा करके कार्य कर रहे है। प्रति वर्ष अुन्हें अुत्तरोत्तर सफलता मिलती जा रही है। कोअी वजह नही कि अैसी ही सफलता चरखा-सघको न मिले। अगर दृढ सकल्पवाले कार्यकर्ता मिल सकें, तो सफलता अवश्य मिलनी चाहिये। खादीके बगैर लोगोके लिअे नगे रहनेका अवसर आ सकता है। अैसे अवसरको टालनेका कार्य अगर कोअी कर सकता है, तो वह चरखा-सघ ही है।

सघके अिस शुभ-साहसमें सब लोग मदद देंगे, अैसी मै आशा करता हू।

सेवाग्राम, २२–७–'४२

हरिजनसेवक, ९–८–'४२

१६८

नैसर्गिक अुपचार-गृह

पाठक जानते है कि डॉक्टर दीनशा महेताके 'क्लिनिक' में मै भाअी जहांगीर पटेलके साथ ट्रस्टी बना हू। अुसमें शर्त यह है कि अिस बरसकी जनवरीकी पहली तारीखसे वह संस्था धनिकोंसे मिटकर गरीबोंकी बने। अैसे पूरा-पूरा बना तो नही है। मै बाहर रहा। कल्पना मेरी ही थी, अिसलिअे फेरफारका काम ठंडा रहा है। मुझे आशा तो है कि मै अिस कामके लिअे अिस मासमें पूना जाअूगा और कुछ तो कर सकूगा। मेरी आशा यह रहेगी कि धनिक बीमार आवें, तो वे पैसे पेट भरकर दें। फिर भी गरीबोंके साथ अेक ही कमरेमें रहे। मुझे विश्वास है कि अैसा करनेसे वे ज्यादा लाभ अुठायेंगे। जो अिस तरह नही रहना चाहते है, अुनको पूना जानेकी आवश्यकता नही है। संस्थाके लिअे यह तो आवश्यक है ही। गरीबोंके आरोग्य-गृहमें अुनकी तबीयत अच्छी करनेकी कोशिश करनेके अलावा अुन्हे अच्छे कैसे रहना, सो भी बताया जायगा। आज माना जाता है कि नैसर्गिक अुपचारमें बहुत खर्च होता है। मामूली वैद्य या डॉक्टरकी दवाका खर्च अुससे कम होता है। अगर यह बात सही सिद्ध हो, तो मै अपने प्रयत्नको व्यर्थ समझूगा। लेकिन मेरा विश्वास अिससे अुलटा है और अनुभव भी जो कुछ है, अिससे अुलटा ही है। नैसर्गिक या कुदरती वैद्यका धर्म है कि वह दरदीके शरीरकी सभाल तो करे, मगर अितना ही काफी नही। देहमे जो देही है, अुसे भी पहचाने और अुसके लिअे भी अुपचार बतावे।

यह अुपचार तो रामनाम ही है। वह रामबाण दवा है। रामनामका क्या अर्थ है, अुसकी क्या विधि है, सो आज नही बता सकता। अितना ही कहूगा कि गरीबोंको दवाकी बहुत फिकर नही रहती। वे यो ही मरते है। अज्ञानके वश जानते भी नही कि कुदरत क्या सिखाती है। अगर पूनामें यह प्रयोग अच्छी तरह चला, तो

कुदरती अिलाजोंकी अेक युनिवर्सिटी या विद्यापीठ कायम करनेका डॉक्टर दीनशाका स्वप्न सिद्ध हो सकेगा। अिस भगीरथ कार्यमें मैं हिन्दुस्तानके सच्चे कुदरती तबीबों (चिकित्सकों) की मदद चाहता हूं। अिसमें पैसेका लालच तो हो ही नहीं सकता। जरूरत है सेवाभावसे गरीबोंका अिलाज करनेकी। अैसे कुदरती तबीब काफी संख्यामें मिलें, तभी काम आगे बढ़ सकेगा। तबीब कहने मात्रसे कोअी तबीब नहीं बन सकता। वह सच्चा, मेहनती सेवक होना चाहिये। जिनको कुछ अनुभव-ज्ञान है, अुन्हें अपने ज्ञान अित्यादिकी फेहरिस्त भेजनी चाहिये। जिन खतोंको मैं निकम्मा मानूंगा अुनका अुत्तर नहीं दिया जायगा। पाठक समझें कि 'हरिजनसेवक' के निकलनेसे सेवाकार्यका क्षेत्र बढ़ा है। अिसलिअे व्यक्तियोंको खत लिखनेकी बहुत कम गुंजाअिश रहेगी।

वर्धा जाते हुअे रेलमें, ५–२–'४६
हरिजनसेवक १०–२–'४६

१६९

प्रदर्शनी कैसी हो?

कांग्रेसका अधिवेशन दो तीन मासमें होनेका संभव है, अिसलिअे सामान्यतः यह प्रश्न अुठता है कि देहाती दृष्टिसे अुसे कैसा होना चाहिये?

देहाती दृष्टि ही हिन्दुस्तानमें सही हो सकती है — अगर हम चाहते और मानते हैं कि देहातोंको सिर्फ जीना ही नहीं, बल्कि मजबूत और समृद्ध बनना है। अगर यह सही है, तो हमारी प्रदर्शनीमें शहरी चीजोंको और आडम्बर व जाहोजलालीको स्थान नहीं हो सकता है। शहरमें जो खेल-तमाशे होते हैं अुनकी जरूरत नहीं होनी चाहिये। प्रदर्शनी किसी हालतमें न तमाशा बननी चाहिये, न पैसे पैदा करनेका साधन, व्यापारियोंके लिअे जाहिरखबरके लिअे तो कभी नहीं। वहां बिक्रीका काम नहीं होना चाहिये। खादी तथा अन्य ग्रामोद्योगोंकी चीजें भी

नहीं बेचनी चाहिये। प्रदर्शनीको शिक्षा पानेका स्थान बनना चाहिये, रोचक होना चाहिये, देहातियोंके लिअे अैसा होना चाहिये कि जिनसे देहाती घर लौटकर कुछ-न-कुछ अुद्योग सीखनेकी आवश्यकता समझने लगें। हिन्दुस्तानके सब देहातोंमें जो दोष हैं अुन्हें बतानेवाला तथा अुन दोषोंको कैसे दूर किया जाय यह बतानेवाला और ग्रामोंको आगे ले जानेकी प्रवृत्ति शुरू हुअी तबसे आज तक क्या प्रगति हुअी, सो बतानेवाला स्थान होना चाहिये। अिस प्रदर्शनीको देहातका जीवन कलामय कैसे बन सकता है, सो भी बतानेवाला स्थान होना चाहिये।

अब देखें कि अिन शर्तोंका पालन करनेवाली प्रदर्शनी कैसी होनी चाहिये

१ दो देहातोंके नमूने होने चाहिये — अेक देहात आज है अैसा और दूसरा अुनमें सुधार होनेके बादका। सुधरे देहातमें स्वच्छता होगी, घरकी, रास्तेकी, देहातके आसपासकी और वहांके खेतोंकी। पशुओंकी हालत भी बतानी चाहिये। कौनसे धंधे किस प्रकारसे आमदनी बढ़ाते हैं अित्यादि बातें नकशों, चित्रों व पुस्तकोंसे बताअी जाय।

२ सब तरहके देहाती अुद्योग कैसे चलाये जायें, अुनके लिअे औजार कहां मिलते हैं, वे कैसे बनाये जाते हैं, यह सब बताना चाहिये। सब तरहके अुद्योगोंको चलते हुअे बताया जाय। साथ-साथ निम्न लिखित वस्तुअें भी बतानी चाहिये

(अ) देहाती आदर्श खुराक
(आ) यंत्रोद्योग और हाथ-अुद्योगका मुकाबला
(अि) पशुपालन-विद्याका पदार्थपाठ
(अी) अच्छे पाखानोंके नमूने
(अु) कला-विभाग
(अू) वनस्पति-खाद विरुद्ध रासायनिक खाद
(अे) पशुकी खाल, हड्डी अित्यादिके अुपयोग
(अै) देहाती संगीत, देहाती वाद्य, देहाती नाट्यप्रयोग
(ओ) देहाती खेलकूद, देहाती अखाड़े व व्यायाम

(औ) नअी तालीम
(अं) देहाती औषध
(अः) देहाती प्रसूति-गृह

आरभमें बताअी हुअी नीतिको खयालमें रखकर अिसमें जो वृद्धि हो सकती है, सो की जाय। जो मैंने बताया है, अुसे अुदाहरण-स्वरूप माना जाय। अिसमे मैंने चरखेसे आरभ करके जितने देहाती अुद्योग हैं, अुन्हें जान-बूझकर नही बताया है। अुन सब अुद्योगोंके सिवा प्रदर्शनी निकम्मी मानी जाय।

मद्रास जाते हुअे ट्रेनमें, २०-१-'४६
हरिजनसेवक, १०-२-'४६

१७०

हिन्दुस्तानी बनाम अंग्रेजी

हिन्दुस्तानीसे किसी हिन्दवासीको नफरत कैसे हो सकती है? संस्कृतमयी भाषा चाहनेवाले डरते है कि अुनकी हिन्दीको नुकसान पहुचेगा। अुर्दू बोलनेवाले डरते हैं कि फारसी-अरबीमय अुर्दूको। दोनोका डर निकम्मा है। प्रचारसे भाषा नही फैलती। अैसा होता तो 'वोलापुक' या 'अेस्पेराण्टो' को जनतामें स्थान मिलता। लेकिन अैसा नही हुआ। चन्द लोगोंके आग्रहसे भी किसी भाषाको स्थान नही मिलता। लेकिन जो लोग शक्तिशाली, मेहनती, कलाशील, साहसिक, व्यापारी हैं, अुनकी भाषा चलती है और पराक्रमी बनती है। प्रयत्न करना हमारा काम है। लोग जिसे अपनावेंगे, वही अुनकी भाषा बन सकती है। गोकि अंग्रेजी तेजस्वी भाषा है तो भी वह राष्ट्रभाषा तो बन ही नही सकती। अगर अंग्रेजोंका राज्य जब तक सूरज और चाद हैं तब तक रहनेवाला है, तो वह अुनके अमलोंकी भाषा जरूर होगी, लेकिन आम जनताकी कभी नहीं। और चूंकि अमलदार लोग राज्य-

कर्ता होंगे और ताजीराती काम अंग्रेजोंके हाथमें रहेगा, अिसलिअे प्रान्तोंकी भाषायें कंगाल बनी जायगी। स्वर्गीय लोकमान्यने अेक दफा कहा था कि अंग्रेजोंने प्रान्तीय भाषाओंकी सेवा की है। यह बात सच्ची थी। अेक हद तक अुनको यह करना था। लेकिन प्रान्तीय भाषाओंकी तरक्की करना अुनका काम नहीं था, न वे कर सकते थे। यह काम तो लोकनायकोंका और लोगोंका ही है। अगर वे अपनी मातृभाषाको भूले — जैसे कि भूल रहे थे और आज भी कुछ भूल रहे हैं — तो लोग कंगाल रहेंगे।

अब तो हम जानते हैं कि अंग्रेजी राज्य अखण्डित नहीं। शायद अिसी बरस वह खतम हो जायगा। वे खुद यह कहते हैं, हम भी मानते हैं। अैसी हालतमें हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीके सिवा और कोअी हो ही नहीं सकती।

आजकी हिन्दुस्तानीके दो रूप हैं हिन्दी और अुर्दू। हिन्दी नागरी लिपिमें लिखी जाती है, अुर्दू अुर्दू लिपिमें। अेकका सिंचन होता है संस्कृतसे, दूसरीका अरबी-फारसीसे। अिसलिअे आज तो दोनोंको रहना है। दोनों मिलकर ही हिन्दुस्तानी बनेगी। आअिन्दा अुसकी क्या शकल होगी हम नहीं जानते, न कोअी कह सकता है। जाननेकी जरूरत ही नहीं। तेअीस करोडसे अधिक लोग आज हिन्दुस्तानी बोलते हैं। जब आबादी तीस करोडकी थी, तब हिन्दुस्तानी भाषा बोलनेवालोंकी संख्या २३ करोड थी। अगर हम चालीस करोड हुअे हैं, तो दोनों रूपोंमें बोलनेवाले अधिक होने चाहियें। सो कुछ भी हो, राष्ट्रभाषा अिसीमें है। दोनों बहनोंको आपसमें झगडा नहीं करना है। मुकाबला तो अंग्रेजीसे है। अुसमें मेहनत कम नहीं। हिन्दुस्तानीकी चढतीसे प्रान्तोंकी भाषाओंको बढना ही है, क्योंकि हिन्दुस्तानी लोगोंकी भाषा है, मुट्ठीभर राज्यकर्ताओंकी नहीं। अिस राष्ट्रभाषाके प्रचारके लिअे मैं दक्षिण गया था। वहां कल तक हिन्दी ही अिसका नाम रखा था। अब नाम हिन्दुस्तानी हुआ है। थोडे ही महीनोंमें बहुतसे लडके-लडकियोंने दोनों लिपियां सीख ली हैं। अुनको मैंने प्रमाणपत्र भी दिये। वहां भी खटका तो लिपिका नहीं, लेकिन अंग्रेजीका है।

जिसमें राज्यकर्ताओंका दोष भी नहीं। हम ही अंग्रेजीका मोह नहीं छोड़ते। यह मोह हिन्दुस्तानी-नगरमें भी था। अब आशा रखी जाती है कि यह मिटेगा। कैसा भी हो, दक्षिणके प्रान्तोंमें काम जरूर हुआ है। लेकिन जिस जगह हमें पहुंचना है, उसे देखते हुए तो अभी और बहुत-कुछ करना होगा।

सेवाग्राम जाते हुए रेलमें, ५-२-'४६

हरिजनसेवक, १०-२-'४६

१७१

पशु-पालन

वर्धामें जो केन्द्रीय गोसेवा-संघ चलता है, वह स्वर्गीय जमनालालजीकी अन्तिम कृति है। उनकी लोकोपयोगी प्रवृत्तियां अनेक थीं। वर्षोंसे धन कमानेका मोह उन्होंने छोड़ रखा था। जो कुछ धन कमाते थे, सो लोकसेवामें लगानेके लिए। ११ फरवरीको उनकी पांचवीं पुण्यतिथि थी। उनके अनुयायियों और साथियोंने इस पुण्यतिथिका समय जमनालालजीकी अन्तिम प्रवृत्तिका विचार करनेमें बिताया और इस तरह तिथि मनाई। सब जानते हैं कि अपने देहान्तके एक घण्टे पूर्व भी वे कुछ-न-कुछ गोसेवाका कार्य कर रहे थे। गोपुरी नामका क्षेत्र भी उन्होंने बनाया था। उनकी समाधि गोपुरीमें ही है। और उक्त सभा भी वहीं हुई। 'गोसेवा' शब्दका प्रयोग विचार-पूर्वक हुआ है, और गोरक्षामें जो मुरब्बीपन रहा है, वह सेवा शब्दके स्वीकारसे नहीं रहता। गायको हिन्दूमात्र माता समझता है, और वह माता है भी। एक अंग्रेज लेखकने उसे मानव-समृद्धिकी माता माना है—'मदर ऑफ प्रॉस्पेरिटी' कहा है—और यह प्रयोग ठीक भी है। यह दूसरी बात है कि पश्चिममें लोग गायको खा जाते हैं। लेकिन वे भी मानते हैं कि मनुष्य-जीवनमें जो अनेक प्राणी हिस्सा लेते हैं, उनमें गायका सबसे बड़ा स्थान है।

बगैर गायके दूधके मनुष्य-जीवनका चलना असभव नही, तो मुश्किल अवश्य है। अिस गोसेवाके भीतर पशु-पालन रहा है। यह पशु-पालन हमारे हिन्दुस्तानमें बडे महत्त्वका प्रश्न है। और यह दुःखकी बात है कि जिस मुल्कमें गायकी भक्ति होती है, अुसी मुल्कमें अुस पशुकी देखभाल नही की जाती। अुसको काटते नही है, तो निर्दयतासे सताते है। बात यहा तक पहुच गअी है कि आज हिन्दुस्तानके करोडो पशु हिन्दुस्तानकी भूमिमें भाररूप माने जाते है, और अुनको हजारोकी सख्यामें कतल करके भार कम करनेकी बात भी चलती है। अैसी हालतमें अेक जमनालालजी क्या कर सकते थे? लेकिन अब तो वे भी नही है।

पशु-पालन व्याख्यानसे नही हो सकता। अुसके लिअे गहरे ज्ञानकी, अभ्यासकी, त्यागकी आवश्यकता है। करोडो रुपया अिकट्ठा करनेमे वाणिज्य नही है, लेकिन पशु-पालन कैसे करना, अुसका शुद्ध ज्ञान हजारो लोगो तक कैसे पहुचाना, और कैसे अुसका अमल करना, अिस सबकी छानबीनमे और अैसे कामोमे द्रव्य खर्च करनेमें सच्चा वाणिज्य रहा है। आज होता है अुलटा। वनिकवर्ग धन किसी-न-किसी तरह कमा लेता है, और अुसमे से दो-चार कौडीका दान करके शास्त्रीय ज्ञान-विहीन लोगोके मारफत नामकी गोशाला बनाकर अपने दिलको धोखा देता है कि पुण्यका काम कर लिया। अिन त्रुटियोका दर्शन जमनालालजीने कर लिया था और अिन्हें दूर करनेके लिअे वे अेक योजनाका मनन कर रहे थे, अितनेमे यमदूतने अुनको बुला लिया।

स्वराज्य पानेके वास्ते जितनी शक्ति चाहिये, अिस कठिन समस्याको हल करनेके लिअे शायद अुससे भी अधिक शक्तिकी आवश्यकता है।

सेवाग्राम, ९–२–'४६

हरिजनसेवक, १७–२–'४६

१७२

सवाल-जवाब

स०—दूसरेसे बातचीत करते समय, मस्तिष्क द्वारा कठिन कार्य करते समय, अथवा अचानक घबड़ाहट आदिके समय भी क्या हृदयमें रामनामका जप हो सकता है? अगर अैसी दशामें भी लोग करते है, तो कैसे करते हैं?

ज०—अनुभव कहता है कि मनुष्य किसी भी हालतमें हो, सोता भी क्यों न हो, अगर आदत हो गअी है और नाम हृदयस्थ हो गया है, तो जब तक हृदय चलता है तब तक रामनाम हृदयमें चलता ही रहना चाहिये। अन्यथा यह कहा जाय कि मनुष्य जो राम-नाम लेता है वह अुनके कण्ठसे ही निकलता है, अथवा कभी-कभी हृदय तक पहुंचता है, लेकिन हृदय पर नामका साम्राज्य स्थापित नहीं हुआ है। जब नामने हृदयका स्वामित्व पाया है तब जप कैसे करते है यह सवाल पूछा ही न जाय। क्योंकि जब नाम हृदयमें स्थान लेता है, तब अुच्चारणकी आवश्यकता ही नहीं है। यह कहना ठीक होगा कि जिस तरह रामनाम जिनको हृदयस्थ हुआ है, अैसे लोग कम होंगे। जो शक्ति रामनाममें मानी गअी है, अुसके बारेमें मुझे कोअी शक नहीं है।

हरअेक आदमी अिच्छामात्रसे ही रामनामको अपने हृदयमें अंकित नहीं कर सकेगा। अुसमें अनथक परिश्रमकी आवश्यकता है, धीरजकी भी है। पारसमणिको हासिल करनेके लिअे धीरज क्यों न हो? नाम तो अुससे भी अधिक है।

स०—क्या दिमागकी किसी कमजोरीके कारण मनको सन्देह नजर आते हैं, अथवा क्या निश्चल दशामें पहुंचनेसे पहले मनके लिअे अिन हालतोंमेंसे गुजरना लाजिमी है? जाग्रत दशामें भी शान्त मनमें स्वप्नके-से खेल क्यों होते हैं? अर्थात् जिन घटनाओंका प्रत्यक्ष जीवनकी याददाश्तके साथ कभी सबब नहीं रहा, अुनका दिमागमें आगमन अथवा हृदयमें अुच्चारण क्यों होने लगता है?

ज० — निश्चल दशामें पहुंचनेके पहले जिसका बयान प्रश्नकर्ताने किया है, वह करीब-करीब सबको होना लाजिमी है। 'करीब-करीब' कहनेका मतलब है कि पूर्वजन्ममें जिन्होंने साधना की है, लेकिन जो सिद्धार्थ नहीं हुअे, अुनको जिस जन्ममें यातनासे गुजरना नहीं पड़ेगा। शांत मनमें स्वप्नके-से खेल होते हैं, जिसका अर्थ अितना ही है कि मन बाहरसे शान्त दीखता है, परन्तु वास्तवमें वह शांत नहीं है। प्रत्यक्ष जीवनमें जिसका संबंध नहीं दीखता, मनमें अुसका संचरण होता है, अिसका अर्थ मेरी दृष्टिमें यह है कि याददास्तके अलावा भी बहुतसी चीजें पड़ी हैं, जिनका संबंध रहता ही है।

प्र० — सेवाकार्यके कठिन अवसरों पर भगवद्-भक्तिके नित्य-नियम नहीं निभ पाते, तो क्या कोअी हर्ज होता है? दोनोंमें किसको प्रधानता दी जाय — सेवाकार्यको अथवा माला-जपको?

ज० — कठिन सेवाकार्य हो या अुससे भी कठिन अवसर हो, तो भी भगवद्-भक्ति यानी रामनाम बन्द हो ही नहीं सकता। अुसका बाह्य रूप प्रसंगवशात् बदलता रहेगा। माला छूटनेसे रामनाम, जो हृदयमें अंकित हो चुका है, थोड़े ही छूट सकता है?

सेवाग्राम, ९–२–'४६
हरिजनसेवक, १७–२–'४६

१७३

कुदरती अिलाज

कुदरती अिलाज या अुपचारका अर्थ है, अैसे अुपचार या अिलाज जो मनुष्यके लिअे योग्य हों। मनुष्य यानी मनुष्यमात्र। मनुष्यमें मनुष्यका शरीर तो है, लेकिन अुसमें मन और आत्मा भी हैं। अिसलिअे सच्चा कुदरती अिलाज तो रामनाम ही है। अिसीलिअे रामवाण शब्द निकला है। रामनाम ही रामवाण अिलाज है। मनुष्यके लिअे कुदरतने अुसीको योग्य माना है। कोअी भी व्याधि हो, अगर मनुष्य हृदयसे रामनाम ले तो व्याधि नष्ट होनी चाहिये। रामनाम यानी अीश्वर, खुदा, अल्लाह, गॉड। अीश्वरके अनेक नाम हैं, अुनमें से जो जिसे ठीक लगे अुसे वह ले, लेकिन अुसमें हार्दिक श्रद्धा हो, और श्रद्धाके साथ प्रयत्न हो।

वह कैसे?

तो जिस चीजका मनुष्य पुतला बना है, अुसीसे अिलाज ढूंढे। पुतला पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और वायुका बना है। अिन पांच तत्त्वोंमें जो मिल सके सो ले। अुसके साथ रामनाम चलता रहे। नतीजा यह आता है कि अितना होते हुअे भी शरीरका नाश हो, तो होने दे और हर्षपूर्वक शरीर छोड दे। दुनियामें अैसा कोअी अिलाज नहीं निकला है, जिससे शरीर अमर बन सके। अमर तो आत्मा ही है। अुसे कोअी मार नहीं सकता। अुसके लिअे शुद्ध शरीर पैदा करनेका प्रयत्न सब करें। अुसी प्रयत्नमें कुदरती अिलाज अपने आप मर्यादित हो जाता है। दुनियाके असंख्य लोग दूसरा कर भी नहीं सकते। और जिसे असंख्य नहीं कर सकते, अुसे थोडे क्यों करें?

पूना, २४-२-'४६
हरिजनसेवक, ३-३-'४६

१७४

सवाल-जवाब

अेक खतका साराश यह है

स० — आप कहते है कि विवाह करनेवालोमे से अेक पक्ष हरिजन होना चाहिये। आप यह तो नही कहते है न कि अेक पक्ष हरिजन ही हो? अर्थात् दूसरे विवाह निषिद्ध है, अैसा अर्थ तो आप नही निकालते है?

ज० — यह प्रश्न ठीक पूछा गया है। दूसरे विवाह मै निषिद्ध नही मानता हू। मैने तो आदर्श बताया है, और अुसका अमल जितनी शीघ्रतासे हो सके अुतनी शीघ्रतासे करना मुनासिब समझता हू।

पूना, २४-२-'४६

हरिजनसेवक, ३-३-'४६

१७५

कामके सुझाव

अेक सज्जन लिखते है

"आप अिस वक्त पूनामे है। अखबारोसे पता चला है कि आप आगाखान साहबके दोस्त है। अुनके पास पानी है, पैसे है, जमीन है। अिसी तरह गवर्नर साहबका गणेशखिडका मैदान भी बहुत बडा है। क्या अिन दोनो जगहोमे अनाज नही पैदा हो सकता? क्या अुसे पैदा करनेकी प्रेरणा अुनको आप नही दे सकते?

"आपको अुपवासमे विश्वास है। आपने यह भी लिखा है कि अुपवास सिर्फ धर्मलाभके लिअे नही, बल्कि आरोग्यके लिअे भी किया जा सकता है। क्या जिनको हमेशा खाना-पीना मिलता है, अुनको आप हफ्तेमे अेक दिन या तो अेक या अधिक समयका खाना छोडनेको नही कह सकते? और अिस तरहसे भी अनाज नही बचाया जा सकता?

कहा जाता है कि अंकुर फूटने तक अनाजको पानीमें भिगोकर कच्चा खाया जाय, तो थोड़े अनाजमें काफी पुष्टि मिलती है। क्या यह ठीक है?"

मेरे खयालमें ये तीनों सूचनाअें ठीक हैं, और अुन पर अमल आसानीसे हो सकता है। जिनके पास जमीन और पानी है, अुनके लिअे पहली सूचना है, दूसरी जो ठीक खाते हैं अुनके लिअे, तीसरी सबके लिअे है। अिसका निचोड़ यह है कि जो चीज कच्ची खायी जा सकती है, अुसे कच्ची ही खानेकी कोशिश करनी चाहिये। अैसा ज्ञानपूर्वक करनेसे बहुत थोड़ेमें हम निर्वाह कर सकते हैं, अितना ही नहीं, बल्कि अुससे लाभ होता है। अगर सब लोग आहारके नियम समझ लें और अुनके अनुसार चलें, तो बहुत बचत हो सकती है, अिसमें सन्देह नहीं।

पूना, १-३-'४६

हरिजनसेवक, १०-३-'४६

१७६

हिन्दू और मुसलमान चाय वगैरा

स्टेशनों पर हिन्दू चाय और मुसलमान चाय वगैरा चीजें अलग-अलग बिकती हैं। बाज दफा खानेकी जगह भी अलग रहती है। कभी बार हरिजनोंको जगह भी नहीं मिलती। यह सब हमारी दुर्दशाकी निशानी है और अंग्रेजी सल्तनत पर धब्बा है। सल्तनत धर्मके मामलोंमें दखल न दे, यह मैं समझ सकता हूं। लेकिन स्टेशन पर अलग-अलग धर्मियोंके लिअे अलग-अलग चाय, पानी वगैराका अिन्तजाम रखना तो अलगपन पर मुहर लगाने जैसा हुआ। रेलवे और रेलवे-स्टेशन तो लोगोंके अैब दूर करने, अुनमें अेकता फैलाने, समाजमें सभ्यताके साथ बरतने और सफाअी वगैरा कामोंको सिखानेके सुन्दर साधन बन सकते हैं। अुसके बदले अिन बातोंमें लापरवाही बरती जाती है और रेलगाड़ी बुरी आदतोंको मजबूत करनेका साधन बन जाती है। पहले और दूसरे

दर्जोमें सफर करनेवालोंको मौज-मजा करनेकी आदतमें अिजाफा करना सिखाया जाता है। तीसरे दर्जेके मुसाफिरों पर रेलवे निर्भर है, मगर अुनको सुविधा तो क्या कष्ट ही रहता है। तिस पर भी जब हिन्दू, मुसलमान वगैराके बीच छूतछातका भेद रखा जाता है, तो रेलके अधिकारी अयोग्यताकी हद तक पहुच जाते हैं। अगर कोअी मुसाफिर भेदभाव रखना चाहे तो वह भले भूख-प्यासको बरदाश्त करे। रेलवालोंसे भेदभावको टिकानेके प्रबंधकी कोअी आशा न रखे।

यह दूसरी बात है कि मांसाहारी और शाकाहारी लोगोंके लिअे अुनके अनुकूल खाना मिलनेका प्रबंध होना चाहिये। वह प्रबंध तो आज भी है ही।

पूना, ७-३-'४६
हरिजनसेवक, १७-३-'४६

१७७
कुदरती अिलाजमें क्यों फंसा?

अैसे सवाल पूछे जा रहे हैं क्या मेरे पास काम कम था? क्या मैं बूढा नहीं हो गया हू? क्या कोअी नये कामकी मुझसे आशा कर सकते हैं? ये सब सवाल किये जाने लायक हैं। मेरे लिअे भी सोचने लायक हैं। लेकिन मुझे भीतरसे अेक ही जवाब मिलता है। भीतर बैठा हुआ अीश्वर कहता है "दूसरे कुछ भी कहे, तुझे अुससे क्या? डॉ० दीनशा जैसा साथी मैंने तुझे दिया है। तुम दोनों अेक-दूसरेको पहचानते हो। तुझे अपनी ताकत पर अेतबार है। बरसों कुदरती अिलाज तेरा शौक रहा है। तेरे पास अितनी पूंजी है। अुसे छिपा कर तू चोर बनेगा क्या? तेरे लिअे यह अच्छा नहीं होगा। अीशोपनिपद्का पहला मंत्र याद कर। जो तेरे पास है, अुसे तू दे दे। तेरे पास तेरा है क्या? जो तू अपना समझता था वह तेरा था नहीं, और है नहीं। सब मेरा है। यह जो तेरे पास बाकी है वह भी तू मेरे लोगोंको दे दे। अैसा करनेसे तेरे दूसरे काममें हर्ज नहीं होगा। शर्त यह है कि तू सब कुछ अनासक्त हो कर करेगा। तूने १२५

वर्ष तक जिन्दा रहनेकी अिच्छा की है। अिच्छा पूरी हो या न हो, तुझे क्या? तुझको खुद ही अपना धर्म समझना है। अुसका पालन किया कर और जीवन आनन्दसे चलाता जा।" अैसी बात मेरे कानोमे गूज रही है। अिस देहातमे आज मेरा तीसरा दिन है। मरीज आते रहते है। बढते जाते है। वे खुश रहते है। मै भी अुनकी सेवा करके खुश रहता हू। यहाके लोग साथ दे रहे है। मै जानता हू कि अगर लोगोके हृदयमे मै प्रवेश कर सकूगा, तो दर्दका नाश होगा ही। अिस देहातको और देहातियोको साफ बनाना है। अैसा कुछ न बन पाये तो मुझे क्या? मै तो हाकिमके हुक्मका तावेदार हू।

अुरुली, २५–३–'४६

हरिजनसेवक, ३१–३–'४६

१७८

पूंजीपति और हड़ताल

जब मजदूर लोग हडताल करे, तो पूजीपतियोको क्या करना चाहिये?

यह अेक बडा सवाल है। अिसका अेक रास्ता तो, जिसे अमेरिकाका रास्ता कहते है, गुण्डेबाजीसे ही क्यो न हो मजदूरोका दमन करना है। मेरे खयालसे यह रास्ता गलत और घातक है। दूसरा और सच्चा रास्ता यह है कि हरअेक हडतालके गुण-दोष पर विचार करके मजदूरोके साथ पूरा अिन्साफ किया जाय। अिन्साफका मतलब जिसे मालिक अिन्साफ कहे वह नही, बल्कि जिसे मजदूर अिन्साफ मानें और आम जनता भी कबूल करे वह अिन्साफ है।

अव्वल तो हडताल हो ही क्यो? पहलेसे खयाल रखा जाय तो अिसकी नौबत ही न आये। मालिक और मजदूरका शुरूसे ही अैसा अच्छा ताल्लुक क्यो न रहे? अेक पच हो, जिसके सामने दोनो पक्ष अपनी अपनी मागे रख दे, और वह जो फैसला दे तुरन्त दोनो पक्ष पाक दयानतदारीसे अुस पर अमल करें।

यह देखा गया है कि जैसे-जैसे वक्त बीतता जाता है, मजदूरोकी मागे बढती जाती है और अुन्हे कबूल करानेके तरीके भी नये निकलते जाते है। अुन तरीकोमे हिंसाकी पूरी छूट रहती है। मालिकका माल खराब करना, मशीन बिगाड देना, नये या पुराने मजदूरोको जबरदस्ती काम पर आनेसे रोकना, वगैरा घटनाये हो तो मालिक क्या करे?

मेरी रायमे तो मालिक और मजदूर बराबरीके हिस्सेदार है। और अगर किसीका हिस्सा ज्यादा है भी तो वह मजदूरोका। लेकिन आज अिसका अुलटा हो रहा है, क्योकि पूजीपतियोके पास बुद्धि है, या यो कहिये कि वे कम पूजीवाले बुद्धिमानोको अपने साथ मिला लेते है। अिसके अलावा वे धन सग्रह करके अुसका अुपयोग करना जानते है। अकेले अेक रुपयेकी शक्ति नहीके बराबर होती है। लेकिन बहुतसे रुपये अिकट्ठा करनेसे अुनकी जो सामूहिक शक्ति बनती है, वह जितने रुपये बढे है अुतनी गुनी नही, बल्कि अुससे कअी गुनी ज्यादा होती है। अिसीको सघ-शक्ति कहते है।

मजदूर बेहाल है। बहुतसे यूनियन और फेडरेशन होते हुअे भी अुनकी सघ-शक्ति नहीके बराबर है। फिर, बुद्धि भी अुनके पास थोडी होती है। अेक यूनियन दूसरे यूनियनकी जड काटता है। कम अक्ल होनेकी वजहसे खुदगरज और तूफानी लोगोके चढाने पर वे तूफान करने लगते है। ये तूफान करनेवाले लोग अहिंसाकी ताकतको नही समझते। अिसका नतीजा यह होता है कि मजदूरोको नुकसान अुठाना पडता है। अगर मजदूर अहिंसाकी ताकतको सीख जाय, तो मेरा तो अनुभव है कि अैसे जिन्दा अिन्सानोकी सघ-शक्तिके सामने पूजीपतियोके हाथमे जमा धनकी शक्ति बिलकुल तुच्छ है।

अिसलिअे पूजीपतियोको मेरी यह सलाह है कि मजदूरोको सच्चा मालिक बनानेके लिअे अुन्हे अुनकी बुद्धि और शक्ति बढानी चाहिये। अुनका फर्ज है कि मजदूरोको अच्छी-से-अच्छी तालीम देकर अुनकी सघ-शक्तिको मजबूत करे।

सारे पूंजीपति अिस कामको अेक दिनमें तो नहीं कर सकते। अिस बीच हड़तालोंसे अुनका जो नुकसान होता है, अुसके लिअे वे क्या करें? अिस बारेमें मैं तो बिना किसी हिचकके यही कहूंगा कि कारखानोंका पूरा अधिकार मजदूरोंको सौंप कर मालिक लोग तुरंत वहांसे निकल जायं। क्योंकि कारखानों पर हड़तालियोंका भी अुतना ही अधिकार है, जितना मालिकोंका। यह सब गुस्सेमें नहीं, बल्कि अपनी सच्चाअी दिखाते हुअे किया जाना चाहिये। अगर मजदूर लोग मालिकोंसे अिंजीनियरों या दूसरे कारीगरोंकी मदद मांगें, तो वह भी अुन्हें देनी चाहिये। अिसमें मालिकोंका कोअी नुकसान नहीं होनेवाला है। वे सब तरहके विरोधसे बच जायेंगे और मजदूर भी अुन्हें धन्यवाद देंगे। अपने धनका सदुपयोग करनेवालोंमें अुनकी गिनती होगी। मैं अिसे परमार्थ नहीं, शुद्ध बुद्धि और नेक बरताव कहूंगा।

अुरली, २३–३–'४६
हरिजनसेवक, ३१–३–'४६

१७९
भंगी-बस्तीमें क्यों?

हो सके तो भंगी-बस्तीमें रहनेका मैंने अिरादा किया है। अिस पर दोस्तोंको ताज्जुब क्यों होता है? ताज्जुब तो अिसलिअे होना चाहिये था कि मैं अितने दिनों तक हरिजन-बस्तीमें रहने क्यों नहीं गया? 'क्यों नहीं गया' अिसका जवाब किसी और वक्त दूंगा। आज तो अिरादा क्यों किया है, वह बता दूं। मैंने कहा है कि हम अपनेको भंगी यानी अतिशूद्र मानें और वैसा ही बरताव भी रखें। मैं अैसा मानता तो हूं, लेकिन चलता नहीं। शायद सब तरह तो अैसे चलना असंभव-सा हो। लेकिन जितना हो सके अुतना तो करूं। मनमें कअी दिनोंसे अिस तरहके विचार अुठ रहे थे। अिसी बीच, जैसा कि 'हरिजन' में दे चुका हूं, खबर मिली कि गुजरातमें हरिजनोंके लिअे अेक ही कुआं खुला है। अिसी तरह मंदिर भी अेक हो।

आधार न हो, तो मुझे अुनके जिन्दा होनेकी अपनी मान्यताको छोड देना चाहिये। अिन प्रमाणो पर मेरी सबसे प्रार्थना है कि वे मेरे आग्रहको भूल जाय, और आज जो सबूत हमारे सामने है अुन पर विश्वास करके मान लें कि नेताजी हमको छोडकर चले गये। यह भी समझ ले कि परमेश्वरके आगे अिन्सानकी कोअी भी हिकमत काम नही आती। वही अेक सत्य है, और सिवाय सत्यके कुछ चल ही नही सकता।

अुरुली, ३०–३–'४६
हरिजनसेवक, ७–४–'४६

१८१

हिन्दुस्तानी

मुझे अिसमे शक नही कि हिन्दुस्तानी यानी हिन्दी-अुर्दूका सही मिलाप ही राष्ट्रभाषा है। लेकिन मैंने अपनी बोलीमे अुसे अब तक साबित नही किया। अिसलिअे 'हरिजनसेवक' की भाषा पर कोअी गुस्सा न करे। शायद यह अच्छा ही हुआ कि राष्ट्रभाषाके कामको अेक कच्चा आदमी हाथमे ले बैठा है। आखिर लाखो आदमी तो कच्चे ही होगे। अुनके जतनमे ही दोनो भाषाके जाननेवाले हिन्दी और अुर्दूका अच्छा और आसान मेल पैदा करेगे।

'हरिजनसेवक' के पढनेवाले अगर भाषाकी भूले बताते रहेगे, तो अुसकी भाषाको ठीक करने और ठीक रखनेमे मदद मिलेगी। यह कोशिश जरूर रहेगी कि 'हरिजनसेवक' की भाषा कानोको मीठी लगे और सब हिन्दुस्तानी अुसे आसानीसे समझ सके। जिस जबानको सब लोग न समझ सकें, वह निकम्मी मानी जाय। जो भाषा काम नहीं दे सकती वह बनावटी है। अैसी जबान बनानेकी सब कोशिशें बेकार साबित हुअी है।

अुरुली, ३०–३–'४६
हरिजनसेवक, ७–४–'४६

१८२

सवाल-जवाब

रामनाम

स० — क्या दिलमें रामनाम रखना काफी नही? अुसे जबानसे बोलनेमें कुछ है?

ज० — रामनाम लेनेमें खूबी है, अैसा मैं मानता हूं। जो आदमी जानता है कि राम सचमुच अुसके दिलमें है, अुसे रामनामका अुच्चारण करनेकी जरूरत नही, यह मैं कबूल कर सकता हूं। लेकिन अैसे आदमीको मैं नही जानता। अिसने अुलटा मुझे जाती अनुभव है कि रामनामके रटनेमें कुछ चमत्कार है। वह क्यों और कैसे, यह जाननेकी जरूरत नही।

हरिजनके साथ भोजन

स० — निरामिषाहारी सवर्ण हिन्दू मांसाहारी हरिजनके घर रोटी कैसे खा सकता है?

ज० — निरामिषाहारी सवर्ण हरिजनके घरमें निरामिष आहार जरूर ले सकता है। भोजन-व्यवहारके मानी यह कभी नही हो सकते कि जो कुछ मिले सो खा लिया जाय। यह जरूरी है कि खाना व बरतन साफ हों, और खाना साफ हाथोंसे पकाया हुआ हो। यही नियम पानीके लिअे भी होना चाहिये। सहभोजनके यह भी मानी नही कि हम अेक थालीमें खायें या अेक ही गिलासमें बगैर अुसे साफ किये पानी पीयें।

नअी दिल्ली, ६–४–'४६

हरिजनसेवक, १४–४–४६

१८३

सवाल-जवाब

स० — अिस वार काग्रेसके वहुमतवाले प्रान्तोमे मत्रियोकी वेतन-वृद्धि किन सिद्धान्तो पर की जा रही है? क्या कराचीवाला काग्रेस-प्रस्ताव आजकी परिस्थितिमे मोजू न होता? यदि महगाअीके प्रभावमे आकर अैसा किया है, तो क्या प्रान्तोके वजटमे अैसी गुजाअिश सभव है कि प्रत्येक सरकारी नौकरका वेतन तिगुना किया जा सके? यदि नही, तो क्या यह अुचित है कि मत्री ५०० के १५०० कर ले और अेक अव्यापक और चपरासीको यह अुपदेश दिया जाय कि वह अपना गुजर १२ रुपये और १५ रुपये माहवारमे करे और शासन-प्रवन्धमे कोअी अस्थिरता अुत्पन्न न करे, क्योकि काग्रेस शासन चला रही है?

ज० — वात विलकुल ठीक है कि मत्रियोको ५०० रुपये क्यो और चपरासी या शिक्षकोको १५ रुपये क्यो? लेकिन सवाल अुठानेसे ही वह हल नही हो जाता। अैसे अन्तरका सिलसिला सनातन-सा है। हाथीको मन क्यो और चीटीको कण क्यो? अिस सवालमे ही जवाव भरा है। जितनी जिसकी हाजत है, अीश्वर अुसे अुतना दे देता है। मनुष्यकी हाजत हाथी और चीटीकी-सी स्पष्ट हो सके, तो कोअी शका ही न अुठे। अनुभव तो हमे यही वताता है कि सव मनुष्योकी हाजत अेकसी नही हो सकती, जैसे सव चीटियोकी या सव हाथियोकी होती है। भिन्न-भिन्न लोगो और भिन्न-भिन्न कौमोकी हाजते अलग-अलग रहती है। अिसलिअे आज तो जो अतर है, अुसे कम-से-कम करनेका शातिसे आन्दोलन करे, लोकमत वनावें और अेक आदर्श सामने रखकर अुसकी ओर कूच करे। जवरदस्तीसे या सत्याग्रहके नामसे दुराग्रह करके परिवर्तन नही कर सकेंगे। मत्रीगण लोगोमें से है। मत्री वननेसे पहले भी अुनकी हाजते चपरासियो जैसी नही थी। मै चाहूगा कि चपरासी मत्रीपदके लायक वनें तो भी अपनी हाजते चपरासी जितनी

रखे। अितना ममझ ले कि कोअी मत्री वधी हुअी मर्यादा तक तनख्वाह लेनेके लिअे वधा नही है।

प्रश्नकारकी अेक वात सोचने लायक अवश्य है। क्या चपरासी १५ रुपयेमे विना रिश्वत लिये अपना और कुटुम्वका गुजारा कर सकता है? यदि नही, तो अुसको काफी मिलना ही चाहिये। अिलाज यह है कि ययामभव हम सव अपने-अपने चपरासी वने और अितने पर भी जो आवश्यक हो, अुनको अुनकी हाजतके मुताविक तनख्वाह दें और अिस तरह मत्री और चपरामीके जीवनमे जो वडा अन्तर है अुसे मिटावें।

मत्रियोकी तनख्वाह ५०० से १५०० रुपये क्यो हुअी, यह भिन्न प्रश्न है। लेकिन मूल प्रश्नके मुकाबलेमे छोटा है। मूल हल हो सके, तो छोटा अपने-आप हल होना है।

नअी दिल्ली, १४-४-'४६

हरिजनसेवक, २१-४-'४६

१८४
क्यों नही ?

अेक वहनको मेरा यह कहना चुभता है कि अगर असेम्वलीकी मेम्वर वहने कस्तूरवा-निधि-मडलकी अेजेण्ट वने, तो वह देहातियोके मामने अेक खराव मिसाल होगी। वह कहती है कि अगर यह वात मौजूदा धारासभाओंके लिअे है, तो ठीक हो सकती है। लेकिन जव हमारा शासन होगा, तव तो शकल वदल जायगी। असेम्वलीके मेम्वर पथ-प्रदर्शक होगे। अिमलिअे वहा जाना फायदेमन्द ही होगा। जिम कामको करनेमे यू ही वरसो लग जाते है, वह काम असेम्वलीके मारफत अेक ही वैठकमे हो जायगा।

अिस दलीलमे तीन गलतिया है। अव्वल तो अैमी वात ही नही है कि मैने आजकी और अपने शासन-कालमें होनेवाली असेम्वलीमें कुछ भेद किया है। अैसा भेद अनावश्यक है।

दूसरे, यह मानना कि अैसे मेम्बर पथ-प्रदर्शक होंगे, भ्रममूलक है। मतदाता किसीको असेम्बलीमें अिसलिअे नहीं भेजते कि वह मार्ग-दर्शन करा सकेंगे, बल्कि अिसलिअे भेजते हैं कि हम अुनके लिअे जो रास्ता तय कर दें अुस पर चलनेकी वफादारी अुनमें है। पथ-प्रदर्शक तो हम हैं, मेम्बर नहीं। वे सेवक हैं, स्वामी नहीं। आजका यह भ्रम अिस शासनका पैदा किया हुआ है। जब यह भ्रम दूर हो जायगा, तो मेम्बर बननेवालोंकी भरमार बहुत कम हो जायगी। धर्म समझकर जानेवाले थोडे ही होंगे। वे हमारी अिच्छासे वहां जायेंगे। असेम्बलीमें जानेकी कोअी जरूरत हो सकती है तो वह आज है, जब कि वहां जाकर लोक-शासनके लिअे लडना है। लेकिन आज तो कुछ हद तक हमने यह भी देख लिया है कि वहां पहुंचकर लोक-शासनके लिअे लडाअी कम होती है।

तीसरी गलती यह माननेमें है कि असेम्बली ही मार्गदर्शन करानेका सच्चा रास्ता है। अपने अिर्द-गिर्द देखनेसे पता चलता है कि दुनियाभरमें पथ-प्रदर्शक ज्यादातर तो असेम्बलियोंके बाहर रहनेवाले ही होते हैं। अगर अैसा न रहे, तो लोक-शासन सड जाय। क्योंकि मार्गदर्शन करानेका क्षेत्र तो बडा है और असेम्बलीका बहुत छोटा। लोक-जीवनकी धारा महासागर है, जब कि असेम्बली अेक बहुत छोटी नदी।

नअी दिल्ली, २०–४–'४६
हरिजनसेवक, २८–४–'४६

१८५
कातनेसे स्वराज्य कैसे ?

चरखा-संघके अेक सेवक लिखते हैं

> "जब कत्तिनोंको खादीधारी बनाना है, अुन्हें समझ-बूझकर कातना सिखाना है, तो व्यापारिक काम तो कम ही हो सकेगा। यह सब ठीक है। मैं नअी योजना या चरखा-संघकी नअी नीतिको बहुत पसन्द करता हूं। लेकिन यह खत लिख कर आपको अिसलिअे तकलीफ देता हूं कि आपने 'हरिजन' में जो लिखा है वह और ज्यादा साफ हो जाय। आप लिखते हैं 'कातनेवालोंको अुनके पैरों पर खड़ा करना और अुनके कामोंके मारफत हिन्दुस्तानकी आजादी हासिल करना चरखा-संघका अुद्देश्य या मकसद है। कातनेवालोंको कताअीसे पहले और बादकी सब क्रियायें सीख लेनी चाहिये — यह स्वराज्यका रास्ता है।' यह ठीक है कि कातनेवाले खेतसे कपास चुननेसे लेकर तुनाअी, पुनाअी, पिंजाअी और बुनाअी वगैराकी सब क्रियायें सीख कर खुद ही अिन कामोंको करने लगें तो अुनकी मजदूरी बढ़ेगी और सूत और खादी अच्छी तैयार होगी। स्वावलम्बन बढ़ेगा। लेकिन अिससे आजादी कैसे हासिल होगी? स्वराज्य कैसे आयेगा? हमें अिस बारेमें कातनेवालोंको क्या-क्या समझाना होगा? कृपाकर अिन तमाम बातोंको खोल कर समझाअिये, जिससे काम करनेवाले खुद समझ सकें और कातनेवालोंको समझा सकें।"

मान लीजिये कि सब कत्तिनें अूपर जो कुछ कहा गया है वह सब जबरदस्तीसे नहीं, बल्कि समझकर करती हैं, तो हिन्दुस्तानकी हालत कैसी होगी? करोड़ों कत्तिनोंके खड़े होनेका मतलब है लाखों जुलाहोंका तैयार होना। अिस जागृतिको पैदा करनेके लिअे कितने सेवकों और सेविकाओंकी जरूरत होगी? अगर अुस वक्त हिन्दुस्तानमें मिलें चलती होंगी, तो वे दूसरे देशों पर निर्भर करेंगी। गरीब

देहातियो और शहरियो पर भी अुनका आज जैसा साम्राज्य चल नही सकेगा। हिन्दू-मुसलमान अेक हो जायेगे। सब सच्चे बनेगे। किसीको खद्दर पहननेके लिअे कहना नही पडेगा। सिवा खद्दरके दूसरे कोअी कपडे देखनेमें नही आयेगे। अितनी भारी तबदीलीमे स्वराज्य तो छिपा ही है। यह सबके लिअे स्वय-सिद्ध होना चाहिये। प्रश्नमे ही अिसको असम्भव-सा माना गया है, यानी प्रश्न पूछनेवालेने अपनी कल्पना-शक्तिका अभाव दिखाया है। अुनका यह पूछना ठीक है कि अैसी तालीम किस तरह दी जाय, जिससे कत्तिने बताये हुअे तरीके पर काम करे। अिस जवाबकी खोज करना ही चरखा-सघका खास काम है। अब तक अैसी खोज नही हो पायी है। चरखा-सघमे जितने सेवक है, अुनका तो यह धर्म है। अब तो काफी सूबोमे काग्रेसी लोगोके हाथोमे हुकूमत भी आ गअी है। सब सेवक खोज करे और अपने क्षेत्रमे विजयी बने। चरखा-सघके दफ्तरकी तरफ देखनेसे सफलता नही मिल सकती।

नअी दिल्ली, २६–४–’४६
हरिजनसेवक, ५–५–’४६

१८६

बन्दरोंकी शरारत

बन्दरोकी शरारतसे लोग थक जाते है। दिलमे तो खुद भी अुनको मारते है और कोअी मारे तो खुश होते है। लेकिन तो भी जब कोअी अुनको मारता है, तो वे ही लोग अुसका विरोध करते है। अेक भाअी, जो शास्त्रादिके अभ्यासी है, लिखते है कि बन्दर कैसे रसोअी बिगाडते है, चीजे अुठा ले जाते है, फलमात्र खा और बिगाड जाते है, यहा तक कि बच्चोको भी अुठा ले जाते है। दिन-दिन अुनकी बढोतरी होती है। वह मुझसे पूछते है, ‘अुनके लिअे अहिंसा क्या कहती है?’

मेरी अहिंसा मेरी ही है। जीवदयाका जो अर्थ किया जाता है, अुसे मै हजम नही कर सकता। जो जीव मनुष्यको खा जायें या अुसका नुकसान करे, अुन्हे बचानेकी दया मुझमे नही है। अुनकी वढोतरीमे हिस्सा लेना मै पाप समझता हू। अिसलिअे मै चीटियो, बन्दरो और कुत्तोको खाना नही खिलाअूगा। अुन जीवोको बचानेके लिअे किसी मनुष्यको मै कभी नही मारूगा।

अिस तरह विचार करते हुअे मै अिस नतीजे पर आया हू कि बन्दर जिस जगह अुपद्रव-रूप हो गये है, अुस जगह अुनको मारनेमें जो हिंसा होती है वह क्षम्य है। अैसी हिंसा धर्म होती है।

यह सवाल अुठ सकता है कि मनुष्यके लिअे भी यही नियम क्यो न लगाया जाय? मनुष्यके लिअे यह नही लग सकता, क्योकि वह हमारे जैसा ही है। अीश्वरने मनुष्यको बुद्धि दी है, जो मनुष्येतर प्राणीको नही दी।

नअी दिल्ली, २६–४–'४६
हरिजनसेवक, ५–५–'४६

१८७

सफेदपोशो पर आरोप

"मै स्त्री हू, पर विषयमें आपको लिखना अुचित समझती हू। लगभग तीन मास हुअे का नौकर . में के पास ठहरा था। कांग्रेसी लोगोंके बारेमें मेरे विचार बड़े पवित्र थे, अिसलिअे के सपर्कमें मै आ गअी। मै रोज चरखा कातती थी। वह दुष्ट भी रोज आया करता था और मुझे बेटी कहकर पुकारता था। मै भी अुसको चाचाजी कहा करती थी। अेक दिन शामको अेक मोटर कार आअी। दुष्ट ने मुझे कहा 'बेटी, कभी मोटर कारमें भी बैठी हो? अगर नही बैठी हो तो आओ, आज तुमको बैठाकर सैर करा लावे।' मुझे अुन पर किसी प्रकारका सन्देह न हुआ

और मैं अुनके साथ मोटर कारमें बैठ गअी। कारमें मुझे सीधा लाया गया। और मेरे मुहमें कपडा ठूस दिया गया, जिससे मैं बोल न सकू। अुसके बाद मैं . लाअी गअी और मेरे धर्मको बिगाडनेका कुछ दिन तक प्रयत्न किया गया। कअी बार भागना चाहा पर भाग न सकी। पिस्तौलका डर दिखाया जाता था और मैं डर जाया करती थी। जानका मोह हरअेकको होता है। अेक सेठ है, जो कि के बडे धनी सेठ है और सुना है कांग्रेसके बडे नेता है। अेक दिन वे मेरे पास आये। अुन्होने कहा 'मेरे साथ चली चलो, हम दोनो बडे मजे अुडायेंगे।' दुष्ट मेरी ओर देखकर हस रहा था। सच कहती हू महात्माजी, जैसा बरताव अिस चाण्डाल सेठने मेरे साथ किया वह वर्णनके बाहर है। और भी बहुतसे लोग है जिनके नाम मैं नही जानती। पर अिस सेठने अुस बुढियाको ७०० रुपये दिये थे। बुढियाने मुझको यह बतलाया कि यह बडा धनी सेठ है, अिसके साथ चली जा, मजेमें रहेगी। अेक दिन शामको की सहायतासे मुझे अिस नरककुण्डसे निकाल लिया गया।'

मुझे अैसे काफी खत मिले है। अुनमें कांग्रेसके नामी लोगो पर व्यभिचारका आरोप है। सब खत बनावटी है, अैसा मानकर बैठे रहना अुचित नही लगता। यह किसीने कभी दावा नही किया है कि सब कांग्रेसी अच्छे है। यह अभिमानकी बात है कि 'कांग्रेसमें कुछ भी अैब नही होना चाहिये' अैसी मान्यता रहती है। व्यभिचारादि हर किस्मके लोगोंमें चलता है। मेरा कर्तव्य अितना है कि अगर यह अिलजाम किसीको भी लागू होता है, तो अुसे दुरुस्त किया जाय। व्यभिचार करनेमें भी कुछ मर्यादा तो रहती है। अगर मुझे लिखनेवालोंने सब झूठी बातें नही लिखी है, तो यहा निर्दोष लड-कियोको फुसलाने तक बात चली गअी है।

नअी दिल्ली, २८-४-'४६

हरिजनसेवक, ५-५-'४६

१८८

धनिकोंका दान

अेक सज्जन लिखते है। अुसका निचोड यह है :

"आप धनिकोंसे काफी दान लेते है। अुसका सदुपयोग ही होता होगा अिसमें शक नही। सवाल तो यह है कि क्या अैसा दान किसी भी काममें ला सकते है? क्या अुससे दानियोंकी प्रतिष्ठा नही बढती? अिनमे तो ब्लैक मार्केटवाले भी आते है। अिस दानसे गरीबोंको कुछ भी लाभ हो सकता है?"

अिसकी तहमें सवाल तो यह आता है कि दानमात्र दूषित है। है, अिसमें भी मेरे मनमें शक नही है। लेकिन दुनिया अिस तरह चलती नही। गीताकारने तो कहा है कि सब आरम्भ दूषित होते है। अिसलिअे सब कार्य अनासक्तिसे ही करो। 'अीशोपनिषद्' कहता है, सब अीश्वरार्पण करके ही करो। अगर सब लोग दान लेना ही बन्द कर दे, तो भी हमे मानना पडेगा कि धनिक धन अिकट्ठा करना नही छोडेंगे। हम यह भी जानते है कि चन्द धनिक अैसे कजूस होते है कि कुछ दान ही नही देते। चन्द दुरुपयोगी दान देते है। अिसलिअे अितना ही कहा जा सकता है कि दान लेनेमे हम मर्यादा रखें, स्वार्थलाभके लिअे अेक कौडी भी न ले। जो कुछ ले, अुसमे अीश्वरको साक्षी समझें।

हा, अितना कहूगा सही कि अगर हम किसी वर्गके या व्यक्तिके प्रति कटु भाव रखते हो, तो हमे अुसका दान नही लेना चाहिये। जिनके मनमे नीति-अनीतिका भाव पैदा होता है अुनके लिअे ही अैसी चर्चा हो सकती है।

शिमला, ५–५–'४६
हरिजनसेवक, १२–५–'४६

१८९
शिमलाके वाल्मीकि

वाल्मीकिके मानी भगी है, सो तो पाठक जानते ही होगे। अुनके रहनेके घर वहुत ही खराव जगहमे है। अुनकी ओर कोअी ध्यान नही देते है। राजकुमारीजीने मेहनत की है, लेकिन अकेली वे क्या कर सकती है? मै तो वहा तक जा नही सका हू। वादशाहखान, जो मेरे साथ रहते है, अुनको जानेकी विनती की थी। अुनका अहवाल वताता है कि अिन भाओ-वहनोको वुरी तरह रखा जाता है। अुन भाअियोमे से कओ मेरे पास आ गये थे। अपने दूसरे दुखोकी कथा भी अुन्होने सुनाअी। मेरा खयाल है कि अगर अुनकी रहनेकी हालतमे दुरुस्ती हो जाय, तो वाकी सुवार हो ही जायगा। शिमलाके लोगोका और म्युनिसिपैलिटीका धर्म है कि अिस गन्दगीके वारेमे जो हो सकता है, सो जल्दी ही करे।

हम अुतने ही शुद्ध हो सकते है, जितने हममे से छोटे-से-छोटे शुद्ध है।

शिमला, १३–५–'४६

हरिजनसेवक, १९–५–'४६

१९०
सवाल-जवाब

स० — कांग्रेसके विधानमे 'हाथ-कती हाथ-वुनी' खादी चुनावमें खडे होनेवालोके लिअे आदतन् पहनना जरूरी रखा गया है। क्या अिसके यह मानी नही है कि वह खादी अखिल भारत चरखा-सघसे प्रमाणित होनी चाहिये?

ज० — मेरी दृष्टिमें तो चरखा-सघसे प्रमाणित खादी ही खादी हो सकती है।

स० — क्या अप्रमाणित खादीका व्यापार करनेवाला कांग्रेस-कमेटीके ओहदेदारोके चुनावमे खडा हो सकता है?

ज० — मेरी समझमें आ ही नहीं पाता कि अप्रमाणित खादीका व्यापार करनेवाला कोअी कांग्रेसमैन कैसे हो सकता है या ओहदेदारोंके चुनावमें कैसे आ सकता है?

स० — आप कहते हैं कि अप्रमाणित खादीका व्यापार करनेवाला कांग्रेसी कैसे हो सकता है? ओहदेदार बननेकी तो बात ही क्या? लेकिन जो लोग मिलोंके कपडेका व्यापार करते हैं और विदेशी कपडा भी बेचते हैं पर खादी पहन लेते हैं, वे कांग्रेसके ओहदेदार बने हुअे हैं। अुनका क्या?

ज० — मैं तो अैसे लोगोंके लिअे भी यही कहूंगा। अैसे ही कारणोंसे मैंने अिस हफ्तेके 'हरिजन' में सलाह दी है कि कांग्रेसके विधानसे खादीकी धारा ही हटा दी जाय, क्योंकि अनुभव हमें सिखाता है कि हम अिस शर्तका पालन करनेमें असमर्थ हैं।

शिमला, ८–५–'४६
हरिजनसेवक, १९–५–'४६

१९१
हिंसा कैसे रोकें?

स० — कुछ दिन पहले मैं पूनामें अेक अंग्रेज मिलिटरी अफसरसे मिला था। वह विलायत जा रहे थे। अुन्होंने मुझसे कहा कि अब हिन्दुस्तानमें हिंसा बढ रही है और आगे और भी बढेगी। लोग अहिंसाके रास्तेको छोडते जा रहे हैं। अुन्होंने यह भी कहा "हम लोग हिंसामें मानते हैं। हिंसासे हमारा जीवन बंधा पडा है। कअी गुलाम देशोंने हिंसाके जरिये अपनी आजादी हासिल की है, और आजकल वे सुखसे दिन बिता रहे हैं। हमने हिंसाको रोकनेके लिअे अणु-गोला भी निकाला। दुनिया जानती है कि किस तरह थोडे वक्तके अंदर ही हमने खूंखार लडाअीको अणु-गोलेकी मददसे बन्द कर दिया।"

साहब बहादुर और कहने लगे "हिन्दुस्तानमें महात्मा गांधीने लोगोंको अहिंसाका रास्ता बताया है। लेकिन क्या गांधीजीने अणु-

गोले जैसी कोअी चीज निकाली है, जिसका अिस्तेमाल करनेसे लोग फौरन अहिंसाके रास्ते आ जाय और देशमे शातिका राज्य कायम हो जाय? क्या अब गाधीजीका अणु-गोला देशको हिंसाके रास्ते जानेसे रोक नही सकता?"

फिर वह मुझसे बोले "आप अपने गाधीजीसे क्यो नही कहते कि वे अिस वक्त देश पर अपनी शक्ति छोडे, जिससे लोग हिंसाके रास्तेको तर्क कर दे और फिरसे सब मिलकर अहिंसा अख्तियार कर ले? मै तो कहता हू कि अगर गाधीजी अिस भीषण हिंसाको, जो आज सारे हिन्दुस्तानमे फैल रही है, अभीसे नही रोकेगे, तो बादमे अुनको बहुत ही दुखी होना पडेगा और अुनका अितने दिनोका काम बरबाद हो जायगा।"

आशा है, आप कृपाकर अिन अग्रेज अफसरकी शकाका जवाब देगे।

ज०—अिस सवालमे काफी विचारदोष पाता हू। अणु-गोलेने हिंसाको नही रोका है। लोगोके मनमे तो हिसा भरी ही है, और तीसरी लडाअीकी तैयारिया होती दिखाअी पडती है। यह कहना फजूल है कि हिंसासे किसीको सुख-चैन मिला है। फिर भी यह कोअी नही कहता कि हिंसासे कुछ हो ही नही सकता।

मै हिंसाको रोक न सकू तो मुझे पछताना पडेगा, अैसी कोअी बात अहिंसामे हो ही नही सकती। कोअी भी आदमी हिसाको रोक नही सकता। अीश्वर ही हिंसाको रोक सकता है। मनुष्यको तो वह निमित्तमात्र बनाता है। हिंसा किसी बाहरी प्रयोगसे रोकी नही जा सकती। लेकिन अिसका यह मतलब नही कि कोअी बाहरी प्रयोग हो नही सकता या होता नही। बाहरी अुपायोके होते हुअे भी वह रुकी तो अीश्वरकी कृपासे ही रुकेगी। हा, अितना कहूगा कि 'अीश्वरकी कृपा' रूढ प्रयोग है। अीश्वर अपने कानूनके मुताबिक ही चलता है। अिसलिअे हिंसा अुस कानूनके मुताबिक ही रुकेगी। हम अीश्वरके सब कानूनोको जानते नही है, न कभी पूरे-पूरे जानेगे। अिसलिअे जो प्रयत्न हमसे बन सके, सो हम करते रहें। अितना और भी कह दू कि

मेरा विश्वास है कि हिन्दुस्तानमें अहिंसाका प्रयोग काफी हद तक सफल हुआ है। मैं मानता हूं कि सवालमें जो निराशा जाहिर की गअी है अुसकी कोअी गुंजाअिश नहीं है। आखिर अहिंसा जगतका अेक महान सिद्धान्त है। अुसे कोअी मिटा नहीं सकता। मेरे जैसे हजारोंके अुस पर अमल करते-करते मर जानेसे भी वह सिद्धान्त मिट नहीं सकता। मरकर ही अहिंसाका प्रचार बढ़ेगा।

शिमला, ९–५–'४६
हरिजनसेवक, १९–५–'४६

१९२

अंग्रेजी भाषाका प्रभाव

"आप हिन्दुस्तानीके प्रचारके लिअे अनथक प्रयत्न कर रहे हैं। आपको यह भी अच्छा नहीं लगता कि कोअी भारतवासी अपने प्रान्तकी भाषा या हिन्दुस्तानी भाषाके अतिरिक्त विदेशी भाषामें बोले या लिखे। लेकिन हमारे कहे जानेवाले कौमी अखबारोंका, जो अंग्रेजीमें निकलते हैं और साथ ही हिन्दुस्तानी या प्रान्तीय भाषाका अखबार भी निकालते हैं, कौमी भाषाके प्रचारकी ओर जो बरताव है, अुसकी तरफ मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूं और पूछना चाहता हूं कि अिस तरह कौमी भाषाको कैसे प्रोत्साहन मिल सकता है? आप किसी अंग्रेजी भाषाके कौमी अखबारके खर्चका और अुसी जगहसे निकलने-वाले देशी भाषाके अखबारके खर्चका मुकाबला करें। आप देखेंगे कि जो वेतन अंग्रेजी अखबारके महकमेको दिया जाता है, अुसका १० वां हिस्सा भी देशी भाषाके महकमेवालोंको नहीं दिया जाता। अंग्रेजी अखबारका संपादक २,००० रुपये माहवार पाता है, और हिन्दी अखबारका संपादक २०० रुपये माहवार भी नहीं

पाता। अंग्रेजी भाषावालोंको सब सहूलियतें मौजूद हैं। खबरें सीधी टेलिप्रिण्टर पर आती हैं और अुन्हें कंपोज कर दिया जाता है। हिन्दीवालोंको तरजुमा करना पड़ता है। दुगुनी मेहनत करनी पड़ती है। फिर भी न अुनकी कदर है, न अुनको कोअी प्रोत्साहन है। फिर वे क्यों अपनी भाषाके लिअे सरमारी करें, जब कि वे देखते हैं कि अंग्रेजीवालोंकी ही सब जगह कदर है, और अुनको कम मेहनत करने पर भी खूब पैसे दिये जाते हैं? यह भी देखनेकी बात है कि देशी भाषाके अखबारोंकी बिक्री अंग्रेजी अखबारोंसे कुछ कम नहीं है, बल्कि ज्यादा ही होगी। मगर जैसे रेलवेवाले तीसरे दरजेके मुसाफिरोंसे सबसे ज्यादा पैसा कमाते हैं और अुनके आरामकी तरफ ध्यान न देकर दूसरे और पहले दरजेके मुसाफिरोंकी तरफ ही ध्यान रखते हैं, वैसा ही बरताव ये अंग्रेजी अखबारवाले हिन्दुस्तानी या प्रान्तीय भाषाके जानकारोंके साथ कर रहे हैं। अपनी बहुत दिनोंकी यह शिकायत 'हरिजनसेवक' के जरिये जवाब पानेके लिअे मैंने आपके सामने रखी है।"

यह खत अेक मेहनती सेवकने लिखा है। अुसने जो लिखा है, अुसे वह जानता है। लेखककी यह शिकायत सारे हिन्दुस्तानको जाहिर है। बात तो यह है कि अंग्रेजीका प्रभाव और मोह कैसे मिटे? अुसे मिटाना स्वराज्यकी लड़ाअीका बड़ा हिस्सा है। नहीं है, तो स्वराज्यके मानी बदलने होंगे। गुलामीमें गुलामको अपने सरदारकी रहन-सहनकी नकल करनी पड़ती है। अुसे सरदारका लिबास, सरदारकी भाषा वगैराकी नकल करनी होगी, यहां तक कि रफ्ता-रफ्ता वह और कुछ पसन्द ही नहीं करेगा। जब स्वराज्य आयेगा, जब अंग्रेजी हुकूमत अुठ जायेगी, तब अंग्रेजीका प्रभाव भी अुठ जायेगा। अिस बीच जिनके दिलमें अंग्रेजीका प्रभाव मुल्कके लिअे हानिकर सिद्ध हुआ है, वे सिर्फ राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीका या अपनी मातृभाषाका ही प्रयोग करेंगे।

अंग्रेजी जाननेवाले राष्ट्रभाषा जाननेवालोंसे १० गुना ज्यादा कमाते हैं सो सही है। अिसका अुपाय भी हमारे हाथोंमें है।

अैसे लोगोका दाम तो अंग्रेजी सल्तनतके जानेसे अेकदम गिरना चाहिये। असलमे तो अैसा कभी होना ही न चाहिये था, क्योंकि आज अंग्रेजी जाननेवाले जितना लेते है अुतना देने लायक यह मुल्क हरगिज नही है। हम गरीब मुल्कके है और जब तक गरीब-से-गरीब भी आगे नही बढते है तब तक बडी तनख्वाह लेनेका हमे कोअी हक नही है। सही बात तो यह है कि राष्ट्रभाषामे या मातृभाषामे जो अखबार निकलते है अुन्हे पढनेवाले अुनकी कीमत घटा या बढा सकते है। अगर हम अंग्रेजी अखबारोको धर्मपुस्तक समझना छोड दे और जो अखबार हमारे प्रान्त या राष्ट्रकी भाषामे निकलते है अुन्हीका आदर बढा दे, तो अखबारवाले समझ जायेगे कि अब अंग्रेजी अखबारकी कीमत नही रही है। अैसा कुछ हो भी रहा है। अेक जमाना था कि जब मातृभाषामे या राष्ट्रकी भाषामे निकलनेवाले अखबार कम पढे जाते थे। अब तो अैसे अखबारोकी सख्या बढ गअी है, ग्राहकोकी सख्या भी बढ रही है।

लेकिन जैसे जनताका धर्म रहा है, वैसे ही भाषाप्रेमी अखबारवालोका भी कुछ धर्म है। यह दुखकी बात है कि राष्ट्रभाषामे या प्रान्तोकी भाषामे या कहिये कि मादरी जबानमें जो अखबार निकलते है अुन्हे चलानेवाले भाषाका गौरव बढाते नही। और अुनमे छपनेवाले लेखोमे मौलिकता कम रहती है। अिन दोषोको दूर करना अखबारवालोका ही काम है।

नअी दिल्ली, २१–५–'४६
हरिजनसेवक, २६–५–'४६

१९३

अुरुलीकांचनमें कुदरती अुपचार

हिन्दुस्तानके देहातमे कुदरती अुपचार कैसे चल सकता है, काचन गाव अुसका अेक नमूना वन सकेगा, अिस अुम्मीदसे और काचननिवासियोंके कहनेसे मै वहा चला गया और काम शुरू किया। ग्रामवासियोने मदद की। वहा जो जमीन मिलनेवाली थी और मकान वननेवाले थे, सो तो कुछ हो नही सका है। देहातियोने पैसे तो दिये है, लेकिन पैसे देनेसे काम नही निपटता है। लोगोको जमीन ढूढनी चाहिये, मकान वनानेमे मदद करनी चाहिये। लोगोका अिस काममे रस लेना पैसे देनेसे ज्यादा जरूरी है।

लेकिन जो मै लिखना चाहता हू सो तो दूसरी चीज है। वहाके सेवक मुझे लिखते है कि काचनवासी कुदरती अुपचारको समझने लगे है और अुसकी कदर करते है। सेवकोको अितना भरोसा हो गया है कि मै जून महीने तक भी काचन गावमे न पहुचू तो कोअी फिकर नही। वे कहते है कि काचन गावमे लोगोकी तरफसे अैसा सुन्दर साथ मिल रहा है कि मै पचगनी-महावलेश्वरसे अुतरकर ही काचन जाअू, तो भी कोअी हर्ज नही। यह सव सुनकर मुझे अच्छा लगता है, और अिससे अैसा अनुमान किया जा सकता है कि दूसरे देहात भी कुदरती अुपचारकी कदर करेगे।

कुदरती अुपचारके दो पहलू है अेक, अीश्वरकी शक्ति यानी रामनामसे दर्द मिटाना, और दूसरे, अैसे अुपाय करना कि दर्द पैदा ही न हो सके। मेरे साथी लिखते है कि काचन गावके लोग गावको साफ रखनेमे मदद देते है। जिस जगह शरीर-सफाअी, घर-सफाअी और ग्राम-सफाअी हो, युक्ताहार हो और योग्य व्यायाम हो, वहा कम-से-कम वीमारी होती है। और अगर चित्तशुद्धि भी हो, तो कहा जा सकता है कि वीमारी असम्भव हो जाती है। रामनामके विना चित्तशुद्धि

नहीं हो सकती। अगर देहातवाले अितनी वात समझ जाय तो वैद्य, हकीम या डॉक्टरकी जरूरत न रह जाय।

काचन गावमे गाये नामको ही है। अिसे मैं कमनसीवी मानता हू। कुछ भैसे है, लेकिन मेरे पास जितने प्रमाण है वे वताते है कि गाय सवसे ज्यादा अुपयोगी प्राणी है। गायका दूध भी खानेमे आरोग्य-प्रद है और गायका जो अुपयोग किया जा सकता है वह भैसका कभी नहीं किया जा सकता। मरीजोंके लिअे तो वैद्य लोग गायके दूवका ही अुपयोग वतलाते हैं। अिसलिअे मैं अुम्मीद रखूगा कि काचनवासी अुरुलीमे गायोका अेक जूथ रखेगे, जिससे सव लोगोको गायका ताजा और साफ दूव मिल सके। सेहत अच्छी रखनेके लिअे दूवकी वहुत ज्यादा जरूरत रहती है।

मकान जितने जल्दी वन सके अुतना ही अच्छा है। अेक वात तो यह है कि श्री दातारके वगलेका अुपयोग कहा तक करना ठीक होगा, और दूसरी व ज्यादा महत्त्वकी वात यह है कि जव तक मकान नहीं वनता तव तक सव अुपचार आसानीसे किये नही जा सकते। कभी-कभी मरीजोको अुपचार-गृहमे रखना भी जरूरी हो जाता है। मैं आशा यह रखूगा कि काचन ग्राम सव तरहसे आदर्श गाव वने। कुदरती अुपचारके गर्भमे यह वात रही है कि मानव-जीवनकी आदर्श रचनामे देहातकी या शहरकी आदर्श रचना आ ही जाती है और अुसका मध्यविन्दु तो अीश्वर ही हो सकता है।

नअी दिल्ली, २१–५–'४६

हरिजनसेवक, २६–५–'४६

गरीबोंके लिअे कुदरती अिलाज

स० — जब आप गरीब आदमियोंसे जुवारकी 'भाखरी' छोड़कर मोसम्मीका रस या दूसरे फल और दूध लेनेको कहते हैं, तो यह गरीबीका अुपहास करने जैसा लगता है। मैंने देखा है कि गरीब देहाती अपनी तंगदस्तीको छिपानेके लिअे 'भाखरी' खाकर भी हमसे कहते थे कि अुन्होंने दूध पिया है। अिन गरीब आदमियोंके लिअे तो जीवनका मतलब दिन-रात काममें जुटे रहकर किसी तरह अपने बच्चोंका और अपना पेट भर लेना ही है। अुन्हें अपनी जानकी अितनी परवाह नहीं होती जितनी अपने खेत और बच्चोंकी। कअी देहातियोंने मुझे बतलाया है कि वे जमींदार और साहूकारके नौकरोंकी गाली और लात-घूँसे सहनेके बनिस्बत बुखारसे मर जाना ज्यादा पसन्द करते हैं। देहातियोंकी आजकी माली हालतको देखकर मैं कह सकता हूँ कि कुदरती अिलाज सिर्फ अुन लोगोंके लिअे है, जिनके पास पैसा है और वक्त है, अुन गरीबोंके लिअे नहीं, जो अेक घण्टेकी भी देर कर दें तो अुन्हें मजदूरी न मिले और अुनको व अुनके बाल-बच्चोंको फाका करना पड़ जाय।

अगर वाकअी आप कुदरती अिलाजके जरिये गरीब देहातियोंकी सेवा करना चाहते हैं, तो आपको अैसे अुपचार-गृह खोलने चाहिये, जहाँ रोगियोंके रहनेकी व्यवस्था हो, अुन्हें खाने-पीनेको रस और दूध मिल सके और ओढ़ने-बिछानेको साफ कपड़े मिलें। यही नहीं, बल्कि अगर रोगी कमानेवाला आदमी है, तो जितना वह रोज कमाता है, कम-से-कम अुतने पैसे भी अुसके घरवालोंको मिलने चाहिये।

जैसा कि आप कहते हैं, कुदरती अिलाज जीवन बितानेका अेक नया ढंग है। तो क्या अिलाजके साथ ही वैसा जीवन बितानेकी तालीम और अुसको अमलमें लानेके साधन भी अुन्हें देनेकी जरूरत नहीं है?

ज० — यह शंका अुठाकर सवाल पूछनेवाले अपना अज्ञान जाहिर करते हैं। मैंने जो लिखा है, अुसे विचारपूर्वक पढ़नेकी कोशिश

तक नही की गअी है। कुदरती अुपचारके गर्भमे यह बात रही है कि अुसमे कम-से-कम खर्च और कम-से-कम व्यवसाय होना चाहिये। कुदरती अुपचारका आदर्श ही यह है कि जहा तक सभव हो अुसके साधन अैसे होने चाहिये कि अुपचार देहातमे ही हो सके। जो साधन नही है, वे पैदा किये जाने चाहिये। कुदरती अुपचारमे जीवन-परिवर्तनकी बात आती है। यह कोअी वैद्यकी दी हुअी पुडिया लेनेकी बात नही है, और न अस्पताल जाकर मुफ्त दवा लेने या अुसमे रहनेकी ही बात है। जो मुफ्त दवा लेता है, वह भिक्षुक बनता है। जो कुदरती अुपचार करता है, वह कभी भी भिक्षुक नही बनता। वह अपनी प्रतिष्ठा बढाता है और अच्छा बननेका अुपाय खुद ही कर लेता है। वह अपने शरीरमे से जहर निकालकर अैसी कोशिश करता है कि जिससे दुबारा बीमार न पड सके।

और कुदरती अिलाजमे मध्यबिन्दु तो रामनाम ही है न? रामनामसे आदमी सुरक्षित बनता है। शर्त यह है कि नाम भीतरसे निकलना चाहिये। और, रामनामके भीतरसे निकलनेके लिअे नियम-पालन जरूरी हो जाता है। अुस हालतमें मनुष्य रोग-रहित होता है। अिसमें न कष्टकी बात है, न खर्चकी।

मोसम्बी खाना अुपचारका अनिवार्य अग नही। पथ्य खाना — युक्ताहार लेना — अवश्य अनिवार्य अग है। हमारे देहात हमारी तरह ही कगाल है। देहातमें साग-सब्जी, फल, दूध वगैरा पैदा करना कुदरती अिलाजका खास अग है। अिसमे जो वक्त खर्च होता है वह व्यर्थ तो है ही नही, बल्कि अुससे सभी देहातियोंको और आखिरकार सारे हिन्दुस्तानको लाभ होता है। यह बात ठीक है कि देहातमें और शहरोंमे भी अैसे अुपचार-गृह होने चाहिये। अीश्वरकी कृपा होगी तो सब हो जायगा। हरअेक व्यक्तिका काम तो यह है कि वह अपना फर्ज अदा करे और फल अीश्वर पर छोड दे।

नअी दिल्ली, २५–५–'४६

हरिजनसेवक, २–६–'४६

रामनामका मजाक

स० — आप जानते है कि आज हम अितने जाहिल हो गये है कि जो चीज हमे अच्छी लगती है या जिस महापुरुषको हम मानते है, अुसकी आत्माको — अुसके सिद्धान्तोको — न लेकर हम अुसके भौतिक शरीरकी पूजा करने लगते है। रामलीला, कृष्णलीला और हालमे ही वना गाधी-मदिर अिसके जिन्दा प्रमाण है। वनारसका रामनाम वैक और रामनाम छपा कपडा पहनना या शरीर पर रामनाम लिखकर घूमना 'रामनाम' का मजाक और हमारा पतन नही है तो क्या है? अैसी हालतमे 'रामनाम' का प्रचार करके क्या आप अिन ढोगियोके हाथमे पत्थर नही दे रहे है? अन्तर-प्रेरणासे निकला हुआ 'रामनाम' ही रामवाण हो सकता है। और मै मानता हू कि अैसी अन्तर-प्रेरणा सच्ची धार्मिक शिक्षासे ही मिलेगी।

ज० — यह ठीक कहा है। आजकल हमारे अन्दर अितना वहम फैला हुआ है और अितना दभ चलता है कि सही चीज करनेसे भी डरना पडता है। लेकिन अिस तरह डरते रहनेसे तो सचको भी छिपाना पड सकता है। अिसलिअे सुनहला कानून तो यही है कि जिसे हम सही समझें, अुसे निडर होकर करे। दभ और झूठ तो जगतमे चलता ही रहेगा। हमारे सही चीज करनेसे वह कुछ कम ही होगा, वढ कभी नही सकता। यह ध्यान रहे कि जव चारो ओर झूठ चलता हो, तव हम भी अुसीमे फसकर अपनेको धोखा न दे। अपनी शिथिलताके कारण हम अनजाने भी अैसी गलती न करे। हर हालतमे सावधान रहना तो कर्तव्य ही है। सत्यका पुजारी दूसरा कुछ कर ही नही सकता। रामनाम जैसी रामवाण औषध लेनेमें सतत जागृति न हो, तो रामनाम फोकट जाय और हम वहुतसे वहमोमे अेक और वहम वढा दे।

नअी दिल्ली, २५–५–'४६

हरिजनसेवक, २–६–'४६

१९६

सवाल-जवाब

राम कौन?

स०—आप कहा करते हैं कि प्रार्थनामें प्रयुक्त 'राम' का आशय दशरथके पुत्र रामसे नही। आपका आशय 'जगन्नियता' से होता है। हमने भलीभाति देखा है कि 'रामधुन' मे 'राजाराम, सीताराम' 'राजाराम, सीताराम' का कीर्तन होता है। और जयकार भी 'सिया-पति रामचन्द्रकी जय' का लगता है। मै विनम्र भावसे पूछता हू कि यह सियापति राम कौन है? यह राजाराम कौन है? क्या ये दश-रथके सुपुत्र राम नही हैं? अूपरकी पक्तियोका अर्थ तो स्पष्टतया यही लगता है कि प्रार्थनामे आराध्य जानकी-पति दशरथ-पुत्र राम ही हैं।

ज०—अैसे प्रश्नका अुत्तर मै दे चुका हू, मगर अिसमे कुछ नया भी है, जो अुत्तरकी अपेक्षा रखता है। रामधुनमें 'राजाराम', 'सीताराम' रटा जाता हे, वह दशरथ-नन्दन राम नही तो कौन हैं? तुलसीदासजीने तो अिसका अुत्तर दिया ही है, तो भी मुझे कहना चाहिये कि मेरी राय कैसे बनी है। रामसे रामनाम बडा है। हिन्दूधर्म महासागर हे। अुसमे अनेक रत्न भरे हैं। जितने गहरे पानीमें जाओ, अुतने ज्यादा रत्न मिलते है। हिन्दूधर्ममे अीश्वरके अनेक नाम हैं। सैकडों लोग राम-कृष्णको अैतिहासिक व्यक्ति मानते हैं, और मानते हैं कि जो राम दशरथके पुत्र माने जाते हैं, वही अीश्वरके रूपमें पृथ्वी पर आये, और यह कि अुनकी पूजासे आदमी मुक्ति पाता हे। अैसा ही कृष्णके लिअे है। अितिहास, कल्पना और शुद्ध सत्य आपसमें अितने ओतप्रोत हैं कि अुन्हें अलग करना करीब-करीब असभव है। मैने अपने लिअे सब सज्ञाअे रखी हैं। और अुन सबमे मै निराकार, सर्वस्थ रामको ही देखता हू। मेरे लिअे मेरा राम सीतापति

दशरथ-नदन कहलाते हुअे भी वह सर्वशक्तिमान अीश्वर ही है, जिसका नाम हृदयमे होनेसे सब दु खोका नाश हो जाता है।

नअी दिल्ली, २६–५–'४६
हरिजनसेवक, २–६–'४६

१९७
अुरुलीकांचन

काचन गावसे मेरे साथी मुझे खबर देते है कि वहा दूर-दूरसे लोग अिलाजके लिअे जा रहे है। मैंने 'हरिजनसेवक' मे लिखा तो है कि अब तक वहा जगहका भी ठिकाना नही है। अब खबर आअी है कि थोडी जमीन मिल गअी है, लेकिन अुस पर मकान वगैरा बनाना अभी बाकी है, और, वहा अैसा कोअी मकान भी नही है, जिसमे मरीजोको रखा जा सके। बाहरके मरीजोको लेनेका प्रबंध तो वहा हो ही नही सकेगा। यह देहातको शहर बनानेका साहस नही। ध्येय तो यह है कि हर देहातमे जैसे पाठशाला होनी चाहिये, वैसे ही वहा अेक नैसर्गिक अुपचार-गृह भी बने। वह देहातकी शोभा बनेगा। अिसके पढनेवाले याद रखे कि अुरुलीकाचन गावमे रहनेवाले मेरे साथी पत्रव्यवहारसे भी मरीजोको सलाह देनेमे, अुनकी रहनुमाअी करनेमे, असमर्थ है। दूरवाले समझे कि वे अपने लिअे कुदरती अिलाज खुद ही कर सकते है। रामनाम कौन नही ले सकता? या कटि-स्नान कौन नही कर सकता?

मसूरी, २–६–'४६
हरिजनसेवक, ९–६–'४६

१९८
खादीके बारेमे संवाद

अेक खादी-सेवक लिखते है

"अेक खादी-भडारके सचालक और ग्राहकोके बीच हुअी हालकी अेक बातचीत नीचे देता हू। कृपया लिखे कि क्या अिन ग्राहकोको खादी बेची जा सकती है?

सवाल-जवाब यो है

स०—क्या यह सूत आपने खुद काता है?

ज०—नही, मै १० रुपयेकी ८ गुण्डी खरीदकर लाया हू।

स०—दूसरेसे पूछा क्या आप यह सारा सूत कात लेते है?

ज०—नही, अिसे मेरी लडकीने काता है। हम तो बारह आनेकी अेक गुण्डीके हिसाबसे बेचते भी है।

स०—तीसरेसे कहा यदि आपके पास सूत नही है, तो आपको खादी नही मिलेगी।

ज०—कोअी परवाह नही। जब तक मुझे सूत नही मिलता, मै अप्रमाणित खादी ही पहनूगा।

स०—चौथेसे पूछा गया आप खादी क्यो खरीदते है?

ज०—क्योकि वह आसानीसे मिल जाती है।

स०—पाचवेसे बात हुअी आप तो खादीधारी नही, फिर अिस खादीका क्या होगा?

ज०—आजकल कुछ खादी पहनना भी फैशनमे शरीक है।

स०—छठेसे कहा आप तो कातते ही नही, फिर यह सूत कहासे लाये?

ज०—मेरे अेक भले दोस्त हमेशा सूत देते रहते है।

स०—सातवेसे पूछा आप हमेशा रेशमी या अूनी खादी ही क्यो पहनते है?

ज०—क्योकि अिसके लिअे सूत नही देना पडता।

स० — आठवेंने बहुतसी खादी खरीदी। अुनसे पूछा गया अितनी सारी खादी खरीदकर क्या करेंगे?

ज० — अिकट्ठा करके रखूंगा। दो-तीन साल चलेगी। फिर मिले या न मिले।"

ये सब सवाल-जवाब बहुत सूचक हैं। अगर खादीकी नअी नीति सही है और सब ग्राहक अिस प्रकारके हैं, तो वे खादीको कांग्रेसके विधानसे निकाल देनेकी आवश्यकता सिद्ध करते हैं। याद रहे कि अिस सवाल-जवाबमें खादीके आठ ग्राहक आ जाते हैं। अिनमें से अेकके लिअे भी चरखा-संघके खादी-भंडारकी आवश्यकता सिद्ध नहीं होती। चरखा-संघकी हस्ती ही गरीबोंके लिअे है। जो खादी पहनते हैं, वे या तो गरीबोंके लिअे पहनते हैं या स्वराज्यके लिअे। अिन आठ महाशयोंको न स्वराज्यकी पड़ी है, न गरीबोंकी। खादीकी जड़में जो कल्पना रखी गअी है, यदि अुसे साबित करके दिखाना है तो चरखा-संघवालोंको अपनी नीति पर अिस हद तक कायम रहना पड़ेगा कि वे खादी बेचनेके भण्डारोंको बन्द करनेसे भी न डरें। जो गलती हमने की है, अुसके लिअे सब सहनेकी तैयारी हममें होनी चाहिये। अिन सवाल-जवाबोंका अेक सार यह भी है कि खादी-भंडारोंके संचालक जाग्रत रहें। वे खादी-शास्त्रका भलीभांति पठन करें और सब ग्राहकोंको विनय और धीरजसे खादीका रहस्य समझा दें। अिसमें जो थोड़ा समय जायेगा, अुसकी परवाह न करें। अगर हमें खादीकी शक्तिमें विश्वास है, तो मुझे कोअी शक नहीं कि हमारे दृढ रहनेसे सब लोग अुसे समझ जायेंगे। अगर हममें ही विश्वास नहीं है, तो हमारा दावा अपने-आप खतम हो जायगा।

मैंने यह मान लिया है कि संवाद जैसा हुआ है, वैसा ही खादी-सेवकने दिया है।

मसूरी, १–६–'४६
हरिजनसेवक, ९–६–'४६

१९९
अुर्दू दोनोंकी भाषा?

अेक विद्वान हिन्दी-प्रेमी लिखते है

१ "जिस प्रकार आप अुद्योग कर रहे है कि भारतवासी, विशेषकर हिन्दू — क्योंकि आपके दैनिक सपर्कमें हिन्दू ही अधिक आते है — अुर्दू सीख लें, अुसी प्रकार क्या कोअी सज्जन मुसलमानोंको भी हिन्दी सिखानेका अुद्योग कर रहे है? यदि अैसा नही है तो आप ही के अुद्योगके कारण अुर्दू हिन्दू-मुसलमान दोनोंकी भाषा हो जायगी और हिन्दी केवल हिन्दुओंकी भाषा रह जायगी। क्या अिससे हिन्दीकी सेवा होगी?

२ "आपके यहाके लेखोंमें हिन्दी शब्दोंके अुर्दू पर्याय कोष्ठकमें दिये जाते है, परतु अुर्दू शब्दोंके हिन्दी पर्याय नही दिये होते। क्या यह हिन्दी-भाषियोंको जबरदस्ती अुर्दू पटानेकी चेष्टा नही है?

३ "आपके प्रकाशनोंमें फारसी, अरबी शब्दोंकी भरमार रहती है। क्या आपके विचारसे ये शब्द अैसे है, जिन्हे भारतकी साधारण जनता समझती है? अुदाहरणके लिअे — 'अदब', 'आदाब', 'अेतकाद'।

४ "यदि हिन्दुस्तानी अेक भाषा है, तो आपको शिक्षा-योजनाकी पाठ्यपुस्तकोंके हिन्दी-अुर्दू सस्करणोंमें अितना अन्तर क्यों रखना पडता है?

५ "मेरा नम्र निवेदन है कि अभी तक जो लाखों दक्षिणी हिन्दी सीखते है, अुनमें से अधिकाश अुर्दू लिपिके डरसे दोनोंमे से अेक लिपि भी नही सीखेंगे और हिन्दी-प्रचारका आज तकका कार्य मटिया-मेट हो जायगा।"

१ कोशिश तो की जा रही है कि जो अुर्दू ही जानते है, वे हिन्दी रूप सीख लें। हिन्दी जाननेवाले अुर्दू रूप सीख ले। यह बात सच है कि मुझे हिन्दी जाननेवाले हिन्दू ही ज्यादा मिलते है। अिससे

मुझे कोअी कष्ट नही। हिन्दू हिन्दी भूलनेवाले नही है। अुर्दूके ज्ञानसे अुनकी हिन्दी बढेगी ही। भारतवर्षमे जो लोग है, वे हिन्दू हो या मुसलमान, अुनमे ज्यादा हिस्सा तो अपने प्रान्तकी ही भाषा जाननेवाले है। वे हिन्दी रूप तो भूल ही नही सकते, क्योकि हिन्दीमे और प्रान्तीय भाषाओमे अधिक शब्द सस्कृतके ही है। और माना कि मेरे प्रयत्नका नतीजा यह आवे कि सब अुर्दू रूप ही सीख जाय, तो भी मुझे अुसका न तो कोअी डर है, न वैसी कोअी आशा ही। जो स्वाभाविक होगा, वही होनेवाला है। दोनो रूपोको मिलानेके साहसको मे सब पहलुओसे अच्छा ही मानता हू।

२ मैने हिन्दुस्तानी-प्रचारके सब प्रकाशन पढे नही है। अगर अुनमे हिन्दी शब्दोके अुर्दू शब्द भी दिये है, तो अुसमे फायदा ही है। अुसका अर्थ तो यह होगा कि पुस्तकके लेखककी नजरमे हिन्दीके अुर्दू शब्द पाठक लोग नही जानते होगे। अुर्दूके हिन्दी नही दिये जाते है, तो अर्थ यह हुआ कि वे शब्द हिन्दीमे चालू हो गये है। समझमे नही आता कि अैसी सीधी बातमे भी विद्वान लेखक शक क्यो करते है? अैसा शक लाना विद्याका भूषण नही है।

३ यह बात सही नही है। अगर सही भी हो, तो अुसमे हानि क्या हो सकती है? भाषामे अैसे शब्द दाखिल होनेसे भाषाका गौरव बढेगा। नॉर्मन हमलेके बाद अग्रेजीमे फ्रेन्च भाषाके मारफत जो शब्द दाखिल हुअे, अुनमे अग्रेजी भाषाका जोर बढा, कम नही हुआ। जितना आडम्बर था या अतिशयता थी, वह निकल गअी। जो अुदाहरण लेखकने दिये है, अुन्हे अुत्तरके सभी हिन्दी-प्रेमी जानते है। अुन्होने हिन्दी बोलीमे अपनी जगह बना ली है। दक्षिणकी हिन्दीके लिअे वे नये है सही। अुसके लिअे अुनके सस्कृत शब्द देनेकी जरूरत रहेगी। और अैसी मदद दी भी जाती है। बात यह है कि हिन्दुस्तानी-प्रचारमे न अेकका द्वेष है, न दूसरीका पक्षपात। दोनो रूप मौजूद है और रहेगे। अुसमे आपत्ति न होनी चाहिये। अगर दोनो पक्षोमें द्वेषभाव ही रहा, तो हिन्दुस्तानी नही बनेगी। अैसा हुआ, तो वह हिन्दुस्तानके लिअे बुरा होगा।

४ हिन्दुस्तानी अेक जमानेमें थी। अब तो बहुत देखनेमे नही आती। अिसीलिअे यत्न हो रहा है कि जो भाषा दोनोके मेलरूप हिन्दुस्तानी शकलमे थी, वह अब भी बने और बढे। अिससे न हिन्दी-वाले दुःख माने, न अुर्दूवाले। हिन्दी और अुर्दू दोनो बहनें है। बहनोंके मिलनेसे क्या नुकसान होनेवाला है? अिस संधि-युगमे दोनों रूपमे हिन्दुस्तानी-प्रचारकी पुस्तकोंमे अन्तर रहता है, तो कोअी ताज्जुबकी बात नही है।

५ मेरा अनुभव लेखकसे अुलटा है। दोनों लिपि सीखनेके डरसे किसीने दोनोंको छोड दिया हो, अैसा अेक भी नमूना मेरे ध्यानमे नही आया है। मुझे अैसा होनेका कोअी डर भी नही है।

लेखकसे मेरी विनय है कि वे अपनी संकुचित दृष्टि छोड दें।

मसूरी, ३–६–'४६
हरिजनसेवक, १६–६–'४६

२००

अुर्दू 'हरिजन' का मजाक

भाअी जीवणजीने मुझको हिन्दी और अुर्दू अखबारोंसे कई टीकाके कुछ नमूने भेजे है। सबमे काफी मजाक अुडाया गया है। हिन्दीवाले कहते हैं, अुर्दू 'हरिजन' मे चुन-चुनकर अुर्दू शब्द भरे जाते है, अुर्दूवाले कहते हैं, अैसे संस्कृत शब्द भरे हैं, जिन्हे मुसलमान नही समझते। मुझे तो दोनो तरहकी टीकायें अच्छी लगती है। हरिजन 'सेवक' क्यों, 'खिदमतगार' क्यों नही? 'संपादक' क्यों, 'अेडीटर' या 'मुदीर' क्यों नही? अुर्दूवाले मानते है कि हिन्दुस्तानी और अुर्दू अेक ही है, हिन्दीवाले मानते है कि लिपि अुर्दू होने पर भी हिन्दुस्तानी हिन्दी ही है, और अैसा ही है तो मैं हारकर अुर्दू लिपि छोड दूंगा। मैं हार जाअूं, अैसी आशा तो निराशा ही होनी चाहिये। और, न हिन्दी हिन्दुस्तानी है, न अुर्दू हिन्दुस्तानी। हिन्दुस्तानी बीचकी बोली है।

यह सही है कि आज अुसका चलन नही है। अगर अखबारवाले और दूसरे टीका करनेवाले धीरज रखेंगे, तो दोनो देखेंगे कि वे हिन्दुस्तानी आसानीसे समझ सकते हैं। मैं कबूल करता हू कि आज हम सब 'हरिजन' वाले तैयार नही हो पाये हैं, मनसूबा तैयार होनेका है। आज 'हरिजनसेवक' की हिन्दुस्तानी खिचडी-सी लगेगी, भद्दी लगेगी, अुसके लिअे माफ करे। अगर अीश्वर मुझे जिन्दा रखेगा, तो अिसी अखबारको पढनेवाले देखेंगे कि हिन्दुस्तानी बोली वैसी ही मीठी होगी, जैसी हिन्दी या अुर्दू है। आज दोनोके बीच कुछ होड-सी मालूम पडती है। कल दोनो बहने बन जायेंगी और दोनोका सहारा लेकर हिन्दुस्तानी अैसी बोली बनेगी, जो करोडोको पूरा काम देगी और कम-से-कम भाषाका झगडा मिट जायगा। दरमियान टीकाकार गलतिया दिखाते रहे। अुन्हे मुहब्बतके साथ समझनेसे 'हरिजनसेवक' की भाषामे दुरुस्ती होती रहेगी।

मसूरी, ५–६–'४६
हरिजनसेवक, १६–६–'४६

२०१

आजादीके विधानकी भाषा

अेक सज्जन लिखते हैं

"आप यह जानते हैं कि ससारके सभी देशोंमें जो विधान बने हैं, वे अुन देशोकी भाषाओंमें ही बने हैं। फ्रान्स, जर्मनी, आयर्लैण्ड, अिजिप्त, जापान वगैराकी मिसालें हमारे सामने हैं।

"हमारे देशका जो विधान विधान बनानेवाली सभा बनायेगी, वह देशकी भाषामें ही बनना चाहिये। अिसके लिअे हिन्दी या हिन्दुस्तानी अुपयुक्त भाषा है। हमारी कठिनाअी यह है कि अदालतोंके, जैसे हाअीकोर्टों और फेडरल कोर्टोंके, जजोंमें शायद ही कोअी हिन्दी जाननेवाला हो। अिनके लिअे

विवानका अग्रेजी अनुवाद होगा, जिससे ये काम ले सकेंगे। कुछ दिनो बाद ये हिन्दुस्तानीका ज्ञान प्राप्त कर ही लेंगे। यदि आप 'हरिजन में अिस विषय पर प्रकाश डालेंगे, तो मुझे और दूसरोको भी अिससे लाभ होगा।

"दूसरा प्रश्न यह भी अुपस्थित होता है कि जो विधान-निर्मात्री-सभा बनाअी जाय, अुसके सदस्य अितनी हिन्दुस्तानी जाननेवाले हो कि सभामें होनेवाली बातचीतके सारको समझ सके।"

मुझे तो यह खत अच्छा लगता है। हमारा विधान अग्रेजीमे क्यो हो? लोगोके समझनेकी बोली तो हिन्दुस्तानकी ही होनी चाहिये। मेरी निगाहमे वह हिन्दुस्तानी ही हो सकती है। करोडो हिन्दुस्तानी अुसको आसानीसे पढ सकेंगे, और साथ-ही-साथ लोगो पर अिस कामका असर अच्छा होगा। आजकी हालतमें यह ठीक है कि विधानका तरजुमा विधान बनानेवाली सभाकी तरफसे अग्रेजीमें भी निकले। यो तो प्रान्तोकी भाषाओमे भी अुसका तरजुमा करना ही होगा।

दूसरी बात भी है तो ठीक, लेकिन अुस पर अमल तो अलग-अलग असेम्बलियोंके चुनाव करनेवाले सदस्य ही करेंगे। अिस दरख्वास्त पर अमल तभी हो सकता है, जब वे हिन्दुस्तानी समझनेवालोको ही चुने।

मसूरी, ४–६–'४६

हरिजनसेवक, १६–६–'४६

२०२

सही है, लेकिन नया नहीं

लखनअूके मौलवी हामिदुल्ला 'अफमर' साहब मुझसे मसूरीमे मिले, और अपने दो परचे मुझे दे गये। दोनोका मतलब अेक ही है कि मदरसोमे हाअीस्कूल तक सब लडको-लडकियोंके लिअे हिन्दी और अुर्दू बोलिया और दोनो लिपिया लाजिमी हो। मुझे तो यह बहुत पसन्द है। मेरा निजी यत्न तो हमेशासे यही रहा है। अेक जमाना था, जब मौलाना हसरत मोहानी और बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन अिसकी कोशिश कर रहे थे, लेकिन हम कामयाब नही हुअे। फिर भी न तो मैंने अपना विश्वास छोडा और न यत्न ही छोडा। नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा बनी। अिसलिअे मौलवी साहब जो दरखास्त करते हैं, वह मेरे लिअे नअी नही। अगर यू० पी० की सरकार सबकी रायसे हिन्दी और अुर्दू बोलीको हाअीस्कूल तक लाजिमी कर सके, तो वह अुसका अेक बडा काम होगा। मैं तो कहूगा कि जिस सूबेकी जबान हिन्दी या अुर्दू है, वहा दोनो बोलिया लाजिमी हो। मुझे अिसमे कोअी शक नही कि अगर अैसा कदम अुठाया गया, तो दोनो बोलियोके मिलनसे हिन्दुस्तानी कुदरती तौर पर चल निकलेगी और हिन्दी-अुर्दूका झगडा हमेशाके लिअे बन्द हो जायगा। दूसरा फायदा यह होगा कि हाअीस्कूल तककी पढाअी हिन्दी-अुर्दूमे बडी आसानीसे होगी।

मसूरी, ६–६–'४६

हरिजनसेवक, १६–६–'४६

२०३

दिलकी बातका दिखावा क्यों?

अेक सज्जन लिखते हैं कि मैं अुनको हरिजन जाहिर कर दूं। वे सेन्ससमें भी अपना नाम सवर्णोंमें से निकलवा डालेंगे। मैं कहता हूं कि सब हिन्दू अतिशूद्र बन जाय। अिसी परसे अिन ब्राह्मण भाअीने मुझे अूपरके मतलबका खत लिखा है। लेकिन जो बात दिलकी है, अुसे दिखाना क्या? हां, यह ठीक है कि हरअेक हिन्दूको अपने हर बरतावमें यह साबित करना है कि वह हरिजन यानी भंगी बन गया है। अिसलिअे वह भंगियोंसे मिलकर रहेगा, अुनके जीवनमें पूरा हिस्सा लेगा। हो सके तो किसी भंगीके साथ रहेगा या किसी भंगीको अपने साथ रखेगा, और अपने बालबच्चोंकी शादियां हरिजनोंके साथ करेगा। और जब कोअी पूछेगा तो कहेगा कि वह अपनी अिच्छासे हरिजन बन गया है। सेन्ससमें वह अपना नाम हरिजनोंमें या भंगियोंमें देगा। मगर अैसा करते हुअे वह कभी हरिजनोंके हक नहीं मांगेगा। मसलन, वह हरिजन वोटरोंमें अपना नाम नहीं लिखायेगा। मतलब यह कि वह हरिजनोंके धर्मका पालन करेगा, मगर अुनके अधिकारकी आशा नहीं रखेगा।

नअी दिल्ली, ९-६-'४६

हरिजनसेवक, १६-६-'४६

२०४

बलि

अेक भाअी मैसूरसे लिखते है

"मैसूरके हरिजन मदिरोमे पशुओकी वलि दिया करते है। मैसूर जिलेके कृष्णराजनगर ताल्लुकेमें वारी-वारीसे अेक-अेक क्षेत्रकी यात्रा हर माल चला करती है। अिस साल यह यात्रा ३ जनवरीसे २५ जनवरी तक चली थी, जिसमें हर रोज तीन-चार वकरोकी वलि दी जाती थी।

"दूसरी वलि मावन महीनेमें हर शनीचरको दी जाती है। अिस मौके पर हरिजन ही नही, वल्कि हिन्दूधर्मके अूचे ठेकेदार भी वलि दिया करते है। अिसके साथ वे मदिरा-पान भी करते है।

"सबमे ज्यादा दु खकी वात तो यह है कि वे गोमास भी खाते है। मेरे लिअे ही नही, वल्कि सारे हिन्दुओके लिअे यह अेक शर्मकी वात है कि भगवान रामके मदिरके सामने भी वकरो वगैराका वध होता है।"

अगर यह वात सही है, तो अेक दृष्टिसे ठीक ही सारे हिन्दुओके लिअे शर्मकी वात है। लेकिन सिर्फ अितना कह देनेमे पाप थोडे ही धुल जाता है? सवका कह देनेसे अेककी जिम्मेदारी मिट नही सकती। अिसलिअे मेरा कहना है कि पहला काम लेखकका है, वादमे जिस जगह वलि दी जाती है वहावालोका है, फिर मैसूरके राजा और वहाकी प्रजाका और अिसी तरह सिलसिलेवार कर्नाटक, मद्रास प्रात और हिन्दुस्तानका। अिस तरीकेसे चलने पर ही कामयावी हो सकती है। अैसा काम अहिंसासे ही किया जा सकता है। तभी अेक जमानेसे चलते आये पापका नाश हो सकता है। अिसलिअे लेखकसे ही काम शुरू हो सकता है। सो कैसे हो? अिस वारेमें काफी लिख चुका हू।

नअी दिल्ली, १५–६–'४६

हरिजनसेवक, २३–६–'४६

२०५

खामखाह क्यों मारें?

अलीगढसे यह सूचना आओी है

"९ जूनके 'हरिजनसेवक' मे चौथे पृष्ठ पर आप लिखते हैं कि 'बन्दरो, परिन्दो और अैसे जन्तुओको, जो फसल खा जाते हैं, खुद मारना होगा, या कोअी अैसा आदमी रखना होगा जो अुन्हे मारे।' अिस सबधमे मैं यह निवेदन करना चाहता हू कि अगर फसलको खा जानेवाले जानवरोको मारे बगैर ही फसलकी रक्षा आसानीसे हो सकती हो, तो अुन्हे मारना जरूरी नही होना चाहिये। मिसालके लिअे, मैं आपको सूचना देना चाहता हू कि मेरे चाचाने रातको बैटरीकी रोशनी बन्दरोकी ओर फेंक-फेंककर अुन्हे अपने खेत छोडनेके लिअे मजबूर कर दिया। अिसलिअे बन्दरोको मारनेके बजाय अूनको बैटरीके प्रयोगसे भगानेका मार्ग आप क्यो न स्वीकार करे और पेश करे?"

यह सूचना पहले विचारसे तो अच्छी लगती है। लेकिन दूर तक विचार करनेसे लगता है कि बैटरीसे काम नही चल सकेगा। अुससे मेरे खेतकी कुछ रक्षा हो सकेगी, मगर अिर्द-गिर्दकी नही। स्वार्थी बनकर दूसरोका नुकसान करना तो मेरे लिअे ठीक नही होगा। वह भी हिंसा होगी। अहिंसाके नाम पर अैसी हिंसा करनेमें हम झिझकते नही, जैसे कि हम अपने आगनसे दूसरोके आगनमे साप फेकते हैं, कचरा डालते है। शुद्ध अहिंसा बताती है कि अगर बन्दर वगैरासे बचना और समाजको बचाना आवश्यक है, तो अुनको मार डालना आवश्यक हो जाता है। सामान्य नियम तो यही है कि जितनी हिंसासे हम बच सकें, अुतनीसे बचना हमारा धर्म है। सामाजिक अहिंसा ही समाजके लिअे हो सकती है। व्यक्तिको, जहा तक वह जा सकता है, जाना होगा। हर समय हर कदम पर ध्यानसे

विचार करना सबका परम कर्तव्य है। वगैर विचारे रूढ धर्म पर चलनेसे हमारी गति रुक जाती है।

३०–६–'४६
हरिजनसेवक, ७–७–'४६

२०६

हिन्दी और अुर्दूका अन्तर

भाअी रामनरेश त्रिपाठीको मैं काफी जानता हू। अेक रोज वे मसूरीमें मिलने आये थे। मुझे डर था कि हिन्दुस्तानीके प्रचारके लिअे वे मुझे डाटेंगे। लेकिन बातें करनेसे मैंने अुलटा ही पाया। वे मुझसे कहने लगे कि अगर मैं हिन्दी और अुर्दूके मेलसे सच्ची हिन्दुस्तानीकी अुम्मीद रखता हू, तो मुझे अुर्दूसे ज्यादा मदद मिलेगी। शर्त यह है कि अुर्दूको नया जामा पहनाकर बिगाडनेकी जो कोशिश हो रही है, अुसे मैं अुसी तरह समझ लू, जिस तरह हिन्दीको बिगाडनेकी कोशिशको समझता हू। अुस हालतमें हिन्दुस्तानी अपने-आप फिर जिन्दा हो जायगी। अिस पर मैंने अुनसे कहा कि वे मुझको कुछ मिसालें दें, जिससे मैं समझ सकू कि अुनके कहनेका मतलब क्या है। सोचने लगे तो कुछ दिक्कत मालूम हुअी। तब मैंने कहा कि मुझको कुछ लिखकर समझावें। अुसका नतीजा यह है कि अुन्होंने मुझे नीचेका खत भेजा है

"पूज्य बापू,

"हिन्दी और अुर्दूके ढाचेका अन्तर आपने मागा था। पर ढाचा तो मुझे अनुभवगम्य-सा जान पडता है। अुसकी कोअी अलग रूपरेखा खीचकर नही दिखा सकता हू। हा, अेक सुझाव दे सकता हू। 'हरिजन' के किसी अेक पैरेग्राफका अनुवाद हिन्दी और अुर्दूके किन्ही दो योग्य लेखकोसे कराकर देख लीजिये। ढाचोका अन्तर दिखाअी पडने लगेगा।

"मैंने अुस दिन कहा था कि अुर्दू हिन्दीसे अधिक परिमार्जित है। अिसका अेक अुदाहरण लिखता हू। हिन्दीके अेक प्रसिद्ध लेखकका यह वाक्य है 'समझमें न आनेसे घबराहट-सी लगने लगती है।' अुर्दूमें घबराहट 'लगती' नही, 'होती है' या 'पैदा होती है'। अुर्दूका कोअी प्रसिद्ध लेखक कभी गलत मुहावरा नही लिखेगा। और अगर लिख देगा, तो अुसको जबरदस्त मोरचा लेना पडेगा। हिन्दीमे भाषाके सशोधनका आन्दोलन ही नही है। कोअी आन्दोलन कायम करनेकी अपेक्षा अुर्दू भाषाकी पुस्तके या लेख हिन्दी अक्षरोमें छपने लगे, तो हिन्दी भाषाका बडा अुपकार होगा। अुर्दू भाषाके सुधारने और सवारनेमे अुर्दूके शायरो और लेखकोने पिछले कअी सो बरसोमे जो हाथापाअी की है, अुसका लाभ हिन्दी भाषाको सहज ही मिल जायगा। और अिस प्रयोगसे वह आपसे-आप हिन्दुस्तानी बन भी जायगी।"

यह खत विचार करनेके लायक है। मै भाषाका प्रेमी हू, भाषाका शास्त्री नही हू। हिन्दीका मेरा ज्ञान अैसा ही है। मैंने कोअी पुस्तक पढकर हिन्दी सीखी नही। अिसके लिअे समय ही नही मिला। मेरा लडका देवदास, जो मेरे प्रोत्साहनसे और आशीर्वादसे हिन्दी सीखनेके लिअे मद्रास चला गया था, मुझसे बहुत ज्यादा हिन्दी जानता है। अैसे दूसरे भी है, जिनके नाम मै दे सकता हू। अुर्दूका ज्ञान मुझे हिन्दीसे भी बहुत कम है। नागरी लिपि बचपनसे जानता हू। फारसी लिपि तो मेहनत करके सीखा हू। लेकिन अुसका मुहावरा न होनेसे अुसे थोडी मुश्किलसे पढ पाता हू। जैसे-तैसे लिख भी लेता हू। अिस तरह अुर्दूका ज्ञान तो बहुत ही कम है। जो हैं, सो प्रेम है, और किसीका पक्षपात नही है। अिसलिअे अगर भगवानकी कृपा हुअी, और भाषा-शास्त्रियोकी मदद मिली, तो मेरा यह साहस सफल होगा। अिसी खयालसे त्रिपाठीजीका यह खत मैंने छापा है, जिससे वे अिस काममे मदद दें और दूसरे भी हाथ बटाये।

अेक दूसरे हिन्दी भाषा-प्रेमीने भी मुझे यह बताया है कि अुर्दूमें भाषा पर जो मेहनत हुअी है, वह हिन्दीमें शायद ही हुअी हो। अब अगर दोनों खींचातानीमें न पड़ें और समझ लें कि दोनों भाषाओंकी जड़ अेक ही है, और जिसे करोड़ों देहाती बोलते हैं अुसीके लिअे शास्त्रियों और शायरोंको मेहनत करनी है, तो हम जल्दीसे आगे कूच कर सकते हैं।

पूना, ३–७–'४६
हरिजनसेवक, १४–७–'४६

२०७

कस्तूरबा-स्मारक-निधि

कुछ लोगोंकी शिकायत है कि अिस निधिके पैसे जितनी शीघ्रतासे खरचे जाने चाहिये, अुतनी शीघ्रतासे खरचे नहीं जाते, और जिस तरह खरचे जाते हैं, अुसका कुछ पता नहीं चलता। लेकिन ये दोनों अिलजाम बेबुनियाद हैं। अिसमें अेक बात यह है कि अगरचे जितना दान आया है, वह सब करीब-करीब शहरोंसे ही आया है, तो भी अुसका हेतु यह रहा है कि वह देहाती स्त्रियों और अुनके बाल-बच्चोंके लिअे, और सो भी देहातमें ही, खर्च किया जाय। अिस तरह अिस काम पर देहातमें जो खर्च होता है, अुसका पता अुन लोगोंको नहीं लग सकता, जो खर्चका हिसाब नहीं देखते। क्योंकि टीका करनेवाले तो सब शहरोंमें रहते हैं। देहातके लोग अखबार नहीं पढ़ते, और अुन्हें अिसकी पड़ी भी नहीं कि पैसा किस तरह खरचा जाता है। अगर अपने देहातमें कुछ होता है, तो वे अुसे अपनी आंखों देख सकते हैं। शहरोंके लिअे कोअी काम होता है, तो अुसका ढिंढोरा पीटा जाता है। अगर कोअी अिमारत या पुतला बनाया जाता है, तो वह कैसे बन रहा है, अिसकी चर्चा अखबारोंमें की जाती है, और जब

बन चुकता है तो अुसे खोलनेकी रस्म धूमधामसे अदा की जाती है, ताकि सब लोगोंको पता लग जाय कि जिस कामके लिअे पैसा अिकट्ठा किया गया था वह पूरा हुआ। देहातकी बहनोंके लिअे गावोमे जो काम चल रहा है, अुसके लिअे अैसा दिखावा हो ही नही सकता। अिसलिअे जो कुछ हो रहा है, वह किनके मारफत हो रहा है, अितना जानकर ही फिलहाल अखबार पढनेवालोको सतुष्ट रहना पडेगा। जब सात लाख देहातमें से चन्द हजार देहातमे कुछ काम होगा, वहाकी औरते और वहाके बच्चे तैयार होगे, तब तो अिसकी जानकारी सबको मिल ही जायगी। अेक ही मिसाल लीजिये। देहाती औरतोमे दाअियोको तालीम देनेका काम हो रहा है। देहातमे काम करनेवाली नर्से तैयार की जाती है। अगर अितनी जानकारी भी काफी न हो, तो अिससे ज्यादा खबर क्या दी जा सकती है?

अिस बार जब पूनामे कस्तूरबा-स्मारक-निधिकी कार्यकारिणीकी बैठक हुअी, तो २१ प्रान्तोमे से काफी प्रान्तोंके लिअे देहातमें काम करनेवालोके वास्ते तालीमी छावनिया चलानेके बजट मजूर किये गये। लेकिन अिस तरह जो बहनें तैयार होगी अुन्हें तो देहातमें जाना है। शहरवालोंको तो अिसका पता तभी चल सकता है, जब वहा अिनका प्रदर्शन किया जाय। लेकिन अैसा करनेका न अिरादा है, और न अैसा करना मुनासिब ही होगा। अेक बात और है। देहातमें जो काम होनेवाला है, वह नये ढगका और नये सिरेसे ही हो सकता है। अिसलिअे वह आहिस्ता-आहिस्ता ही चलेगा, जैसा कि खादीका चला और चल रहा है, और दूसरे ग्रामोद्योगोका चलता है। देहातकी तरफ हमारा ध्यान ही कम गया है। आज भी कम जाता है। जब शहरियोका मन खुद देहातकी तरफ जायगा, तब दूसरी सूरत निकलेगी। जब तक अैसा नही होता, तब तक अिस तरहका काम करनेवाली सस्थाकी तरफ न तो अखबारोका ध्यान जायगा, और न शहरी लोग ही अिसमे ज्यादा दिलचस्पी लेगे।

बाज दफा अैसा भी होता है, और होना भी चाहिये कि ज्यो ही पैसे जमा हुअे, त्यो ही अुनको खर्च कर डालनेमे कोअी खूबी नही

होती। मगर देखभाल करके आहिस्ता-आहिस्ता खर्च करनेमे खूबी रहती है, जैसा कि अिस निधिके मामलेमे हुआ है। देनेवाले हजार, दो हजार या दस-बीस हजार हो सकते है, लेकिन खर्च करनेका क्षेत्र लवाओमे अुन्नीस सौ मील है, और अुसका फैलाव भी चालीस करोडमे करना है। वहा काम किस तरह करना, कहा करना, अिसे सोचनेमे थोडा समय जाना चाहिये था। काम करनेवालोको ढूढनेके लिअे भी समय चाहिये था। और अब अुनके मिल जानेके बाद अुन्हे तैयार करनेमे वक्त जा रहा है। अिसलिअे जिन्होने पैसे दिये है, अुन्हे विश्वास रखना चाहिये कि जो लोग ट्रस्टी बने है, वे निकम्मा खर्च नही करेगे और आलसी बनकर जरूरी खर्च रोकेगे भी नही।

जबसे काम करनेवाली कमेटिया शुरू हुअी, तभीसे शिकायत आ रही है कि जिन्होने दान दिया, अुन्हीमे से कमेटिया नही बनाअी गअी, और जहा कमेटियोमे दानियोको लिया गया है, वहा अुनकी तादाद बहुत कम है। सच तो यह है कि जो दान देते है, वे हमेशा ही यह नही जानते कि अुनका दिया दान किस तरह और किस काममे खर्च होता है। मसलन्, फर्ज कीजिये कि कअी दानियोने मिलकर दस करोड रुपये अेक बडा तालाब बनवानेके लिअे दिये। अिसके बाद वे अिस बारेमे क्या कर सकते है? अुनका दिया रुपया तो अुन लोगोंके हाथमे ही जायगा, जो तालाब बनानेका ज्ञान रखते है। अैसे लोग ही अेक कमेटी बनायेगे और खर्च भी करेगे। अैसे बहुत अुदाहरण दिये जा सकते है। ट्रस्टियोने जो कमेटिया बनाअी, वे शुरूमे अिसी तरह बनी। आगे अनुभवसे यह भी देखा गया कि जितना काम औरतोके मारफत हो सकता है, अुतना अुन्हीसे करवाना चाहिये, और सो भी अुनकी कमेटिया बनाकर नही, बल्कि अेजेण्टोके मारफत। अैसा करनेसे ही औरतोंको तालीम मिलेगी और सारी संस्था औरतोंके हाथमे चली जायगी। अिस तरह जिम्मेवारीका काम अुनके हाथमे पहुचेगा। अिसकी कोशिश हो रही है। अुसमे देर तो लगने ही वाली थी और अब भी लगेगी। मुश्किलें काफी है, लेकिन अुम्मीद की जाती है कि

आखिर काम बढ जायगा, और औरतें भी तैयार हो जायेंगी। नतीजा अनुभवसे ही देखा जायगा।

पचगनी, १४–७–'४६
हरिजनसेवक, २१–७–'४६

२०८

'क्रान्तिकारी चरखा'

अिस नामकी अेक पुस्तिका भाअी धीरेन्द्र मजूमदारने लिखी है। है तो वह सिर्फ ४० छोटे पन्नोंकी, लेकिन अुतनेमें नअी योजनाके बारेमें सब कुछ कह दिया गया है। अिस पुस्तिकामें बताया गया है कि अिस योजनाकी सफलतामें सच्चा स्वराज्य छिपा है, अुसमें सच्ची क्रान्ति है। सच्ची क्रान्ति भी लेखमें ही रह जाती है, अगर अुसे काम करके साबित न किया जाय। अिसलिअे अुसे साबित करनेका तरीका बताना और वैसा करना बहुत जरूरी है। आज तो शहरोंमें सब जगह खलबली मची है, क्योंकि खूब दाम देते हुअे भी शहरियोंको खादी नहीं मिलती। अैसा पहले भी हो चुका है। अुस वक्त मैं कह सका था कि खादी जल्दी मिल जायगी, क्योंकि अुसमें पैसोंका काम था। अब काम अैसा नहीं है, जो पैसोंसे हो सके। सच्ची क्रान्ति पैसोंसे नहीं होती। जमानेकी आदत बदलना, आलस्य दूर करना, बिगाडनेके बदले बनाना मुश्किल है। ट्रेन लूटकर १० हजार रुपया अिकट्ठा करना आसान है। अपने पसीनेसे १० हजार कमाना कठिन है। शेयर बाजारमें अेक दिनमें १ लाख पैदा कर लेना रोजमर्राकी बात है, मगर अेक दिनमें निजी मेहनतसे १ लाख रुपया अिकट्ठा करना असंभव है। लॉटरीमें भिखारी धनी बनते सुने जाते हैं, मगर कोअी भिखारी अेक दिनमें अपनी मेहनतसे धनवान नहीं बनता। अुसे तो बाजार दाम ही मिलेगा। यह ८ आना भी हो सकता है, और शायद २ आना भी। खादी पैदा करना अेक बात है। मिलमें कपडा पैदा करना दूसरी बात है। स्वराज्य

यन्त्रसे नही मिल सकता। लेकिन अगर २० करोड आदमी समझ-बूझकर अपनी मेहनतसे खादी बनावे और पहने, तो हिन्दुस्तानकी शकल बदल जायगी। यह कहना कि ४० करोडमे से २० करोड अपने लिअे कपडा बनानेकी तकलीफ नही अुठायेगे, अेक अलग बात है। मै अैसा कभी नही कह सकता।

पचगनी, १७–७–'४६
हरिजनसेवक, २८–७–'४६

२०९
पहले खुद कूदो

अहमदाबादकी खूरेजीके बारेमे अेक भाअीने जो खत लिखा है, अुसमे से आवश्यक भाग नीचे देता हू

"हुल्लडके अवसरो पर क्या अुपाय किया जाय, अिस बाबत मै लिखना चाहता हू। आजसे ठीक दो मास पहले 'हरिजन' में आपने अहिसक सेवादल पर अेक लेख लिखा था। मगर आजकल्की हाल्तको देखते हुअे अितनेसे काम नही चल सकता। जिस तरह आपने सरकारसे लडनेका रास्ता हमे दिखा दिया है, अुसी तरह अैसे अवसरों पर आप किसी अेक जगह पहुचकर अहिसक रीतिसे हुल्लडको शान्त करके हमारे सामने नमूना रख दे। अगर आप अिस अवसर पर अहमदाबादमे हो और स्वय-सेवकोंके साथ अिस कामके लिअे शहरमे निकल पडे, तो जरूर आपको स्वयसेवकोकी कमी न रहे। यहाके दो काग्रेसी कार्य-कर्ता श्री वसतराव और रज्जबअली लोगोको समझानेके लिअे गये और दोनो गुण्डोके छुरोकी भेट हुअे। बादमे किसीकी जानेकी हिम्मत न हुअी। अुन दोनोने अपने आदर्शके लिअे जान दे दी, और वे धन्य है! यह ठीक है कि दूसरे लोगोमे अितना आत्म-विश्वास नही। अगर सबमें हो तो हुल्लड ही क्यो हो? और अगर कभी हो भी तो वह आजकल्के हुल्लडोकी शकल तो

ले ही नही। मगर यह तो अुम स्थितिकी बात हुअी, जो सिर्फ कल्पनामे ही है।

"आपकी रहनुमाअी मेरे-जैसे बहुतसे लोगोमे साहस पैदा कर सकती है। और आपके रास्ता दिखानेके बाद दूसरे स्थानीय नेता अवसर पडने पर अपनी-अपनी जगह अुस रास्ते पर चल सकेंगे। मुझे महसूस होता है कि प्रत्यक्ष रास्ता दिखाये बिना आपके लेख और बयान लोगोको—पक्के काग्रेसियोको—सामाजिक रक्षणके खयालसे अुपयोगी साबित न होगे।"

मुझे अूपरकी सूचना जचती है। मैंने अग्रेजी सल्तनतका सामना करनेका जो रास्ता बताया वह चला, क्योकि सब लोग अुसका सामना करना चाहते थे। मै स्वीकार करता हू कि वह अहिंसा लाचारीकी थी, अिसलिअे वह दुर्बलोका ही साधन बनी। और, अिसी कारण आज हम नेताजी सुभाषबाबूकी और आजाद हिन्द फौजकी पूजा करते है। लेकिन यह बात हम भूल जाते है कि खुद सुभाषबाबूने ही अपने फौजियोसे कहा और फौजियोके सरदारोने ही मुझे सुनाया कि हिन्दुस्तानके भीतर तो अुन फौजियोको अहिंसाका रास्ता ही लेना चाहिये। अिस विवेक-बुद्धिका हम अुपयोग नही करते। वह तो तभी होगा, जब आजाद हिन्द फौजके आदमी, जो हिन्दुस्तानमें आये हैं, अहिंसाका रास्ता अख्तियार करके नेताजीके आदेशको अपने जीवनमें सफल करके बता दे। अैसे हिंसाके वायुमण्डलमे अहिंसाको माननेवालोका काम जरूर मुश्किल हो जाता है। लेकिन सच्ची अहिंसाका काम हमेशा ही मुश्किल रहनेवाला है, क्योकि अहिंसामे ज्यादा बहादुरीकी गरज रहती है, और अैसी अहिंसा आज तक स्पष्ट रूपमें हम दिखा नही सके। हम दावेके साथ यह कह सकते है कि गणेशशकर विद्यार्थी, वसतराव और रज्जबअली वगैराकी अहिंसा अैसी थी। लेकिन जब कौमी अुभार आ जाता है, तब हम प्रत्यक्ष रूपमे कुछ फल नही बता सकते। अैसा फल बतानेके लिअे अनेक 'विद्यार्थियो' को बलिदान देना होगा। वसतराव और रज्जबअलीने जो नमूना पेश किया, अुस पर अहमदाबादमे दूसरे अमल नहीं कर सके। यही बताता है कि हममें अब तक सचमुच प्राणोकी बलि दे

देनेका माद्दा नही आया है। अैसी हालतमे यह ठीक कहा गया है कि मुझे ही कुछ करके दिखाना होगा, फिर कोअी मेरा साथ दे या न दे। मैं घरमे बैठकर दूसरोको मरनेके लिअे भेजता रहू, यह मेरे लिअे शरमकी बात होगी। मेरा यह काम कभी अहिसाकी निशानी नही बन सकता। मेरा खयाल है कि अैसा मौका मुझे कभी मिला नही। या कोअी अैसा भी कह सकते है कि अगर मौका नही मिला तो अिसकी वजह मेरी कायरता या डरपोकपन होना चाहिये। जो कुछ भी हो, औीश्वरकी कृपा होगी तो वही मुझे अैसा अवसर देगा, अैसी किसी आगमे मुझे झोक कर शुद्ध करेगा और अहिसाका रास्ता बिलकुल साफ करेगा। अिसका मतलब कोअी यह न समझे कि मेरे अैसे बलिदानसे हिंसा रुक ही जायगी। आजकल अितनी घोर हिंसा चल रही है कि अुसमे से अहिसा प्रगट होनेके लिअे मेरे-जैसे अनेकोंके बलिदानकी आवश्यकता रह जायगी। अिसी कारण 'प्रीतम' ने गाया है

'हरिनो मारग छे शूरानो, नही कायरनु काम जोने'

और, हरिका मार्ग ही अहिसाका मार्ग है।

पचगनी, २५–७–'४६

हरिजनसेवक, ४–८–'४६

२१०

नैसर्गिक अुपचारका अर्थ

काफी लोग नैसर्गिक अुपचार सीखनेके लिअे अुरुलीकाचन आना चाहते है। मैं अुन्हे रोक देता हू। अुरुलीकाचनमे ट्रस्टकी तरफसे जो सस्था काम कर रही है, वह ग्रामवासियोके लिअे है। अुसके तीन ट्रस्टियोमे डॉ० दिनशा महेता, जहागीरजी पटेल और मै हू। डॉ० दिनशाको नैसर्गिक अुपचारका अनुभव तो काफी है, मगर वह सब शहरमे मिला है। जब वे अपनी ही तरफसे पूनामे नैसर्गिक अुपचार-गृह चलाते थे, तो अुसमें गरीबोको भी लेते तो थे, मगर अुनका अिलाज भी धनिको जैसा ही होता था। देहातियोंके लिअे मेरी कल्पनाके

नैसर्गिक अुपचारका मतलब यह है कि वह देहातमे जितने देहाती साधन मिल सकें, अुनमे बिजली और बरफ़की मददके बिना जितना किया जा सके अुतना ही किया जाय। यह अुपचार यही तक महदूद यानी मर्यादित है।

यह काम तो मेरे-जैसेका ही हो सकता है, जो देहाती बन गया है और जिसकी देह शहरोमें रहते हुअे भी जो देहातमें रहता है। अिसलिअे ट्रस्टियोने यह काम मेरे सिपुर्द किया है। मैंने काम शुरू तो किया है, लेकिन मेरे पास तैयार आदमी तो है नही। यह दूसरी बात है कि जब जरूरत होती है, तब डॉ० दिनशाजीकी मदद ले लेता हू। अेक डॉ० भागवत मिल गये है, जिनका मन बिलकुल देहातमें रहता है और जो खुद बडी सादगीसे रहते है। डॉक्टर होते हुअे भी वे नैसर्गिक अुपचारको ही मानते है, किसी किस्मकी मजदूरीसे नफरत नही करते, न कभी कामसे थकते है। दूसरे जो यहा है, वे सब अिस कामके लिअे नये है, लेकिन अुनमें काफी सेवाभाव है। मेरे लिअे भी काम नया है। श्री दातारने अपना मकान यो ही बरतनेको दे दिया है। वे अुसका किराया नही लेते, अिसलिअे काम निभता है, चल रहा है। लेकिन अुसमें अितनी गुजाअिश नही कि दूसरे नये विद्यार्थियोको रखा जा सके। मै खुद अुरुलीकाचनमें हमेशा रह नही सकता। अीश्वरकी कृपा होगी, तो सालमें छह महीने पूनाकी तरफ और छह महीने सेवाग्राममें रहूगा। अिसलिअे जो नैसर्गिक अुपचार सीखना चाहते है, वे जान ले कि आजकी हालतमें किसीके लिअे भी अुरुलीकाचनमें सीखनेके लिअे रहना नामुमकिन है।

अब अपनी कल्पनाके नैसर्गिक अुपचारके बारेमें थोडा-सा कह दू। पिछले अकोमे अिस पर थोडा-मोटा लिख चुका हू। मगर चूकि अिस विचारका विकास हो रहा है, अिसलिअे यहा यह बता द् कि अुरुलीकाचनमें अुपचारकी मर्यादा क्या है। देहातकी या कहिये कि शहरकी भी व्याधि यानी बीमारी तीन किस्मकी होती है — शरीरकी, मनकी और आत्माकी। और, जैसा अेकका, वैसा ही अनेकका यानी [समाजका । अुरुलीकाचनमें ज्यादातर व्यापारी लोग रहते

है। अेक तरफ माग रहते है, दूसरी तरफ महार और तीसरी तरफ काचन जातके लोग। काचन जातके लोगोंके कारण ही अिस गावका नाम अुरुलीकाचन पडा है। यहा गारुडी (मदारी) कौमके लोग भी रहते है, जिन्हे कानूनन् जरायमपेशा माना जाता है। माग लोग रस्सी वगैरा बनानेका धधा करते है। लडाअीके दरमियान अिनका घन्धा अच्छा चलता था। अब अिनका धधा गिर गया है, अिसलिअे ये बहुत तगीमे रहते है। नैसर्गिक अुपचारवालोके सामने सवाल यह पेश है कि माग लोगोकी अिस बीमारीका, जो छोटी बीमारी नही है, क्या करे? समाजके व्यापारी लोगोको अुनका यह रोग मिटाना चाहिये। अिसमे दवाखानेकी कोअी दवा या अिलाज काम नही दे सकता। फिर भी यह बीमारी कॉलेरा या हैजेकी बीमारीसे कम नही। अुनके चन्द मकान अैसे है जिन्हे जलाना ही चाहिये। लेकिन जलानेसे अुनके लिअे नये मकान तो नही बन जाते। वे बारिशसे कैसे बचे? ठण्डसे कैसे बचे? अपना सामान कहा रखे? ये सब सवाल पैदा होते है। नैसर्गिक अुपचारक अपनी आखें बन्द नही कर सकता। गारुडी लोगोका क्या किया जाय? वे जान-बूझकर शौकके खातिर तो गुनाह नही करते। जमानोकी पुरानी अुनकी यह आदत हो गअी है। अिसलिअे अुनको अुर्दूमे जरायमपेशा कहते है। अिस आदतको छुडवानेका काम अुरुलीकाचनवालोका है। नैसर्गिक अुपचारक अिस कामको छोड नही सकता। नैसर्गिक अुपचारकके सामने अैसी-अैसी कअी समस्याये पैदा हो जाती है। अिस तरह विचार करने पर हम देख सकते है कि नैसर्गिक अुपचारकका काम शुद्ध स्वराज्यका काम बन जाता है, और अुसका क्षेत्र भी बहुत विशाल हो जाता है। अीश्वरकी दयासे अिसमे सफलता मिल सकती है, बशर्ते कि अुरुली-काचनमे रहनेवाले और काम करनेवाले हम सब सच्चे और आग्रही रहे।

अुरलीकाचन, ३–८–'४६

हरिजनसेवक, ११–८–'४६

२११
नअी तालीममें डॉक्टरीकी जगह

श्री आशादेवी अपने कामोंमें लगी रहती है और मेरा वक्त बचा लेना चाहती है। फिर भी अेक रोज अुन्होंने मुझसे पाच मिनट मागे। अुनका कहना था कि नअी तालीमवालोंको थोडा डॉक्टरी ज्ञान देना चाहिये। अिसलिअे क्या वे खुद चार-पाच साल डॉक्टरी सीखनेमें दें ?

मैं समझ गया कि बहुत कोशिश करने पर भी पुरानी तालीमका असर अभी तक जडमें गया नही है। आखिर अुन्होंने अेम० अे० की डिग्री अंग्रेजोंकी बनाअी हुअी युनिवर्सिटीसे ली है न? मेरे पास तो कोअी डिग्री नही है। जो थोडा ज्ञान हाअीस्कूलमें पाया था, मेरी नजरमें अुसकी कोअी कीमत न थी। किसी जमानेमें कुछ थी भी, सो बरसों पहले खतम हो गअी। और कुदरती अिलाजका रस तो मैंने काफी पिया है। मैंने कहा. "आप कहती हैं, हमारे बच्चोंकी पहली तालीम अपनी तन्दुरुस्ती कायम रखना और सब किस्मकी सफाअीकी तालीम पाना है। मैं कहता हू, अिसीमें हमारी सब डॉक्टरी आ जाती है। हमारी तालीम करोडों देहातियोंके लिअे है, अुनके कामकी है। वे कुदरतके नजदीक रहते हैं, फिर भी कुदरती जीवनके कानून नही जानते। जो जानते हैं, वे अुनका पालन नही करते। अुनका अैसा जीवन देखकर ही हमने नअी तालीम चलाअी है। अुसका ज्ञान हमको किताबोंसे कम ही मिलता है। जो मिलता है, सो तो कुदरती किताबसे मिलता है। ठीक अिसी तरह हमें कुदरतसे डॉक्टरी भी सीखनी है। अिसका निचोड यह निकला कि अगर हम सफाअीके नियम जानें, अुनका पालन करें और सही खुराक लें, तो हम खुद अपने डॉक्टर बन जाय। जो आदमी जीनेके लिअे खाता है, जो पाच महाभूतोंका यानी मिट्टी, पानी, आकाश, सूरज और

हवाका दोस्त बनकर रहता है, जो अुनको बनानेवाले अीश्वरका दास बनकर जीता है, वह कभी बीमार न पडेगा। पडा भी तो अीश्वरके भरोसे रहता हुआ शान्तिसे मर जायगा। वह अपने गावके मैदानो या खेतोमे मिलनेवाली जडी-बूटी या औषधि लेकर ही सन्तोष मानेगा। करोडो लोग अिसी तरह जीते और मरते है। अुन्होने तो डॉक्टरका नाम तक नही सुना। वे अुसका मुह कहासे देखे? हम भी ठीक वैसे ही बन जाय, और हमारे पास जो देहाती लडके और अुनके बडे आते है अुनको भी अिसी तरह रहना सिखा दे। डॉक्टर लोग कहते है कि १००मे से ९९ रोग गन्दगीसे, न खानेका खानेसे और खाने लायक चीजोके न मिलने और न खानेसे होते है। अगर हम अिन ९९ लोगोको जीनेकी कला सिखा दें, तो बाकी अेकको हम भूल जा सकते है। अुसके लिअे डॉक्टर सुशीला नय्यर जैसा कोअी डॉक्टर मिल जायगा। हम अुसकी फिकर न करे। आज हमें न तो अच्छा पानी मिलता है, न अच्छी मिट्टी और न साफ हवा मिलती है। हम सूरजसे छिप-छिपकर रहते हैं। अगर हम अिन सब बातोंको सोचें और सही खुराक सही तरीकेसे ले, तो समझिये कि हमने जमानोका काम कर लिया। अिसका ज्ञान पानेके लिअ न तो हमे कोअी डिग्री चाहिये और न करोडो रुपये। जरूरत सिर्फ अिस बातकी है कि हममें अीश्वर पर श्रद्धा हो, सेवाकी लगन हो, पाच महाभूतोका कुछ परिचय हो, और हो सही भोजनका ज्ञान। अितना तो हम स्कूल और कॉलिजकी शिक्षाके बनिस्बत खुद ही थोडी मेहनतसे और थोडे समयमें हासिल कर सकते है।"

दिल्ली जाते हुअे रेलमें, २६-८-'४६

हरिजनसेवक, १-९-'४६

२१२
कांग्रेसी मंत्री और अहिंसा

श्री शकरराव देव लिखते हैं

"लोगोकी समझमे यह बात नही आ रही कि जो लोग अपनेको सत्याग्रही कहते थे वे वजीर बनने ही फौज और पुलिसका अिस्तेमाल क्यो करते हैं? लोग मानते हैं कि धर्म या व्यवहारके रूपमे मानी हुअी अहिंसाका यह भग है, और अूपरी खयालमे यह सच भी मालूम होता है। काग्रेसी मत्रियोके विचारोमे और बरतावमें यह जो विरोध दिखाअी देता है, अुसका समर्थन करना आसान न होनेके कारण हमारे कार्यकर्ता अुलझनमें पड जाते हैं, और अिस विसगतिसे — बेमेल चीजसे — लाभ अुठानेवाले काग्रेसी या गैरकाग्रेसी प्रचारकोका मुकाबला करना अुनके लिअे मुश्किल हो जाता है।

"आम तौर पर काग्रेसियोकी अहिंसा कमजोरोकी अहिंसा ही रही है। हिन्दुस्तानकी मौजूदा हालतमें यही हो सकता था, अिसे तो आप भी जानते है। आप कहते हैं कि ताकतवरकी अहिंसामें तेज होता है, फिर भी कमजोरको तगडा बनानेके लिअे आपने अहिंसाका अिस्तेमाल करना मजूर किया। यही नहीं, बल्कि आप अुसके नेता भी बने। अिस तरह दुर्बल होते हुअे भी आज अुसके हाथमे सत्ता या हुकूमत आअी है। यह असम्भव है कि जो लोग अग्रेजी हुकूमतके खिलाफ अहिंसासे लडे, वे ही अब अपने हाथमें ताकत लेकर मुल्कमे दगा-फसादके वक्त भी अहिंसाका अिस्तेमाल करके अुसे मिटानेको तैयार हो। अगर वे अैसी कोशिश करे भी, तो न वे अुसमें कामयाब होंगे और न अिस काममें अुन्हे आम लोगोकी हमदर्दी ही मिलेगी।

"मैने आपसे पूछा था कि क्या सत्याग्रही अपने हाथमें हुकूमतकी बागडोर ले सकता है? अगर ले सकता है, तो अुस

हुकूमतके जरिये वह अहिंसाको कैसे आगे बढा सकता है? मेहरबानी करके आप अिस पर थोडी रोशनी डालिये। जिसने अहिंसाको धर्म माना है, वह कभी हुकूमतमे शामिल होना पसन्द न करेगा। और, मेरी राय है कि अुसे अैसा करना भी न चाहिये। लेकिन मै मानता हू कि जिन्होने अहिंसाको सिर्फ नीति या व्यवहारकी दृष्टिसे अपनाया है, अुनके लिअे ओहदा लेनेमे कोअी दिक्कत न होनी चाहिये। बहुतेरे कांग्रेसियोने ओहदे सभाले है, और अिसके लिअे आपने अुन्हे अिजाजत दी है। अैसी हालतमे सवाल यह अुठता है कि अुन मत्रियोसे जो अहिंसामें मानते है, आपका यह अुम्मीद रखना कि कम-से-कम वे खुद तो दगा-फसादके मौको पर अहिंसाका अिस्तेमाल करे, कहा तक मुनासिब है? अहिंसाके जरिये हुकूमत हासिल करनेके बाद अुसका अिस्तेमाल किस तरह किया जाय, जिससे हुकूमत ही गैरजरूरी हो जाय? अगर अैसा कोअी रास्ता आप न सुझायेगे, तो हमारे अपने मकसद तक पहुचनेके लिअे सत्याग्रह अेक अधूरा साधन माना जायगा।"

मेरे खयालमे अिसका जवाब आसान है। कुछ अरसेसे मैने यह कहना शुरू कर दिया है कि कांग्रेसके विधानमे 'सत्य और अहिंसा' को हटा देना चाहिये। अगर हम यह मानकर चले कि कांग्रेसके विधानसे ये दोनों हटे या न हटे, फिर भी हम तो अिनसे हट ही गये है, तो स्वतत्र रूपमे हम यह समझ सकेगे कि कोअी काम सही है या नही।

मै मानता हू कि जब तक लौकिक राज-कारबारमे फौज या पुलिसका अिस्तेमाल होगा, तब तक हम अंग्रेजी सल्तनतके या दूसरी किसी परदेशी सल्तनतके मातहत ही रहेगे — फिर चाहे देशका कार-बार कांग्रेसवालोंके हाथमे हो या दूसरोंके। फर्ज कीजिये कि कांग्रेसी मत्रि-मण्डलोको अहिंसामे विश्वास नही है। यह भी मान लीजिये कि लोग यानी हिन्दू, मुसलमान और दूसरे हिन्दुस्तानी फौज और पुलिसका सहारा चाहते है। अगर अैसा है, तो वह अुन्हे मिलता रहेगा।

जो कांग्रेसी प्रधान (मंत्री) अहिंसामें पूरा विश्वास रखते हैं, अुन्हें फौज या पुलिसकी मदद लेना अच्छा न लगेगा। अिसलिअे वे अिस्तीफा दे सकते हैं। अिसके मानी यह हुअे कि जब तक लोगोंमें आपसमें फैसला कर लेनेकी ताकत नहीं आती, तब तक हुल्लडबाजी होती रहेगी और हममें अहिंसाका सच्चा बल पैदा ही न होगा।

अब सवाल यह रहा कि अैसा अहिंसक बल किस तरह पैदा हो सकता है? अिस सवालका जवाब अहमदाबादसे आये हुअे अेक खतके जवाबमें ता० ४ अगस्तको मैं दे चुका हूं। जब तक हममें बहादुरी और मुहब्बतके साथ मरनेकी ताकत पैदा नहीं होती, तब तक हममें वीरोंकी अहिंसाका बल नहीं आ सकता।

अब सवाल यह है कि आदर्श समाजमें कोअी राजसत्ता रहेगी या वह अेक बिल्कुल अराजक समाज बनेगा? मेरे खयालमें अैसा सवाल पूछनेमें कुछ भी फायदा नहीं हो सकता। अगर हम अैसे समाजके लिअे मेहनत करते रहें, तो वह किसी हद तक बनता रहेगा, और अुस हद तक लोगोंको अुससे फायदा पहुंचेगा। युक्लिडने कहा है कि लाअिन वही हो सकती है, जिसमें चौडाअी न हो। लेकिन अैसी लाअिन या लकीर न तो आज तक कोअी बना पाया, न बना पायेगा। फिर भी अैसी लाअिनको खयालमें रखनेसे ही प्रगति हो सकती है। और, हरअेक आदर्शके बारेमें यही सच है।

हां, अितना याद रखना चाहिये कि आज दुनियामें कहीं भी अराजक समाज मौजूद नहीं है। अगर कभी कहीं बन सकता है, तो अुसका आरम्भ हिन्दुस्तानमें ही हो सकता है। क्योंकि हिन्दुस्तानमें अैसा समाज बनानेकी कोशिश की गअी है। आज तक हम आखिरी दरजेकी बहादुरी नहीं दिखा सके, मगर अुसे दिखानेका अेक ही रास्ता है, और वह यह है कि जो लोग अुसमें मानते हैं, वे अुसे दिखायें।

नअी दिल्ली, ६–९–'४६
हरिजनसेवक, १५–९–'४६

या संयुक्त कताअी (कपासकी ओटाअीसे सूतकी कताअी तक)की पांच गुण्डी सूत कातता हो।

"चरखा-संघने यह भी अेक प्रस्ताव पास किया है कि जितने क्षेत्रमें खादी पैदा करनेके लिअे चरखा चलता है, अुनने क्षेत्रकी आबादीके हिसाबसे कमसे कम फी आदमी अेक वर्गगज खादीकी स्थानिक या मुकामी खपत जल्दी ही होने लग जानी चाहिये।"

नअी दिल्ली, ४-९-'४६

हरिजनसेवक, १५-९-'४६

२१४
गरीब गाय

अेक विदुषी बहन पूछती है

"जो गायें या भैंसें गाभिन होती हैं, अुन्हें छोडकर बाकी दूध देनेवाली या दूध न देनेवाली गायों और भैंसोंको हलमें जोता जाय, तो अुसमें किसानको आर्थिक लाभ हो सकता है, लेकिन आज समाज अिस चीजको सहन नहीं करता। अिसके बारेमें आपका क्या मत है?

"हिन्दुस्तानमें चरागाहोंकी बहुत कमी है। आजके किसानके लिअे अुपयोगी पशुओंके चारे-दानेका अिन्तजाम करना भी मुश्किल हो गया है, अैसी हालतमें बेकार और कमजोर गाय वगैरा पशुओंके कत्लको कानूनन् बन्द करवाना आपके खयालसे ठीक होगा क्या?"

पहला सवाल सन् १९१५ में मेरे सामने आया था। अुस वक्त भी मुझे लगा था कि अगर हम अैसी गायोंको हलमें जोतें, तो अुससे अुन्हें कोअी नुकसान न पहुंचेगा, बल्कि वे हट्टी-कट्टी और मजबूत बनेंगी और ज्यादा दूध देंगी। लेकिन अिसमें अेक शर्त यह है कि गायसे बेरहमीके साथ नहीं, बल्कि अुसे अपना मित्र समझकर काम

लिया जाय। और अेक गाय ही नही, बल्कि सभी पशुओसे रहम-दिलीके साथ काम लिया जाना चाहिये। अपनी-अपनी मर्यादा या हदमे रह कर सभी जानदारोको मेहनत तो करनी ही है। मेहनत करनेसे वे अूपर ही अुठते हैं, कभी नीचे नही गिरते।

दूसरे सवालका जवाब भी मैं तो बहुत पहले दे चुका हू। गोवध कानूनकी मददसे बन्द नही हो सकता। वह तो ज्ञानसे, तालीमसे और मित्रभावसे ही बन्द हो सकता है। जो पशु धरतीके लिअे भाररूप हैं, वे बच ही नही सकते।

जो मनुष्य भाररूप है, वह भी नही बच सकता।

नअी दिल्ली, ६–९–'४६
हरिजनसेवक, १५–९–'४६

२१५
हरिजन और कुअें

श्री हरदेव सहाय लिखते हैं

"कल शामके अपने प्रवचनमे हरिजनोकी तकलीफोकी ओर ध्यान दिलाते हुअे आपने यह कहा था कि अुनको कुओंमे पानी नही भरने दिया जाता। पिछले २५ बरसोकी लगातार कोशिशोके बावजूद हरिजनोका यह कष्ट अभी तक दूर नही हो सका है। हरिजनोके कष्टोको आपसे अधिक जाननेवाला दूसरा कोअी नही।

"सेवककी नाकिस रायमे अब कांग्रेसी सरकारोको हरिजनोके सम्बन्धमे अपनी नीति शीघ्र ही घोषित करके अिस तरहके कष्टोको कानूनन् दूर करना चाहिये। सेवक आपका ध्यान अिस सम्बन्धमे पजाबके हरिजनोकी ओर दिलाना चाहता है। वहा कुओंमे पानी भरना तो दूर रहा, कुअे बनानेके लिअे जमीन भी नहा मिलती। अिसलिअे आपसे निवेदन है कि पजाब सरकार द्वारा हरिजनोको यह अधिकार मिलना चाहिये कि जहा

अुनको सार्वजनिक कुओंसे पानी भरनेकी मुमानियत हो, जैसी कि है, वहा सरकार अपने खरचेसे हरिजनोंकी आबादीके लिहाजसे कुअें बनवा दे, या कम-से-कम हरिजनोंको अपने कुअें बनानेके लिअे जमीन दिलाने या देनेका नियम बनावे। बहुतेरे गाव अैसे है जहा चाहते हुअे भी हरिजन अपने ही खरचेसे कुअें नहीं बना सकते।

"कहीं-कहीं सरकारने हरिजनोंके लिअे कुअें बनाने शुरू भी किये है, पर वे बहुत नाकाफी है। हरअेक प्रान्तीय सरकारका यह फर्ज होना चाहिये कि वह पीनेके पानीका अिन्तजाम जरूर करे।"

अिन भाअीने जो लिखा है, वह ठीक ही है। हरिजनोंके लिअे पानीका अिन्तजाम सरकारकी तरफसे होना ही चाहिये। अिसके लिअे सिर्फ कुअें खोदनेकी जगह देना काफी नहीं, अुसमें कुअें खुदवा देना भी जरूरी है।

नअी दिल्ली, ६-९-'४६
हरिजनसेवक, १५-९-'४६

२१६
हिन्दुस्तानीके बारेमें

बिहारके अेक सज्जन लिखते है

"आपके नेतृत्वमें हिन्दुस्तानी-प्रचारका जो बडा और सराहनीय काम चल रहा है, अुसके जरिये देशकी तरक्की और आजादी हासिल करनेमें बडी मदद मिल रही है। जिस देशकी अपनी भाषा नहीं, अुसे जीनेका अधिकार ही क्या हो सकता है? अिस मुल्ककी भी यही बदकिस्मती है। सब-कुछ जानते हुअे भी हमारे नेताओंका ध्यान अिस ओर पूरी तरहसे नहीं गया है। आपके अितनी कोशिश करने पर भी कांग्रेसी कार्य-कर्ताओंने पूरा-पूरा अमल नहीं किया है। यह बात भी आपसे

कुछ छिपी नही कि अंग्रेजीकी बू गअी नही है, और आज भी अखिल भारत कांग्रेस-कमेटीके अिजलासमे और असेम्बलियोमे अक्सर वे लोग भी, जिनकी मातृभाषा हिन्दुस्तानी (हिन्दी या अुर्दू) है, अंग्रेजीमे बोलना ज्यादा पसद करते है। क्या यह मुमकिन नही कि जिस तरह कांग्रेसी मेम्बरके लिअे खादी पहनना अनिवार्य है, अुसी तरह कांग्रेस यह भी नियम बना दे कि कांग्रेसी सदस्योको (फिर वे किसी भी असेम्बली या सस्थामे हो) हिन्दुस्तानीमें ही अपने खयालातका अिजहार करना होगा? हा, अुन लोगोके लिअे, जो हिन्दुस्तानी बिल्कुल नही जानते, कुछ रियायत की जा सकती है। मगर अुन्हे भी निश्चित समयके भीतर ही हिन्दुस्तानी सीख लेनी होगी। मुझे यह अनुभव हुआ है कि अुस असेम्बलीमे भी, जहा सभी लोग अच्छी तरह हिन्दुस्तानी जानते है, चाहे अुनमें अंग्रेज भी क्यों न हो, हमारे जिम्मेदार कांग्रेसी सदस्य अंग्रेजीमे ही बोलना पसन्द करते है। अिसको तो बन्द ही करना होगा। बगैर अैसा किये देशका कायापलट नही हो सकता, अैसा हमारा खयाल है। कांग्रेस आज बहुत बडी जिम्मेदारी ले रही है। कांग्रेसी सदस्योको वहा भी हिन्दुस्तानीमें ही काम शुरू करना चाहिये।"

अिस खतके लेखकने ठीक ही लिखा है। अंग्रेजी भाषाका मोह अभी तक हमारे दिलसे दूर नही हुआ है। जब तक वह न छूटेगा, हमारी भाषायें कगाल रहेगी। काश, हमारी बडी सरकार, जो लोगोके प्रति जिम्मेदार है, अपना कारबार हिन्दुस्तानीमें या प्रान्तोकी भाषाओंमे करे! अिस कामके लिअे अुसके अमला-फेलामें, कर्मचारियोंमें, सब सूबोकी भाषाके जानकार होने चाहिये। साथ ही, लोगोको अपने सूबेकी भाषामे या राष्ट्रीय भाषामें लिखनेका बढावा देना जरूरी है। अैसा होनेसे हम बहुतसे खर्चसे बच जायगे, और अिसमें शक नही कि अिससे लोगोको भी सुभीता होगा।

नअी दिल्ली, ७-९-'४६

हरिजनसेवक, १५-९-'४६

२१७

दशरथ-नन्दन राम

अेक आर्यसमाजी भाअी लिखते है

"जिन अविनाशी रामको आप अीश्वर-स्वरूप मानते है, व दशरथ-नन्दन सीतापति राम कैसे हो सकते है? अिस दुविधाका मारा मै आपकी प्रार्थनामे बैठता तो हू, लेकिन रामधुनमें हिस्सा नही लेता। यह मुझे चुभता है। क्योंकि आपका कहना तो यह है कि सब हिस्सा ले, और यह ठीक भी है। तो क्या आप अैसा कुछ नही कर सकते, जिससे सब हिस्सा ले सकें?"

'सब'के मानी मै बता चुका हू। जो लोग दिलसे हिस्सा ले सकें, जो अेक सुरमें गा सके, वे ही हिस्सा ले, बाकी शान्त रहे। लेकिन यह तो छोटी बात हुअी। बडी बात तो यह है कि दशरथ-नन्दन अविनाशी कैसे हो सकते है? यह सवाल खुद तुलसीदासजीने अुठाया था और अुन्होंने अिसका जवाब भी दिया था। अैसे सवालोका जवाब बुद्धिसे नही दिया जा सकता — बुद्धिको भी नही। यह दिलकी बात है। दिलकी बात दिल ही जाने। शुरूमें मैंने रामको सीतापतिके रूपमे पाया। लेकिन जैसे-जैसे मेरा ज्ञान और अनुभव बढता गया, वैसे-वैसे मेरा राम अविनाशी और सर्वव्यापी बना है, और है। अिसका मतलब यह कि वह सीतापति बना रहा, और साथ ही सीतापतिके माने भी बढ गये। ससार अैसे ही चलता है। जिसका राम दशरथ राजाका कुमार ही रहा, अुसका राम सर्वव्यापी नही हो सकता, लेकिन सर्वव्यापी रामका बाप दशरथ भी सर्वव्यापी बन जाता है। कहा जा सकता है कि यह सब मनमानी है — 'जैसी जिसकी भावना, वैसा अुसको होय'। दूसरा कोअी चारा मुझे नजर नही आता। अगर आखिरकार सब धर्म अेक है, तो हमें सबका अेकीकरण करना है। अलग तो पडे ही है, और अलग मानकर हम अेक-दूसरेसे लडते है। और, जब

थक जाते हैं, तो नास्तिक बन जाते हैं, और फिर सिवा 'हम' के न अीश्वर रहता है, न कुछ और! लेकिन जब समझ जाते हैं, तो हम कुछ नहीं रह जाते, अीश्वर ही सब कुछ बन जाता है — वह दशरथ-नन्दन, सीतापति, भरत व लक्ष्मणका भाअी है भी और नहीं भी। जो दशरथ-नन्दन रामको न मानते हुअे भी सबके साथ प्रार्थनामें बैठते हैं, अुनकी बलिहारी है! यह बुद्धिवाद नहीं। यहां मैं यह बता रहा हूं कि मैं क्या करता हूं, और क्या मानता हूं।

नअी दिल्ली, १६-९-'४६
हरिजनसेवक, २२-९-'४६

२१८

कांग्रेसी मंत्री साहब लोग नहीं

अेक कांग्रेस-सेवक पूछते हैं

"क्या कांग्रेसी प्रधान अुसी साहबी ठाठसे रह सकते हैं, जिस ठाठसे अंग्रेज रहते थे? क्या वे अपने घरेलू कामोंके लिअे भी सरकारी मोटरों वगैराका अिस्तेमाल कर सकते हैं?"

मेरी दृष्टिसे तो दोनों सवालोंका अेक ही अुत्तर हो सकता है। अगर कांग्रेसको लोक-सेवाकी ही संस्था रहना है, तो प्रधान वर्ग साहब लोगोंकी तरह नहीं रह सकता, और न सरकारी साधनोंका अुपयोग घरेलू कामोंके लिअे कर सकता है।

नअी दिल्ली, २०-९-'४६
हरिजनसेवक, २९-९-'४६

२१९

दो घोड़ोंकी सवारी

अुत्कल या अुडीसामें ताती लोग काफी तादादमें रहते हैं। वे कानूनन् हरिजन माने जाते हैं, और पान-तातीके नामसे मशहूर हैं। अुनमें से कअी अपने पेटके लिअे सिंहभूम जिलेके कोल्हन तालुकेमें रहते हैं। वे अपनेको पान-ताती नहीं कहते। सिर्फ तातीके नामसे अपनी पहचान देते हैं। नतीजा अिसका यह हुआ है कि बिहारमें अुनकी गिनती हरिजनोंमें नहीं होती। अुनके अगुआ भी अपनेको हरिजन कहकर दफ्तरोंमें दाखिल नहीं होते। मेरे खयालमें अुनका यह तरीका ठीक ही है। अपनेको हरिजन या अछूत कहलानेका मोह क्यों रखा जाय? अुससे फायदा क्या? यही न कि अुसकी वजहसे वोट मिलेंगे, सरकारी मदद मिलेगी, और हरिजन-सेवक-संघसे तालीमके लिअे वजीफा वगैरा मिलेगा? क्या अिस तरहकी मदद पानेके लिअे हम घृणित बनें? यह विचार ही हमें गिरानेवाला है। क्या रोटीके लिअे हम अपनेको पतित बनायें?

तातियोंको पान-ताती बननेकी जरूरत नहीं। अब तो लोगोंकी सरकार काम कर रही है। सरकारका धर्म है कि वह पिछडी हुअी जातियोंके साथ भी वैसा ही बरताव करे, जैसा हरिजनोंके साथ करती है — यानी अुनके लिअे तालीम वगैराका अिन्तजाम करे।

अछूतोंका अेक अलग विभाग कायम करनेका तरीका अंग्रेज सरकारका अपना तरीका था। लोगोंकी सरकारके नजदीक तो क्या गरीब, और क्या अनपढ, सब अेक ही हैं — होने चाहियें। अुसके नजदीक न कोअी अूंच है, न नीच, और न किसी तरहका कोअी धार्मिक भेद है। अुसके लिये तो सभी हिन्दुस्तानी हैं।

तातियोंको चाहिये कि वे हरिजन बननेकी कोशिश हरगिज न करें। अुन्हें सरकारी नौकरीका लालच भी न होना चाहिये। जो हाल

करोडोका होगा, वही तातियोंका और दूसरे पेशेदारोंका भी होगा। चुनाचे तातियोको मै यह सलाह दूगा कि वे अपनी हालत सुधारनेके लिअे सीधी कोशिश करें, और दूसरे अुन्हे मदद दें।

नअी दिल्ली, २८–९–'४६
हरिजनसेवक, ६–१०–'४६

२२०

ग्राम-विद्यापीठ

डॉक्टर किनी मैसूरमे महकमे तालीमके मंत्री थे। अुन्होने 'हरिजन' के लिअे अेक लम्बा लेख लिखा है। अुनका मतलब यह है कि हिन्दुस्तान अिसलिअे गरीब रहा है कि राजसत्ताने गरीब देहातको सही तालीमसे दूर रखा है। वे मानते है कि हमारे शहरोमे जो विद्यापीठ या युनिवर्सिटिया है, अुनसे देहातकी सेवा नही हो सकेगी, क्योकि अिन विद्यापीठोमे अंग्रेजी सल्तनतने पढाअीका जो अिन्तजाम किया है, वह सब पश्चिमको बढानेके लिअे है, और अिन विद्यापीठोमे देहातके लायक तालीम दाखिल करना मुश्किल है।

डॉ० किनी कहते है कि देहातके लिअे देहाती विद्यापीठ होने चाहिये, जिनमे बडी अुमरके लोग भी सीख सकें।

किनी महाशय लिखते है कि ग्रामीण विद्यापीठोमें खेतीविद्या, फलविद्या, रेशमविद्या, गोविद्या, मुर्गीविद्या, मधुविद्या, मछलीविद्या, खद्दरविद्या, ग्रामीण स्वच्छता, ग्रामीण विद्युत्-विद्या, ग्रामीण रास्ते, ग्रामीण गृहविद्या, ग्रामीण कुम्हारविद्या, ग्रामीण अर्थशास्त्र, ग्रामीण समाजशास्त्र, ग्राम-रचना, ग्रामीण व्यापार, और ग्रामीण सराफा व साहूकारी-विद्या वगैरा सिखानेका अिन्तजाम होना चाहिये। अगर हिन्दुस्तानके देहातमें ये सब चीजें शास्त्रके रूपमे सिखाअी जाय, तो लेखक कहते है कि देहातका चेहरा बदल जायगा और देहातको शहरोंकी

ओर नही देखना पडेगा, बल्कि अुल्टे शहरियोंको देहातकी ओर देखना पडेगा।

डॉ० किनीके लेखका मैंने तो सार ही दिया है। अगर केन्द्रीय कैबिनेट और सूबोकी कैबिनेटें अिसे अपना ले, तो बडा काम हो सकता है। अुसको रूप देनेके लिअे किनी महोदयको डॉ० जाकिर-हुसैन और आर्यनायकम् दम्पतिसे मशविरा करना चाहिये। मैं तो मानता हू कि शहरके विद्यापीठ भी बदल सकते है।

नअी दिल्ली, १५–९–'४६
हरिजनसेवक, १३–१०–'४६

२२१

डोला-पालकी

गढवाल जिलेमे हिन्दू लोग अितने अनजान है कि वे हरिजन वरराजा (दूल्हा) को डोला-पालकीमे या दूसरी किसी सवारी पर बैठकर मदिरो, चौराहो या अपनेको अूचा माननेवाले हिन्दुओंके मोहल्लोसे नही जाने देते। अब तो अैसा बुरा रिवाज बरदाश्त नही किया जाना चाहिये। अेक भाअीने मुझे कानूनका मसविदा भी भेजा है, जिसे पास करने पर शायद वे अनजान लोग समझ जाय। और अैसा करना ही चाहिये। हर हालतमे, जब कभी अैसा 'वरघोडा' यानी बरातका जुलूस निकाला जाय, तो अुसके साथ अिन गरीब लोगोंकी हिफाजतके लिअे अेक पुलिस-पार्टी रहनी चाहिये। सरकारकी तरफसे अिश्तहार भी बाटे जाने चाहिये कि डोला-पालकी या दूसरी किसी सवारी पर बैठनेमे किसीको रोका न जाय — रुकावट डालने-डलवाने-वालोको सजा दी जायगी।

नअी दिल्ली, ६–१०–'४६
हरिजनसेवक, १३–१०–'४६

२२२

'वनस्पति' का खतरा

"ता० १४-४-'४६ के 'हरिजन' में आपने वनस्पतिके बारेमे सरदार दातारसिंहजीके लेखका समर्थन किया था। अुस लेखमें कअी अुपाय भी बताये गये थे, जिन पर अमल करनेसे यह बुराअी दूर हो सकती है। लेकिन बुराअी बढ ही रही है। पजाब, अकोला, शेगाव, और कर्नूलमे वनस्पतिके नये कारखाने खोलनेकी अिजाजत भी दी जा रही है। कम-से-कम यह तो बन्द होना चाहिये। पजाब-जैसे सूबेमे वनस्पतिको रगकर बेचनेका नियम भी नही बनाया गया।"

यह अेक खतका निचोड है। 'वनस्पति' शब्द मैंने अवतरणमें रखा है। अुसका पूरा नाम 'वनस्पति घी' है। वनस्पति तो हमेशा अच्छी होती है। वनस्पति यानी फल, फूल, भाजीकी पत्तिया वगैरा। लेकिन जब वह दूसरी वस्तुकी जगह लेती है, तब जहर बन जाती है। वह घी नही है, न हो सकती है। जब होगी तब मैं ही जोरोंसे कहूगा कि घीकी कोअी जरूरत नही। किसी प्राणी या जानवरके दूधमें से जो चिकना पदार्थ पैदा होता है, वह घी या मक्खन है। अुस घीके नामसे जो वनस्पति तेल, घी या मक्खनकी शकलमें या अुसके नामसे बेचा जाता है, वह हिन्दुस्तानके साथ किया जानेवाला अेक बडा धोखा है, दगा है। हिन्दुस्तानके बेपारियोंका धर्म है कि वे किसी भी शकलमे घीके नामसे अैसा दिखावा करके कोअी तेल या पदार्थ न बेचे। किसी सरकारको तो अैसा हरगिज करना चाहिये।

हिन्दुस्तानके करोडो लोगोको न दूध मिलता है, न छाछ, न घी या मक्खन। नतीजा यह होता है कि लोग मरते जाते है, निस्तेज बनते है। अैसा लगता है कि मनुष्यके शरीरको मास या दूध और दूधमे बनी हुअी चीजें जैसे दही, छाछ, घी, मक्खन वगैराकी जरूरत है।

अिस बारेमें जो धोखा देता है या जो अिसे दरगुजर करता है, वह हिन्दुस्तानका दुश्मन बनता है।

नअी दिल्ली, ६–१०–'४६
हरिजनसेवक, १३–१०–'४६

२२३

सवाल-जवाब

कर्म पूजा नहीं?

स०—मनुष्य अीश्वर-भजनमे जितना समय लगाता है, अगर अपना अुतना ही समय वह किसी गरीबकी सेवामे लगावे, तो क्या यह भजनसे अच्छा न होगा?

जो मनुष्य अैसा करता है, क्या अुसके लिअे अीश्वर-भक्ति जरूरी है?

ज०—अैसे सवालमें मुझे आलस्यकी बू आती है। नास्तिकताकी भी। बडे कर्मयोगी कभी भजन या भक्ति नही छोडते। हा, सिद्धान्त-रूपमे यह कहा जा सकता है कि पारमार्थिक कर्म ही भक्ति है, और अैसे लोगोंको भजनकी जरूरत नही। मगर हकीकतमें भजन वगैरा अैसे कर्मके सहायक बनते है, और अीश्वरकी याद ताजा रखते हैं।

अछूतपनका नाश कैसे हो?

मद्रासके अेक हरिजन भाअी लिखते हैं

स०—हरिजनोंको तालीम देना, अुन्हे आम कुअोंसे पानी भरने देना, मदिरोंमे जाने देना वगैरा अच्छा तो है, लेकिन सच्ची बात यह है कि हरिजनोंके लिअे बस्ती या चेरी जैसी अलग जगहे नही होनी चाहिये। तभी अस्पृश्यताका नाम-निशान मिट सकेगा।

ज०—यह कहना अच्छा लगता है कि हरिजनोंके लिअे अलग बस्तियोंका न रहना अछूतपनके नाशकी निशानी होगी। आज भी,

जहा तक मुझे अिल्म है, अैसा कोअी आम कानून नही, जिससे हरि-जनोंको अपने लिअे बनी बस्तियोमे ही रहना पडता हो। दुष्ट रिवाजने अैसी हालत पैदा कर रखी है। यह रिवाज नाबूद हो रहा है, लेकिन बहुत धीरे-धीरे। सबका धर्म है कि वे अिस रिवाजको तोडे। यह लोगोंके दिलोको हिलानेकी बात है। अैसा काम बडी तपश्चर्यासे ही हो सकता है। तुलसीदासजी कहते हैं —

"तपबल रचअि प्रपच बिधाता।
तपबल बिष्णु सकल-जग-त्राता॥
तप-अधार सब सृष्टि भवानी।
करहि जाअि तप अस जिय जानी॥"

जब कोअी अैसी ताकत रखनेवाला पैदा होगा, तब काम आसान हो जायगा। धर्म बच जायगा।

क्या रामनाम और जतर-मतर अेक हैं?

स० — मेरा भतीजा बीमार था। अुसके लिअे रिश्तेदारोंने दवा-दारू नही की। ओझो और पण्डोको बुलाया और जतर-मतर करवाये। यह नही कहा जा सकता कि अुससे कुछ फायदा हुआ। शायद आपकी माताने भी आपके लिअे अेसा ही किया होगा। अब आप रामनामकी बात करते हैं। जतर-मतर और रामनाम अेक तो नही है न?

ज० — अिस शकाका जवाब किसी-न-किसी शकलमे मैने दिया तो है, फिर भी कुछ और कहना अच्छा होगा। मुझे खयाल है कि मेरी माने दवाअी तो कराअी थी। वह जतर-मतरमे अवश्य मानती थी। मै नही मान सकता। मेरे कुछ ज्ञानी मित्र है, जो मानते हैं। मगर मेरी आस्था नही जमती। अिसलिअे मै निडर होकर कह सकता हू कि मेरे रामनामका जतर-मतरसे कोअी वास्ता नही। मैने कहा है कि रामनाम अथवा किसी भी रूपमें हृदयसे अीश्वरका नाम लेना अेक महान् शक्तिका सहारा लेना है। वह जो कर सकती है, सो दूसरी कोअी शक्ति नही कर पाती। अुसके मुकाबले अणुबम कोअी चीज

नहीं। अुससे सब दर्द दूर होते हैं। हां, यह सही है कि हृदयसे नाम लेनेकी बात कहना आसान है, करना कठिन है। सो वह कितना भी कठिन क्यों न हो, वही सर्वोपरि वस्तु है।

नअी दिल्ली, ५-१०-'४६

हरिजनसेवक, १३-१०-'४६

२२४

मालवीयजी महाराज

अंग्रेजीमें अेक कहावत है—"राजा गया, राजा हमेशा जिये।" ठीक यही भारत-भूषण मालवीयजी महाराजके लिअे कहा जा सकता है—"मालवीयजी गये मालवीयजी अमर हों!" मालवीयजी हिन्दुस्तानके लिअे पैदा हुअे और हिन्दुस्तानके लिअे किये गये अपने कामोंमें जीते हैं। अुनके काम बहुत हैं। बहुत बड़े हैं। अुनमें सबसे बड़ा हिन्दू-विश्व-विद्यालय है। गलतीसे अुसे हम बनारस हिन्दू युनिवर्सिटीके नामसे पहचानते हैं। अुस नामके लिअे दोष मालवीयजी महाराजका नहीं, अुनके पैरोकारोंका रहा है। मालवीयजी महाराज दासानुदास थे। दास लोग जैसा करते थे, वैसा वे करने देते थे। मुझे पता है कि यह अनुकूलता अुनके स्वभावमें भरी थी। यहां तक कि बाज दफा वह दोषका रूप ले लेती थी। लेकिन 'समरथको नहीं दोष गुसाअी' वाली बात मालवीयजी महाराजके बारेमें भी कही जा सकती है। अुनका प्रिय नाम तो हिन्दू-विश्व-विद्यालय ही था। और यह सुधार तो अब भी करने लायक है, अिस विश्व-विद्यालयका हरअेक पत्थर शुद्ध हिन्दूधर्मका प्रतिबिम्ब होना चाहिये। अेक भी मकान पश्चिमके जड़वादकी निशानी न हो, बल्कि आध्यात्मिक निशानी हो। और, जैसे मकान हों वैसे ही शिक्षक और विद्यार्थी भी हों। आज हैं? प्रत्येक विद्यार्थी शुद्ध धर्मकी जीवित प्रतिमा है? नहीं है, तो क्यों

नही है? अिस विश्व-विद्यालयकी परीक्षा विद्यार्थियोकी सख्यासे नही, बल्कि अुनके हिन्दूधर्मकी प्रतिमा होनेसे ही हो सकती है, फिर भले वे थोडे ही क्यो न हो।

मै जानता हू कि यह काम कठिन है। लेकिन यही अिस विद्यालयकी जड है। अगर यह अैसा नही है, तो कुछ नही है। अिसलिअे स्वर्गीय मालवीयजीके पुत्रोका और अुनके अनुयायियोका धर्म स्पष्ट है। जगतमे हिन्दूधर्मका क्या स्थान है? अुसमे आज क्या दोष है? वे कैसे दूर किये जा सकते है? मालवीयजी महाराजके भक्तोका कर्तव्य है कि वे अिन प्रश्नोको हल करे। मालवीयजी अपनी स्मृति छोड गये है। अुसको स्थायीरूप देना और अुसका विकास करना अुनका श्रेष्ठ स्मृति-स्तम्भ होगा।

विश्व-विद्यालयके लिअे स्व० मालवीयजीने काफी द्रव्य अिकट्ठा किया था, लेकिन बाकी भी काफी रहा है। अिस काममे तो हरअेक आदमी हाथ बटा सकता है।

यह तो हुअी अुनकी बाह्य प्रवृत्ति। अुनका अन्दरूनी जीवन विशुद्ध था। वे दयाके भण्डार थे। अुनका शास्त्रीय ज्ञान बडा था। भागवत अुनकी प्रिय पुस्तक थी। वे बाहोश कथाकार थे। अुनकी स्मरण-शक्ति तेजस्विनी थी। जीवन शुद्ध था, सादा था।

अुनकी राजनीतिको और दूसरी अनेक प्रवृत्तियोको छोड देता हू। जिन्होने अपना सारा जीवन सेवाको अर्पित किया था, और जो अनेक विभूतिया रखते थे, अुनकी प्रवृत्तिकी मर्यादा हो नही सकती। मैने तो अुनमे से चिरस्थायी चीजे ही देनेका सकल्प किया था। जो लोग विश्व-विद्यालयको शुद्ध बनानेमे मदद देना चाहते है, वे मालवीयजी महाराजके आन्तर-जीवनका मनन और अनुसरण करनेकी कोशिश करे।

श्रीरामपुर, २३–११–'४६
हरिजनसेवक, ८–१२–'४६

२२५

सवाल-जवाब

हिंसाका मुकाबला कैसे किया जाय?

स० — लीगके नेता और अुमके अनुयायी अपनी मुराद हासिल करनेके लिअे अहिंसामे अेतबार नही करते हैं। अिस हालतमें यह किस प्रकार सभव है कि लीगवालोंका हृदय जीता जाय, या अुन्हे अिस बातका विश्वास दिलाया जाय कि हिंसात्मक साधन बुरा है?

ज० — हिंसाका सही प्रतिकार अहिंसासे ही हो सकता है, यह सनातन सत्य है। जिन भाअीने सवाल किया है, अुनका अेतबार अहिंसा पर नही हो सकता है। क्योंकि अिस अहिंसा-रूपी शस्त्रके आगे हिंसक शस्त्र, चाहे वह अेटम-बम ही क्यो न हो, बेकार होता है। यह बिलकुल दूसरी बात है कि अैसे बुलन्द शस्त्र जाननेवाले लोग बहुत कम होते हैं। अुस (अहिंसक) शस्त्रके अुपयोगमे ज्ञान और दिलकी ताकतकी काफी दरकार रहती है। अुसमे मिलिटरी स्कूल-कॉलिजोंमे बरसो तालीम लेनेकी बात नही होती, लेकिन दिल साफ रखनेकी जरूरत होती है। जितनी मुसीबत हमको हिंसाका सामना करनेमे आती है, वह सब हमारे दिलकी कमजोरीकी निशानी है। दूसरी बात यह भी है कि अब तो कायदे आजम जिन्नाने अैसी बुलन्द बात कही है कि अपने हकोको पानेके लिअे यानी पाकिस्तान पानेके लिअे हिंसाका अिस्तेमाल करना मुनासिब नही है। यह बात अुन्होंने सरहदी सूबेसे जो लोग अुन्हे मिलने गये थे, अुनसे साफ-साफ लफ्जोमे कही है। अुसे हम न भूलें।

स० — बहुतसे लोगोका अैसा खयाल होता जा रहा है कि पाकिस्तानके समर्थकोंके साथ संघर्ष — शायद हिंसात्मक ढंगका — होना अनिवार्य है। अगर राष्ट्रवादी अैसा समझे कि जब तक लीग पंजाब और बंगालके बटवारेके लिअे सहमत नही हो जाती, तब तक पाकिस्तानकी माग ठीक नही है, तो कांग्रेसी किस साधनका अवलम्बन करें?

ज० — अगर पहले सवालका जवाब ठीक समझमे आ गया है, तो दूसरा सवाल अुठ ही नही सकता। फिर भी बात साफ करनेके कारण मै जवाब दे रहा हू। अगर जिन्ना साहबका कहना सब मुसलमान या लीगी मुसलमान मान ले, तब तो हिंसात्मक ढगका झगडा हो ही नही सकता। और, हिन्दू बडी तादादमे अहिंसाका सहारा ले, तो मुसलमान कितनी भी हिंसा करे, वह हिंसा बेकार होगी। अेक बात और भी समझ लेनी चाहिये। जो लोग अहिंसाके पुजारी है, वे गैर-मुनासिब खयाल तक भी न करे, अैसा काम तो कर ही नही सकते। अिसलिअे अगर पाकिस्तान ठीक नही है, तो बगाल और पजाबके टुकडे भी ठीक नही है।

स० — अधिकतर समाजवादियोका यह विश्वास है कि सामाजिक क्रान्ति होनेसे हिन्दू-मुस्लिम झगडा पीछे पड जायगा, और आर्थिक सवाल सामने आ जायेगे। क्या आपकी समझसे यह अच्छा होगा कि अैसी क्रान्ति हो? क्या अिससे राम-राज्य कायम होनेमे मदद मिलेगी?

ज० — सामाजिक क्रान्तिमे हिन्दू-मुस्लिम झगडा कुछ हद तक तो ढीला पडेगा। अितना तो हम सबको साफ होना चाहिये कि झगडोके बहुतसे कारण होते है। हिन्दू-मुस्लिम झगडा मिट जानेमे सब झगडे मिट जाते है, अैसा तो नही कह सकते। अितना ही कहा जाय कि हिन्दू-मुस्लिम झगडेने अेक भयकर रूप ले रखा है। छोटे-मोटे दूसरे झगडे मिट जानेसे अिस भयकरताका रूप कम हो जायगा, अिसमें शक नही है।

जब गुलामी मिटकर आजादी आती है, तब समाजकी सारी व्याधिया (बुराअिया) अूपर आ जाती है। अिसमे भडकनेका मै कोअी कारण नही पाता। अगर अैसे मौके पर हमारा मन स्थिर रहे, तो सब साफ हो जाता है। हर हालतमे आर्थिक सवालको हल होना ही है।

आज आर्थिक असमानता है। समाजवादकी जडमे आर्थिक समानता है। थोडोको करोड और बाकी लोगोको सूखी रोटी भी नहीं,

अैसी भयानक असमानतामे राम-राज्यका दर्शन करनेकी आशा कभी न रखी जाय।

अिसलिअे मैने दक्षिण अफ्रीकामे ही समाजवादको स्वीकार किया था। मेरा समाजवादियो और दूसरोंसे यही विरोध रहा है कि सब सुधारोंके लिअे सत्य और अहिंसा ही सर्वोपरि साधन है।

स०—आप कहते है कि राजा, जमीदार और पूजीपति सरक्षक (ट्रस्टी) बनकर रहें। आपके खयालसे क्या अैसे राजा, जमीदार या पूजीपति अभी मौजूद है? या वर्तमान राजा वगैरामे से किन्हीके अिस प्रकार बदल जानेकी अुम्मीद है?

ज०—मेरे खयालसे अैसे राजा, जमीदार और पूजीपति अभी है। अिसका मतलब यह नही है कि वे पूरे-पूरे सरक्षक बन चुके हैं। लेकिन अुनकी गति अुस ओर है।

मौजूदा राजा वगैराके सरक्षक बननेकी अुम्मीद रखी जाती है या नही, यह सवाल पूछने लायक है।

मेरी दृष्टिमे यह अुम्मीद जरूर रखी जाय। वे लोग अपने आप सरक्षक न बनेगे, तो समय अुन्हे बनावेगा अथवा अुनका नाश हो जायगा। जब पचायत-राज बनेगा, तब लोकमत सब कुछ करवा लेगा।

जमीदारी, पूजी अथवा राजसत्ताकी ताकत तब तक ही कायम रह सकती है, जब तक आम लोगोमें अपनी ताकतकी समझ नही होती। लोग रूठें तो राजा, पूजीपति या जमीदार क्या कर सकता है? पचायत-राजमे पचका ही चलनेवाला है और पच अपना काम कानूनसे कर लेता है। अगर पचका कारोबार अहिंसासे चलेगा, तो तीनो मालिक कानूनसे सरक्षक बनेगे और हिंसासे चलेगा तो अुनकी मालिकी बुझ जायगी।

नअी दिल्ली, २५-५-'४७
हरिजनसेवक, १-६-४७

२२६

जिन्दा दफनाया ?

अेक हैदराबादी भाअी लिखते है

"गाघीको जिन्दा दफनाया जा रहा है।

गाधीजीके माने गाधीके अुसूल। अिन्ही अुसूलोंसे हम अिस दरजे पर पहुचे है। लेकिन जिस सीढीसे हम अूपर अुठे, अुसीको तोड-ताडकर फेक दिया जा रहा है। यह काम वे लोग कर रहे है, जो गाधीजीके सबसे बडे अनुयायी भी कहलाते है। हिन्दू-मुस्लिम-अेकता, हिन्दुस्तानी, खद्दर, ग्रामोद्योग — ये सब खतम कर दिये गये हैं। फिर भी जो अिनकी बातें करते हैं, वे या तो धोखेमें है, या जान-बूझकर धोखा दे रहे है।"

मुझे जिन्दा दफनानेका यह तरीका सबसे अच्छा है। 'दफनाया गया' अैसा तो मै कैसे कबूल करु? मेरे सबसे बडे अनुयायी कौन, और सबसे छोटे कौन? मेरा तो अेक ही अनुयायी है — वह मैं या सब हिन्दी। मेरे अनुयायी वे है, जो अूपरकी बाते मानते है। मेरी अुम्मीद तो अब भी रहती है कि करोडो देहाती ये चारो चीजें मानते है। फिर भी अिस अिलजाममें काफी सत्य है। लेकिन अब मैं देख रहा हू कि मुस्लिम लीगी भाअी यह कहने लगे है कि हम सब भाअी-भाअी है। अब तो यह भी तय हो गया है कि हम सब दोनो हिस्सोंके शहरी है। पासपोर्टकी जरूरत आज तो नही मानी जायगी। कोअी अेक हुकूमत शुरु करे, तब ही अैसा हो सकता है। हम आशा रखें और अैसा बरताव करें, जिससे पासपोर्टकी जरूरत ही न रहे। यह भी आशा रखें कि दोनोमे से कोअी भी खद्दर नही छोडेंगे, देहाती अुद्योग-धंधोंको नुकसान नही पहुचायेंगे। हिन्दुस्तानीके बारेमें मै लिख चुका हू। अुसे कैसे छोडा जाय? मुसलमान, जिनकी

मादरी जबान अुर्दू है, अुर्दू कैसे छोडें? अुन्हें अपनी अुर्दू आसान करनी होगी और हिन्दुओंको, जो अुर्दू नहीं जानते, अपनी हिन्दी आसान करनी होगी। तभी दोनों अेक-दूसरेको समझ सकेंगे। सबसे बडी बात तो लेखकने छोड ही दी है। हिन्दुओंको अस्पृश्यता और जात-पात छोड कर शुद्ध बनना होगा। मुसलमानोंको हिन्दुओंकी नफरत छोडकर साफ होना होगा।

श्रीनगर, ३–८–'४७
हरिजनसेवक, १७–८–'४७

२२७

तिरंगा झंडा

जिन हैदराबादी भाअीने यह लिखा है कि 'गांधीको जिन्दा दफनाया जा रहा है' वे ही आगे चलकर झंडेके बारेमें लिखते हैं—"तिरंगा झंडा हमारे आन्दोलनका प्रतीक था। अुससे चरखा हटाकर सबसे बडा अपराध किया गया है। नये चक्रका या पुराने अशोकके चक्रका गांधीके चरखेसे कोअी संबंध नहीं है, बल्कि वे परस्पर-विरोधी हैं। गांधीका चरखा धर्मसे, मजहबसे परे है, मगर नया चक्र हिन्दू धर्मका प्रतीक है। गांधीका चरखा 'अहिंसक परिश्रम' का प्रतीक है, मगर नया चक्र 'सुदर्शन चक्र' का प्रतीक है (अैसा मुन्शीजी अपने भाषणमें कहते हैं।) सुदर्शन चक्र हिंसाका प्रतीक है। अिस प्रकार नये झंडेसे हिन्दू धर्मके नाम पर राष्ट्रकी हिंसा-वृत्तिको अुत्तेजन मिलेगा। अुस दिशामें यह जान-बूझकर प्रयत्न किया जा रहा है। यह पाकिस्तानको मिलानेका नहीं, बल्कि पाकिस्तानको पक्का करनेका तरीका है।"

मुन्शीजीने जो कहा, अुसे मैंने पढा नहीं है। अगर झंडेका वही अर्थ है जो अूपर बताया गया है, तो राष्ट्रीय झंडा गया। अशोकका चक्र किसी भी हालतमें हिंसाका प्रतीक नहीं बन सकता। महाराज अशोक

बौद्ध थे, अहिंसाके पुजारी थे। सुदर्शन चक्रका तो अडेके चक्रके साथ ताल्लुक नहीं हो सकता। सुदर्शन चक्र मेरी दृष्टिसे अहिंसाकी निशानी है। लेकिन यह मेरी ही बात हुआी। साधारण रूपमें सुदर्शन चक्र हिंसाका साधन माना जाता है। अिसमें शक नहीं कि नये अडेसे और अुस पर जो बहस हुआी है, अुससे यह कहा जा सकता है कि अगरचे चरखेका मूल्य गया नहीं है, फिर भी कम तो जरूर हुआ है। अशोकचक्र और सूत कातनेका चरखा अेक हैं या नहीं, यह तो आखिरकार लोगोंके आचार पर निर्भर रहेगा।

श्रीनगर, ३–८–'४७
हरिजनसेवक, १७–८–'४७

२२८

हिन्दुस्तानी

काकासाहब कालेलकर अेक खतमें लिखते हैं

"यूनियनके मुसलमान यूनियनके वफादार रहेंगे, तो क्या वे हिन्दुस्तानी भाषाको राष्ट्रभाषा मानेंगे और हिन्दी-अुर्दू दोनों लिपियां सीखेंगे? अिस बारेमें अगर आप अपनी राय नहीं बतावेंगे, तो हिन्दुस्तानी-प्रचारका काम बहुत मुश्किल हो जायगा। मौलाना आजाद क्या अपने खयालात नहीं बता सकते?"

काकासाहब जो कहना चाहते हैं, वह नअी बात नहीं है। लेकिन आजाद हिन्दमें यह बात यूनियनको ज्यादा जोरोंसे लागू होती है। अगर यूनियनके मुसलमान हिन्दुस्तानकी तरफ वफादारी रखते हैं और हिन्दुस्तानमें खुशीसे रहना चाहते हैं, तो अुनको दोनों लिपियां सीखनी चाहिये।

हिन्दुओंकी तरफसे कहा जाता है कि अुनके लिअे पाकिस्तानमें जगह नहीं, सिर्फ हिन्दुस्तानमें है। अगर कहीं अैसा मौका आवे कि

पाकिस्तान और हिन्दुस्तानके बीच लडाअी छिड जाय, तो हिन्दुस्तानके मुसलमानोको पाकिस्तानमे लडना होगा। यह ठीक है कि लडाअीका मौका नही आना चाहिये। आखिरमे दोनो हुकूमतोको अेक-दूसरीसे मिल-जुलकर काम करना होगा। अेक-दूसरीके प्रति दोस्ती होनी चाहिये। दो हुकूमतें होते हुअे भी काफी चीजे दोनोके बीच अेक ही है। अगर वे दुश्मन बन जाय, तब तो कोअी भी चीज अेक नही हो सकती। दोनोमे दिलकी दोस्ती रहे, तब तो प्रजा दोनोकी तरफ वफादार रह सकती है। यो तो दोनो राज अेक ही सस्थाके मेम्बर है। अुनमें दुश्मनी हो ही कैसे सकती है? लेकिन अिस चर्चामें पडनेकी यहा कोअी जरूरत नही।

हिन्दुस्तानमें सबकी बोली अेक ही हो सकती है। मै तो अेक कदम आगे बढकर कहता हू कि अगर दोनो राज अेक-दूसरेके दुश्मन नही बल्कि दिलसे दोस्त बनते है, तो दोनो तरफ सब नागरी और अुर्दू लिपिमे लिखेगे। अिसका मतलब यह नही कि अुर्दू जबान या हिन्दी जबान रह ही नही सकती। लेकिन अगर दोनोको या सब धर्मियोको दोस्त बनना है, तो सबको हिन्दी और अुर्दूके सगमसे जो आम बोली बन सकती है अुसमे ही बोलना है। और, अुसी बोलीको अुर्दू या नागरी लिपिमे लिखना है। कम-से-कम हिन्दुस्तानमें रहनेवाले मुसल-मानोका अिम्तहान तो अिसमें हो जाता है, और यही बात हिन्दू, सिक्ख वगैराको भी लागू होती है। लेकिन मै अैसा नही कहूगा कि मुसलमान अगर दोनो लिपिया नही सीखते, तो अुर्दू और हिन्दीके मेलसे बननेवाली सबकी बोली राष्ट्रभाषा हो ही नही सकती। मुसलमान दोनो लिपिया सीखे या न सीखें, तो भी हिन्दू तथा हिन्दुस्तानके दूसरे धर्मियोको दोनो लिपिया सीखनी चाहिये। आजकी जहरीली हवामें यह सादी-सी बात भी शायद लोग नही समझ सकेंगे। अुर्दू लिपिका और अुर्दू लफ्जोका हिन्दू जान-बूझकर बहिष्कार करना चाहे तो कर तो सकते है, लेकिन अुसमे हम बहुत कुछ खोयेंगे। अिसलिअे जिन लोगोने हिन्दुस्तानी-प्रचारका काम हाथमें लिया है, फिर वे दो-चार हो या करोडो, वे अिस सीधी-सादी बातको छोड नही सकते।

मैं अिसमें भी सहमत हूं कि मौलाना अबुलकलाम आजाद साहब और हिन्दुस्तानके दूसरे अैसे मुसलमानोंको अैसी चीजोंमें नमूना बनना चाहिये। अगर वे न बनें तो कौन बनेगा? हमारे सामने बहुत मुश्किल वक्त आया है। अीश्वर हमको सन्मति दे।

नअी दिल्ली, २७–९–'४७
हरिजनसेवक, ५–१०–'४७

२२९

'अकर्ममें कर्म'

अेक भाअी लिखते हैं

"आपने 'मेरा धर्म' लेखमें लिखा है, 'अकर्ममें कर्म' देखनेकी हालतको मैं पहुंचा नहीं हूं। अिस वचनके मानी कुछ विस्तारसे बतायें तो अच्छा होगा।"

अेक स्थिति अैसी होती है, जब आदमीको विचार जाहिर करनेकी जरूरत नहीं रहती। अुसके विचार ही कर्म बन जाते हैं। वह संकल्पसे कर्म कर लेता है। अैसी स्थिति जब आती है, तब आदमी अकर्ममें कर्म देखता है, यानी अकर्मसे कर्म होता है अैसे कहा जा सकता है। मेरे कहनेका यही मतलब था। मैं अैसी स्थितिसे दूर हूं। अुस स्थिति तक पहुंचना चाहता हूं। अुस ओर मेरा प्रयत्न रहता है।

नअी दिल्ली, १६–१०–'४७
हरिजनसेवक, २६–१०–'४७

२३०

प्रौढ़-शिक्षणका नमूना

चरखा-जयन्तीके बारेमे सैकडो तार और खत मेरे पास आये थे। अुनमे से नीचेके खतन, जो अिन्दौरकी प्रौढ-शिक्षण सस्थाकी तरफसे मिला है, मेरा ध्यान खीचा है

"आजके शुभ अवसर पर हजारो बडी-बडी कीमती भेंटे, मुबारकबादीके तार और खत आपकी खिदमतमे पहुचे होगे। हिन्दुस्तानके कोने-कोनेमे आपकी जन्मतिथि खुशीसे मनाअी जा रही है। हर जगहका खुशी मनानेका ढग जरूर कुछ-न-कुछ निराला होगा। हरअेक यह कोशिश कर रहा होगा कि दूसरोसे बढ जाय, जशन मनानेमे जीत अुसीकी हो। अिन सब बातोको देखते हुअे हमारी यह हिम्मत नही पडती कि किसी तरहकी भेट यहाके प्रौढ-साक्षरता-प्रचारके कार्यकर्ताओकी तरफसे आपकी सेवामें पेश की जाय। लेकिन फिर भी अिस शुभ अवसरको जिस तरहसे यहा मनाया गया है अुसे लिखे बिना नही रहा जा सकता। आशा है कि हमारे अिस कार्यको ही भेंट समझकर आप कबूल फरमावेगे।

"ता० २-१०-'४७ से ता० ८-१०-'४७ तक जयन्ती मनानेकी योजना अिस तरह रखी गअी है कि अिन सात दिनोमे ८० गावोंके लोग मिलकर आधाशीशीके झाडोको जडमे अुखाडकर नष्ट कर देंगे। अिन झाडोने सारे जगलको घेरकर पशुओके चारेका नाश कर दिया है। अुनको अुखाडकर पशुओके जीवनको बचानेके लिअे, बिना किसी भेदभावके, अिस अवसरमे फायदा अुठाते हुअे अेक बुरी चीजको यहासे दूर कर दे। अिस योजनाके मुताबिक २ तारीखको छोटे-छोटे बच्चोसे लेकर ६०-७० सालके बूढोने, अेक मामूली गरीबसे लेकर नजरसे अूचे धनवानने और अेक अदने

नौकरसे लेकर बडे-से-बडे सर्कलके आफिसरने अिस कामको अपनाया और दोपहरसे पहले आधाशीशीके बडे-बडे खेतोके पौधोको अुखाडकर साफ कर दिया। अिससे चारेका बचाव, आधाशीशीके आगे बढनेकी रोक और अुसका खात्मा हफ्तेके खतम होनेके पहले हो जायगा। बजाय जुलूस निकालनेके यहाकी जनताके दिलमे प्रौढ-शिक्षा द्वारा यह बैठाया जा रहा है कि अैसे अवसर पर कोअी अैसा काम करना चाहिये, जो किसी भी जीवनके लिअे लाभदायी हो। किसी भी किस्मकी बुराअीके बीजको जडमूलसे खोदनेका प्रयत्न प्रौढ-शिक्षाकी तरफसे किया जा रहा है।

"अूपरकी जो भेट खिदमतमे पेश की जा रही है, अुस पर लोग चाहे हस ले, लेकिन हम पूरे दिलसे यह विश्वास करते है कि आप हमे निराश न करेगे और अिसे जरूर कबूल फरमावेगे।"

मै चरखा-जयन्ती मनानेका यह अेक अच्छा नमूना समझता हू। सूत निकालनेके अर्थमे चरखा भले ही न चला। लेकिन चरखेमे जो चीजे आ जाती है, अुनमे आधाशीशीके पेडोको जडसे अुखाड डालना अवश्य आता है। अुसमे परमार्थ है। अैसे कामोमे सहयोग होता है और अैसे काम सब छोटे-बडे निरन्तर करते रहे, तो सच्चा शिक्षण मिलता है और सुन्दर परिणाम पैदा होते है।

नअी दिल्ली, १८-१०-'४७

हरिजनसेवक, २६-१०-'४७

२३१

दोनों लिपियां क्यों?

रैहाना बहन तैयबजी लिखती है

"१५ अगस्तके बाद दो लिपिके बारेमें मेरे खयाल बिलकुल बदल गये और अब पक्के हो गये हैं। मेरे खयालमें अब वक्त आ गया है कि जिस दो लिपिके सवाल पर खुल्लमखुल्ला और आम तौरसे साफ साफ चर्चा हो। जिसलिजे अगर आप ठीक समझें, तो जिस खतको 'हरिजनसेवक' में छापकर अुस पर चर्चा करें।

जब तक हिन्दुस्तान अखड था और अुसे अखड रखनेकी अुम्मीद थी, तब तक नागरी लिपिके साथ अुर्दू लिपिको चलाना मैं अुचित — बल्कि जरूरी — मानती थी। आज हिन्दुस्तान, पाकिस्तान दो जुदे राज्य बन गये हैं (मुसलमानोंकी निगाहमें तो दो जुदे राष्ट्र)। हिन्दुस्तानी हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा नागरी हिन्दुस्तानकी खास और मान्य लिपि — फिर नागरीके साथ अुर्दूके गठबधनकी क्या जरूरत है? जिस सवाल पर मैं बराबर विचार करती रही हू और अब मेरा दृढ विश्वास हो गया है कि हिन्दुस्तानी पर अुर्दू लिपि लादनेमें जितना ही नहीं कि कोअी फायदा नहीं, बल्कि सख्त नुकसान है। मैं मानती हू कि

१ हिन्दू-मुस्लिम अैक्य और मैत्री भाषा या लिपिसे नहीं हो सकती — सिर्फ सामाजिक मेलजोलसे हो सकती है। यह चीज मैं जीवनभर देखती आयी हू। मुसलमान खुद यही कहते आये हैं और अब भी कहते हैं। साथ मिलने-जुलने, रहने-सहने, खाने-पीने, खेलने-कूदने, कामकाज करनेमें ही अैक्य बढ सकता है। अुर्दू लिपि सामाजिक मेलजोलकी जगह कभी नहीं ले सकती।

२ मुसलमानोंको अगर आप वफादार हिन्दुस्तानी बनाना चाहते हैं, तो अुनमें और बाकीके हिन्दुस्तानियोंमें अब कोअी

फर्क नही करना चाहिये। अगर वे हिन्दुस्तानमे रहना चाहते है, तो और हिन्दुस्तानियोकी तरह रहे। हिन्दुस्तानी सीखे, नागरी सीखे। अगर अुर्दूका आग्रह हो, तो बेशक अुन्हे अुर्दू सीखनेकी सहूलियतें दी जाय। मगर अुन्हे खुश करनेके खातिर हिन्दुस्तानकी सारी जनता पर अुर्दू लिपि क्यो लादी जाय? अिसमें मुझे सख्त अन्याय नजर आता है और मै अिसके बिलकुल खिलाफ हू। गैर-मुसलमानों पर यह अन्याय कि अुन्हे फिजूल अेक अितनी मुश्किल, दोषपूर्ण और हिन्दुस्तानीके लिअे निकम्मी — (अुर्दू लिपिमें साहित्यिक हिन्दुस्तानी लिखना महा कठिन है, क्योकि सस्कृत शब्दोकी बडी तोड-मरोड करनी पडती है।) — लिपि सीखनेमे अपनी शक्ति खर्च करनी पडती है, और मुसलमानो पर यह अन्याय कि अुन्हे अपना दुराग्रह छोडनेका आप कोअी मौका ही नही देते। अुनकी बेजा माग पूरी करके आप अुनमें और अन्य अल्पसख्यकोमे अेक कृत्रिम फर्क पैदा कर देते हैं। अिससे गैर-मुसलमानोको चिढनेका हक मिलता है, और मुसलमानोको अपनी अलग-थलग जमात बनाकर बैठ जानेका मौका मिलता है। (अिस चीजका सबूत मेरा अपना खानदान देता है।) अगर आपने अुर्दू लिपि भी चलाअी, तो मुसलमान सदा हिन्दमे परदेशी बनकर रहेगे और कामचलाअू नागरीमे सन्तोष मानकर अपना सारा ही व्यवहार अुर्दूमे चलायेंगे। यह मेरा अनुभव-जन्य, अिसलिअे, दृढ विश्वास है। बापूजी! गुस्ताखी माफ — आप लोग मुसलमानोसे अितने अलग रहे हैं कि आपको अुनके मानसकी बिलकुल खबर नही। यही वजह है कि पाकिस्तान हो गया। और मुझे यकीन है कि अगर आपने नागरीके साथ अुर्दूको भी राष्ट्रलिपि बना लिया, तो आप हिन्दुस्तानके भीतर अेक दूसरा पाकिस्तान खडा कर देगे।

३ मैं मानती हू कि जो शक्ति आप लोगोको अुर्दू लिपिके प्रचारमे, हर किताबकी द्विलिपि बनानेकी तजवीजोमे, कातिब, ब्लॉक्स, और छपाअीकी हजामतोमें खर्च करनी पडती है, सो

अब खरे महत्त्वके कामोमे लगानी चाहिये। हमे हिन्दुस्तानी भाषा बनानी है, कोष तैयार करने है, साहित्य खडा करना है। अुर्दू लिपिके आग्रहसे हमारा बोझ चौगुना हो जाता है, काममे रुकावटे पैदा होती है और वक्त फिजूल बिगडता है। अिसमें शक नही कि अुर्दू-हिन्दी दोनो जाने बिना हिन्दुस्तानी बनाना अशक्य है। लिहाजा, प्रचारकोको, लेखकोको, हमारे प्रचारक-मदरसाओमें नागरी-अुर्दूका ज्ञान होना जरूरी है। लेकिन आम जनताको अुर्दू लिपिमे क्या गरज? अुसकी जबान हिन्दुस्तानी हो तो बिलकुल काफी है। पूज्य प्यारे बापूजी, मैंने आप लोगोकी सारी दलीले बडे ध्यानसे सुनी है — और अेक भी गले नही अुतरती। अिसलिअे आज यह चर्चा कर रही हू। हम हिन्दु-स्तानियोका यही सूत्र रहे — हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, हमारी राष्ट्रलिपि नागरी। बस!

४ अब अेक मुस्लिम हिन्दुस्तानीकी हैसियतसे मेरी विनती है — खुदाके लिअे आप मुसलमान हिन्दुस्तानियोको अपने ही मुल्कमे परदेशियोकी तरह रहनेका प्रोत्साहन न दीजिये! वे तो यही चाहते है। आप ब्रिटेन और पाकिस्तानका खेल खेलते रहे, और मुसलमान हर जगह बाजिया जीतते रहे। बापू, मै बहुत घबराअी हुअी हू। मै मुसलमान समाजसे वाकिफ हू। अुनकी महत्त्वाकाक्षाअें मै जानती हू — भले आप जानने या माननेसे अिनकार करे। खुदाके लिअे मेरी बात पर ध्यान दीजिये।

आम तौरसे हिन्दवासी मुसलमानोकी 'हिन्दुस्तानी' यानी 'अुर्दू'। वे कोअी और 'हिन्दुस्तानी' न जानते है, न मानते है। आकाशवाणी (रेडियो)की भाषा पर मुसलमानोकी कडुअी टीका यह है कि, "भअी, अिस जबानको तो हम नही समझ सकते। कितने सस्कृत अल्फाज है?" 'समाज', 'भाषा', 'निर्णय', 'निश्चय' जैसे प्रचलित शब्द भी हमारे वफादार मुसलमान हिन्दुस्तानियोके लिअे हराम है। अगर सारी जनता

अुर्दू सीख गअी, तो क्या आप मानते है कि मुसलमान अुर्दूके सिवा कुछ भी लिखेंगे-पढ़ेंगे? मैं नही मानती। और, मेरे अविश्वासके पीछे हिन्दवासी मुसलमानोंका सारा अितिहास पडा हुआ है।

बापू! हाथ जोडकर अर्ज है — सज्जनताके साथ क्या सत्य-दर्शन (realism) नही रह सकता?"

यह खत सोचनेके काबिल है। रैहाना बहनके दिलमें हिन्दू-मुस्लिमका भेद नही है। दोनो अेक है अैसा वह मानती हैं और वैसे ही बरतती हैं। मैं भी दोनोमे भेद नही करता। हम दोनो मानते हैं कि हिन्दू और मुसलमानमे आचार-भेद है। पर वह भेद दोनोको अलग नही रखता। धर्म दो हैं, फिर भी दोनोकी जड अेक है।

तब भी रैहाना बहनकी बातमे मैं भूल देखता हूं। हम दो लोग (नेशन) नही हैं। दो लोग माननेमे हम हिन्दुस्तानको बडा नुकसान पहुचावेंगे। कायदे आजम भले दो लोग मानें और अैसे माननेवाले भले हिन्दू भी हों। लेकिन सारी दुनिया गलतीमे फसे, तो क्या हम भी फसें? अैसा कभी नही हो सकता।

अगर राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी है, तो अुसे दोनो लिपियोमे लिखनेकी छूट होनी चाहिये। अगर हम हिन्दूको या मुसलमानको अेक ही लिपिमें लिखनेके लिअे मजबूर करें, तो हम अुसके साथ गैर-अिन्साफी करेंगे और जब यह गैर-अिन्साफी अल्पमत पर अुतरती है, तब बहुमतका गुनाह दुगुना माना जाय।

मैं नही कहता कि हिन्दुस्तानके चालीस करोडको दोनो लिपिया सीखना है। अैसा अवश्य है कि जो सारे मुल्कमे फिरता है, जिसको अपने सूबेकी ही नही, बल्कि सारे मुल्ककी सेवा करनी है, अुसे दो लिपिया सीखनी ही चाहिये, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान।

अगर हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनना है तो लिपि नागरी ही होगी, अगर अुर्दूको बनना है तो लिपि अुर्दू ही होगी। अगर हिन्दी-अुर्दूके संगमके जरिये हिन्दुस्तानीको राष्ट्रभाषा बनना है, तो दोनो लिपिया

जरूरी है। याद रखना चाहिये कि आज सचमुच अुर्दू लिपि या अुर्दू भाषा सिर्फ मुसलमानोकी नही हे। अैसे असख्य हिन्दू है, जिनकी मादरी जबान अुर्दू है और वे अुसे अुर्दू लिपिमें ही लिखते है। यह भी याद रखना चाहिये कि दो लिपियोकी बात आजकी नही है। मै जब हिन्दुस्तानमे आया, तबसे यह बात चली है। यही विचार मैने जिन्दौरके हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सामने रखे थे। अुस वक्त अगर कोअी विरोध हुआ था, तो नहींके बराबर था। अुसका मुझे स्मरण भी नही है। हा, नाम मैने हिन्दी ही कायम रखा था, व्याख्या वही की थी, जो आज करता हू। मेरे खयालमे आज जब विचारोकी अुथल-पुथल हो रही है, तब हमारी पतवार सिर्फ अेक और मजबूत होनी चाहिये।

जब तक अुर्दू लिपिका सम्बन्ध मुसलमानोसे माना जाता है तब तक हमारा फर्ज है कि हम हिन्दुस्तानीके नाम पर और दोनो लिपियो पर कायम रहे। यह बात सबको साफ समझमे आने जैसी है। किसी भी कारणसे हो, हमने कअी जगह यूनियनमें मुसलमानों पर ज्यादतिया की है। पाकिस्तानमे हिन्दुओं और सिक्खो पर ज्यादतिया शुरू हुअी, अिसलिअे यूनियनमे हिन्दुओ और सिक्खोने मुसलमानो पर की, अैसा जवाब हमारी तरफसे ज्यादतियोके समर्थनमे हो नही सकता। अैसे मौके पर कहना कि हिन्दुस्तानमें राष्ट्रलिपि अेक नागरी ही होगी, अिसे मैं मुस्लिम भाअियो पर नागरीको 'लादना' कहूगा। हा, अगर मुसलमान अुर्दू लिपिमे ही लिखे और अुर्दू व हिन्दुस्तानीमें कोअी फर्क ही न समझें, तो मैं अुसे मुस्लिम भाअियोकी हठ कहूगा। शायद अैसा भी माना जायगा कि अुनका दिल हिन्दुस्तानमे नही है।

रैहाना बहनका यह कहना कि अुर्दू लिपिको नागरीके साथ रखनेमें मुसलमानोको राजी रखनेकी या अुनकी खुशामद करनेकी बात होगी, यह गैर-समझकी बात है। राजी रखना कभी फर्ज होता है और किसी वक्त गुनाह भी होता है। भाअीका अपने भाअीको राजी रखनेके लिअे अुत्तरमे जानेके बदले कभी दक्खिनमें जाना फर्ज हो सकता है, लेकिन शराब पीना गुनाह होगा। अिस तरह तो वह अपना और अपने भाअीका बुरा करेगा। मुसलमान भाअीको राजी रखनेके लिअे

मैं कलमा नही पढ सकता, न वह मुझे राजी रखनेके लिओ गायत्री पढ सकता है। कलमा और गायत्री दोनो अेक ही चीजे है, अैसा मानकर ही दोनो अेक-दूसरेको समझ सकते है। लेकिन यह दूसरी बात है, और अैसा होना भी चाहिये। अिसीलिओ तो अेकादश व्रतमे सर्वधर्म-समानताको जगह दी गअी है।

निचोड यह आया कि सबको राजी रखनेमे दोष ही है, अैसा नही कह सकते। बल्कि बाज दफा वही फर्ज होता है।

बहन फिर लिखती है कि नागरी लिपि प्रमाणमे पूर्ण है, अुर्दू प्रमाणमे अपूर्ण। अुर्दू पढनेमें मुश्किल है और संस्कृतके शब्द अुर्दूमे लिखे ही नही जाते। अिस कथनमे थोडा वजन है सही। अिसका अर्थ यह हुआ कि नागरी लिपि पूर्ण होते हुअे भी सुधार मागती है, वैसे ही अुर्दू लिपि अपूर्ण होनेके कारण सुधार मागती है। संस्कृत शब्द अुर्दू लिपिमे लिखे ही नही जाते, अैसा कहना ठीक नही है। मेरे पास सारी गीता अुर्दू लिपिमे लिखी पडी है। लिपियोंमें सुधार तब हो सकता है, जब वे गिरोहबन्दी और जनूनका कारण नही रहती। सिंधी लिपि अुर्दूका सुधार ही है न?

अन्तमें रैहाना बहनसे मैं प्रार्थना करूंगा कि अुनका खत हिन्दुस्तानीका अेक नमूना है। अुसमे अरबी शब्द हैं, तो संस्कृत भी हैं। हिन्दुस्तानीकी खूबी ही यह है कि अुसे न संस्कृतसे वैर है, न अरबी-फारसीसे। हिन्दुस्तानी तो ताकतवर तब बनेगी, जब वह अपनी मिठासको कायम रखकर दुनियाकी सब भाषाओंका सहारा लेगी। लेकिन अुसका व्याकरण तो हमेशा हिन्दी ही रहेगा। 'हिन्दू' का बहुवचन 'हिन्दुओ' है, 'हनूद' नही। रैहाना बहन अुर्दू अच्छी जानती है और हिन्दी भी। दोनो लिपियोमें लिख भी सकती है। जब मैं यरवडा जेलमे था, तब वह और जोहरा बहन अन्सारी मुझे अुर्दूके पाठ खतोंके मारफत सिखाती थी। मेरी सलाह है कि वह अपना वक्त हिन्दुस्तानीको बढानेमे और दोनो लिपिया आसानीसे सिखानेमे दें। यह काम वह तभी कर सकती है, जब अुनका अपना अज्ञान दूर हो। अगर वह जो मानने लगी है सो ठीक है, तो मुझे

कुछ कहनेको नहीं रह जाता। तब तो मुझे अेक नया पाठ सीखना होगा और अुर्दू लिपिको जो जगह मैं देता हूं, अुसे भूलना होगा।

नअी दिल्ली, १–११–'४७
हरिजनसेवक, ९–११–'४७

२३२

भाषावार विभाग

आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल लिखते हैं

"नअी नअी विद्यापीठें खोलनेके बारेमें आपका लेख 'हरिजन' में पढ़ा। मैं यह मानता हूं कि भाषावार प्रान्तोंकी रचनाके पहले नअी विद्यापीठें स्थापित करनेमें कठिनाअी होगी। लेकिन प्रान्तोंको भाषाके आधार पर बनानेमें कांग्रेसकी ओरसे अितनी ढिलाअी क्यों हो रही है, यह मैं समझ नहीं सका हूं। कांग्रेस सन् १९२० में ही यह मानती आअी है कि प्रान्तोंकी पुनर्रचना विविध भाषाओंके अनुसार हो। लेकिन मौका आने पर अब अिस कामको लम्बानेकी या टालनेकी कोशिश की जा रही है, अैसा मेरा खयाल है। विधान-परिषद्में भी अिस विषयको स्थगित-सा कर दिया गया है। यह बात मुझे अुचित नहीं जान पड़ती। बिना भाषावार प्रान्त-रचना हुअे न तो शिक्षाका माध्यम मातृभाषाको बनाना आसान होगा और न अंग्रेजीको राजभाषाके स्थानसे हटाना सरल होगा। बम्बअी, मद्रास और मध्यप्रांत-बरार जैसे बेढंगे और बहुभाषी प्रान्तोंका हमारे नये विधानमें स्थान ही नहीं होना चाहिये। और अगर हमने अिस प्रश्नको टालनेकी कोशिश की, तो अेक ही प्रान्तके विभिन्न भाषा बोलने-वालोंका पारस्परिक विद्वेष अधिक बढ़ता जायगा। बहुभाषी प्रान्त रखनेसे भाषा-द्वेष कम नहीं होगा, बल्कि दिन-दिन बढ़ेगा, यह

स्पष्ट है। आज देशके सामने हिन्दू-मुस्लिम समस्याने भयकर रूप धारण किया है और हमारे नेताओकी शक्तिया अुसी ओर अधिक लगी है, यह ठीक है। लेकिन अगर देशका बटवारा करना ही था, तो कअी साल पहले ही कर लेना था। अुस हालतमे अितनी खून-खराबी न होती। अिसी तरह अगर हमे प्रान्तोका बटवारा भाषावार करना है, तो देरी करनेसे कोअी फायदा नही होगा। नुकसान ही होगा, क्योकि कटुता बढती जायगी।"

मुझे कबूल है कि जो अुचित है, अुसे अब करना चाहिये। बगैर कारणके रुकना ठीक नही। अिससे नुकसान भी हो सकता है। पापके साथ हमारा कोअी सरोकार नही हो सकता।

फिर भी भाषावार सूबोके विभागमे देर होती है, अुसका सबब है। अुसका कारण आजका बिगडा हुआ वायुमण्डल है। आज हरअेक आदमी अपना ही देखता है, मुल्कका कोअी नही। मुल्ककी ओर जानेवाले, अुसका भला सोचनेवाले लोग है जरूर, लेकिन अुनकी सुने कौन? अपनी ओर खीचनेवाले लोग शोर मचाते है, अिसीलिअे अुनकी बात सब सुनते है। दुनिया अैसी ही है न?

आज भाषावार सूबोका विभाग करनेमे झगडेका डर रहता है। अुडिया भाषाको ही लीजिये। अुडीसा अलग सूबा बन गया है, फिर भी कुछ-न-कुछ खीचतान रही ही है। अेक ओर आध्र, दूसरी ओर बिहार और तीसरी ओर बगाल है। काग्रेसने तो भाषावार विभाग सन् १९२० मे किया। बाकानून तो अुडिया बोलनेवाले सूबेका ही हुआ। मद्रासके चार विभाग कैसे हो? बम्बअीके कैसे? आपसमे मिलकर सब सूबे आवे और अपनी हद बना ले, तो बाकानून विभाग आज बन सकते है। आज हुकूमत यह बोझ अुठा सकती है? काग्रेसकी जो ताकत १९२० मे थी, वह आज है? आज अुसकी चलती है?

आज तो दूसरे हक्दार भी पैदा हो गये है। अैसे मौके पर हिन्दुस्तान बेहाल-सा लगता है। आज तो सप (मेल) के बदले कुसप (फूट) है, अुन्नतिके बदले अवनति है, जीवनके बदले मौत है। जब

कौमी झगडे बन्द होंगे, तब हम समझ सकेंगे कि सब ठीक हुआ है। अैसी हालतमें भाषावार विभाग लोग आपसमें मिलकर कर लें, तो कानून आसान होगा, अन्यथा शायद नहीं।

नअी दिल्ली, २४-११-'४७
हरिजनसेवक, ३०-११-'४७

२३३
गहरी जड़ें

अेक भाअी लिखते हैं

"आजादी मिल जानेके बाद भी शहरके लोगों परसे अंग्रेजी भाषाका असर कम हुआ दिखाअी नहीं देता। बम्बअीकी अुद्योग-धन्धों और खेतीकी नुमाअिशकी ही मिसाल लीजिये। जिन्होंने नुमाअिश खोली, अुन्होंने भी अंग्रेजीमें ही तकरीर की। दुकानोंके तख्ते अंग्रेजीमें थे। चिट्ठी-पत्री भी ज्यादातर अंग्रेजीमें ही हुअी। राशन कार्ड अंग्रेजीमें होते हैं, जिससे अंग्रेजी न पढ सकनेवाली आम जनताको बडी दिक्कत होती है। हमारे नेता गरीब जनताका बिल्कुल खयाल न करते हुअे यही समझते हैं कि अुनके खास खास बयान और अैलान अंग्रेजीमें ही होने चाहिये।"

यह शिकायत सच्ची लगती है। अिसे तुरन्त दूर करना चाहिये। अिस अितने बडे मामलेमें तब तक कोअी खासी तबदीली सुधारकी तरफ दिखाअी नहीं देगी, जब तक हम अपनी सुस्ती न छोडेंगे। यह सुस्ती ही हमारी बदकिस्मती है।

नअी दिल्ली, १०-१२-'४७
हरिजनसेवक, २१-१२-'४७

२३४

प्रान्तीय गवर्नर कौन हो?

आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल लिखते है

"अेक सवाल है, जो मेरे खयालसे महत्त्वका है और जिसके बारेमे मैं आपकी राय जानना चाहता हू। हिन्दका जो नया विधान बनाया जा रहा है, अुसमे प्रान्तोके गवर्नर चुननेके नियम रखे गये हैं। प्रान्तका गवर्नर अुस सूबेके सभी बालिगोके मतसे चुना जायगा। अिसलिअे यह साफ जाहिर है कि जिसे काग्रेसका पार्लमेंटरी बोर्ड चुनेगा, अुसे ही आम तौरसे प्रान्तकी जनता गवर्नर चुन लेगी। प्रान्तका प्रधान मत्री भी काग्रेस पार्टीका ही होगा। प्रान्तका गवर्नर अैसा ही होना चाहिये, जो अुस सूबेकी पार्टीबाजीसे अलग रहे। लेकिन अगर प्रान्तका गवर्नर आम तौरसे काग्रेसी होगा और अुसी प्रान्तका होगा, तो वह काग्रेसदलकी पार्टीबाजियोसे अलग नही रह सकेगा। या तो वह काग्रेसी प्रधान मत्रीके अिशारो पर चलेगा या फिर गवर्नर और प्रधान मत्रीके बीच कुछ न कुछ खीचातानी रहेगी।

"मेरे खयालसे तो प्रान्तोमे अब गवर्नरोकी जरूरत ही नही है। प्रधान मत्री ही सब कामकाज चला सकता है। जनताका ५५०० रु० महीना गवर्नरकी तनखाह पर फजूल ही क्यो खर्च किया जाय? फिर भी अगर प्रान्तोमे गवर्नर रखने ही हैं, तो वे अुसी प्रान्तके नही होने चाहिये। बालिग मतसे अुन्हे चुननेमे भी बेकारका खर्च और परेशानी होगी। यही अच्छा होगा कि यूनियनका प्रेसिडेण्ट हर प्रान्तमे दूसरे किसी प्रान्तका अैसा अिज्जतदार काग्रेसी सज्जन भेजे, जो अुस प्रान्तकी पार्टी-बाजीसे अलग रहकर वहाके सार्वजनिक और राजनीतिक जीवनको अूचा अुठा सके। आज जो प्रान्तोके गवर्नर केन्द्रीय सरकारने

नियुक्त किये है, वे करीब करीब अिन्ही सिद्धान्तोंके अनुसार चुने गये है, अैसा लगता है। और अिसलिअे प्रान्तोका राजनीतिक जीवन भी ठीक ही चल रहा है। अगर आजाद हिन्दके आगेके विधानमे अुमी प्रान्तका आदमी वालिग मतसे चुननेका कायदा रखा गया, तो मुझे डर है कि प्रान्तोंका राजनीतिक जीवन अूचा नही रह सकेगा।

"अुस विधानमे गाव-पचायतोका और राजनीतिक सत्ताको छोटी अिकाअियोमे बाट देनेका किसी तरहका जिक्र नही किया गया है। लेकिन मेरा अुद्देश्य अपने पूज्य नेताओंकी जरा भी टीका करना नही है। जो चीज मुझे बहुत खटकती है, अुस पर मै आपकी राय 'हरिजन' में चाहता हू।"

आचार्यजीने प्रान्तीय गवर्नरोके बारेमे जो कहा है, अुसके समर्थनमे कहनेको तो बहुत है, लेकिन मुझे कबूल करना होगा कि मैं विधान-परिषद्की सब कार्रवाअी नही देख सका हू। मुझे अितना भी मालूम नही है कि गवर्नरके चुनावकी तजवीज किस तरह पैदा हुअी। अिसको न जानते हुअे भी मुझे आचार्यजीकी दलील मजबूत लगती है। अुसमें यह चीज मुझे चुभती है कि बडे वजीरको गवर्नर समझना और किसी दूसरेको गवर्नर नही बनाना, अिसके बावजूद कि लोगोकी तिजोरीकी कौडी कौडीको बचाना मुझे बहुत पसन्द है। पैसेकी बचतके लिअे प्रान्तकी गवर्नरीसे बचना सही अर्थशास्त्र नही होगा। गवर्नरोको दखल देनेका बहुत अधिकार देना ठीक नही है। वैसे ही अुनको सिर्फ शोभाके लिअे पुतला बना देना भी ठीक नही होगा। वजीरोंके कामको दुरुस्त करनेका अधिकार अुन्हे होना चाहिये। सूबेकी खटपटसे अलग होनेके कारण भी वे सूबेका कारबार ठीक तरह देख सकेंगे और वजीरोको गलतियोंसे बचा सकेंगे। गवर्नर लोग अपने अपने सूबोंकी नीतिके रक्षक होने चाहिये। आचार्यजी जैसा बताते है, अगर विधानमें गाव-पचायत और सत्ताको छोटी अिकाअियोमें बाटने (विकेन्द्रीकरण)के बारेमे अिशारा तक नही है, तो यह गलती दूर होनी चाहिये। अगर आम राय ही हमारे लिअे सब कुछ है,

तो पचोका अधिकार जितना ज्यादा हो, अुतना लोगोके लिअे अच्छा है। पचोकी कार्रवाअी और असर फायदेमन्द हो, अिसके लिअे लोगोकी सही तालीम बहुत आगे बढनी चाहिये। यह लोगोकी फौजी ताकतकी बात नही है, बल्कि नैतिक ताकतकी बात है। अिस-लिअे मेरे मनमें तो तालीमसे नअी तालीमका ही मतलब है।

नअी दिल्ली, १४-१२-'४७
हरिजनसेवक, २१-१२-'४७

२३५

कुछ सवाल

शिलागसे श्री रमेशचद्रजी पूछते है

> १ "राष्ट्रभाषाको 'हिन्दी' कहिये या 'हिन्दुस्तानी', यह कोअी खास विवादका सवाल नही है। रोजमर्राकी बातचीतमे तो चालू हिन्दुस्तानी काममे आयेगी ही। अूचे साहित्य, विज्ञान व अैसे दूसरे विषयोंके लिअे नये शब्दोका कोष सस्कृत भाषासे ही बनेगा, अिससे भी शायद ही कोअी अिनकार करेगा। यह बात साफ साफ सबको बतलाअी जाय तो क्या हर्ज है?"

अिस सवालका पहला हिस्सा तो ठीक है। अगर अेक नामके सब अेक ही मानी करे, तो झझट रहती ही नही। झगडा नामका नही है, कामका है। काम अेक हो तो अनेक नामका विरोध वित-डावाद होगा।

अूचे साहित्य और विज्ञानके शब्द सस्कृतसे ही क्यो हो? अिस बारेमें कोअी आग्रह होना ही नही चाहिये। अेक छोटीसी समिति अैसे शब्दोका कोष बना सकती है। अिसमें बात होगी चालू शब्दोको अिकट्ठा करनेकी। मान लीजिये कि अेक अग्रेजी शब्द हिन्दुस्तानीमें चल पडा है। अुसे निकालकर हम क्यों खास सस्कृत शब्द बनावें?

अैसे ही अगर अंग्रेजीका चलता शब्द ले लें तो अुर्दूका क्यों नहीं? 'कुरसी' शब्दके लिअे 'चतुष्पाद-पीठिका' लें कि बिना रोकटोकके 'कुरसी' लें? अैसी मिसालें और भी निकल सकती हैं।

२ "जो मसला है, सो लिपिका है। दो लिपि चालू होते हुअे भी यह सवाल (और ठीक सवाल) सभी करते हैं कि दो लिपिका चलन राष्ट्रके कामको चलानेमें बेकार बोझ साबित होगा। तब दो लिपिके बदले अेक लिपि, जो सभी प्रान्तोंके लिअे सहज और आसान है, क्यों न मानी जाय?

"दो लिपि माननेके मानी भी मैं समझना चाहता हूं। क्या अुसका यह मतलब होगा कि केन्द्रीय सरकारकी सब जाहिरात दोनों लिपियोंमें छापी जायेंगी?

"फिर, तार-घर वगैरासे जो तार आदि निकलेंगे, वे तो किसी अेक ही लिपिमें लिखे जायेंगे। दूसरी लिपिका अुपयोग अिन जगहोंमें किस तरह हो सकेगा, यह भी मैं जानना चाहता हूं।

"मैं यह माननेको तैयार नहीं हूं (हालांकि बहुतेरे लोग अैसा कहते हैं) कि दूसरी लिपि मुसलमान भाअियोंको खुश करनेके लिअे रखी गअी है। हमें तो यह देखना चाहिये कि किसी पर भी अन्याय किये बिना राष्ट्रका भला किस लिपिके चलनेमें होगा। नागरीके चलनेसे मुसलमान भाअियोंको नुकसान होगा, अैसा मानना तो ठीक नहीं है।

"जहां तक मैं समझा हूं, दोनों लिपियोंका चलन थोड़े अर्सेके लिअे ही जरूरी है, जिससे कि वे लोग जो अिन लिपियोंके जानकार नहीं हैं, धीरे धीरे जान जायं। आखिरमें सभी अेक लिपिको अपनावेंगे, अिसमें कैसे सन्देहको हो सकता है?"

दो लिपिको रखते हुअे जो आखिरमें आसान होगी वही चलेगी। यहां बात अितनी ही है कि अुर्दूका बहिष्कार न हो। अिस बहिष्कारमें द्वेष है। अिस झगड़ेकी जड़में द्वेष था, आज वह बढ़ गया है। अैसे मौके पर हम, जो अेक हिन्दुस्तान चाहते हैं, और वह हथियारोंकी

लडाअीसे नही, अुनका फर्ज होता है कि दोनो लिपियोको जगह दें। हम यह भी न भूलें कि वहुतेरे हिन्दू व सिक्ख पडे है, जो नागरी लिपि जानते ही नही। मुझे अिसका तजरवा हमेशा होता है।

करोडोको दोनो लिपि सिखानेकी वात नही है। जिनको अपने सूवेसे वाहर काम करना है, अुन्हे वे सीखनी चाहिये। केन्द्रके दफ्तरमे सव कुछ दोनो लिपियोमें छापनेकी वात भी नही है। जो अिश्तहार सवके लिअे हो, अुन्हें दोनो लिपियोमे छापना जरूरी है। जव दोनो कौमोके वीच जहर फैल गया हे, तव अुर्दू लिपिका वहिष्कार लोकवाद (जमहूरियत) का विरोध ही वताता हे।

तार आदि जव रोमन लिपिमे नही लिखे जायेगे, तव शायद अुर्दू या नागरी लिपिमे लिखे जायेगे। अिसे मै छोटा सवाल मानता हू। जव हम अग्रेजीका और रोमन लिपिका मोह छोडेंगे, तव हमारा दिल और दिमाग अैसा साफ हो जायगा कि हम अिस झगडेके लिअे शरमायेगे।

किसीको राजी रखनेके लिअे कोअी वेजा काम हम कभी न करें। पर राजी रखना हर हालतमे गुनाह नही है।

अेक ही लिपिको सव खुशीसे अपनावें तो अच्छा ही है। अैसा होनेके लिअे भी दो लिपियोका चलना आज जरूरी हे।

नअी दिल्ली, ४–१–'४८
हरिजनसेवक, ११–१–'४८

२३६

खादीके मारफत

अेक सज्जन लिखते है

"सारे हिन्दुस्तानकी कपडेकी कमी ६ माहमे दूर हो सकती है। अुसके लिअे दो शर्तें है—१ गाव गावमे सूत-कताअी और वुनाअी कराना प्रान्तीय सरकारो और हिन्द सरकारकी नीति हो, और अिस काममे सरकारी नौकरोसे मदद मिले। २ अपने प्रान्त व देशके वडे नेता अिवर अविक घ्यान देकर अिसका काफी प्रचार करे।"

कपडोकी कमी पूरी करनेके लिअे ये शर्तें आसान लगनी चाहिये। दोनो शर्तोका पालन काग्रेसी हुकूमतका वर्म है। जितनी ढिलाअी है, सव घर्म-पालनकी कमी सावित करती है। ढिलाअी आअी है, अिसमें शक नही है। अुसे मिटानेका आज सवसे अच्छा मौका है, क्योकि कपडेके दाम वहुत वढ गये है। अिसका सवव हमारी नादानी ही है। अव यह कैसे मिटे? जिनका खादीमे अटल विश्वास है, अुनके व्यवहारसे, अुनकी वुद्धिके तेजसे और तजरवेसे। जव हुकूमतकी नीति खादीके अनुकूल होगी, तव कपडे आदि पर अकुशकी वात अपने आप छूट जायगी। अिस वीच आज कपडे पर जो अकुश है, वह गरीवोके लिअे तो भी जल्द-से-जल्द जाना चाहिये।

नअी दिल्ली, ५–१–'४८
हरिजनसेवक, ११–१–'४८

२३७

प्रमाणित अप्रमाणितका फर्क

नीचेके सवाल आज अुठ सकते है। यह जमानेके बदलनेकी निशानी है

"आजादी मिलनेके बाद शुद्ध खादी, अप्रमाणित खादी, मिलके कपडे और विलायती कपडेमे बहुत फर्क नही रह जाता। जितनी जरूरत हो अुतना खुद ही कातकर और बुनकर पहनें, तो जरूर फर्क हो जाता है। क्योंकि अिससे अेक खास विचार-धाराका पता चलता है। पर जितना कपडा चाहिये, अुतना सूत तो कातना होता नही। खादी तो खादी-भडारसे ही खरीदते है। अुसके लिअे भी जितना सूत देना पडता है, खुद नही काता जाता है। शुद्ध खादीमे कोअी सुधार नही दिखाअी देता। अप्रमाणित खादीमे बहुत तरहके कामके कपडे आते है। अिसका कारण यह दिखाअी देता है कि शुद्ध खादीवालोको सुधारमे कोअी रस नही है। आजकल मजदूरी अितनी ज्यादा हो गअी है कि जीवन-वेतनका भी सवाल नही रहता। फिर जरूरत हो तो अप्रमाणित खादी लेनेमे क्या हर्ज है?

"सारे देशमे कपडेकी कमी है। राष्ट्रीय सरकार खुद विलायती कपडा मगाती है। विलायती कपडा मगाना न मगाना सरकारके हाथमे है। फिर भी वह कपडा मगाती है। तो फिर खरीदनेमे क्या बुराअी है?"

प्रमाणित खादी ही प्रमाण हो सकती है। यहा 'प्रमाणित' शब्दसे असली मतलब पूरी तरह जाहिर नही होता। प्रमाणितका असली मतलब है—वह खादी जिसमे सूत पूरे पूरे दाम देकर खरीदा गया है, जिसे ठीक दाम देकर हाथसे बुनवाया गया है, और खादीका दाम नफाखोरीके लिअे नही बल्कि लोक-लाभके लिअे ही रखा गया है।

स्वावलनी यानी अपनी वनाअी खादीके सिवा वाकी अैसी खादी वाजारमे लेनी पडती है। अुस खादीके लिअे कुछ प्रमाण जनताके लिअे जरूरी है। अैसा प्रमाण देनेवाली अेक ही सस्था हो सकती है। वह है चरखा-सघ। अिसलिअे चरखा-सघ जिसे प्रमाण दे, वही प्रमाणित खादी।

अुसे छोडकर जो खादी मिले, वह अप्रमाणित हो जाती है। प्रमाणपत्र न लेनेमे कुछ-न-कुछ दोष तो होना ही चाहिये। दोषवाली खादी हम क्यो ले? दोषवाली और नेदोषकी खादीमें फर्क है, अिसमें शकके लिअे गुजाअिश ही नही हो सकती।

यह सवाल किया जा सकता है कि प्रमाणपत्रकी शर्तमे ही दोष हो सकता है। अगर दोष है तो अुसे वताना जनताका धर्म है। आलसके कारण दोष वतानेके वदले अप्रमाणित और प्रमाणितका फर्क अुडा देना किसी हालतमे ठीक नही। हो सकता है कि हममें कुचाल अितनी वढ गअी है कि हम ठीक चाल जनतामें चल ही नही सकते, या जिसे हम ठीक चाल मानते है, वह धोखा ही है। अिस हद तक जाना जनताके प्रतिनिधिका काम है ही नही।

खादी, स्वदेशी मिलके कपडे और विदेशी कपडेमें फर्क है, अिस वातमे शक ही कैसे पैदा हो सकता है? परदेशी राज गया, अिसलिअे परदेशी कपडा लाना ठीक वात कैसे हो सकती है? अैसा खयाल करना ही वताता है कि हम परदेशी राजके विरोधका असली कारण ही भूलते है। परदेशी राज होनेसे मुल्कको वडा माली नुकसान होता था। अिस माली नुकसानको मिटाना ही स्वराजका पहला काम होना चाहिये।

निचोड यह हुआ कि स्वराजमें शुद्ध खादीकी ही जगह है। अुसीमें लोक-कल्याण है। अुसीसे वरावरी पैदा हो सकती है।

नअी दिल्ली, ५–१–'४८

हरिजनसेवक, ११–१–'४८

२३८

क्रोध नहीं, मोह नहीं

अेक भाअी लिखते है

"अुर्दू 'हरिजन' के बारेमें आपका लेख देखा। यदि वह आपका लिखा न होता, तो मै यही समझता कि किमीने बहुत ही क्रोधमे लिखा है। जीवणजीभाअीने जो कुछ लिखा है, अुससे सिर्फ यही साबित होता है कि लोगोको अुर्दू लिपिमे 'हरिजन' की जरूरत नही है। पर आप अुसके कारण नागरी 'हरिजनसेवक' को क्यो बन्द करे? क्या आप समझते है कि पहले हिन्दी 'नवजीवन' निकालते थे (अुर्दू नही), तब कोअी गुनाह करते थे? अुसके बाद भी नागरी 'हरिजनसेवक' निकलता रहा, पर आपने अुर्दू 'हरिजन' अुस समय नही निकाला।

"अगर आपने अुर्दू और नागरी 'हरिजन' केवल हिन्दुस्तानीका प्रचार करनेके लिअे निकाले होते तो बात ठीक थी। पर नागरी 'हरिजनसेवक' पहलेसे ही निकल रहा है। अुसमे घाटा हो तो आप भले ही बन्द करे। आपने जो चेतावनी नागरी 'हरिजनसेवक' बन्द करनेकी दी है, अुसमे मुझे अेक प्रकारका बलात्कार लगता है।

"क्या अग्रेजी 'हरिजन' से भी ज्यादा नागरी 'हरिजनसेवक' ने गुनाह किया है? सच बात तो यह है कि पहले अग्रेजीका 'हरिजन' बन्द हो जाना चाहिये। पर होता यह है कि अग्रेजी 'हरिजन' को जितना महत्त्व मिलता हे, अुतना दूसरे सस्करणोको नही।

"यह कितने बडे दु खकी बात है कि आप अपने प्रार्थना-प्रवचन हिन्दुस्तानीमे देते है। अुसका साराश आपके दफ्तरमे अग्रेजीमे होता रहा है और फिर अुसका अुल्था नागरी और अुर्दू 'हरिजन' मे छपता था, यह कहकर कि 'अग्रेजीसे'। अब तो

यह नहीं लिखा रहता। शायद अब सीधा हिन्दुस्तानीमे ही लिखा जाता हो।

"आपने कभी वर्ष पहले लिखा था कि जहा तक सभव होगा, आप केवल गुजराती या हिन्दुस्तानीमे ही लिखेगे और अुसका अुल्था अग्रेजीमे आवेगा। पहले अैसा चला भी, लेकिन बादमें यह सिलसिला शिथिल हो गया।

"मै फिर आपसे अनुरोध करता हू कि आप अग्रेजी 'हरिजन' बन्द कर दे और दूसरे सस्करण जारी रखे।"

जो बात वाकअी सही है, वह अगर कही जाय तो अुसे क्रोध मानना शब्दका सही प्रयोग नही होगा। क्रोधमें आदमी बेतुका काम कर लेता है। अगर अुर्दू 'हरिजन' बन्द करना पडा तो साथ साथ नागरी भी बन्द करना लाजमी यानी आवश्यक हो जाता है। लाजमी बात करनेमें क्रोध कैसा? जिसे मै लाजमी समझू, अुसे दूसरे न भी समझे, जैसे कि अिस पत्रके लेखक। अुससे मुझे क्या? हम जिसे लाजमी मानें, वही सारा जगत भी माने अैसा हो तो अच्छा है। लेकिन अैसा होता नही है। हर चीजके कम-से-कम दो पहलू होते ही है।

अब यह बतानेका रहा कि अेकको छोडू या दोनोको। यह ठीक है कि जब मैंने नागरीमे 'नवजीवन' निकाला और 'हरिजन' निकालना शुरू किया, तब दोनो लिपिकी चर्चा नही थी। अगर थी तो मुझे अुसका पता नही था।

बीचमें स्व० भाअी जमनालालजीकी अिच्छासे हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा कायम हुअी। जिससे अुर्दू रिसाला निकालना लाजमी हो गया। अब माना कि अुर्दू रिसाला बन्द हो और नागरी निकलता रहे, तो यह मेरी निगाहमें बडा ही अनुचित होगा। क्योंकि हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाके हिन्दुस्तानीके मानी यह है कि वह जैसे नागरी लिपिमें लिखी जाती है, वैसे ही अुर्दू लिपिमे भी लिखी जा सकती है।

अिसलिअे जो अखबार दोनो लिपिमे निकलता था, अुसे अैसे ही निकलना चाहिये। वह भी अेक अैसे मौके पर जब कि हिन्दके

लोग चारो ओरसे कह रहे है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी ही है और वह नागरी लिपिमे ही लिखी जाय। यह विचार ठीक नही है, यह बताना मेरा काम हो जाता है। यह दलील अगर ठीक है, तो मेरा कर्तव्य हो जाता है कि मै नागरी लिपिके साथ अुर्दू लिपिको भी रखू और न रख सकू तो मुझे अुर्दू 'हरिजनसेवक' के साथ नागरी 'हरिजन-सेवक' का भी त्याग करना चाहिये।

लिपियोमे मै सबसे आला दरजेकी लिपि नागरीको ही मानता हू। यह कोअी छिपी बात नही है। यहा तक कि मैने दक्षिण अफ्रीकासे गुजराती लिपिके बदलेमे नागरी लिपिमे गुजराती खत लिखना शुरू किया था। अिसे मै समय न मिलनेके कारण आज तक पूरा न कर सका। नागरी लिपिमे भी सुधारके लिअे गुजाअिश है, जैसे कि करीब करीब सब लिपियोमे है। लेकिन यह दूसरा विषय हो जाता है। यह अिशारा जो मैने किया है सो यह बतानेके लिअे कि नागरी लिपिका विरोध मेरे मनमे जरा भी नही है। लेकिन जब नागरीके पक्षपाती अुर्दू लिपिका विरोध करते है, तब अुसमे मुझे द्वेषकी और असहिष्णुताकी बू आती है। विरोधियोमे अितना भी आत्म-विश्वास नही है कि नागरी लिपि यदि सपूर्ण है—दूसरी लिपियोके मुकाबलेमें पूर्ण है, तो अुसीका साम्राज्य अन्तमे होगा। अिस निगाहसे देखा जाय तो मेरा फैसला निर्दोष लगना चाहिये और जरूरी भी।

हिन्दुस्तानीके बारेमे मेरा पक्षपात है सही। मै मानता हू कि नागरी और अुर्दू लिपिके बीच अन्तमे जीत नागरी लिपिकी ही होगी। अिसी तरह लिपिका खयाल छोडकर भाषाका ही खयाल करें, तो जीत हिन्दुस्तानीकी ही होगी। क्योकि सस्कृतमयी हिन्दी बिलकुल बनावटी है और हिन्दुस्तानी बिलकुल स्वाभाविक। अुसी तरह फारसी-मयी अुर्दू अस्वाभाविक और बनावटी है। मेरी हिन्दुस्तानीमे फारसी लफ्ज बहुत कम आते है, तो भी मेरे मुसलमान दोस्तो और पजाबी और अुत्तरके हिन्दुओने मुझे सुनाया है कि मेरी हिन्दुस्तानी समझनेमे अुनको दिक्कत नही होती। हिन्दीके पक्षमे मै तो बहुत कम दलील पाता हू। खूबी यह है कि पहले-पहल जब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमें मैने

हिन्दीकी व्याख्या दी, तब अुसका विरोध नही के बराबर था। विरोध कैसे शुरू हुआ अिसका अितिहास बडा करुणाजनक है। मै अुसे याद भी नही रखना चाहता। मैने यहा तक बताया था कि 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' नाम ही राष्ट्रभाषाके प्रचारके लिअे सूचक नही था, न आज भी है।

लेकिन मै साहित्यके प्रचारकी दृष्टिसे सदर नही बना था। स्व० भाअी जमनालालजी और दूसरे अनेक मित्रोने मुझे बताया था कि नाम चाहे कुछ भी हो, अुन लोगोका मन साहित्यमें नही था, अुनका दिल राष्ट्रभाषामे ही था। और अिसलिअे मैने दक्षिणमें राष्ट्रभाषाका प्रचार बडे जोरोंसे किया।

प्रात कालमें अुपवासके छठे दिन प्रार्थनाके बाद लेटे लेटे मै यह लिख रहा हू। कितने ही दु खदायी स्मरण ताजा होते है, पर अुन्हें और बढाना मुझे अच्छा नही लगता है।

नामका झगडा मुझे बिलकुल पसन्द नही हे। नाम कुछ भी हो लेकिन काम अैसा हो कि जिससे सारे राष्ट्रका–मुल्कका–देशका कल्याण हो। अुसमें किसी भी नामका द्वेष होना ही नही चाहिये।

'सारे जहासे अच्छा हिन्दोस्ता हमारा'—अिकबालके अिस वचनको सुनकर किस हिन्दुस्तानीका दिल नही अुछलेगा? अगर न अुछले तो मै अुसे कमनसीब समझूगा। अिकबालके अिस वचनको मैं हिन्दी कहू, हिन्दुस्तानी कहू, या अुर्दू? कौन कह सकता हे कि अिसमें राष्ट्रभाषा नही भरी है, अिसमे मिठास नही है, विचारकी बुजुर्गी नही ह? भले ही अिस विचारके साथ आज मै अकेला होअू, यह साफ है कि जीत कभी सस्कृतमयी हिन्दीकी होनेवाली नही है, न फारसी-मयी अुर्दूकी। जीत तो हिन्दुस्तानीकी ही हो सकती है। जब हम अन्दरूनी द्वेषभावको भूलेंगे, तब ही हम अिस बनावटी झगडेको भूल जायेंगे, अुससे शरमिन्दा होगे।

अब रहीं अग्रेजी 'हरिजन' की बात। अिसे मै छोटी बात मानता हू। अग्रेजी 'हरिजन' को मै छोड नही सकता। क्योंकि अग्रेज लोग और अग्रेजीके विद्वान हिन्दुस्तानी लोग मानते है कि मेरी अग्रेजीमें

कुछ खूबी है। पश्चिमके साथका मेरा सबंध भी बढ रहा है। मुझमें अंग्रेजोंका या दूसरे पश्चिमी लोगोंका द्वेष न कभी था, न आज है। अुनका कल्याण मुझे अुतना ही प्रिय है जितना कि हमारे देशका। अिसलिअे मेरे छोटेसे ज्ञान-भंडारमे से अंग्रेजी भाषाका बहिष्कार कभी नही होगा। मैं अुस भाषाको भूलना नही चाहता, न चाहता हू कि सारे हिन्दुस्तानी अंग्रेजी भाषाको छोडे या भूले। मेरा आग्रह हमेशा अंग्रेजीको अुसकी योग्य जगहसे बाहर न ले जानेका रहा है। वह कभी राष्ट्रभाषा नही बन सकती और न हमारी तालीमका जरिया। अैसा करके हमने अपनी भाषाओंको कंगाल बना रखा है। विद्यार्थियो पर हमने बडा बोझ डाला है। यह करुण दृश्य, जहा तक मुझे अिल्म है, सिर्फ हिन्दुस्तानमे ही देखा जाता है। अिस भाषाकी गुलामीने हमारे करोडो लोगोंको बहुतेरे ज्ञानसे बरसो तक वंचित रखा है। अिसकी हमे न समझ है, न शरम, न पछतावा! यह कैसी बात? यह सब साफ साफ जानते हुअे भी मैं अंग्रेजी भाषाका बहिष्कार नही सह सकता। जैसे तामिल आदि सूबाअी भाषाअे है और हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा, ठीक अिसी तरह अंग्रेजी विश्वभाषा है — जगतकी भाषा है, अिससे कौन अिनकार कर सकता है? अंग्रेजोंका साम्राज्य जायगा, क्योंकि वह दूषित था और है, लेकिन अंग्रेजी भाषाका साम्राज्य कभी नही जा सकता।

मुझे अैसा लगता है कि गुजराती भाषामे या अंग्रेजी भाषामे मैं कुछ भी लिखू, तो भी अंग्रेजी 'हरिजन' और गुजराती 'हरिजन-बन्धु' अपने पैरो पर खडे रहेंगे।

नअी दिल्ली, १८-१-'४८
(सुबह ५ बजकर ४५ मिनट)
हरिजनसेवक, २५-१-'४८

२३९

कस्तूरवा-पक्ष

कस्तूरवा-निधिके कामको वढानेकी दृष्टिसे प्रान्तीय प्रतिनिधियोकी सिफारिश पर कार्यकारिणी समितिने यह तय किया है कि अगली २२ फरवरीसे ९ मार्च तक कस्तूरवा-पक्ष मनाया जाय, जिसमें हम

१ देहातोमे ट्रस्टके अुद्देश्य और कार्यको समझावे।

२ अभी तकके अपने कार्यकी जानकारी दे।

३ मिड-वाअिफरी, वुनियादी तालीम और ग्रामसेविका-तालीमके लिअे देहातोसे वहने प्राप्त करनेका विशेष प्रयत्न करें।

८ १९४८ सालके मजूरशुदा वजटके अनुसार असली ट्रस्ट फण्डके अलावा ग्रामसेवा-केन्द्रोंके लिअे जिले या प्रान्तसे खर्चका जो आवश्यक हिस्सा स्थानीय साधनोंसे पूरा करना है, अुसे अिकट्ठा करे।

अग्रेजी तारीखके मुताविक कस्तूरवाकी मृत्युतिथि २२ फरवरी, १९४४ थी। विक्रम सवतके मुताविक यह तिथि ९ मार्च तक जाती है। देखा जाता है कि अिस कामकी न कोअी जाहिरात होती है और न कोअी प्रचार-पुस्तिका छपी है या छपती है। मुझे तो अिस वारेमे मोह नही है। देहाती काम अिस तरह हो भी नही सकता। जो अिस काममें दिलचस्पी लेते है, अुन्हे वार्षिक विवरणसे पता चल सकता है। फिर भी प्रतिनिधियोका दुख समझने लायक तो है ही। कस्तूरवा-पक्षके लिअे जो कामकी फेहरिस्त वनी है, सो ठीक ही है। कामको अजाम देनेके लिअे सवसे वडी वात तो यह है कि जो कार्यकर्ता अिस कामको करनेके लिअे चुने जाय, वे दिलचस्पी लेनेवाले हो और देहातोका कुछ परिचय रखते हो। अैसे कार्यकर्ता देखेंगे

कि जो काम आज हो रहा है अुसके सिवा दूसरा क्या क्या हो सकता है, सो देहातकी वहनो और भाअियोसे समझ ले। सभव है कि देहातियोको अपने सुधारके वारेमे कुछ पडी भी नही होती। अगर अैसा ही हो, तो भी स्वयसेविकाये अपने अपने विवरणमें अुसकी नोव करेगी। हमने अब तक तो कुछ शिविर चलाये है, कुछ जच्चा-घर निकाले है और वाल-मदिर चलाये है। अिसमे कोअी ताज्जुब नही कि यह काम विलकुल नया है। अिसलिअे हमे आहिस्ता आहिस्ता चलना है। देहातकी औरतोमे और देहातके वच्चोमे कौनसे रोजगार-धधे दाखिल हो सकते है, जिससे अुनकी आय वढ सकती है, अुनका ज्ञान वढ सकता है, अुनकी तन्दुरुस्ती वढ सकती है? यो तो हम जानते है कि क्या करना चाहिये। यहा प्रश्न यह है कि देहाती वहने अिस दिशामे कुछ करेगी या नही?

नअी दिल्ली, २०–१–'४८

हरिजनसेवक, १–२–'४८

विवाह-विधि

[अिस पुस्तकके पृष्ठ ६५ पर 'विवाह और वेद' नामक लेख छपा है। अुसके सन्दर्भमें गांधीजीकी 'विवाह-विधि' पढना दिलचस्प होगा। यह विधि गांधीजीने श्री तेंडुलकर और श्री अिन्दुमती गुणाजीके विवाहके अवसर पर हिन्दीमें तैयार की थी। अिसमें गांधीजीने 'सप्तपदी' की जगह 'सप्तयज्ञ' बताये है, जिनका पालन करके ही मनुष्य विवाहका अधिकार प्राप्त करता है।

'सप्तयज्ञ' का भाग अुन्होंने अंग्रेजीमें लिखा था।]

गणपत नारायण महादेव तेंडुलकर और अिन्दुमती नागेश वासुदेव गुणाजीकी विवाह-विधि होती है, अुसे मैं अीश्वरको दरम्यान समझकर करता हू। आप दोनो भी अैसा करे। अिस विधिमें आप जो साक्षी बने है अपने मन पवित्र रखें और विवाहाकांक्षीकी पवित्र अिच्छाके सहायभूत हो।

अब मैं अीश्वरको धन्यवाद देनेवाला भजन गाता हू, सो ध्यानसे सुनें। (भजन 'आज मिलकर गीत गाओ')

*　　*　　*

१ प्रश्न — आप दोनो स्वस्थचित्त है?

अुत्तर — (दोनो कहें) जी हा।

२ प्रश्न — आपने कल सात यज्ञ जैसा बताया गया था किये?

अुत्तर — जी हा।

३ प्रश्न — आप लोग जानते है न कि यह सम्बन्ध विषय-सुखके लिअे और भोगके लिअे नही है?

अुत्तर — जी हा।

४ प्रश्न — अिस (गृहस्थ) आश्रममें आप धर्मभावसे, त्यागभावसे और सेवाभावसे प्रवेश करते है?

अुत्तर — जी हा।

५ प्रश्न — अिस कारण दोनो अेक-दूसरेके सेवाकार्यमे विक्षेप नही डालेंगे, लेकिन अेक-दूसरेको मदद करेंगे ?

अुत्तर — जी हा।

६ प्रश्न — अेक-दूसरेके प्रति मन, वचन, कर्मसे हमेशा वफादार रहेंगे ?

अुत्तर — जी हा।

७ प्रश्न — हिन्दुस्तान जब तक स्वतन्त्र नही होगा, तब तक आप प्रजोत्पत्तिके काममे नही लगनेका भरसक प्रयत्न करेंगे ?

अुत्तर — जी हा।

८ प्रश्न — जो अस्पृश्य माने जाते है अुनके साथ रोटी-बेटीका व्यवहार करने-करानेमे मानते है न ?

अुत्तर — जी हा।

९ प्रश्न — स्त्री-पुरुषके समान अधिकार है अैसा मानते है न ?

अुत्तर — जी हा।

१० प्रश्न — आप लोग अेक-दूसरेके मित्र है। दास-दासी कभी नही। यह भी ठीक है न ?

अुत्तर — जी हा।

११ प्रश्न — दूसरे प्रश्नमे बताये सात यज्ञ सप्तपदीका स्थान लेते है, वह भी आप समझते है न ?

अुत्तर — जी हा।

अब मै आपको अपने हाथसे काते हुअे सूतके मारफत अिस बन्धनमे डालता हू। आप लोग अिस सूत-हारको जतनसे रखे और याद रखे कि आपका यह बन्धन कभी आप नही तोडेंगे और आपने जो प्रतिज्ञा यहा की है अुसके पालनमे आप अिस धर्मक्रियाको याद करके भगवानसे मागे कि सर्वशक्तिमान परमात्मा आपको सहाय करे।

अब हम साथ मिलकर राम-धुन गायेंगे।

१८–८–'४५

[अिन्दुवहनको]

त्रिया शायद प्रभाकर करेगा। वह हरिजन मा-वापका लडका है। मा-वाप खिस्ती बन गये थे। मै यह भी मान लेता हू कि यह विवाह भोगके लिये नही होगा। लेकिन सेवादृष्टिसे ही। मै यह भी मान लू कि जव तक सच्ची आजादी नही मिली हे तव तक तुम सभोग-कार्यमें नही पडोगे। मै यह तो मानता ही हू कि तुम सततिको रोकनेके अुपायोमे कभी नही फसोगे।

अितना कहनेकी आवश्यकता नही हे कि यह सव चीज सख्त लगे तो यही [गाधी आश्रममे] विवाह करनेकी आवश्यकता न मानना।

यदि अैसा विवाह पसन्द करते है तो रोज कातो, रोज गीताके १२ वे अध्यायका रागपूर्वक पाठ करो और आश्रम-कार्यमें लगे रहो और पारमार्थिक विचार ही करो।

अिस विधिमें मैंने कानूनका कुछ भी खयाल नही किया है।

[तेंडुलकरजीको]

I believe in one man one wife and vice versa for all time

Instructions for the marriage day

Saptapadi replaced by the following seven yagnas

(1) Both should fast till the marriage tie is formed (fruits may be taken)

(2) You will both read 12th ch of Gita and contemplate its meaning

(3) Each will clean up separate plots of ground with trees on

(4) Each will tend cows in the Gowshala

(5) Each will clean up the well-sides

(6) Each will clean a closet well

(7) Each will spin daily and do all these with the intention so far as possible of carrying out these yagnas daily

Bapu

सूची

हमारे कुछ महत्त्वके हिन्दी प्रकाशन

	रु० आ०
सत्यके प्रयोग अथवा आत्मकथा	१–८
गांधीजीकी संक्षिप्त आत्मकथा	०-१२
अहिंसक समाजवादकी ओर	२–०
आरोग्यकी कुंजी	०–७
खादी	२–०
खुराककी कमी और खेती	२–८
गोसेवा	१–८
दिल्ली-डायरी	३–०
नयी तालीमकी ओर	१–०
बापूके पत्र सरदार वल्लभभाईके नाम	३–८
बापूके पत्र मीराके नाम	४–०
बुनियादी शिक्षा	१–८
रामनाम	०-१०
विद्यार्थियोंसे	२–०
सच्ची शिक्षा	२–०
सत्य ही ईश्वर है	८० नये पैसे
सर्वोदय	२–८
हमारे गांवोंका पुनर्निर्माण	१–८
विवेक और साधना	४–०
विचार-दर्शन	१–८
भूदान-यज्ञ	१–४
महादेवभाईकी डायरी — १	५–०
महादेवभाईकी डायरी — २	५–०
महादेवभाईकी डायरी — ३	६–०

सरदार पटेलके भाषण	५–०
सरदार वल्लभभाओी — १	६–०
सरदार वल्लभभाओी — २	५–०
अुस पारके पडोसी	३–८
स्मरण-यात्रा	३–८
हिमालयकी यात्रा	२–०
गाधी और साम्यवाद	१–४
जीवनशोधन	३–०
तालीमकी बुनियादे	२–०
शिक्षाका विकास	१–८
शिक्षामे विवेक	१–८
ससार और धर्म	२–८
स्त्री-पुरुष-मर्यादा	१-१२
अेकला चलो रे	२–०
बा और बापूकी शीतल छायामे	२–८
आत्म-रचना अथवा आश्रमी शिक्षा — १	१–८
गाधीजी	०-१२
ग्रामसेवाके दस कार्यक्रम	१–४
बापूकी छायामे	२–८
हमारी बा	२–०
बापू मैने क्या देखा, क्या समझा ?	३–०
शराबबदी क्यो ?	०-१०
गाधीजीके पावन प्रसग	०–६
जीवनकी सुवास	०–६
सर्वोदयका सिद्धान्त	०-१०
मरुकुज	१–४

नवजीवन कार्यालय
पो० नवजीवन
अहमदाबाद – १४